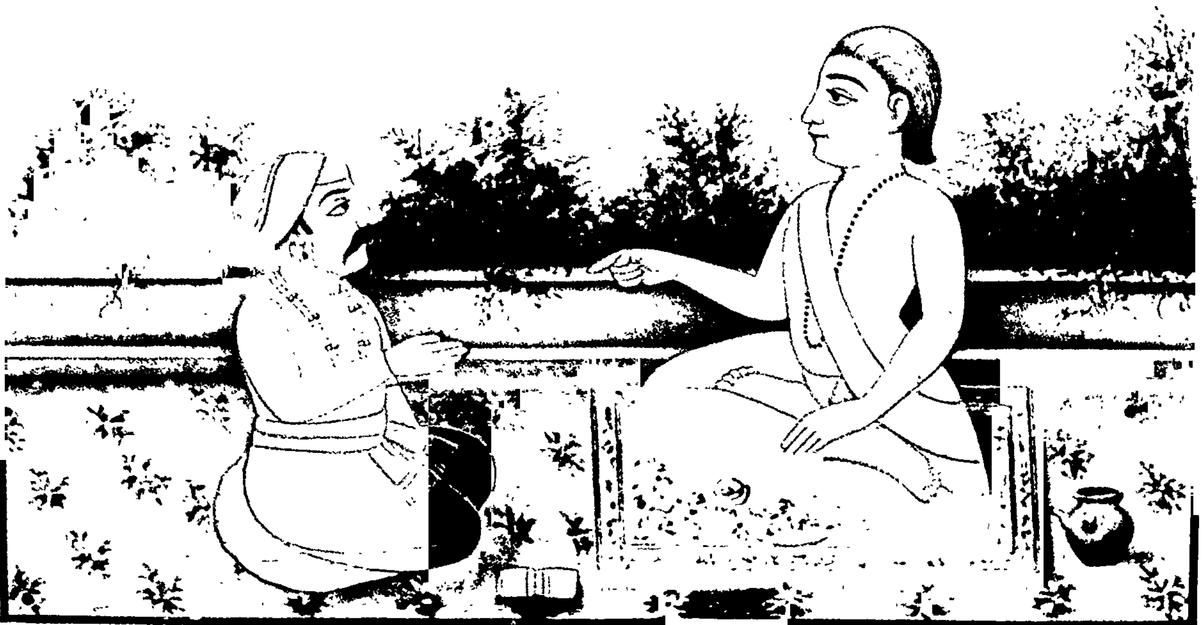
प्रकाशक—
रघुनाथप्रसाद सिंहानिया
मंत्री
राजस्थान रिसर्च सोसाइटी
२७, वाराणसी घोष स्ट्रीट
कलकत्ता।

 प्रथमवार—१५०० प्रतियां ❀

मुद्रक—
भगवतीप्रसाद सिंह
न्यू राजस्थान प्रेस,
७३ ए, चासाधोबापाड़ा स्ट्रीट,
कलकत्ता।



Engraved & printed by *Gaya Art Press, Cal.*

महात्मा स्वामी सुन्दरदासजी

समर्पणम्

त्वदीयं वस्तु हे स्वामिन् !
तुभ्यमेव समर्पितम् ॥



हे स्वामी ! यह वस्तु आपकी
आप हि को अर्पण करता ।
नहीं जानता बनी यह कैसी
यही सोचता हूँ डरता ॥
ऐसी वैसी जैसी भी हो
बिन टीका कैसे सरता ।
बुरी भली है वस्तु आपकी
शीश नवा चरणों धरता ॥

आपका लघुभक्त सेवक—

विनीत सम्पादक

প্রাক্‌কথন

দুর্ভাগ্যক্রমে হিন্দী ভাষায় আমার অধিকার নাই, কিন্তু বন্ধুবর শ্রীযুক্ত ক্ষিতি মোহন সেনের সাহায্যে উক্ত ভাষায় লিখিত সন্তদের সাহিত্যের প্রতি আমার গভীর শ্রদ্ধা ও অনুরাগ জন্মিয়াছে। এই উপলক্ষ্যে এমন সকল রচনার সহিত আমার পরিচয় ঘটিয়াছে অপর কোন সাহিত্যে যাহার তুলনা নাই। অনেকে আধুনিক ভারতের রাষ্ট্রীয় সাধনার বাহনরূপে হিন্দী ভাষার প্রচার কামনা করেন। কিন্তু কোন ভাষার সাময়িক প্রয়োজন সাধনের উপযোগিতা যথেষ্ট শ্রদ্ধেয় নহে। ভাষা আপনার প্রতি আন্তরিক শ্রদ্ধা দাবী করিতে পারে আপনার সাহিত্যের মূল্য লইয়া। সেই বিশেষ মূল্য হিন্দী ভাষায় যথেষ্ট পরিমাণে আছে। মধ্য যুগের সাধক কবিরা হিন্দী ভাষায় যে ভাবরসের ঐশ্বর্য্য বিস্তার করিয়াছেন, তাহার মধ্যে অসামান্য বিশেষত্ব আছে। সেই বিশেষত্ব এই যে, তাঁহাদের রচনায় উচ্চ অঙ্গের সাধক এবং উচ্চ অঙ্গের কবি একত্রে মিলিত হইয়াছেন। এমন মিলন সর্ব্বত্রই দুর্লভ।

যখন হইতে এই সকল কাব্যের সহিত আমার পরিচয় হইয়াছে, তখন হইতেই একান্ত মনে কামনা করিতেছি এগুলির সংগ্রহ এবং রক্ষাকার্য্যে যেন যোগ্য ব্যক্তিদের উৎসাহ জাগরিত হয়। অনেক সময় দেখিতে পাওয়া যায়, যে সকল কাব্য রচনায় আলঙ্কারিক গুণপনার বাহুল্য আছে তাহারই প্রতি সাধারণের চিত্ত আকৃষ্ট হয়। এই কারণেই ভারতীয় চিন্তাধারার শ্রেষ্ঠ প্রকাশ যে সকল কাব্যে তাহাদের ভাবগর্ভতার গুণেই জনসাধারণের দ্বারা তাহারা উপেক্ষিত হইয়া থাকে। সাহিত্যে উচ্চ অঙ্গের সৃষ্টি যথোচিত সমাদর লাভের জন্য শিক্ষা ও সাধনার অপেক্ষা রাখে। এই শিক্ষার বাহন রচনাগুলি নিজেই। অর্থাৎ পাঠের অভ্যাসের সঙ্গে সঙ্গেই তাহাদের সম্বন্ধে রসবোধ জন্মে ও ক্রমশঃ তাহাদের গভীর অর্থের মধ্যে মন প্রবেশ লাভ করে। এই কারণেই যাঁহারা প্রাচীন হিন্দী ভাষার শ্রেষ্ঠ গ্রন্থগুলিকে সাধারণের অনাদর হইতে উদ্ধার করিয়া প্রকাশ ও প্রচারের অধ্যবসায়ে প্রবৃত্ত তাঁহারা আমাদের সকলেরই কৃতজ্ঞতাভাজন।

বর্ত্তমান গ্রন্থখানি সুন্দরদাসের কবিতা লইয়া। প্রাচীন সাহিত্যে যে সকল সাধক কবি উচ্চ স্থান অধিকার করিয়াছেন, তাঁহারা কেহই পাণ্ডিত্যের জন্য বিখ্যাত ছিলেন না একথা বলিলে অত্যুক্তি হয় না। স্বচ্ছ জলের উৎস যেমন ভূগর্ভ হইতে আপন আন্তরিক বেগে আপনি উৎসারিত হয়, তাঁহাদের ভাবরসের ধারা তেমনি আপন অবিমিশ্র আনন্দের প্রেরণা বেগে আপনি উৎসারিত হইয়াছিল। এই সাধক দলের মধ্যে একমাত্র সুন্দরদাস ছিলেন শাস্ত্রমত পণ্ডিত। তিনি নিজেই বলিয়াছেন, "ষড়্‌দর্শন, যোগীজঙ্গম, শেখ সন্ন্যাসী ভক্ত প্রভৃতি সবার তত্ত্বই খুঁজিয়া দেখিয়াছি।" (পৃঃ ২৩৫, ১—২)। তিনি কেবল কবি ছিলেন না—তিনি ছিলেন সন্ধানী। তিনি মালাজপ, তীর্থযাত্রা, স্নান, আচার, ব্রতনিয়ম প্রভৃতির ধার ধারেন নাই একথা তাঁহার উক্তি হইতেই পাওয়া যায়। (পৃঃ ৩০৪, ৪ - ৫)। সকল সাধকের মধ্যে যিনি সহজরূপে বিরাজিত, সেই সহজ স্বরূপই সুন্দরের আরাধ্য। (পৃঃ ৩০৫,১৯—২৩)।

সুন্দর বলেন, "মনের লীলা দুর্ব্বোধ্য, কখনো সে হাসে, কখনো কাঁদে, কখনো সে তুষ্ট, কখনো তাহার ক্ষুধা অতৃপ্ত, কখনো সে আকাশে উঠে, কখনো নামে সে পাতালে, এমন মনকে আয়ত্ত করিবে কেমন করিয়া?" (পৃঃ ৪৪৮, ১৭)। তাই তাঁর মতে "জপ তপ, যোগ যাগ, তীর্থ, দেহকর্ষণ, সবই ব্যর্থ, জ্ঞান বিনা মুক্তি নাই।" (পৃঃ ৪১৬—৭)। তাই তাঁর মতে মুক্তির পথ পাইতে গুরু পরম সহায়। তিনি লিখিতেছেন, "আমার গুরুর উপদিষ্ট অকৃত্রিম সহজ সত্যে যে বিশ্বাস করে সে সহজেই হয় মুক্ত।" (পৃঃ ২৪৭—২৫১)। তাঁহার গুরু দাদুর প্রতি সুন্দরদাসের ভক্তির আর অবধি ছিল না। ভারতের মধ্যযুগের হিন্দী সাহিত্যের যাঁহারা সন্ধান রাখিতে চান পুরোহিত শ্রীযুক্ত হরিনারায়ণ শর্ম্মা বিদ্যাভূষণের সম্পাদিত সমগ্র সুন্দরগ্রন্থাবলী তাঁহাদের আদরণীয় হইবে। শুনিয়াছি হরিনারায়ণজি সুপণ্ডিত লেখক, পুরাকালের

ছন্দঃশাস্ত্রে তাঁহার প্রগাঢ় অধিকার। তাই, এই গ্রন্থের ছন্দের সমস্ত জটা তিনি পরিষ্কার করিয়া বুঝাইয়া দিয়া গ্রন্থখানি সম্পাদন করিতে পারিয়াছেন।

তাঁহার পাদটীকাগুলিও এই যুগের বিদ্যার্থীদের পরম সহায় হইবে।

কলিকাতা
১লা মার্চ্চ, ১৯৩৭।

স্বাঃ রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর।

प्राक्कथन

दुर्भाग्यवश हिन्दी भाषा पर मेरा अधिकार नहीं है, किन्तु बन्धुवर श्रीयुक्त क्षितिमोहन सेन की सहायता से हिन्दी भाषा में लिखित सन्त साहित्य के प्रति मेरे हृदय में गम्भीर श्रद्धा एवं अनुराग उत्पन्न हो गया है। इस सम्बन्ध में अब तक जिस प्रकार की रचनाओं से मेरा परिचय हुआ है उसकी तुलना और किसी भी साहित्य में नहीं मिल सकती। इस समय देश में ऐसे बहुत से लोग हैं जो भारत की राष्ट्रीय साधना की सिद्धि के रूप में हिन्दी भाषा के प्रचार की कामना करते हैं। किन्तु आधुनिक भारत की विभिन्न भाषाओं में ऐसी कोई भी भाषा सम्पूर्णतया यथेष्ट नहीं है जिसके द्वारा हमारे सामयिक प्रयोजनों की पूर्ति हो सके। कोई भी भाषा अपने साहित्य की दृष्टि से ही अपने प्रति श्रद्धा आकर्षित कर सकती है। इस प्रकार का विशेष महत्व हिन्दी भाषा के साहित्य में यथेष्ट रूप में पाया जाता है। मध्ययुग के साधक कवियों ने हिन्दी भाषा में जिस भाव-धारा का ऐश्वर्य-विस्तार किया है उसमें असाधारण विशेषता पायी जाती है। वह विशेषता यही है कि उनकी रचनाओं में उच्चकोटि के साधक एवं कवियों का एकत्र सम्मिश्रण हुआ है। इस प्रकार का सम्मिलन दुर्लभ है। जबसे इन सब काव्यों के साथ मेरा परिचय हुआ है तब से ही मेरी यह हार्दिक कामना रही कि इन सब के संग्रह एवं रक्षा कार्य के लिये योग्य व्यक्तियों के हृदय में उत्साह उत्पन्न हो। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि जिन काव्य रचनाओं में अलंकार आदि गुणों की प्रचुरता होती है उन्हीं के प्रति जनसाधारण का चित्त विशेषरूप से आकृष्ट होता है। यही कारण है कि भारतीय विचारधारा की ज्योति जिन काव्यों में प्रकट हुई है, उनमें असाधारण भाव गाम्भीर्य्य है उसी के कारण ही वे जनसाधारण द्वारा उपेक्षित हो रहे हैं। उच्चकोटि के साहित्य की सृष्टि के

प्रति जनता में यथेष्ट समादर का भाव तभी उत्पन्न हो सकता है जब कि उसमें यथेष्ट अथवा उपयुक्त शिक्षा एवं साधना वर्त्तमान हो। इस प्रकार की शिक्षा एवं साधना के परिचायक का काम उच्चकोटि का साहित्य स्वयं करता है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि इस प्रकार के साहित्य का अध्ययन करने के साथ-साथ उसके सम्बन्ध में रस ज्ञान उत्पन्न होता है और क्रमशः उसका गम्भीर अर्थ हृदयङ्गम होने लगता है। इस दृष्टि से जो लोग हिन्दी भाषा के प्राचीन श्रेष्ठ ग्रन्थों का जनसाधारण के अनादर एवं उपेक्षा से उद्धार करके उन्हें प्रकाश में लाने तथा उसके प्रचार के कार्य में प्रवृत्त होते हैं वे अवश्य हम लोगों की कृतज्ञता के भाजन हैं।

वर्तमान ग्रन्थ श्री सुन्दरदासजी की रचनाओं से सम्बन्ध रखता है। प्राचीन हिन्दी साहित्य में जिन साधक कवियों ने उच्चस्थान प्राप्त किया था, उनमें कोई भी अपनी विद्वता के लिये विख्यात नहीं था ऐसा यदि कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। स्वच्छ जल का श्रोत जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ से अपने आन्तरिक वेग के साथ स्वतः ही उत्सारित होता रहता है, उसी प्रकार इन कवियों की भावधारा अपने शुद्ध आनन्द की प्रेरणा से स्वतः प्रवाहित हुई थी। इस प्रकार के साधक कवियों में एकमात्र सुन्दरदास ही शास्त्रज्ञ पंडित थे। उन्होने स्वयं ही कहा है "षड़दर्शन, योगीयङ्गम आदि ग्रन्थों का अवलोकन करके मैंने सन्यास भक्ति प्रभृति मार्गों का सार तत्व ढूंढ़ कर प्राप्त कर लिया है (पृ० २३५ पंक्ति १-२)। वे केवल कवि ही नहीं थे, वल्कि एक अनुसन्धान-कर्ता भी थे। वे माला, जप, तीर्थयात्रा, स्नान, आचार, व्रत नियम को कोई महत्व नहीं देते थे। यह वात उनके कथनों से ही प्रकट होती है (पृ० ३०४ पं० ४-५) समस्त साधक जिसको सहजरूप से विराजमान देखते हैं वही सहजरूप सुन्दरदासजी के आराध्य देव हैं। (पृ० ३०५ पं० १९-२३)।

सुन्दरदासजी ने कहा है "मन की गतिविधियां दुर्बोध्य हैं, यह मन कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी सन्तुष्ट होता है, कभी उसकी क्षुधा अतृप्त रहती है, कभी वह उच्चाकाश में विचरण करता है और कभी पाताल में—इस प्रकार के चंचल मन को किस प्रकार अधीन किया जा सकता है (पृ० ४४८ पं० १७)। इसलिये उनके मतानुसार—"जप, तप, योग, तीर्थ, शरीरोत्कर्प सब व्यर्थ हैं, बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं मिल सकती '(पृ० ४५६-३)। उनके मत से मुक्ति मार्ग का साधन पाने में गुरु परम सहायक है। उन्होंने लिखा है "मेरे गुरु द्वारा उपदिष्ट अकृत्रिम सहज सत्य में जो विश्वास करेगा वह सहज ही मुक्त हो जायेगा"। (पृ० २४७-२५१)। अपने गुरु दादू के प्रति सुन्दरदासजी की भक्ति असीम थी। भारत के मध्ययुग के हिन्दी साहित्य से जो लोग परिचित होना चाहते हैं उनके लिये पुरोहित श्रीयुत हरिनारायण शर्मा, विद्याभूपण, बी० ए० द्वारा सम्पादित समग्र सुन्दर ग्रन्थावली विशेपरूप से आदरणीय प्रतीत होगी। सुनने में आया है कि श्री हरिनारायणजी एक विद्वान् सुलेखक हैं; प्राचीन काल के छंद शास्त्र में उनका प्रगाढ़ अधिकार है, तभी वे इस ग्रन्थ के छन्दों की समस्त जटिलताओं पर स्पप्ट रूप से प्रकाश डालते हुए इस ग्रन्थ का सम्पादन करने में समर्थ हुए हैं। उनकी पाद-टिप्पणियां आधुनिक काल के विद्यार्थियों के लिये भी परम लाभदायक सिद्ध होंगी।

कलकत्ता, रवीन्द्रनाथ ठाकुर

१-३-१९३७

दो शब्द

आध्यात्मिकता ही भारत की विशेपता है। भारतीय राष्ट्र का अस्तित्व उसकी आध्यात्मिकता पर ही अवलम्बित है। सारे भारत में ही सन्तों द्वारा रचित वाणियाँ मिलती है। राजस्थान में भी इसका संग्रह प्रचुर परिमाण में है। पर यह अमूल्य धरोहर छिन्न-भिन्न अवस्था में पड़ी हुई है। जगह-जगह सन्त-साहित्य के हीरे बिखरे पड़े हैं, अनेकों ग्रन्थ-रत्न वर्पा, दीमक और ढूमलों में अपना अस्तित्व खो चुके हैं। तो भी, अभी हमारे सामने जो कुछ है—यदि हम उसकी भी रक्षा कर लें तो बहुत जल्दी जागृत हुए समझना चाहिये। नहीं तो इनका अस्तित्व भी केवल पौराणिक कथा में सीमित हो जायगा। वर्तमान समय में इसकी रक्षा का सबसे सहज उपाय है, इन्हें सुन्दर रूप से संपादित कराके प्रकाशित करा देना।

राजस्थान के संत-साहित्य में दादूपंथियों द्वारा रचा हुआ साहित्य ही विशेप है—और यह साहित्य दादूमठों में, दादू भक्तों के घरों में और प्राचीन साहित्य-प्रेमियों के वंशजों के पास स्थान-स्थान पर पड़ा हुआ है। महात्मा सुन्दरदासजी दादूजी के प्रधान शिष्यों में से थे। दादू-शिष्यों में ये सबसे अधिक विद्वान्, शास्त्र पारंगत और पंडित थे। यही कारण था कि दादू-शिष्यों में आपका बहुत सम्मान था।

हिन्दी-साहित्य प्रेमी पाठक आपके रचित सवैया ग्रन्थ से बहुत दिनों से परिचित हैं—पर उस महान् आत्मा की अन्य कृतियों से बिलकुल अन-भिज्ञ। जब मैं अपने परम मित्र ठाकुर भगवतीप्रसादसिंहजी बीसेन के साथ राजस्थानी साहित्य की खोज के उद्देश्य से जयपुर गया—तब वहां के सुप्रसिद्ध पंडित-प्रवर पुरोहित हरिनारायणजी के पास उन महात्मा की कृतियों का संपूर्ण संग्रह—देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी समय केवल उस परमपिता परमात्मा के भरोसे पर हम दोनोंने इस ग्रन्थरत्न को प्रकाशित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया—और पुरोहितजी से इस विपय

में प्रतिज्ञा-बद्ध हो गये। पुरोहितजी ने इसका संपादन ४० वर्षों की खोज से बड़े ही परिश्रमपूर्वक किया है जिससे भारतीय संत-साहित्य में चिर प्रतीक्षित एक नई ज्योति का प्रकाश हुआ है और राजस्थानी साहित्य का एक बहुत बड़ा काम हुआ है।

कलकत्ते लौटने पर हमने इसके मुद्रण का कार्य शुरू कर दिया—और नाना प्रकार की विघ्नबाधाओं का सामना करते हुए हम आज दो वर्ष बाद इस ग्रन्थरत्न को उत्सुक पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं। देरी यद्यपि जरूर हुई है—पर आशा है हमारी कठिनाइयों का ख्याल करते हुए पाठक हमें क्षमा प्रदान करेंगे।

बड़े ही हर्ष का विषय है कि हमारी प्रार्थना पर विश्वकवि श्री रवीन्द्र-नाथ ठाकुर ने प्राक्कथन लिख दिया है—जिसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं और आशा करते हैं कि वे राजस्थानी साहित्य को हीरों का दिनों दिन इसी प्रकार आदर करेंगे।

अब हम अपनी ओर से इसको संपादित कर देने के लिये पूज्यवर पुरोहित हरिनारायणजी को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते—जिनकी विवेचनात्मक भूमिका और संपादकीय टिप्पणियों के योग से ग्रन्थ की विशेषता और उपयोगिता दुगनी हो गई है। साथ ही हम श्रीयुक्त ठाकुर भगवतीप्रसादसिंहजी बीसेन को भी धन्यवाद देते हैं जिन्होंने अपने प्रेस में हमें मुद्रण सम्बन्धी असाधारण सुविधायें प्रदान कर इसको प्रकाशित करने के मार्ग को सरल बनाया।

अन्त में हम परमहितैषी रायबहादुर रामदेवजी चोखानी, एम० एल० सी० और श्रीयुक्त वेणीशंकरजी शर्मा को भी धन्यवाद देते हैं जिन्होंने समय-समय पर सत्परामर्श और सहयोग देकर, इस कार्य में हाथ बटाया है।

आशा है पाठक-वृन्द हमारी त्रुटियों को क्षमा करते हुए इस ग्रन्थरत्न को अपना कर हमें सन्त-साहित्य के अन्य ग्रन्थरत्नों को प्रकाशित करने का साहस और प्रोत्साहन प्रदान करेंगे।

रघुनाथप्रसाद सिंहानिया

—मन्त्री

प्रथम खण्ड

प्रथम विभाग

ज्ञानसमुद्र

द्वितीय विभाग

लघुग्रन्थावली

(इति लघुग्रन्थावली की सूची)

संकेतावली

(सुन्दर ग्रन्थावली में ग्रन्थादि के नामों के संकेत)

संकेत	ग्रन्थादि नाम	संकेत	ग्रन्थादि नाम
अ०	अरबी भाषा	बा०	बाबू
उ०	उपनिषद	बी०	बीजक
क०	कबीरजी	ब्रह्मवैवर्त पु०	ब्रह्मवैवर्त पुराण
क० ग्रं०	कबीर-ग्रन्थावली	भा०	भागवत
गी०	गीता (साथ में पहिला अंक अध्याय और दूसरा अङ्क श्लोक जानें)	भू०	भूमिका
		मनु०	मनुस्मृति
		मू० लि० पु०	मूल लिखित पुस्तक
गु०	गुजराती भाषा	र० पि०	रणपिंगल
गो०	गोरखनाथजी	रा० भा०	राजस्थानी भाषा
गो० ज्ञा० बो०	गोरष ग्यानबोध	ल० ग्रं०	लघु ग्रन्थावली
गो० प०	गोरक्ष पद्धति	लि० पु०	लिखित पुस्तक
ग्रं०	ग्रन्थ	श०	शब्दावली
चौ०	चौपाई	श्या० च० दा०	श्यामचरणदासजी
ज्ञा०	ज्ञान समुद्र	स०	सवैया
टी०	टीका टिप्पण	सं०	सम्पादक
दा० बा०	दादूबाणी	सा०	साखी ग्रन्थ
दो०	दोहा	सां० सू०	सांख्यसूत्र
पं० भा०	पंजाबी भाषा	सुं० ग्रं०	सुन्दर ग्रन्थावली
पृ०	पृष्ठ	सु० दा०	सुन्दरदासजी
फा०	फारसी भाषा	ह० प्र०	हठयोग प्रदीपिका
फु० का०	फुटकर काव्य	ह० लि०	हस्तलिखित पुस्तक



ग्रन्थावली के संपादक

पण्डित प्रवर पुरोहित हरिनारायणजी, बी० ए०, विद्याभूषण

॥ ॐ तत्सत् ॥

भूमिका

"शृङ्गारादि समुज्वल-रचना-पटवः क्षितौ न के कवयः।
ते तु नितान्तं विरला आत्मज्ञानाय वाग्येषाम्" ॥ १ ॥*

ग्रन्थकार की महिमाः—

कविवर महात्मा स्वामी श्री सुन्दरदासजी की ख्याति भाषा संसार में, कवि सम्राट् श्री तुलसीदासजी, सूरदासजी, योगिश्रेष्ठ श्री गोरखनाथजी, अध्यात्मरहस्य पारंगत श्री कबीरजी; भाषा-विज्ञान-विशारद कविश्रेष्ठ श्री केशवदासजी तथा तत्त्वज्ञानामृत-प्रवाहक स्वामी श्री दादूदयालजी‡ के अनन्तर, सम्मान्य और फैली हुई है। इनके रचे हुए सुन्दरविलास

* "शृङ्गारादि रसों में उत्तम रचना करनेवाले चतुर कविजन संसार में बहुत हैं। परन्तु जिनकी वाणी आत्मज्ञान (अध्यात्मविद्या) के लिए ही है, ऐसे तो विरले हैं"। यह पण्डितराज जगन्नाथ की सदुक्ति है। इसमें शान्तरस की कविता की महिमा कही है। शान्तरस पर हम कुछ आगे कहेंगे।

‡ महात्मा स्वामी दादूदयालजी (सं० १६०१—१६६०) राजपूताने में अति प्रसिद्ध महात्माओं में से हुए हैं। इनकी वाणी (साखी और पद) बहुत मधुर, सरस और सरल है और राजस्थानी भाषा का आदर्श ग्रन्थ है। इनके १५२ शिष्यों में ५२ सिद्धदीर्घ महन्त हुए।

(सवैया), अष्टक, वा पद जिन्होंने एक बार भी पढ़ वा सुन लिये हैं वे पुरुप तो इनकी काव्य-माधुरी और ज्ञान-गरिमा के पूर्णभक्त ही मानों हो चुके। शान्तरस की सरल सुन्दर कविता की रचना के चातुर्य में, भक्ति मिश्रित ज्ञान वा वेदान्त के प्रकरणों को मनोरञ्जक सीधी-सादी भापा में सुगम वना देने में, नाना प्रकार काव्यांगों में शृङ्गारादि रसों के स्थान में शान्तरस को जमा देने की दक्षता में तथा काव्य-रचना वाहुल्य में दादू-दयाल के शिष्यों में ही नहीं, भापा-वाङ्मय के सिद्धहस्त रचनाकारों में, इनका स्थान वहुत ऊँचा है। इनकी अपनी निराली और सुन्दर कविता-शैली में सुन्दरदासजी अनेक वातों में निराले ही हैं, एकाकी हैं और अद्वितीय ही हैं। अपनी काव्यगुण-गरिमा और ज्ञान-गम्भीरतादि के कारण सुन्दरदासजी, दादूदयाल के सवसे पिछले शिष्य होने पर भी सवसे प्रथम गिने जाते हैं। उनके समकालीन स्वामी राघवदासजी[1] ने उनके गुणों और शास्त्रज्ञता के कारण ही कहा है कि "संकाचारय दूसरो दादू के सुन्दर भयो"। और दादू-सम्प्रदाय में उनकी कीर्त्ति का गान इस प्रकार किया जाता है कि—"दादू दीनदयाल के चेले दोय पचास। केई उडगण केई इन्दु हैं दिनकर सुन्दरदास"। सुन्दरदासजी की सुन्दर कविता को देख कर सहसा कहना पड़ता है कि—"सुन्दरे किन्न सुन्दरम्"। अर्थात् सुन्दरदासजी की ऐसी कोई भी रचना नहीं होगी जो सुन्दर (मनोहर) न हो। जैसे महाकवि पितामह श्री वाल्मीकिजी की रचित रामायण के सुन्दरकाण्ड के शव्द, वाक्य और छन्द सवके सव सुन्दरता से भरे हुए हैं, वैसे ही सन्त-साहित्य के भण्डार में सुन्दरदासजी की सव ही रचना सुन्दरता से भरी हुई है।

---

[1] राघवदासजी दादू-सम्प्रदाय में वड़े सुन्दरदासजी की शिष्य परम्परा में वहुत नामी सन्त और ग्रन्थकार हुए हैं। उनकी "भक्तमाल" भी नाभादासजी की भक्तमाल की तरह साधुओं में प्रमाणीक है, जिसकी रचना सं० १७७० में समाप्त हुई थी। ग्रन्थ अभी मुद्रित नहीं हुआ है परन्तु उपादेय है।

हमारे इस निष्कर्ष को, जो पुरुष पक्षपात रहित हैं, सुन्दरदासजी की वाणी का मननपूर्वक आस्वादन कर चुके हैं, जो सच्चे ज्ञानभक्त हैं और जिनका हृदय अध्यात्मतत्व के रस में निमग्न है, वे कदापि अत्युक्ति नहीं कहेंगे, प्रत्युत उसका समर्थन ही करेंगे।

सम्पादन की कुछ प्रारंभिक कथाः—

सुंदरदासजी की रसालु वाणी के हम तो अपनी किशोर अवस्था ही से भक्त हुए हैं। हमारे स्व० पूज्यपाद पिताजी, जो भाषा साहित्य के प्रेमी और मर्मज्ञ थे और जिनकी धर्म और ज्ञान में वड़ी श्रद्धा रहती थी, सुंदरविलास—"सुंदरदास कृत सवैया" सं० १६३३ का लिथो प्रेस का छपा वड़े आनन्द से पढ़ा करते। उसे सुन सुन कर वा पढ़ कर हम भी मुग्ध हो जाते। तथा हमारे पड़ोसी भव्यमूर्त्ति घाटड़े के प्रह्लाददासजी के थांभे के सुयोग स्वामी गोपालदासजी भी (जो हमारे पिता के सत्सङ्गी थे) हमको सुंदर-स्वामी की रचनाओं में से - यथा, "मूँसा इत उत फिरै ताक रही मिनकी। चंचल चपल माया भई किन किनकी"। "रामहरि रामहरि वोल सूवा"। "हक्क तू हक्क तू वोल तोता" इत्यादि वड़े प्रेम, रस और स्वर से पढ़ कर सुनाते। तव जो भाव हमारे चित्त का होता वह अकथनीय है। हमें ऐसा जान पड़ता मानों हम आनन्द के सरोवर में गोता लगा रहे हैं। फिर तो हम उक्त ग्रन्थ को वड़ी तल्लीनता से पढ़ने लग गये। यद्यपि उस समय कुछ और ही सुख और समझ का अनुभव होता था। निदान हमारी रुचि और भक्ति सुंदरस्वामी के वचनामृत में तव ही से हो गई थी। तदनन्तर अनेक वर्षों में अनेक मुद्रित तथा लिखित पुस्तकें देखने में आईं जिनमें सुंदरदासजी की रचनाओं को हम ढूंढ़ कर देखा करते। इनका संग्रह भी शनैः २ होता गया। ऐसे ग्रन्थों का उल्लेख आगे आवेगा। कई एक हस्तलिखित गुटकों में हमको दादूदयालजी की वाणी के साथ साथ कवीरजी, नामदेवजी, रैदासजी आदि की वाणियों के साथ प्रायः सुंदर-दासजी का कोई न कोई ग्रन्थ मिल जाता, तव हमको वड़ा आनंद मिलता।

अंग्रेजी शिक्षा के भार से अनेक वर्षों तक इस आनंद में विघ्न भी पड़ गया। परन्तु जब हम शेखावाटी में देवली की वकालत से उन्नति पाकर आये तब झूंझणूं में वह शुभ सूर्योदय हुआ कि हमको स्वामी सुन्दरदासजी के प्राचीन समस्त ग्रन्थों के विद्यमान होने का सम्वाद मिला। यह खबर हमको झूंझणूं की नागाजमाअत के वयोवृद्ध भण्डारी बालमुकुन्दजी से मिली कि फ़तहपुर (ठि० सीकर-निज़ामत शेखावाटी) में स्वामी सुन्दर-दासजी का जो प्रधान थांभा है, वहां के महंतजी के पास स्वामी सुन्दर-दासजी के सम्पूर्ण ग्रन्थ हस्तलिखित विद्यमान हैं। इस सम्वाद से जो भी आनन्द हमें प्राप्त हुआ वह कथन में नहीं आ सकता है। उक्त भण्डारीजी ने हमको एक बहुत सुन्दर बड़ा गुटका * दिया था जिसमें दादूवाणी और अन्य वाणियों के साथ सुन्दरदासजी के कई ग्रन्थ भी देखने में आये। उन भण्डारी साधु के प्रसाद से वह गुटका अब भी हमारे संग्रह की शोभा बढ़ाता है। उस ही प्रसङ्ग से उक्त सम्वाद की चर्चा हुई थी। सं० १९५७ की बात है कि वहां उक्त फ़तहपुर के महंत स्व० स्वामी गंगारामजी कार्यवश आये थे। तब उनसे असल प्राचीन ग्रन्थ के होने की वार्त्ता आई तो उन्होंने कृपा करके ग्रन्थ को भेज देने का वचन प्रदान किया। यही नहीं उन्होंने स्वामीजी के जीवन चरित्र आदिक संबंधी बहुत से उपयोगी पत्र वा ग्रन्थ आदिक के भेज देने को भी कहा। और स्वामीजी के संबंधी अनेकानेक बातें बताईं वा लिखा दीं। फ़तहपुर के वयोवृद्ध, महामति, कृतविद्य, भगवद्भक्त स्व० सेठ रामदयालुजी नेवटिया ने उक्त महंतजी की आज्ञा से वह असल प्राचीन गुटका (ग्रन्थ) हमारे

मूल प्राचीन पुस्तक की प्राप्ति तथा दूसरी की प्राप्ति

---

* नोट—गुटका यह शब्द लिखित पुस्तकके उस आकार को साधुजन कहते हैं जिसमें पत्रे (बराबर) लगातार एक पर दूसरा, अन्दर रक्खे जाकर पुट्ठा लगा कर, मोटे डोरे से सी दिये जाते हैं।—संपादक।

पास सावधानी के साथ वंधाकर डाक द्वारा ता० १ सितम्वर सन् १९०२ ई० को भेजा। वह आनंद भी अलौकिक ही था जव उस ग्रन्थरत्न के दर्शन हमको प्राप्त हुए। उसे पाकर हम मानों वहुत धनाढ्य से हो गये और ऐसा सुख मिला मानों वड़ी सारी निधि ही हमें मिल गई। उसके साथ कुछ पत्रादि सामग्री भी आई। फिर महंत गंगारामजी खुले पत्रे की

प्रारम्भिक स्वल्प संपादन कार्य।

ह० लि० पुस्तक लाये जिसमें वे ही सम्पूर्ण ग्रन्थ सुन्दरस्वामी के थे। प्रथम को हम (क) पुस्तक वा प्राचीन गुटका कहैंगे, और द्वितीय को (ख) पुस्तक वा खुले पत्रों की पुस्तक कहैंगे। इन दोनों को वहुत समय तक देखते मिलाते रहे। इस काम में झूंझणूं स्कूल के अध्यापक स्व० पं० कन्हैयालालजी ने वहुत सहायता दी थी। दोनों के मीलान से दोनों में वहुत थोड़ा अन्तर मिला जिसे (ख) पुस्तक में ठीक कर दिया गया और तत्सम्वन्धी स्थलों पर सम्पादन में नोट दे दिये गये। महंत गंगारामजी ने समय २ पर हमको कई ग्रन्थ और पत्रादि दिये और मुख से वहुतसी वातें वताई। अनुसन्धान और अन्वेषण खोज के साथ होता रहा। पुस्तकादि की प्राप्ति भाद्रपद संवत् १९५९ में हुई तव ही से काम चलता रहा। परंतु राज्य कार्य्यों और अनेक विघ्नवाधाओं से उसके सम्पादन का कार्य नियमानुकूल तव तक नहीं हुआ जव तक हम वाहर की राज्य सेवा पर से राजधानी जयपुर में न आये।

“सुंदर सार” और मुद्रण का विचार:—

अव से मूल की लिखाई का काम उक्त दोनों मूल पुस्तकों से होने लग गया। परन्तु टीका के सम्वन्ध में भी कुछ कार्य यदाकदा होता रहा। सम्पूर्ण मूल लिखा जा चुका उसके कुछ समय पीछे “नागरी प्रचारिणी सभा, काशी” के प्रधान प्रसिद्ध वावू श्यामसुन्दरदासजी की प्रेरणा से “मनोरंजन पुस्तक माला” के लिये “सुन्दरसार” टिप्पणी और भूमिका के साथ—मनोरंजन पुस्तक माला में—सन् १९१८ (संवत् १९७५) में मुद्रित हुआ

था, जिसे मार्गशीर्ष १५ संवत् १९७२ ही में लिख कर काशी भेज दिया था। इसका थोड़े ही वर्षों में दूसरा संस्करण भी छप गया था। इससे स्वामीजी के ग्रन्थों को जनसमुदाय ने रुचिकर ठाना था, यह बात प्रतीत हुई। राज्यकार्य और अनेक विघ्नबाधाओं ने टीका और जीवनचरित्र के अधिक खोज को बहुत काल तक पूर्ण नहीं होने दिया। टीका सम्पूर्ण होने पर आई उससे पूर्व ही प्रकाशन का विचार हुआ। कई प्रेसोंवालों ने हमसे बातचीत की। अंत में गीताप्रेस गोरखपुर में "कल्याण" मासिक पत्रादि के कृतविद्य सुयोग्य संपादक भक्तवर सेठ श्री हनुमानप्रसादजी ने कृपा कर इसके प्रकाशन का कार्य करा देने का विचार बांधा। परन्तु किसी आकस्मिक परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने से वहां सम्पादन का मुद्रण होना अवरुद्ध हो गया। इस पर हमने सुविधा के विचार से "जयपुर प्रिंटिंगवर्क्स" में ही छपाने का प्रारम्भ करना निश्चित कर लिया कि, उनही दिनों "राजस्थान रिसर्च सोसाइटी" के प्रमुख उत्साही और सुयोग्य विद्वान् बा० रघुनाथप्रसादजी सिंहाणिया और ठा० भगवतीप्रसाद सिंहजी बीसेन, राजस्थान के साहित्य की खोज के निमित्त सन् १९३४ में जयपुर आये। हमारे हस्तलिखित संग्रह को देखते हुए, इस हमारे संपादन को सुसज्जित देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और सानुनय और सानुरोध इसको सोसाइटी द्वारा प्रकाशित कर देने का दृढ़ विचार प्रगट किया। तो उनके उत्साह और प्रेमभरे अनुरोध से हमको भी उनकी अभीप्सा पूर्ण करने में अपना विचार छोड़ देना पड़ा और "सुन्दरग्रन्थावली" को उनके द्वारा मुद्रित कराने का निश्चय हो गया। जब उक्त बा० रघुनाथप्रसादजी कलकत्ते जाने लगे तब इसका एक पूर्व विभाग स्वामीजी के रंगीन चित्र सहित अपने साथ ही ले गये। फिर क्रमशः अन्य भाग भेजे गये और उनके दूसरी बार जयपुर आने पर समग्र ग्रन्थ विभाग उनको दे दिये गये। अपने "न्यू राजस्थान प्रेस" कलकत्ता में इसका मुद्रण होने का कार्य और

इस संपादन का प्रकाशनः—

प्रूफ संशोधन का भार उन्होंने अपने ऊपर लिया, ग्रन्थ जून सन् १९३५ से छपने लगा था। भूमिका, जीवनचरित्र, परिशिष्ट तथा अन्य चित्र काव्य के चित्रादि क्रमशः भेजे गये। ग्रन्थ छपता गया और वैसे ही हमारे पास आता गया। ता० १७ अगस्त सन् १९३६ तक संपूर्ण सटीक मूल ग्रन्थावली हमारे पास, १००८ पृष्ठों पर, आ चुकी। जीवन-चरित्र और भूमिकादि इसके पीछे छपे थे। इस प्रकाशन के कार्य में बाबू रघुनाथप्रसादजी का बहुत उत्साह, परिश्रम और मनोयोग रहा है। ठाकुर भगवतीप्रसादजी का भी उद्योग सराहनीय है। तथा परोपकार-परायण विद्या-प्रेमी भगवत्प्रेम-परिप्लुत राय बहादुर सेठ रामदेवजी चोखानी ने जिस हार्दिक प्रेम और आन्तरिक रुचि से इस ग्रन्थावली का सम्मान किया है वह लिखने में नहीं आ सकता है। प्रत्युत सोसाइटी के अन्य सब ही सदस्य महाशयों ने अपना उत्साह प्रगट कर, इसके प्रकाशन में बहुत उद्योग और व्यय करके, इसकी पूर्त्ति में कोई बात उठा नहीं रक्खी है। हम और हमारे साथ भाषा-सहित्य-संसार को इन सब महानुभावों का अत्यन्त उपकृत और कृतज्ञ होना चाहिए कि, जिन्होंने इस ग्रन्थरत्न को इस सजधज से लोक में प्रकाशित किया। हिन्दी-भाषा-साहित्य का भण्डार इससे अधिक अलंकृत रहैगा और सन्त-साहित्य के भण्डार का वैभव इससे अधिक समुज्ज्वल होगा। यह एक बहुत बड़ा काम सोसाइटी ने कर दिया है कि, लोकप्रसिद्ध कविवर स्वामी सुन्दरदासजी के समस्त ग्रन्थ, टीकादि सहित, इस प्रमाणिकता के साथ—२५० वर्ष पुरानी असल पुस्तक की प्रति के आधार पर, सम्पादित और सर्वाङ्ग सुन्दरता के साथ, मुद्रित करा दिये। इस बात का भी हर्ष सन्त-साहित्य के प्रेमियों को मानना चाहिए कि इस सोसाइटी का ऐसा भी मनोरथ प्रगट हो रहा है कि इस ही प्रकार सन्तों की बहुमूल्य रचनाओं को "राजस्थान-साहित्य रत्न-माला" के रूप में, क्रमशः यथासम्भव, सम्पादन कराके प्रकाशित करावैं। उस ही माला का यह प्रथम रत्न हो गया है।

जो दोनों प्राचीन पुस्तकें, (क) और (ख), तथा उनके सहायक अन्य पुस्तकें, चित्रकाव्य, पत्र और नोट इत्यादिक स्वामी गंगारामजी ने हमको सदा के लिए दे दिये वे हमारे संग्रह में सुरक्षित रहेंगे। इनकी सूची स्वयम् स्वामी गंगारामजी के हाथ की लिखी भी हमारे पास उनही काग़ज़ों में है। हमने इनको लौटाया भी था परन्तु उक्त स्वामी ने यह कह कर हमको जयपुर में स्वयम् आकर प्रदान कर दिये कि – "ये ग्रन्थादि आप रक्खें, आपके यहां तो सुरक्षित रहेंगे और काम आते रहेंगे, परन्तु मेरे यहां इनके खो जाने वा नष्ट हो जाने का भय रहेगा, मैं आपको ये अपनी खुशी से देता हूं और विश्वास रखता हूं कि मेरे पीछे भी आप इनको भक्तिभाव और पूर्ण क्षेम से सुरक्षित विराजमान रक्खेंगे। मेरे रामजी की ऐसी ही इच्छा है"। हमको उनकी आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ी। सच तो यह है कि उनको अपनी आयु का अंत पहले से ही दीख आया था। वे बम्बई जाते हुए इस अंतिम भेंट के साथ यह आज्ञा करते हुए यह निधि हमारे घर में छोड़ गये! हम यह नहीं जानते थे कि इसके थोड़े ही समय पीछे स्वा० गंगारामजी का भव्य शरीर इस संसार में नहीं रहेगा और इस ग्रन्थावली को मुद्रितरूप में अपनी आंखों से नहीं देख पाएंगे!

सम्पादन की सामग्री का संरक्षणः—

पाठकों को विदित हो कि—(१) मूल प्राचीन गुटका (बीच में सिला हुआ किताब के रूप में पुस्तक) स्वामी सुन्दरदासजी ने अपने सामने ही अपनी देख रेख में स्थान फ़तहपुर में अपने वैश्य शिष्य वा सेवक लेखक रूपादास से लिखवाया था। जो मिती आषाढ़ शुक्ला ६ शनिवार संवत् विक्रमी १७४२ को पूर्ण हुआ। लेखक ने अंत में लिखा है:—

दोनों पुस्तकों का विवरणः—

[(क) पुस्तक]

"संवत् १७४२ वर्षे आषाढ़ सुदि षष्ठी शनिवासरे पोथी लिखायितं स्वामी सुन्दरदासजी लिपितं रूपादास महाजन फतहपुर मध्ये पोथी स्वामी सुन्दरदासजी को ग्रन्थ सम्पूर्ण"।

स्वामी सुन्दरदासजी के ये ग्रन्थ उनके ८६ वें वर्ष में लिखे जा चुके थे। इसके ३ ही वर्ष पीछे वे सांगानेर में शरीरत्यागी हो गये थे। इससे स्पष्ट ही यह मूल गुटका अत्यन्त ही प्रामाणिक है कि स्वयम् ग्रन्थकर्त्ता ने इसे लिखवाकर तयार कराया। इस ही में अन्त में चित्रकाव्य के चित्र हैं। इसके लालपारचे का सफेद गोल बूंटीदार का सुन्दर गत्ता है, जो पीछे फ़तहपुर के महंतों ने बंधवाया है। आकार इसका १४ उंगुल लंबा और १२ उंगुल चौड़ा है, और इसमें सब मिला कर २७५ पत्रे अर्थात् ५५० पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठपर प्रायः वीस २० पंक्तियाँ लिखी हुई हैं। हिंगलू की लीकैं पत्रों की आयुर्दा विभाग पर तथा बीच २ में पदों आदि के साथ लगी हुई हैं। लिखाई अच्छी साधारण है। इस गुटके के आरम्भ के और अन्त के पृष्ठों के फोटो जयपुर के "राजपूताना फोटो आर्ट स्टुडियो" में तयार हुए हैं, जिनके ब्लाकों के चित्र इस स्थल पर पाठक पढ़ेंगे। सब मिलाकर ग्रन्थ संख्या अनुष्टुप श्लोक गणना से ८००० है।

इस प्राचीन ग्रन्थ के काग़ज़ वैसे तो पुष्ट हैं, काश्मीरी भूरे रंग के हैं। परन्तु २५० वर्ष पुराणे होने से जीर्ण हैं और हाथ लगाने से कनारों और वीच में से टूटते हैं वा खिरते हैं। इस कारण इसको अधिक वार खोला नहीं जाता है। और विशेष कार्य (ख) पुस्तक से ही लिया जाता है। इसके (क) पुस्तक के अंदर आये हुए ग्रन्थादि का पत्रों सहित व्योरा इस प्रकार है :—

(१) सूचीपत्र समग्र ग्रन्थ का प्रारम्भ के ३-४-५ के पत्रों पर है। ६ से ८ तक सब पत्रे खाली हैं!

(२) "ज्ञान समुद्र"—पांचों उल्लास-पत्रे ६ से ३० तक।

(३) "ग्रन्थ (लघु ग्रन्थ)-सर्वांगयोग से पूर्वी भाषा वरवै तक ३७ ग्रन्थ हैं—पत्रे ३० से ८६ तक।

(४) "सवईया"—३४ अंग—पत्रे ८७ से १५६ तक।

(५) "साषी"—३१ अङ्ग—पत्रे १५६ से २१२ तक। अन्त में ६ श्लोक हैं २१२॥ पर।

(६) "पद"—२१८ हैं २७ रागों में—पत्रे २१२॥ से २५४॥ तक।

(७) (फुटकर काव्य) चौबोला से लगाकर चित्र काव्यों और अन्त समय की सापी तक। पत्रे २५४॥ से २६२ तक फिर १ पत्रा खाली है (अर्थात् २६३ का)।

(८) चित्र काव्य के चित्र और छन्द—पत्रे २६४ से २६७ तक।

(६) छप्पै। कुण्डली। १५ प्रकीर्णक सवैयादि छंद— पत्रे २६८ से २७२ तक। बीच में खाली पत्रे भी हैं। फिर ३ पत्रे खाली हैं (२७५तक)—।

यह प्राचीन गुटका ग्रन्थ समुच्चय हमारे स्थान में सुरक्षित सात वंधनों में वंधा हुआ विराजता है। यहां तक (क) असल मूलाधार पुस्तक का विवरण हुआ। अब (ख) पुस्तक का विवरण देते हैं— यह (ख) पुस्तक अर्थात् दूसरी प्राचीन प्रति जो फतहपुर के महंत गंगारामजी से हमें प्राप्त हुई थी खुले पत्रे की है। दोनों पुस्तकों को अक्षरशः हमने मिलाया तो एक ही पाठ मिला। जो दो चार स्थानों में लेखक दोप मिले उनको (क) पुस्तक के अनुसार ठीक कर लिया गया। ग्रन्थों और छन्दों का क्रम भी वही है जो (क) पुस्तक में है। यह पुस्तक एक समय का लिखा हुआ नहीं है, कई संवतों में लिखा गया है लिखाई के संवतादि निम्न प्रकार से हैं:—

(१) ज्ञान समुद्र–आसोज वदि१४-सं० १९१० पत्रे १६ स्थान नहीं दिया।

(२) ग्रन्थ (सर्वाङ्गयोगादि ३७ फुटकर काव्य सहित) भादवा वदि १२ १९०९ पत्रे ५०-रामगढ़ शेखावाटी। फुटकर काव्य इसके अन्त में है पत्रे ४१ से ५० तक।

(३) सवैया-आपाढ सुदि १४ सं० १९२१ पत्रे ४९ चूरू, बीकानेर।

(४) सापी-दुतीय भादवा वदी ५ सं० १९०९ पत्रे ३६ रामगढ, शेखावाटी।

(५) शब्द (पद)-द्वितीय भादवा वदी ५ सं० १९०९ पत्रे ३० रामगढ़ शेखा०

(६) "दशों दिशा के सवैया" वैशाख वदी ऽऽ-सं०१९३१-पत्रे ३-स्थान नहीं दिया।

रामगढ़ स्थान के साथ "स्योजीरामजी की छत्री" यह स्थान विशेष भी दिया है। सारे पुस्तक के पत्रों की आयुर्दा पर हिंगलू की तेहरी लीकें खिची हुई हैं। "ज्ञान समुद्र" में सर्वत्र छंद, और पदों के साथ हिंगलू की लीकें हैं। सब शीर्षक भी हिंगलू से लिखे हैं। अन्त में लेखक का नाम नहीं है, परन्तु लिपि स्पष्ट ही आशाराम की है। अन्य सर्व ग्रन्थों के विभागों के अन्त में लेखक आसाराम ने मिती संवत् के साथ अपना नाम भी दे दिया है। सबसे अधिक पूर्ति वाक्यावली (कालोफॉन) लघु ग्रन्थावली के अन्त में दी है सो ही यहां उद्धृत करते हैं :—

"इति श्री स्वामी सुन्दरदासजी विरच्यतं सतगुर प्रसादेन प्रोक्तं भक्त जोग अष्टांग जोग सांष्य जोग ज्ञान जोग समस्तवाणी ग्रन्थ संपूर्ण समाप्तः ॥ वाणी सुन्दरदास की श्रव सास्त्रन को सार। पढै विचारे प्रीतिसौं सो जन उतरे पार ॥ १ ॥ लिपतं म्हंतजी श्री १०८ लालदासजी तिनका शिष्य महंतजी श्री वालकृष्णदासजी तिनका शिष्य महंतजी श्री १०८ लछीरामजी तिनका शिष्य आशारांम पृति लिष्यतं श्रव संतन का गुलाम वांचैं विचारै तिन कौं रामराम सत्यराम वंचणा वीनती सहित ॥ मिती भादवा वदि १३ वार्सुक्रवार संमत् ॥ १६०६ ॥ स्थान रामगढ पृति संपूरण भई स्यौजीरामजी की छत्री मध्ये ॥ शुभं भूयात् ॥ श्री परमात्मने नमः ॥ ꣸ ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ※ ॥ श्री ॥"

अन्य ग्रन्थों में प्रायः छंदादि के पीछे हिंगलू की लीकें नहीं हैं। शीर्षकों पर हिरमच खिची हुई है। यह आसाराम लिखारी सुन्दरदासजीके फतहपुर के थांभे की शिष्य परम्परा में ही था। पुस्तक का आकार १६ उङ्गुल लम्बा और ८ उंगुल चौड़ा है। प्रत्येक पृष्ठ पर सवैया ग्रन्थ में तो १४ पंक्तियां और अन्य ग्रन्थों में १५ पंक्तियां हैं। इस हिसाब से समस्त ग्रन्थों की, अनुष्टुप श्लोक से, गणना नीचे लिखे अनुसार है :—

(१) ज्ञान समुद्र में — पृ० ३१ × पंक्ति १५ × अक्षर ४४=६३५॥ अनुष्टुप।

(२) लघु ग्रन्थ और फुटकर काव्य } पृ० ६६×पंक्ति १५ × अक्षर ४८=२२३७॥ अनुष्टुप
(३) सवैया— पृ० ६७×पंक्ति १४ × अ० ४७=१६८८॥ „
(४-५)—[सापी ७१+पद ६०] पृ० १३१×पंक्ति १५×अ० ४६=२८१६॥ „
(६) फुटकर काव्य का अंश—पृ० १६ × ० × =३२२ अनुमान „
सर्व ग्रन्थ की संख्या =··· ··················· =८००० अनुष्टुप आठ हजार ।

३७४ पृष्ठों पर। मिलान और क्रम से (क) और (ख) पुस्तकें दोनों एक ही समझना चाहिए। केवल (ख) में चित्र काव्य के चित्र नहीं हैं। (क) पुस्तक में ये चित्र पीछे के किसी अन्य लेखक के हाथ के वहुत सुन्दर और पक्के अक्षरों में लिखे हुए हैं। (ख) पुस्तक की लिपि भी वहुत सुन्दर हैं जिसको देखने से चित्त प्रसन्न होता है। परचे के पुट्ठे वंधे हुए हैं। यह भी हमारे यहां सुरक्षित है, परंतु काम इस ही से लिया जाता है। यहां तक दोनों मूल और आधार पुस्तकों का विवरण हुआ जिसका दिया जाना हमने आवश्यक समझा। अव अन्य ह० लि० कुछ प्रतियों की नामावली देते हैं जो हमारे देखने में आई हैं। इनमें वहुतसी तो हमारे ही संग्रह में मौजूद हैं, और शेप अन्यत्र हैं। इनमें कुछेक में सुन्दरदासजी की कई रचनाएं हैं। यह वात मानने योग्य है कि हमारी उक्त उभय पुस्तकों (क) और (ख) के अतिरिक्त सुन्दरदासजी ही के समय में अनेक साधुओं ने, उनकी रचनाओं को, उनके जीवनकाल में, उनसे ही लेकर, वा अन्य प्रतियों से नकल की थीं। और दादू-सम्प्रदाय में ऐसी हस्तलिखित थोड़ी ही पोथियां होंगी जिनमें दादूवाणी के उपरान्त या साथ सुन्दरदासजी का कोई न कोई ग्रन्थ न लगा हुआ हो। उक्त (क) प्राचीन गुटके के लिखे जाने से पूर्व भी कई एक प्रतियां लिखी गई ही होंगी। विचारने की वात है (क) गुटके को भी किसी या किनही पुस्तकों से नक़ल उतारी होगी। परन्तु स्वामीजी के समस्त ग्रन्थों की

कोई पूर्ण प्रति (क) पुस्तक से पूर्व की हमको खोजने पर भी नहीं मिली। इससे इसही को अति प्राचीन कहेंगे:—

(१) श्रीमहन्त गोविन्ददासजी की गादी के महन्त श्री गङ्गादासजी के पालश्यांजी में जयपुर में विराजमान पुस्तकों में सुन्दरदासजी के समय के कुछ ग्रन्थ हैं। इनमें मुख्य सं० १७३६ का तथा १७४१ का लिखा गुटका-ये दो मुख्य हैं। इनमें ज्ञानसमुद्र, अष्टक आदि हैं। इनके सिवाय सं० १८६३ के लिखे और १८७१ के लिखे गुटकों में ज्ञानसमुद्र, सवैया, लघुग्रन्थ कई एक, साषी ग्रन्थ, अष्टक आदि हैं। इसी प्रकार सं० १८९५ और १८८५ के लिखे गुटकों में भी ग्रन्थ हैं। एक गुटके में सम्वत् लिखने का दिया ही नहीं है। संग्रह इनका उत्तम और प्रचुर है।

अन्य हस्तलिखित पुस्तकें:—

(२) दादू महाविद्यालय जयपुर में तीन पृथक्-पृथक् पोथियों में सुन्दरदासजी के सब ग्रन्थ।—(क) १८६२-६३ के लिखे। (ख) सर्व ग्रन्थ हैं सम्वत् नहीं दिया। (ग) खुले पत्रे सम्वत् १८८२ के लिखे हुए हैं।

(३) मालपुरे का सम्वत् १७४१-४३ का लिखा गुटका। इसमें ज्ञानसमुद्र का एक टुकड़ा और सवैया ग्रन्थ का कालचितावणी के अंग से दुष्ट के अंग तक हैं।

(४) जमाअत उदयपुर के भण्डारी का दिया गुटका। इसमें ज्ञानसमुद्र, सवैया और अष्टक हैं। यह सम्वत् १८८० का लिखा हुआ है।

(५) उतराधे साधु का एक गुटका। सम्वत् १८४५ का लिखा हुआ। इसमें ज्ञानसमुद्र, सवैया, हरिबोलचितावणी हैं।

(६) उतराधे साधु का दूसरा गुटका। सम्वत् १८९४ का लिखा हुआ। इसमें ज्ञानसमुद्र, हरिबोल चियावणी, विवेक-चितावणी, तर्क चितावणी और सवैया हैं।

(७) पाटण के पण्डित गोविन्दलालजी का दिया हुआ गुटका। सम्वत् लिखने का नहीं दिया परंतु है पुराणा लिखा हुआ ही। इसमें विवेक चितावणी और तर्क चितावणी हैं।

(८) जीर्ण बड़ा गुटका खाल के गत्ते का सम्वत् १७१५ इसमें लिखने का समय एक स्थान में है। इसमें ज्ञानसमुद्र, तर्क चितावणी और विवेक चितावणी हैं।

(९) साधु गोपालदासजी का गुटका। सम्वत् लिखने का नहीं है। अधूरा ज्ञानसमुद्र ही इसमें है।

(१०) फतहपुर के महन्त गङ्गारामजी से प्राप्त—देशाटन के सवैये; विपर्यय अंग की दो टीकाएं, चित्रकाव्य के छन्द और चित्र। प्रणाली के छंद। निगड़बन्ध की टीका। ग्रन्थ महंत लीलाप्रदीप। इत्यादिक पत्रे और एक वंशवृक्ष।

(११) पद और फुटकर छंद कई पुस्तकों में। सम्वत् नहीं दिये।

(१२) गङ्गासिंह का दिया हुआ गुटका। सम्वत् १९०२ का लिखा हुआ। इसमें ज्ञानसमुद्र, सवैया, सब अष्टक, पंचेन्द्रिय-चरित्र और गुरुसम्प्रदाय हैं।

(१३) खारवे का पुराणा गुटका संग्रह में। सम्वत् लिखने का नहीं। इसमें केवल मध्याक्षरी और निमात छंद हैं।

(१४) साधु रामवक्षजी मारवाड़वाले के। सम्वत् १८२२ से लगा कर १८९० के लिखे गुटकों में—सवैया। ज्ञानसमुद्र। सापी। अष्टक। सर्वाङ्गयोग ४ उपदेश। पद २६ रागों में। हरिबोल चितावणी। तर्क चितावणी। सापियां फुटकर। दशों दिशा के सवैये। (मुं० देवीप्रसादजी के पत्र के अनुसार।) इनमें मुद्रित भी हैं।

(१५) स्वामी ख्यालीरामजी का भेजा हुआ गुटका। सम्वत् १८५५ का लिखा हुआ। इसमें—ज्ञानसमुद्र। सवैया। अष्टक। पंचेन्द्रिय-चरित्र। हरिबोल चितावणी। तर्क चितावणी। विवेक चितावणी। दशों दिशा के

सवैये। और "वाईजी की भेट के सवैये"। (इस गुटके में यह अधिक विशेपता है कि इसमें स्वामीजी के रचे हुए ये ८ छंद भी हैं। इनही के प्रमाण में उक्त स्वामीजी ने यह गुटका हमारे पास कृपा करके भेजा है।)

(१६) अन्य वहुत से स्थानों, अस्थलों और मठों तथा आश्रमों में स्वामी सुन्दरदासजी के रचित ग्रन्थों के पते हमैं मिले थे। परन्तु उनके हम यहां केवल नाममात्र ही देते हैं। हमैं पुस्तकैं मंगाने की आवश्यकता नहीं थी।:—(१) राणीला। (२) नरायणा। (३) जयपुर में "डागला" नामक अस्थल। (४) नारनौल। (५) खेतड़ी। (६) सीकर। (७) गूलर (मारवाड़)। (८) चॉवड्या (जयपुर)। (९) डूंगरी का अस्थल (जयपुर-तोरावाटी)। (१०) मारोठ (मारवाड़)। (११) पंवाल्या (जयपुर)। (१२) करोली। (१३) उदयपुर (शेखावाटी)। (१४) चूरू (वीकानेर)। (१५) वीकानेर। (१६) जोधपुर। (१७) चांद-सेंण (जयपुर)। (१८) निवाई (जयपुर)। (१९) टहलड़ी (द्यौसा-जयपुर)। (२०) उदयपुर (मेवाड़)। इत्यादिक।

सम्पादन के हेतु:— प्रस्तुत सम्पादन के कारणों को विदित करा दिया जाता है।

(१) प्रथम कारण—सम्पादक की स्वामी सुन्दरदासजी के वचनामृत में भक्ति।

(२) इतने वड़े कविश्रेष्ठ सन्त महात्मा की इतनी सुन्दर रचनाओं का सर्वाङ्ग सुन्दर, शुद्ध और सम्पूर्णता का सम्पादन अवतक नहीं होना साहित्य में एक वहुत खटकता हुआ अभाव था। इस न्यूनता को मिटाना एक ध्येय था।

(३) सौभाग्य से उक्त अति प्राचीन और प्रामाणिक सं० वि० १७४२ की हस्तलिखित पुस्तक (क) का फतहपुर के महन्त स्व० गंगारामजी से प्राप्त हो जाना। और असल प्रधान थांभे के सुयोग्य महन्तजी ही से (ख) पुस्तक और अन्य सामग्री जीवन-चरित्र आदि की मिल जाने से। स्वतः

ही उक्त उत्साह की अभिवृद्धि का हो जाना। एतादृश पुस्तक और सामग्री की प्राप्ति हो जाना इस सम्पादन का एक बलवान कारण है। अकेला उत्साह ही क्या कर सकता, यदि उक्त महन्तजी कृपा करके इतना मसाला न देते तो ऐसा सर्वाङ्ग सुन्दर सम्पादन कैसे होता ?

(४) चौथा परन्तु सबसे अधिक सिद्धान्तमूलक कारण है भारतवर्ष के ऐसे-ऐसे महात्माओं का प्रदान किया हुआ और छोड़ा हुआ आध्यात्मिक यह धन, जिसके योगक्षेम और संरक्षण का कार्य सर्व अध्यात्म और धर्मप्रेमी भारतीय पुरुषों का परम कर्त्तव्य है। इसका बचा रखना, रक्षा करना, प्रकाशित करना और प्रचार करना हम उनके उत्तराधिकारियों का मुख्य धर्म है। इन ग्रन्थरत्नों को बड़े प्रेम, सद्भाव, प्रयत्न और उद्योग से हमको सुरक्षित कर रखना चाहिये। इस युग में संरक्षा का सबसे अच्छा मार्ग है उत्तम शुद्ध सम्पादन कर कराके और मुद्रित कराके प्रकाशित करा देना। यदि ये अमूल्य निधियां पूर्ण प्रयत्न और उद्योग से सुरक्षित नहीं रक्खी जांयगी तो इनके नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर कुबेर के भण्डार को भी खर्च देने से उनका मिलना असम्भव है। हस्तलिखित प्रतियां ऐसे ग्रन्थों की उंगलियों पर गिनने की संख्या में तो पहिले ही होती हैं। फिर जल, सर्दी, दीमक, अग्नि, चोर आदिक घातक अनिष्टों का भय रहता है। ऐसी स्थिति में उनकी रक्षा का करना कराना कितना आवश्यक और कर्त्तव्य है। वह उपाय उनका उत्तमरूप में छापना छपाना ही है।

मुद्रित पुस्तकों की व्यवस्था:—

उपरोक्त हेतुओं में से संख्या (२) के सम्बन्ध में कुछ लिख कर प्रमाणित करना भी आवश्यक है। जितने सम्पादन सुन्दरदासजी के कुछ ग्रन्थों के अबतक हुए हैं वे यद्यपि उनकी उत्तम वाणी को किसी प्रकार प्रचार के हेतु हुए हैं तथापि वे सबही अपूर्ण हैं, और पाठ और टिप्पण उनके अशुद्ध प्रायः हैं। यथाः—(१) बंबई के "तत्त्वविवेचक प्रेस" के संवत् १९४६

(सन् ई० १८८६) के छपे "सुन्दरदास कृत काव्य" आदिक। इसमें इतने ग्रन्थ और ग्रन्थांश हैं (१) ज्ञानसमुद्र पांचों उल्लास। (२) ज्ञान-विलास (साखी केवल २० अङ्गों में से छांटी हुई)। (३) सुन्दरविलास ३४ अङ्ग और १३ अष्टक। (४) पद २१० हैं २७ रागों में। परन्तु इनमें प्रायः पाठ अशुद्ध और विकृत हैं। ग्रन्थ अधूरे हैं। पाठ चिंत्य हैं। सापी ग्रन्थ अधूरा है। फुटकर काव्य और चित्र काव्यादि नहीं हैं। ग्रन्थों में भी गड़वड़ी की गई है। इतनी हीनता और त्रुटियां रहने पर भी इसमें सबसे ज्यादा ग्रन्थ हैं। सुंदरदासजी के योग्य यह सम्पादन नहीं हो सका है। कारण वही प्रामाणिक पुस्तक का नहीं मिलना।

(२) "निर्णय सागर प्रेस" वम्बई वाला सम्पादन सं० १९४७ का—इसमें:—(१) सुन्दर विलास ३४ अंग। (२) ज्ञान-समुद्र पांचों उल्लास। (३) ज्ञानविलास (साखी ग्रन्थ की २० अंगों में से छाँटी हुई साखियां) (४) अष्टक १३। (५) लघुग्रन्थ केवल १० ही। (६) पद १०० केवल २६ रागों में आरती सहित। वस इसमें इतने ही ग्रन्थ हैं। परंतु पण्डित पीताम्वरजी ने सवैया ग्रन्थ के विपर्यय अङ्ग की टीका अच्छी की है। और कहीं टीका टिप्पणी नहीं है। इसका निर्देश तत्वविवेचक के पुस्तक में किया गया है। अर्थात् इसकी वहुत सी नक़ल उससे करली गई है। पाठ अनेक स्थलों में विगड़ा हुआ है और चिंत्य है।

(३) ज्ञानसागर प्रेस वम्बई के सम्पादन सं० वि० १९५४ का, छठी आवृत्ती—इसमें केवल सुन्दरविलास है। परंतु अंग ३५ कर दिये हैं। क्रम भी गड़वड़ है। पाठ कहीं २ विकृत और प्रायः अशुद्ध है। टीका नहीं है।

(४) नवलकिशोर प्रेस के में केवल सुन्दरविलास है। टीका नहीं। पाठ प्रायः अशुद्ध और चिंत्य है।

(५) वम्बई गणपति कृष्णा का लिथो प्रेस का सं० १९३३ का छपा। इसका आदि ही में उल्लेख है। पाठ अशुद्ध है। टीका टिप्पणी नहीं।

(६) प्रयाग के वेल्वेडीयर प्रेस सं० वि० १९७१ (सन् १९१४) का छपा, केवल सुन्दरविलास ३४ अंगों में। "संतवाणी पुस्तक माला" का स्व० बाबू बालेश्वर प्रसादजी बी० ए० बी० एल० वकील व मालिक प्रेस का सम्पादित व प्रकाशित। पाठ मनमाने बनाये हैं। टिप्पणी जो दी है वह प्रायः असंगत है।

(७) पण्डित चन्द्रिकाप्रसादजी सम्पादित "पंचेंद्रिय चरित्र" केवल वेंकटेश्वर प्रेस की छपी हुई। भूमिका अच्छी दी है। सन् १९१४ (वि० सं० १९७२) की छपी है। इसमें पाठ ठीक है। टीका नहीं है।

(८) सुन्दरदासजी की वाणी—उक्त प्रेस प्रयाग की संतवाणी संग्रह में -साखी ग्रन्थ के केवल ६ अंगों में से ६२ साखियां छांटी हुई हैं। दूसरे संतों की वाणियों के साथ छपाया है।

नोट—सं० (६) और (८) की पुस्तकों के सम्बन्ध में यहां लिखना आवश्यक है कि—बा० बालेश्वर प्रसादजी ने "दादूदयाल की वाणी" सन् १९१४ में छपाई उसकी भूमिका में एक बहुत दूषित और घोर भूल लिख मारी थी। उसकी चेतावनी हमने उनको दी थी। तब सुन्दरदासजी का जीवन चरित्र मंगवा कर उस भूल को संशोधन कर क्षमा चाही थी। फिर साखियों की छांट हम से मंगवाई थी। उनही में से उक्त साखियां ली थीं परंतु पाठ बिगाड़ दिया। विशेष हाल "जीवन-चरित्र" में देखें।

(९) वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई का सम्वत् वि० १९६७ तथा १९६८ के छपे हुए—(१) सुन्दरविलास (२) ज्ञान समुद्र (३) अष्टक (४) ज्ञान-विलास (साखी छांटी हुई) इत्यादिक। अपूर्ण हैं।

(१०) नवलकिशोर प्रेस का सम्वत् वि० १९८३ का छपा टाइप का केवल सुन्दरविलास। न पाठ ठीक है और न टीका टिप्पणी साथ है।

(११) बम्बई को तत्वविवेचक प्रेस की सम्वत् वि० १९८४ (सन् १९२७) की छपी—प्रति—"सुन्दरविलास तथा अन्य काव्यो"— इस नाम की। द्वितीयावृत्ति। इसमें (१) सुन्दरविलास (२) ज्ञानसमुद्र (३) ज्ञान-

विलास (साखी छांटी हुई) (४) अष्टक (५) पद छँटे हुए। इन पर गुजराती भाषा में टीका टिप्पणी और भूमिका भी। पटेल देसाई पण्डित नरोत्तम द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित—एन० एम० त्रिपाठी एण्ड को. के यहां से प्राप्य। मूल नागराक्षरों में—यह उपरोक्त तत्वविवेचक प्रेसवाली की नकल प्रतीत होती है। इस पर गुजराती भाषा में टीका-टिप्पणी कुछ अच्छी है परन्तु कहीं २ अर्थ ठीक नहीं। पाठ भी प्रायः विकृत और मनमाना बनाया हुआ है। तब भी कहेंगे कि काम बहुत किया है। अनेक प्रकरणों पर अच्छे विचार भी भूमिका में लिख दिये हैं। यह ग्रन्थ हमको अकतोबर सन् १६३४ ई० में मिला, जब हम टीका का काम कर चुके थे। विपर्यय पर कोई विशेष टीका इसमें थी नहीं, वही पीताम्बरजी वाली के अनुसार नोट दिये हैं। यह ग्रन्थ हमको काठियावाड़ में के गणोद ठिकाने के जागीरदार ठाकुर श्री गोपालसिंहजी रामसिंहजी ने कृपा कर भेजा था। ठाकुर साहिब बड़े पण्डित और साहित्य प्रेमी और काव्यादि के ज्ञानकार हैं। इस पुस्तक की भूमिका में १० छपी हुई प्रतियों के नामोल्लेख किये हैं—जो बम्बई और अहमदाबाद की छपी हुई हैं। इनमें तत्वविवेचक की और निर्णय-सागर की प्रतियों के नाम भी हैं जिनसे प्रायः पाठ आदि लिये हैं। पुस्तक उपादेय है॥

(१२) सुन्दरविलास – पण्डित श्रीधरशिवलाल का "ज्ञानसागर" छापा खाने के मालिक का सम्वत् १६५४ (सन १८६७ ई०) में, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस का छपाया हुआ। इसमें ३५ अंग हैं। एक "ज्ञान का अंग" नामका अंग अधिक है। इसमें अन्य अंगों से १४ छंद लेकर ज्ञान का वर्णन अलग रख दिया है। परंतु मूल (क) वा (ख) पुस्तकों में ३४ ही अङ्ग हैं उनमें ये १४ छंद अलग छांट कर पृथक अङ्ग नहीं बनाया है। हमारी समझ में यह सम्पादन उपरोक्त संख्या (३) ही की प्रति की नकल है, भिन्न नहीं है। पाठ प्रायः चिन्त्य हैं।

इस प्रकार द्वितीय हेतु संपादन का सप्रमाण सिद्ध होता है। अब

पाठकों को इस हमारे प्रमाणिक सम्पादन की आवश्यकता और उपयोगिता का स्पष्ट ज्ञान होगा। क्योंकि इसका मूल पाठ अत्यन्त प्राचीन और ग्रन्थकर्त्ता की लिखवाई हुई प्रति के आधार पर है, और इसमें टीका-टिप्पणी विस्तार से हैं जैसी कि इससे पूर्व किसी भी लिखित वा मुद्रित संस्करण वा पुस्तक में नहीं है। इसका पाठ शुद्ध और प्रमाणिक है, अर्थ यथार्थ है। यह बात पाठक ग्रन्थों के अवलोकन से जान लेंगे॥ कई एक मुद्रित पुस्तकों में (विशेषतः इलाहाबाद वाली में) मूल और अर्थ अशुद्ध और असंगत दिये गये हैं, उनके थोड़े से उदाहरण यहां देकर बता देते हैं:—

हीनता के कुछेक उदाहरण।

(१) विचार के अङ्ग ६ वें छन्द में सब शब्द को तात लिख कर छन्द विगाड़ा है और पाठ भी विगाड़ा है।

(२) ” १६ वें छन्द में त्रिविधि को द्विविधि लिख कर भ्रष्ट किया है।

(३) ” १७ ” ” सूत्र को श्रोत्र लिख कर पाठ नाश कर दिया है।

(४) आत्मानुभव के अङ्ग में ६ वें छंद में सुन्यों सो वताइ को सुन्यौं सवताहि वना डाला है।

(५) ” ३२ वें छंद में—परोक्ष को अपरोक्ष लिख मारा ह।

(६) ” ” ” 'श्रवण करत जव' को जव ही जज्ञास होइ वनाकर चरण भी उलट-पुलट कर डाले हैं।

(७) अद्वैत ज्ञान के अङ्ग में प्रथम छंद में दोइ भये को 'दोथ नहीं' लिखा है!

(८) ” ” ५ वें छंद में ठिकठेका को इकठे का वना डाला है।

(९) ” ” ६ ठे छंद में जी मूता को जी भूता कर दिया है।

(१०) ” ” ६ वें छन्द में एकता अनेकता का एक तो अनेकक्यों

(११) ” ” १७ वें छंद में मेन शव्द को सेन वना कर अनर्थ ढाया है। एक असंगत पाठ कर डाला है।

(१२) वेल्वेडीयर प्रेस के 'सुन्दरविलास' में इस उक्त मेन शब्द का कामदेव अर्थ किया है। परंतु वहां प्रसंग में स्पष्ट ही इस मेन का अर्थ मैंण अर्थात् मोम है। कितनी बड़ी अर्थ करने की भूल है। ऐसी कई गलतियां हैं।

(१३) ज्ञानी के अङ्ग में २८ वें छन्द में बड़ी लीला की है। लघुनीत को नवनीत वना डाला है ! वलिहारी ! ए वुद्धिमान ! लघुनीत तो लघुशंका वा मूत्रत्याग (पेशाव करने) को कहते हैं, और नवनीत तो मक्खन के अर्थ में आता है। यह बात कहां से सूझी थी !

(१४) उक्त अङ्ग के २६ वें छंद में धरी को मरी लिखा है। क्या अच्छा पाठ है !

(१५) " " " ३० वें छंद में "पुटपरी लाइ" को पूठ भरी लाई लिखा है !! भाई मेरे ! पुटपरी लाना तो पगचंपी करने को कहते हैं। आपने यह क्या पाठ कर डाला ? आश्चर्य पाठ वना देने का साहस खूब किया है !! ।। और भी अशुद्धियां छपी हैं। यथाः— वेल्वेडीयर प्रेस आदिकों में।

(१६) उपदेश चितावणी का अंग—छंद ६ में—'मोट' शब्द को 'मोत' लिख मारा है।

(१७) उपदेश चितावणी का अंग—छंद १४ में—'जोंगरी' को 'जो घरी' लिख डाला है।

(१८) उपदेश " " १५ में —वींव को ग्रीव वना दिया है।

(१६) " " " १६ में—वींच को ढींच लिखा है ! धन्य !!

(२०) काल चितावणी के अंग में—छंद २० में—गोर का घोर कर दिया है।

(२१) देहात्म विछोह के अंग में—छंद ८ में—सिंघोरा को घोरा

लिखा है। ※ और (तत्वविवेचकवाले में) इसे "सिंदूर" कर डाला है। और पीताम्बरजी वाले संपादन-निर्णय सागरवाले में भी घोरा पाठ बनाकर नीचे टीप में अर्थ पथ्थर दिया है !। (क्या घोरा को पत्थर बनाया है ! धन्य !)। और 'ज्ञानसागर' छापा खानेवाले में तो गज़ब ही ढाया है। उस सम्पादक महात्मा ने इतना बड़ा साहस कर लिया है कि यह पाठ बदल डाला —"अनंत काल हाय खाय रंडापो लह्यो"। धन्य प्रभु धन्य ! आपकी लीला !!!। इसही को पाठांतर में "वेलवेडियर" वाले ने भी दे दिया है। और गुजराती टीका वाले विद्वान ने इस सिंधौरा को धारा बना दिया है !। और अर्थ यह लिखा है—"अेणे तो कलपांत करी ने तरतज हाथ मां पथ्थर लीधो" वाहजी खूब ही व्याख्या की !!। यह दोष अन्य संस्करणों के भ्रष्टपाठों की नक़ल से आया है। ये और इसी प्रकार अन्य भ्रष्ट पाठ और अर्थ, असल मूल प्राचीन पुस्तक न मिलने से, तथा एक की देखादेख दूसरे ने लिख दिया इससे (वा विचारकी न्यूनता आदिक) से कई छापे की पुस्तकों में देखने में आये हैं। हमने जो असल में सिंधौरा पाठ था सोही दिया है। और उसका अर्थ भी दिया है सो संगत है—अर्थात् 'सिंदूर आदि (नारियल वा मेंहदी) जिसको लगा कर सती श्मशान को सती होने को जाती है। और यहां फुटनोट में साधु रामदासजीकी व्याख्या दी है उससे भी नारियल का प्रमाण आता है। सती के सुहाग के पदार्थ—सिंदूर से मांग भरना, मेंहदी लगाना, हाथ में नारियल

※ इस "सिंधौरा" शब्द के अर्थ सम्बन्धी साधुवर रामदासजी दूबलधनिया-वालों ने हम को एक समय एक टिप्पणी लिखाई थी। वह यह है कि, लोगों ने इसका कुछ का कुछ अर्थ वा कुछ का कुछ पाठ कर डाला है। वास्तवमें "सिंधौरा" का अर्थ नारियल (श्रीफल) है। उदाहरण में रज्जबजी का प्रमाण दिया— "रज्जब मरै सिंधौर बग"—अर्थात् बगला नारियल में चोंच गाड़ कर मर जाता है, क्योंकि चोंच तो फिर निकलती नहीं। बग के स्थान में कग (कव्वा) भी आता है।

लेना (प्रायः गोवर का नारियल सुना है) आदि हैं। यह सिंधोरा शव्द कवीरजी की वाणी में भी मिलता है—"ग्रहतें निकसी सती होनको, देखन को जग दौरा। अव तो जरे मरे वनि आई, लीन्हा हाथ सिंधोरा"। सिंदूर रखने का लकड़ी का पात्र, (डिविया) जो कई आकार का वनता है (हिन्दी-शव्दसागर)। इस पात्र को सिंदोरा भी कहते हैं (उक्तकोश)। ऐसे ऐसे कई विचित्र पाठ और अर्थ छापे की पोथियों में हमें मिले हैं।

(२२) देहात्म विछोह के अङ्ग में—छंद ११ में वाँह उसकारै के शुद्ध पाठ को सव ही छापे की पोथियों में या तो "वाहुहूसंवारै" वा "वाहूसुधारै" वा "वाँहहू संवारै" पाठ वना दिया है। केवल वम्वई के लिथो प्रेस के छापे में "वाहू उसकारै" पाठ है। गुजराती टीकावाले ने यह पाठ दिया है—"वाहुहू संवारै" और अर्थ—"हाथ सुधारे छै"—वाहजी! खूव अर्थ और खूव पाठ दिये हैं!!। मूल पुस्तक के "वाँह उसकारै"—इस पाठका सीधा सा यह अर्थ है—अपनी भुजाओं को उकसावै—यौवन के गर्व में मिज़ाज कर कर के कंधों को वा भुजाओं को पिचकावै। उसकारना=उकसाना (हिंदी शव्दसागर)—प्रायः प्रसिद्ध सा ही है। परन्तु इस शव्द के अर्थ को न देखकर वा न ढूंढ कर अर्थ का तो इतना अनर्थ हो गया और पाठ की इतनी मिट्टी पलीद कर दी गई।

(२३) अधीर्य उराहने के अङ्ग में—छंद ४ में—पुदगल (जिसका अर्थ देह है) मुदगल लिख मारा है (जिसका अर्थ मूंग है)। कई छापे की पुस्तकों में यह पाठ है। अन्यों में शुद्ध पाठ भी है।

(२४) विश्वास के अङ्ग में—छंद ६ में—भूंछ शव्द को भूख लिख मारा है!।

(२५) मन के अङ्ग में—छंद ४ में—साप शव्द को सवही ने शंक या संक लिखा है। परन्तु यह पाठ अशुद्ध है। यहां काम की प्रवलता में साप शव्द देने से संवंध, रिश्तेदारी, लागतीपन आदि अर्थ हैं, जो ग्रन्थकार का दिया अभिप्राय है। शंक से यहां कोई प्रयोजन नहीं।

(२६) चाणक के अङ्ग में—("आपने आपने थान मुकाम सराहनकौं सब बात भली है" ।) बात शब्द को भांति लिखा है सबही छापेकी पुस्तकों में। परन्तु शुद्ध पाठ बात ही से ठीक अर्थ बैठता है, भांति शब्द लाने से कुछ अच्छा अर्थ नहीं बनता। न जानें इन लोगों ने यह शब्द कहां से उठा लिया है।

इस प्रकार छापे की पोथियों में पाठों को बहुत स्थलों में मनमाना बनाकर भ्रष्टता की है। जिससे प्रथम तो शुद्ध पाठ विगड़ा, फिर अर्थ में गड़बड़ी पड़ गई। इसके कारण मूल प्राचीन पुस्तक की अप्राप्ति और विचार शून्यता आदि कही हैं। कहांतक ऐसे भ्रष्ट पाठों और भ्रष्ट अर्थों को गिनावैं। इसका खासा एक पोथा बन जाय। ये सब दोष इस (प्रामाणिक और सुसंगत संस्करण वा) सम्पादन से आप ही निवृत्त हो जायंगे। और इसके योग्य प्रकाशक समय आने पर अन्य छापेखानेवालों वा सम्पादकों को अधिकार (राइट) दे देंगे तो इस शुद्ध पाठ और यथार्थ टिप्पण का अन्यत्र भी प्रचार होने लग जायगा।

मुद्रित पुस्तकों का उपकार:—

परन्तु इन मुद्रित पुस्तकों ने अपूर्ण वा अशुद्ध रहते भी स्वामीजी की रचनाओं को प्रकाशित करके उनकी कीर्त्ति को और उन रचनाओं में भरे हुए ज्ञान को यथा सम्भव संसार में फैलाया है। और लोक का एक प्रकार से उपकार ही किया है। अतः उनका कृतज्ञ होना चाहिये और उनके अवलोकन और शुद्ध संपादन के पढ़ने से हमें शिक्षा लेनी चाहिये।

यहां यह बात भी कह देनी अनुचित न होगी कि नवीन ग्रन्थ की रचना करने की अपेक्षा कभी कभी और कहीं कहीं पुराणे ग्रन्थ का सम्पादन, संशोधन, टीकाटिप्पणी, भूमिका आदि का लिखना करना कुछ अधिक ही दुस्तर और कठिन होता है। परन्तु प्राचीन साहित्य की रक्षा का तो यही सबसे अच्छा उपाय है। इसमें क्लेश भी हो तो सहन करना अपना धर्म है। जिन कारणों से उक्त मुद्रित पुस्तकों में मूल और अर्थ

की त्रुटियां रही हैं उनको पाठक स्वयम् जान सकते हैं। कुछ तो मूल हस्त-लेखित पुस्तकों में लेखक दोप। कुछ सम्पादक की अल्पज्ञता। कुछ अनुभव और सम्पादनकला की न्यूनता। सामग्री की अल्पता। फिर छपाई, कम्पोज, प्रूफसंशोधन आदि में असावधानी वा कलाहीनता। इत्यादि हैं। सम्पादन के ढंग की बात तो आगे कुछ कही जायगी। यहां इस प्रश्न का समाधान करना आवश्यक है—कि स्वामी सुन्दरदासजी ने कितने और कौन से ग्रन्थ रचे थे? प्रस्तुत प्राचीन गुटके के अन्तर्गत जो ग्रन्थ आये हैं वे ही हैं और अन्य नहीं हैं इसमें क्या प्रमाण? सुंदरदासजीने जो जो और जितने जितने ग्रन्थ रचे थे उनके नाम प्रमाण सहित हम को स्वामी राघवदासजी की "भक्तमाल" ग्रन्थ में, स्वामी चत्रदासजी के टीका के छंदों में, मिल गये हैं। अतः वे छंद ही अविकल यहां उद्धृत कर देते हैं। इन के पढ़ने से पाठकों को निश्चय होगा कि स्वामी के थांभे के विद्वान शिप्य ही ने उनके रचित सब ग्रन्थों की, यथार्थ रूप से, नामावली देकर छंदोवद्ध कर दिया है, कि फिर किसी को भ्रम के लिए स्थान ही नहीं रहे।

ग्रन्थों की संख्या का प्रमाणः—

"स्वामी श्री सुन्दरजी वाणी यह रसाल करी,
भगत जगत वांचै सुणैं सब प्रीति सौं।
सापी अरु सबद, सवइया सरवांग जोग,
ग्यान कौ समुद्र, पंचइन्द्रियां उजीति सों॥
सुप हू समाधि, स्वप्रवोध, वेदको विचार,
उकत अनूप, अद्भुत ग्रन्थ नीति सौं।
पञ्च परभाव, गुरु संप्रदाय, उत्पत्ति नीसानी,
गुरुकी महिमा, वावनी सु रीति सौं॥ ५४८॥
पटपदी, भरमविध्वंसन, गुरुकृपा, सतगुरुदया,
गुरु म्हैमां सतोतर आंनिये।

रामजी, नामाष्टक, आत्माअचल, भाषा,
पंजावी सतोत्र, ब्रह्म, पीर मुरीद जांनिये ॥
अष्टक अजव ष्याल, ग्यान भूलना है आठ,
स्हैजानंद, ग्रहवैराग बोध, परमांनिये।
हरिवोल, तरक, विवेक चितावनि त्रिय,
पमंगम, अडिल, मडिल सुभ गानिये ॥ ५४९ ॥
वारामासौ आयुभेद, आत्मा विचार, येही,
त्रिविध अंतःकरण भेद उर धारिये।
वरवै पूरवी भाषा, चौवोला, गूढा अरथ;
छप्पै छंद, गण अरु अगण विचारिये ॥
नवनिधि, अष्ट सिधि, सातवारहू के नाम,
वारामास ही के वारै रासि सो उचारिये।
छत्रवंध, कमल, मध्याक्षरा, कंकण वंध,
चौकीवंध, जीनपोस वंध ऊ संभारिये ॥ ५५० ॥
चौपडि, विरक्षवंध, दोहा अद्य अक्षरी, स,
आदि अन्त अक्षरी, गोमूत्रिका जु कीये हैं।
अन्तर वहिर लापिका, निमात, हारवंध,
जुगल निगडवंध, नागवंध भी ये हैं ॥
सिंहा अवलोकिनी, स प्रतिलोम, अनुलोम,
दीरघ अक्षर, पन्च विधानी सुनीये हैं।
गजल, सलोक, और विविध प्रकार भेद,
पंडित कवी सुरनि मानि सुप लीये हैं" ॥ ५५१ ॥

इन चार छन्दों में दिये हुए ग्रन्थादि के नामों को मूल (क) और (ख) पुस्तकों से मिलाये तो और तो सब मिल गये, केवल पंच विधानी और गजल नहीं मिले। 'विविध-प्रकार' कहने से नाना प्रकार के काव्याङ्ग अथवा फुटकर काव्य समझना चाहिए। जो कोई कविता वा साखी वा

वाणी कहीं रह गई और ग्रन्थ के संग्रह के समय ग्रन्थकर्त्ता ही उसको सम्मिलित न कर सके और जो पश्चात् मिल गई तो वह भी इस शब्द (विविध प्रकार) के अर्थ में समझ लेना चाहिये। जैसे 'देशाटन के सवैये', वा 'वाईजी की स्तुति के सवैये' इत्यादि। इन छंदों में ग्रन्थादि का क्रम पुस्तक के अनुसार, छंद की ही आवश्यकता वा विवशता के कारण नहीं रक्खा जा सकता था। अर्थात् जहां जिस नाम के विठलाने से छंद ठीक वन गया उसको वहीं रख दिया, क्रम का विचार न रख कर छंद और ग्रन्थादि के नामों का विचार रखना आवश्यक ही था। और छंद ही के निर्वाह के लिए किन्हीं नामों को भी विकृतरूप देना पड़ा है। सो कोई दोष की वात नहीं समझी जाय। यह क्षंतव्य ही है। इस गणना से सव ग्रन्थ ४२ होते हैं, जिनके विभागों का उल्लेख हम आगे करेंगे। दूसरा प्रमाण इतने ही ग्रन्थादि के होने का यह भी है कि उपरोक्त ह० लि० ग्रन्थों की, अन्य स्थानादि में मिली हुई पुस्तकों के अन्दर नामों में इनसे अधिक कोई ग्रन्थ इत्यादि नहीं मिले। जो प्रकीर्णक मिले वे पृथक् ग्रन्थ मान लेने के योग्य नहीं हैं। स्वामी ख्यालीरामजी ने हमको एक समय कहा था कि कि स्वामी सुन्दरदासजी ने एक ग्रन्थ अलंकार का "अलंकार-भूपण" भी वनाया था। यह ग्रन्थ महंत लच्छीरामजी के साथ वीकानेर सं० १६११ में गया था। वहां महंतजी का चौमासा महाराज सरदारसिंहजी ने कराया था। महंतजी के साथ ३५० मूर्त्तियां (साधु संत) भी थे। वहां वह ग्रन्थ वीकानेर के जतियों ने देखने को लिया था सो उनही के पास रह गया। पीछा नहीं आया। इसका पता लगाने को हमने ठा० रामसिंहजी, एम० ए० को वीकानेर लिखा था। उक्त विद्वान ने कृपा कर तलाश भी वहुत किया परंतु इस ग्रन्थ का वहां जतियों के पास वा अन्यत्र भी होना पाया नहीं गया।

इन सर्व ४२ ग्रन्थों को हमने (क) और (ख) पुस्तकों के क्रम से ही रक्खा है। इनको ६ (छह) विभागों में दर्शाया वा विभाजित दिखाया है, जो (संक्षीप्त सूचीपत्र में) इस प्रकार दिये हुए हैं:—

सम्पादन का ढंग वा विवरण:—

(१) प्रथम विभाग........ज्ञान समुद्र ग्रन्थ।

(२) द्वितीय विभाग........लघुग्रन्थावली। इसमें 'सर्वाङ्ग योग प्रदीपिका' से लगा कर 'पूर्वीभापा वरवैतक ३७ लघुग्रन्थ (थोड़े २ छंदों के छोटे ग्रन्थ) हैं। छोटे होने से और एक स्थानी आ जाने से 'लघुग्रन्थावली' नाम सम्पादक ने सुविधा के अर्थ दे दिया है।

(३) तृतीय विभाग—सवैया। मुद्रित पुस्तकों में 'सुन्दरविलास' नाम दिया गया है। ग्रन्थकर्त्ता ने तो "सवैया" (सवइया—सवईया) ही नाम इस ग्रन्थ का रक्खा था और वही नाम हमने बना रक्खा है।

(४) चतुर्थ विभाग—साखी। यही नाम सर्वत्र मिलता है। किसी २ मुद्रित पुस्तक में 'ज्ञानविलास' नाम भी, इसका वा इससे संकलित साखियों का दिया, मिलता है। संपादन में सब पूर्ण दी गई हैं।

(५) पंचम विभाग—पद (शब्द—भजन) इनकी रागें और इनकी संख्या दे दी गई हैं। छापे की कई पुस्तकों में छांटे हुए पद और रागें दी हैं। हमारे सम्पादन में संपूर्ण हैं।

(६) षष्ठम विभाग—फुटकर काव्य संग्रह। यह नाम सम्पादक ने, विभाग और प्रकीर्णक वा फुटकर छंदादि को एक स्थानी रखने के अभिप्राय से, देकर छठा विभाग बनाना आवश्यक समझा है। इस बात को चतुर और मर्मज्ञ पाठक स्वयम् अच्छा समझेंगे। छपी पुस्तकों में फुटकर काव्य नहीं है।

(क) और (ख) प्राचीन पुस्तकों के द्वितीय विभाग—लघुग्रन्थावली के अंत में—'पूर्वीभापा वरवै' ग्रन्थ के अगाड़ी 'चौवोला' 'गूढार्थ'

से लगाकर 'अंत अवस्था' की चार साखियों तक जो काव्य वा छंद थे उनको हमने इस ६ ठे विभाग—"फुटकर काव्य" में रख दिया है। और 'साखी' और ग्रन्थ के अन्त में जो छह श्लोक थे उनको भी फुटकर काव्य में यथा स्थान रख दिया गया है। इस ही प्रकार 'देशाटन के सवैये' भी (जो इन दोनों पुस्तकों से पृथक् मिले) इसही विभाग में रक्खे गये हैं। मुद्रित सम्पादन की सूची वा फुटकर काव्य ही में इस संयोजना को देखें।

यह भी विदित हो कि (क) प्राचीन मूल पुस्तक में छप्पय छंद और कुंडलिया छंद दिये हैं, उनको तो फुटकर काव्य में लगा दिया गया है। औ १५ प्रकीर्णक छंद (सवैया आदिक) थे पृथक् (२६८ से २७२ के पत्रों पर) उनको "सवैया" ग्रन्थ में, अङ्गों के प्रकरणों के विचार के अनुसार, जहां २ रक्खे उनका पता देते हैं:—

(१) जैसे व्योम कुम्भ के ५८ (मनहर)···सांख्यके अङ्ग में ३५ वां।
(२) ज्ञानी कर्म करै नानाविध ५६ (सवैया)···ज्ञानीके अङ्गमें ३२ वां।
(३) आपुही के घट में ६० (मनहर)—चाणक के अंग में १५ वां।
(४) आपुही की प्रशंसा सुनि ६१ (मनहर) - सांख्य के अंग में ३७ वां।
(५) देह के संयोग ही तें ६२ „ — „ „ ३६ वां।
(६) श्रोत्र कछु और न ६३ „ — अद्वैत ज्ञान के अंग में २४ वां।
(७) व्यापि न व्यापक ६४ „ — विचार के अङ्ग में २० वां।
(८) योगी जागै ६५ „ — „ „ २१ वां।
(९) योगी तू कहावै तो ६६ „ — „ „ २२ वां।
(१०) जती तू कहावै तो ६७ „ — „ „ २३ वां।
(११) ब्राह्मण कहावै तो ६८ „ — „ „ २४ वां।
(१२) ब्राह्मण कहावै तो ६९ „ — „ „ २५ वां।
(१३) ब्रह्मचारी होई तो ७० „ — „ „ २६ वां।
(१४) रामानंदी होइ तो ७१ „ — „ „ २७ वां।
(१५) काहे को करत नर ७२ „ — विश्वास के अङ्ग में ९ वां।

हम को सर्व की सुविधा के लिए यह क्रम उत्तम जंचा, इस ही कारण हम ने "फुटकर काव्य" का विभाग रखकर प्रकीर्णक और फुटकर छंदादि को उसमें संनिष्ट किया, और उक्त १५ सवैयों को "सवैया" में लगा दिया। जो आठ सवैये पीछे से 'बाईजी की स्तुति" के स्वामी ख्यालीरामजी से मिले, ग्रन्थ के संपूर्ण छप जाने के बहुत पीछे मिले, इससे उन्हें परिशिष्ट (ख) जीवन चरित्र के, में रखना पड़ा। इसके सिवाय हमको कुछेक छन्द मुद्रित वा ह० लि० पुस्तकों से मिले वे सवैया ग्रन्थ के प्रकरणों से मिलते जुलते, तथा स्पष्ट ही सुन्दरदासजी की कृति ज्ञात हुए। इस कारण उन्हें, सवैया ग्रन्थ में यथा स्थान लगा दिये गये। वहां संकेत दे दिया गया है। उससे जान सकेंगे।

इनके अतिरिक्त प्रासंगिक छंद भी हमें स्व० महंत गंगारामजी से मिले जो जीवन चरित्र में यथा स्थान लिखे गये। यथा :—

(१) "क्या दुनिया अस्तूत करैगी······। (नराथणें में गरीबदासजी को सुनाया सो।)

(२) "जूसर कहै तू सुन हो दूसर···। (लाहोर में दूसर से शास्त्रार्थ में कहा सो)

(३) सुन्दर के दो ऊन्दर दूधैं······। (लाहोर में दुग्ध के संबन्ध में कहा सो)

(४) बाईजी के भेंट के सवैये ८ ······। (जो स्वामी ख्यालीरामजी से अभी मिले)

इतना सा, दोनों (क) और (ख) पुस्तकों संबन्धी और उनके आधार पर ग्रन्थों और छन्दादि का विभागों में क्रम लिखा गया। (ख) पुस्तक (क) की पूरी नकल है वा (क) पुस्तक की किसी अन्य नकल से नकल हुई होगी। (ख) का क्रम वही है जो (क) का है। इस से (ख) भी प्रामाणिक पुस्तक है।

ग्रन्थों का अनुक्रम और उनकी संगति ठीक कर लेने पर उनके मूल

की लिखाई की गई। हमने भाषातत्त्व के सिद्धांत पर आरूढ रहकर (क) और (ख) पुस्तकों के पाठ को अर्थात् उनकी भाषा के ढंग को जैसा का तैसा ही रक्खा है अर्थात् उसमें भाषा में कोई विकार वा अन्तर वा रद्दो बदल नहीं किये हैं। हमने, हमारे सम्पादकीय अधिकार और कर्त्तव्य भार के वश से, ग्रन्थकार की भाषाशैली का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर लेने पर, लेखक दोष से वा किसी भी कारण से छंदोभंग दिखाई दिया उसे शुद्ध और ठीक करने में अपनी बुद्धि का प्रयोग अवश्य किया है। क्योंकि ऐसा न करने से ग्रन्थ की इस प्रकार की मलिनता साफ़ कैसे होती, और ऐसे विद्वान अनुभवी और भाषा के आचार्य की शैली कैसे एक रस, धारा प्रवाह एक गति से कैसे स्थिर हो सकती थी। परन्तु ऐसे प्रसंग वा स्थल अधिक नहीं मिले। कहना नहीं होगा कि स्वामी सुंदरदासजी की भाषा आजसे २५० (अढाई सो) वर्ष प्राचीन काल की है। वे साधु थे, परन्तु अन्य साधु महात्माओं की भाषा की अपेक्षा सुन्दरदासजी की भाषा परिमार्जित, स्फीत और शुद्ध है। स्वयम् पंडित होने और काशी में और अन्य बड़े नगरों में विद्वानों के सत्संग में रहने और संस्कृत और भाषा के बहुत ग्रन्थ अध्ययन करने, अनेक विद्वानों, कवियों, महात्माओं के रचित ग्रन्थों के अवलोकन, आदि कारणों से तथा निज प्रतिभा के प्रकाश और अपनी अभिरुचि से, स्वामीजी की भाषा प्रायः विशुद्ध, नियम-सिद्ध और टकसाली सी हो गई थी।

स्वामी सुंदरदासज़ी की भाषा (१) ब्रजभाषा (२) साधु भाषा। (३) खड़ी बोली और (४) राजस्थानी का मेल है। हमने फेरफार कुछ नहीं किया है। अपभ्रन्श वा प्रयुक्त रूपों को शुद्ध संस्कृत रूप देने का अपराध सिर पर नहीं उठाया है। थोड़े से उदाहरणों से संपादन कार्य का ढङ्ग प्रगट हो सकेगा। यथा :—

(१) पुराणी भाषा में क वर्गीय ख को मूर्धन्य ष लिखने का रिवाज रहा है। हमने प्रायः वैसा ही रक्खा है। परन्तु स्वयम् ग्रन्थकार स्वामी

सुंदरदासजी ने दुःख, सुख शब्दों में क वर्गीय ख ही लिखा है। अतः इन शब्दों में हमने भी वैसा ही रक्खा है।

(२) णकार को प्रायः ग्रन्थकार ने नकार ही लिखा है। हमने ऐसा ही रख दिया है।

(३) पुस्तक लेखक ने सर्व को श्रव वा स्रव कहीं कहीं लिखा है, क्योंकि साधु भाषा में ऐसी लिखावट का प्रचार है। परन्तु सुंदरदासजी ने अनेक स्थानों में शुद्ध सर्व वा सरव ही लिखा है। अतः हमने भी सर्व ही बनाया है, वा छंद के निभाव के लिये सरव भी।

(४) निरमल वा निर्मल को न्रिमल लिखा है उसे शुद्ध निर्मल वा छन्दानुसार ही बनाया है (देखो सवैया। २३।३ में)। ऐसे प्रयोग अधिकतर लेखक दोष ही माने जा सकते हैं। हमने आवश्यक संशोधन किया है।

(५) "मैं" के स्थान में मै (बिना अनुस्वार का) मिला उसे लेखदोष समझ कर मैं ही बनाया गया। और प्रायः प्रथम पुरुष एकवचनवाला मैं (अहम् के अर्थ का वाची) और सप्तमी का अव्यय मैं एक-सा ही लिखा मिला है। अर्थात् दोनों में मकार पर ऐकार है। प्रायः वैसे ही रक्खे गये हैं।

(६) तालव्य श को दन्ती स प्रायः लिखा पाया है। कहीं शुद्ध भी पाया है। जहां तालव्य से शुद्ध पाठ मिला तो हमने दंती स बना डालने का साहस नहीं किया।

(७) दीर्घ ई—कहीं-कहीं ह्रस्व इकार को दीर्घ ईकार लिखा पाया है। पाइयत को पाईयत, सवैया को सवइया वा सवईया भी लिखा पाया है। वहां प्रसंगानुसार वा छन्दानुसार संशोधन कर दिया गया है। हमने "सवैया" ही लिखा है।

(८) ही—प्रायः ही को ई ही लिखा पाया है। जैसे झूंठो ही को झूंठोई लिखा है (स० २।८) हमने ऐसा ही रख देना उचित समझा।



स्वर्गीय सेठ रामदयालजी नेवटिया भक्तवर फतहपुर (१९०४)

(९) 'ऋ'—ऋकार युक्त शब्दों को कहीं रकार युक्त लिखा है। यथा सुकृत को सुक्रित। परन्तु अधिकतर शुद्ध पाठ ही मिलता है। जहां हमें शुद्ध पाठ मिला वहां वैसा ही रक्खा है। (यथा स० २।१३)

(१०) और वा वोर—प्रायः वोर ही मिला है। 'और' भी कहीं-कहीं मिला है। यदि सुविधा देखी जाय तो वोर (वकार से) अन्य के अर्थ में अच्छा ही है। क्योंकि और और ओर में जो गड़वड़ी आजकल की हिन्दी में रहती है वह प्रगट ही है।

(११) वकार, बकार—व (अन्तस्थ) के स्थान में ब (पवर्गीय) और ब के स्थान में व लिखे हुए मिले हैं। पुराणी भाषा में ऐसा दोष नहीं था। वेद को बेद, वर को बर, वीर को बीर, वन को बन इत्यादि। कहीं शुद्ध लिखे मिले वहां शुद्ध ही रख दिये गये हैं।

(१२) एक, इम—एक को येक और इम को यिम या यम लिखा हुआ पाया। परन्तु अधिकतर स्थानों में शुद्ध पाये तो शुद्ध ही रक्खे गये।

(१३) चौपइया को चौपईया ऐसा कहीं कहीं लिखा देखा। अन्यत्र चौपइया ही लिखा पाया। अतः शुद्ध ही लिखा गया।

(१४) ह्रस्व स्वर को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व स्वर लिखा पाया। वहां छन्दानुसार शुद्ध बनाया वा पादटिप्पण में संकेत लिख दिया गया। यथा (ज्ञा० स० ४।६३ में) 'तीनकौ' को 'तीनकु' ऐसा पढ़ने से छन्द ठीक बुलैगा, जब कि इन्दव को गणछन्द लेंगे।

(१५) "जिज्ञासु" शब्द को "यज्ञास" (ज्ञा० १।८) ऐसा प्रायः लिखा। इसको हमने लेखदोष समझ कर जिज्ञासु ही बनाया है।

(१६) यकार और वकार के नीचे बिन्दु लगाने का पुराणा ढचर है। वही रक्खा गया।

(१७) बकार (पवर्गीय) को बीच से न चीर कर वकार (बिना नीचे की बिन्दु के) लिखने का प्रचार-सा ही देखा गया। परन्तु यह

अशुद्ध प्रयोग समझा जाकर यथा स्थान शुद्ध वकार ही लिखा गया, क्योंकि अनेक स्थानों में शुद्ध वकार ही मिला है।

(१८) क को ग (ज्ञा० १।१२) प्रायः वा कहीं-कहीं लिखा पाया। परन्तु अन्य स्थानों में शुद्धपाठ पाया इससे शुद्ध ही लिखा गया। (जैसे भक्ति को भगति और युक्ति को युगति—इनको शुद्ध भक्ति और युक्ति ही हमने प्रायः वना दिया है)।

(१९) कौ-तौ (को-तो) के स्थान में दो मात्रा (द्विमात) के साथ सर्वत्र है, वही हमने पाठ रक्खा है। यह चाल प्राचीन भाषा की निशानी है।

(२०) अैसै (ऐसे के स्थान में) लिखा हुआ प्रायः मिला। परन्तु शुद्ध (ऐसे) भी मिला। इससे प्रायः शुद्ध (ऐसे) ही लिखा गया।

(२१) ऋ के स्थान में रि अनेक शब्दों में मिला—यथा, भ्रित्य (ज्ञा० २।४८)। परन्तु मृगतृष्णा (ज्ञा० २।५३), कृपा, तृषन (ज्ञा० ३।८६), धृत्य (ज्ञा० ३।८७), सृष्टि (ज्ञा० ४।५-७) आदिक शुद्ध मिले। अतः छन्द निर्वाहानुसार शुद्ध किये गये।

(२२) अनेक स्थलों में छन्द ठीक रखने के निमित्त शब्दों का संशोधन करना पड़ा है। क्योंकि वे शब्द लेखक दोष से विकृत प्रतीत हुए। यथाः—

(क) (ज्ञानसमुद्र २।४ में) "उत्तम मध्य कनिष्ठा तीन विधि"—में प्रत्यक्ष ही कनिष्ठा लेख-दोप से अशुद्ध है, अर्थात् छन्दोभंगकारी है। इसे कनिष्ट वनाया गया जिससे मात्रा, जो वढ गई थी, कम होकर छन्द शुद्ध वन गया। परन्तु (ज्ञा० २।५ में) कनिपट पढ़ने ही से छन्द ठीक वनता है अतः इसका संकेत पादटिप्पणी में दे दिया गया।

(ख) आत्मा शब्द को आतमा पढ़ने से छन्द ठीक वैठता है (ज्ञा० २।६) अतः इसका संकेत भी फुटनोट पादटिप्पण में दे दिया है।

इस ही प्रकार अन्यत्र भी किया गया है। सो पाठ में पाठक देखलैं।

(२३) प्रायः शब्दों के अन्त्याक्षरों का अकार ह्रस्व इकार, ग्रन्थों में,

आया है, ऐसा (१) वहुवचन में (यथा इनि, जिनि, अङ्गनि इत्यादि)। (२) कर्म विभक्ति में (यथा स० १६।१२ इन्द्रिन कौं, सुग्रन्थनि मैं, इत्यादि)। (३) सप्तमी विभक्ति में (यथा, तिनि भीतरि, वाहरि मैं इत्यादि)। (४) क्रियाओं में (यथा कहि, करि, भजि, सुनि इत्यादि) इनको वैसे का वैसा ही रक्खा गया है क्योंकि प्राचीन भाषा के व्याकरण का नियम ही है ऐसा जिसे विगाड़ना उचित नहीं।

इस ही प्रकार अन्य प्रयोग वा शब्द-विन्यास प्राचीन भाषा के अनुसार जो मिले हैं उनको वैसे ही रक्खा गया है, पाठको विगाड़ा नहीं गया है। जहां शुद्ध होने का कारण था वहां शुद्ध ही रक्खा गया वा शुद्ध किया गया।

इस प्रकार भाषा के सम्पादन और रक्षा में प्रयत्न करना पड़ा है।

ग्रन्थों का विवरणः— **स्वामी** सुन्दरदासजी ने जो-जो ग्रन्थ रचे हैं उनमें क्या लिखा है और वे कैसे हैं इत्यादि वातों का दिग्दर्शन यहां कराया जाता है जिससे पाठकों को यहीं से आंशिक परिचय हो जाय। यह सब वहुत संक्षेप में विवरणरूप में दिया जाता है।

(१) प्रथम विभाग—ज्ञानसमुद्र

"ज्ञानसमुद्र" के पांच उल्लास वा अध्याए हैं। अनेक प्रकार के छन्दों में, अति रमणीय मनोहर भाषा में, गुरुशिष्य सम्वादरूप में, अध्यात्म-विद्या के अनेक ज्ञानकाण्डों—गुरुभक्ति और जिज्ञासा तथा ज्ञान-पिपासा, नवधा भक्ति (भक्ति-विज्ञान), योग (हठ और राजयोग), सांख्य शास्त्र, वेदांत आदिकों को वड़ी ही चतुराई से, सरल मनोग्राही सुगम रीति से संसार के परम कल्याण मोक्ष-प्राप्ति के लिये कृपा करके परोपकारी स्वामीजी ने सुन्दर रीति से वर्णन किया है। ज्ञानसमुद्र एक छोटा-सा परन्तु गम्भीर आशयों का भारी खज़ाना—गीतादि सत्शास्त्रों की नांई—एक भाषा में अध्यात्म-विद्या की संहिता है। प्रत्येक उल्लास का सार दिया जाता है:—

(१) प्रथम उल्लास में—शिष्य गुरु के सम्वाद में गुरु के लक्षण, गुरु

कैसा मिलै, शिष्य उत्तम गुरु से किस विधि से ज्ञान की प्राप्ति करै, शंकाओं की निवृत्ति गुरु द्वारा कैसे करावै, गुरु अपने प्रिय शिष्य को किस ढंग से ज्ञानभूमि में प्रवेश करावै। इत्यादि बड़ा ही सुरम्य वर्णन है।

(२) दूसरे उल्लास में—नौ प्रकार (नवधा) भक्ति तथा पराभक्ति का बहुत उत्तम वर्णन, भक्ति के भेद और विधियों का सार, अनेक भक्ति-ग्रन्थों का सारोद्धार प्रतीत होता है। पराभक्ति का वर्णन देखने ही योग्य है। भाषा-साहित्य में ऐसा निरूपण विरला ही प्राप्य हो तो हो। "मिलि परमातम सों आतमा पराभक्ति सुन्दर कहै"—यह भक्ति-विज्ञान की पराकाष्टा है।

(३) तृतीय उल्लास में—अष्टांग योग और उसकी संक्षिप्त विधियां। हठयोगप्रदीपिका, गोरक्ष पद्धति, दत्तात्रेय संहिता आदिक योगशास्त्र के ग्रन्थों तथा स्वामीजी का निजका अनुभव कूट-कूट कर सरल-भाषा में भरा गया है। राजयोग के लाभ की महिमा। निर्विकल्प समाधि के आनंद और योगी की ब्रह्मानन्द की अवस्था आदि का वर्णन बड़ा ही चमत्कारी है। इसके साथ स्वामीजी का "सर्वाङ्गयोग" ग्रन्थ भी पढ़ना चाहिये।

(४) चतुर्थ उल्लास में—सेश्वर सांख्य शास्त्र के सिद्धान्तों का सार-रूप से वर्णन किया है। सांख्य से मुक्ति की प्राप्ति का विधान। प्रकृति-पुरुष भेद और उनका निरूपण। सृष्टि का क्रम और चेतन पुरुष से उसका प्रादुर्भाव किस प्रकार से होता है। जड़ से चेतन पुरुष को भिन्न समझ कर जड़का निरास कर कैवल्य की प्राप्ति कैसे करना यह दिखाया है। यह वर्णन अत्यन्त गम्भीर है और मुमुक्षुजनों को मनन करने योग्य है। पंचीकरण का थोड़ा-सा दिग्दर्शन कराके चारों अवस्थाओं और कोषों का भेद बताया है, शुद्ध ज्ञान से निजस्वरूप की प्राप्ति की सरल सूक्ष्म विधि बहुत उत्तमता से बताई गई है।

(५) पांचवे उल्लास में—अद्वैत ज्ञान का निरूपण दिया है। अद्वैत ब्रह्म के समझने की सहज रीति दर्साई है। चारों अवस्थाओं से भी परे

तुरीयातीत अवस्था का संकेत (जो सवैया ग्रन्थ के सांख्य के अङ्ग म दिया है) दिया जाकर, प्रागभावादि चार अभावों का दिग्दर्शन करके अत्यन्ताभाव द्वारा निर्गुण निराकार शुद्ध चेतन ब्रह्म के स्वरूप वा लक्षण को वताने की चेष्टा की गई है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वैदिक वेदान्त के महावाक्य की यथार्थता और वेदोक्त 'नेति नेति' कथन की रीति से ब्रह्मज्ञान की विधि वताते हुए निरुपाधि जीव कैसे शुद्ध ब्रह्म है और उस अनिर्वचनीय शांत अवस्था की प्राप्ति में कैसा आनन्द और वैलक्षण्य है, मोक्ष (जीवन्मुक्ति) का वास्तविक स्वरूप क्या है, इत्यादि बातें वहुत उत्तमता और चमत्कारी वर्णन से वताई गई हैं। यह पांचवां उल्लास अत्यन्त श्रेष्ठ और मनन योग्य है।

इस ग्रन्थ में योग के साथ-साथ भक्ति और सांख्य का जोड़ इस चातुर्य के साथ लगा दिया है कि जिससे इन तीनों परस्पर प्रतिकूल शास्त्रों के सिद्धान्तों में विवाद के लिए कारण ही नहीं उठता है। सिद्धान्त में वेदान्तशास्त्र ही को सर्वोच्च और चरमकाष्ठा का माना जाकर, सांख्य और भक्ति आदिकों को क्रमागत साधन वा सहायक अङ्ग वा मार्ग माने हैं।

इतने महत्वपूर्ण सिद्धांतों को शास्त्ररीत्या प्रदर्शित करके स्वामीजी ने यह प्रत्यक्ष कर दिया है कि काव्य में कुछ शृंगार रस और वीर रसादिकों का ही वर्णन होता वा हो सकता है, ऐसी वात नहीं है, अपितु शांतरस (ज्ञान, योग, सांख्य आदि) भी सुललित छंदादि में वर्णित हो सकते हैं। मानों शृंगारी कवियों को मात दे दी है। शृंगार रस के खण्डन और शांतरस के मण्डन, तथा गर्हित नायकाभेद का सत्यानाशकारी यह पवित्र और देदीप्यमान उदाहरण—ज्ञान समुद्र-और स्वामीजी के अन्य ग्रन्थ भी—जागती ज्योति हैं॥

इस ज्ञानसमुद्र में ३४ प्रकार के छंदों को काम में लिया गया है। छंद अत्यन्त मधुर और रोचक हैं। सर्वत्र ही रचना सरल, सुबोध, सुखावह, ललित, परन्तु सारगर्भित और प्रायः ओजस्विनी भी है। मुमुक्षुजनों,

ज्ञानके प्रेमियों, साधुजनों, आदि सज्जनों के लिए यह ग्रन्थ वड़े काम का है। हमारे अनुभव में वर्त्तमान काल तक के भाषा साहित्य में ज्ञान का भंडार छंदोवद्ध सर्वगुणालंकृत ऐसा सुरम्य ग्रन्थ और है ही नहीं, जिसमें थोड़े से वर्णनों में इतने विशाल विषय, इतनी सरलता और चातुर्य्य से, एकत्रित हों। भाषाकाव्य में ज्ञानकाण्ड का यह रीति ग्रन्थ है। और स्वामी सुन्दरदासजी इसके कारण तथा अपने अन्य ग्रन्थों के कारण, इस प्रदेश की विद्या और विधान में आचार्य हैं और अद्वितीय ग्रन्थकर्त्ता हैं।

ज्ञान समुद्र ग्रन्थ इसके निर्माण काल, संवत् १७१०, के देखने से अन्य कई ग्रन्थों के पीछे वना प्रतीत होता है। परन्तु इसकी अनुपम उत्तमता के कारण स्वयम् ग्रन्थकर्त्ता स्वामीजी ही ने इसको अपने ग्रन्थों के संग्रह में सर्व प्रथम स्थान दिया है। यद्यपि "सवैया" ग्रन्थ इससे किसी प्रकार कमती नहीं है वरन उसकी कीर्त्ति कुछ विशेष है, तव भी इसको इतनी उच्चता इसके जन्मदाता ने ही दे दी है। इससे इस ग्रन्थ की महिमा प्रगट होती है।

"ज्ञान समुद्र" यह नाम स्वामीजी ने समझ कर ही दिया है। और आरम्भ में वा अन्त में नाम को रूपक से सार्थक सिद्ध किया है। नाम ठीक सोच कर ही दिया है। अत्युक्ति नहीं है। और न कोई आत्मश्लाघा वा आडंवर ही। यह ग्रन्थ वस्तुतः ज्ञान का समुद्र ही है। इसमें अनेक-रत्न भरे पड़े हैं। अपने भाग्य और साधन के अनुसार ढूंढनेवाले वे रत्न पावें। आरम्भ के समारोह वा उठान से तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसको कहीं वहुत विशाल और विपुलरूप देना अभीष्ट था। परन्तु इस कलिकाल के अल्पमति पुरुषों की हीन दशा को देख कर वा अन्य कारणों से, थोड़े में ही वहुत को भर दिया और अधिक आडम्वर रचना से हाथ को रोका है।

"ज्ञान समुद्र" की रचना सम्वन्धी कथा जीवन-चरित्र में दी जायगी, पाठक वहां पढें। उस कथा से भी स्वामीजी की विलक्षण प्रतिभा का

एक सच्चा उदाहरण वा प्रमाण मिलता है। शास्त्रों की समझ और धारणा कितनी विलक्षण उनमें थी। सबसे अधिक अच्छा योग और वेदान्त (अद्वैत) का वर्णन है। यद्यपि भक्ति का भी कुछ कम अच्छा वर्णन नहीं है। दादूजी के सिद्धांतानुसार सुन्दरदासजी का भी भक्ति मिश्रित ज्ञान ही सिद्धांत था ।

(२) द्वितीय विभाग—लघु ग्रन्थावली

लघुग्रन्थावली विभाग में "सर्वाङ्गयोग प्रदीपिका" से लगा कर "पूर्वी भाषा बरवै" तक ३७ ग्रन्थ हैं। इनमें से सर्वाङ्गयोग; पंचेंद्रिय चरित्र सुख समाधि, सब ही अष्टक, सहजानंद, तीनों चितावनियां, त्रिविध अंतः-करण भेद और पूर्वी भाषा बरवै इत्यादि बहुत अच्छे बने हैं।

प्रत्येक ग्रन्थ का संक्षेप में कुछ २ वर्णन देते हैं। ग्रन्थ के पदार्थों का आनंद तो ग्रन्थ को आद्योपांत ध्यानपूर्वक पढ़ने, समझने और विचारने से ही प्राप्त हो सकता है।

(१) सर्वाङ्गयोग ग्रन्थ में—चार उपदेशों (अध्यायों) में भक्तियोग, हठयोग और सांख्ययोग को चार २ भेदों के साथ २०३ दोहा चौपई छंदों में संक्षेप से परन्तु सुन्दरता से वर्णन किया है। प्रथम उपदेश में 'पंचप्रहार' रूपी उपोद्घात वर्णन किया है। इसमें उक्त तीनों मोक्ष के उपायों से भिन्न जो मतमतांतर हैं वे मिथ्या और पाखण्ड हैं।

(क) भक्तियोग में –भक्तियोग, मंत्रयोग, लययोग और चर्चायोग, ये ४ कहे हैं।

(ख) हठयोग में–हठयोग, राजयोग, लक्ष्ययोग और अष्टांगयोग ये ४ कहे हैं।

(ग) सांख्ययोग में–सांख्ययोग, ज्ञानयोग, ब्रह्मयोग और अद्वैतयोग ये ४ कहे हैं।

(क) भक्तियोग में—निरंजन देवकी मानसिक पूजा प्रेम पूर्वक करै।

वहां संयम से स्नान, चित का चंदन, ध्यान की धूप, भावका भोजन, ज्ञान का दीपक, अनहदनाद की घंटा, इत्यादि से अपने अंतर्भूत प्रियतम इष्टदेव को अनन्यता से ऐसे ध्यावै जैसे पतिव्रता अपने पति को पूजती है। "सेवक भाव कहे नहिं चौरै। दिन-दिन प्रीति अधिक ही जौरै"। फिर मंत्रयोग में रामनाम मंत्र को गुरु द्वारा श्रवण कर रटै फिर हृदय में धारै और गुप्त अभ्यास करते २ रंकार की ध्वनि निरंतर धाराप्रवाह अंदर चलने लागी—'रोम-रोम राम धुनि होई'—। पीछे लययोग कहा है जो अपने इष्ट में मन को इस प्रकार लीन कर देना है जैसे पपीहा पीव-पीव रटै, कुञ्ज पक्षी का अंडे में ध्यान रहै, कछुआ अपने अंडे को ध्यान से सेवै, नटिनी वांस पर चढ एकाग्र हो जाती है, पनिहारी घट में ध्यान रख कर अन्य चेष्टा भी करती रहती है, इत्यादि प्रकार—'ऐसी लय जन को निस्तारै।' अनंतर (चौथा) चर्चायोग वताया जिसमें निराकार परमात्मा सृष्टिकर्त्ता की विशाल रचना और महिमा का निरंतर गुणगान करता हुआ प्रार्थना करता रहै—"तेरा को करि सकै वखाना। थकित भये सब संत सुजाना। तेरी गति तूंही पै जानैं। मेरी मति कैसे जु प्रवानैं।"—"ये चारयौं अङ्ग भक्ति के नवधा इनही मांहिं। सुन्दर घट महिं कीजिये वाहिर कीजै नांहि"।

(ख) हठयोग में—प्रथम हठयोग का अर्थ देकर उसकी विधि और साधन वताया है। उससे 'नपसिपलौं वपु निर्मल होई'। फिर राजयोग के लक्षण कहे हैं 'जाकौं सब वैठे ही सूझै। अस सवहिन की भापा वूझै॥ सकल सिद्धि आज्ञामहिं जाकै। नव निधि सदा रहै ढिग ताकै'। इसके पीछे लक्ष्ययोग तीन प्रकार का कहा है—ऊर्द्ध, मध्य और वहिर। उर्द्ध लक्ष्य आकाश में दृष्टि रख कर, मध्यलक्ष्य मन में ब्रह्मनाड़ी के अभ्यास से, और वहिर लक्ष्य पंचतत्व की धारणा नासिकाग्र दृष्टि रख कर करै तथा त्राटक सेवा त्रिकुटी में रक्तवर्ण के भ्रमर के लक्ष्य साधन से। अनंतर अष्टांगयोग में—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, साथ ही मुद्रा और वंध प्रत्याहार,

धारणा, ध्यान, षट्चक्रों सहित फिर समाधि साधै। 'मन इंद्री की वृत्ति समावै। ताकौ नाम समाधि कहावै॥ जीवात्मा परमात्मा दोई। समरस करि जब एकै होई!...।

(ग) सांख्ययोग में—प्रथम सांख्य का वर्णन अतिसंक्षेप से आत्म अनात्म के भेद से (ज्ञान समुद्र के अनुसार) कह कर फिर ज्ञानयोग कहा जिसमें ब्रह्म को सकल ब्रह्माण्डों का कारण बताया और 'यौं आतमा विश्व नहिं न्यारा। ज्ञानयोग को यहै विचारा'। फिर ब्रह्मयोग का वर्णन किया है जिसको बहुत कठिन बताया है जो अन्य सब साधनों के पीछे प्राप्त होता है और इसमें 'अहंब्रह्माऽस्मि' का साधन होता है। 'ब्रह्मयोग ब्रह्महि भया दुविध्या रही न कोइ'। अनंतर अद्वैतयोग बताया है जो ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान और असंप्रज्ञात समाधि का दूसरा नाम है, 'न तहां जाग्रत स्वप्न न धरिया। न तहां सुपुप्ति न तहां तुरिया॥ ज्ञे ज्ञाता नहिं ज्ञान तहं ध्ये ध्याता नहिं ध्यान। कहनहार सुन्दर नहीं यह अद्वैत बषान'॥ इस प्रकार तीनों योगों के बारह प्रकार कह, ग्रन्थ सम्पूर्ण किया उसही का सार यह है।

(२) पंचेंद्रिय चरित्र में—२२१ दोहा चोपई (सखी छंद) में पांचों इन्द्रियों का वर्णन आख्यायिकाओं में दिया है। छह उपदेशों में से प्रथम पांच में पांचों इन्द्रियों के चरित्र और छठे में समाहार वा फल दिया है। प्रथम में स्पर्शेंद्रिय के वश होकर हाथी झूंठी हथनी के मोह में फँसकर पकड़ा जाता है। दूसरे में घ्राणेन्द्रिय के वश होकर भ्रमर कमल में बन्द होकर मर जाता है। तीसरे में रसनेन्द्रिय लोलुप मछली झूंठी चेट के लालच में शिकारी की बंसी के कांटे में अटक कर प्राण देती है। चौथे में चक्षुपेन्द्रिय के अधीन होकर पतंग दीपक में पड़कर जल जाता है। पांचवें में श्रोत्रेन्द्रिय के फंद में पड़कर मृग वधिक का शिकार हो जाता है। यों पांचों इन्द्रियों के मायाजाल का वर्णन बहुत सुन्दरता से कहकर छठे उपदेश में निचोड़ निकाला है। 'गज अलि मीन पतंग मृग,

इक इक दोप विनाश। जाके तन पांचों बसै, ताकी कैसी आश'। इन पांचों को जो वश करते है वे ही सच्चे साधु हैं। उनके वश करने के उपाय वताये हैं—स्पर्शेन्द्रिय से भगवान वा संत के चरण स्पर्श करै, नासा से भगवत चरणारविन्दों के अर्पित पुष्प वा तुलसीकी सुगंध ग्रहण करै, जिन्हा से हरिगुण गावै। नेत्र से हरिदर्शन करै। कान से हरि कथा सुनै। ऐसे अभ्यास से इन्द्रियां विषयों से रुक सकती हैं 'कछु और न आनैं चीतै। ऐसी विधि इन्द्रिय जीतै'। यह ग्रन्थ संम्वत् १६६१ में स्वामी ने निर्माण किया था उसही को अंत में एक छंद में दिया है :— "यह संवत सोलह सैका। नवका पर करिये एका। सावनवदि दशमी भाई। कविवार कह्या समुझाई"।

(३) सुख समाधि—३२ अर्ध सवैया छन्दों में समाधि के सुख (ब्रह्मानन्द) के वर्णन की चेष्टा है। गूंगे के गुड़ की समान वह अलौकिक आनन्द कव कहने में आ सकता है। शुद्ध नवीन घृत के स्वाद की उपमा देकर उस अवस्था का वर्णन स्वामीजी ने कर देने का प्रयास, शिष्यों वा जिज्ञासुओं के उपकार के लिए, किया है। प्रत्येक अर्ध सवैया के अन्त में 'घी सो घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवे सुन्दरदास" आया है। और अन्त में कहा है—"सद्गुरु बहुत भांति समुझायौ, भक्ति सहित यह ज्ञान उल्हास। घी सो घौंटि रह्यौ घट भीतर सुख सौं सोवै सुन्दरदास"। ३२।

(४) स्वप्नप्रबोध में—स्वप्न का दृष्टांत संसार में घटाया है। जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत में मिथ्या भासते हैं, वैसे ही संसार के पदार्थ (नामरूपात्मक जगत्) तुरीयावस्था की ज्ञानावस्था में असत्य वा मिथ्या भासता है। "स्वप्न सकल संसार है स्वप्ना तीनौं लोक। सुन्दर जाग्यो स्वप्नतें तव सव जान्यों फोंक"। २५। पचीस दोहा छन्दों में समाप्त हुआ है।

(५) वेद विचार—२१ दोहों में वेद को वड़ी आस्तिक वुद्धि से वृक्ष के रूपक में सुन्दरता से वर्णन किया है। 'कर्म पत्र करि जानिये, मंत्र पुष्प पहिचांनि। अंत ज्ञान फलरूप है, कांड तीन यौं जानि। ६।

ज्ञान सुफल ऊपर लग्यौ, जाहि कहै वेदान्त। महा वचन निश्चै धर, सुन्दर तव ह्वै शान्त"॥ २१॥

(६) उक्त अनूप—भी २१ दोहों में ही कहा गया है। इसमें वेदांत की अनुपम उक्ति यही है कि सद्गुरु की प्राप्ति होने पर उसके उपदेशानुसार हृदय की शुद्धता करै, तव वह उपदेश उसमें स्थिर होवै। 'कनक पात्र में रहत है ज्यों सिंहनिको दुद्ध। ज्ञान तहां ही ठाहरै, हृदय होय जव शुद्ध ।२०। शुद्ध हृदय जाकौ भयौ, उन्हैं कृतारथ जांन। सोई जीवन मुक्त है, सुन्दर कहत वपांन"। २१।

(७) अद्भुत उपदेश—मन और इन्द्रियों को विपयादि से वचाने वा रोकने की विलक्षण युक्तियां—रूपक वा आख्यायिका में ५७ दोहों में दी है। परमात्मा को वाप, आत्मा को पुत्र, आत्मा का पुत्र मन, मन के पांच पुत्र पंचेंद्रिय है। ये परमात्मा को भूल कर कुमार्गगामी हो गये। विपय रूपी ठगों के फन्दे में पड़ गये। सौभाग्य से सद्गुरु मिल गये। उन्होंने क्रमशः, युक्ति से, समझाया, ज्ञान दिया तो एक २ कर सव सुमार्ग में लगकर हरि भजन करके निर्मल हो गये।

"अपने २ तात सौं विछुरत ह्वै गये और।
सद्गुरु आप दया करी लै पहुंचाये ठौर"॥ ५४॥

(८) पंच प्रभाव—३० दोहों में साधु की पांच अवस्थाएं रूपक वा आख्यायिका में-अद्भुत उपदेश ग्रन्थ की तरह-कही हैं। परब्रह्म की वेटी भक्ति अपनी दासी माया को साथ लेकर वर ढूंढने जगत् में आई। कोई भी पसंद नहीं आया तव संतजनों को वरे। जो संत भक्ति युवती ही से प्रेम रखते हैं और माया दासी से कुछ संसर्ग नहीं रखते हैं वे तो उत्तम हैं। जो भक्ति से प्रेम रखते हुए कुछ २ माया का भी आदर करते हैं वे मध्यम हैं। जो भक्ति से झूठा प्यार रखते हैं परंतु हृदय से माया से लिपे रहते हैं वे कनिष्ट है वा अधम हैं। परन्तु जो माया दासी ही से हिल मिल गये और भक्ति युवती का तिरस्कार कर चुके वे अधमाधम

(नीचातिनीच) हैं। इन में तीन अवस्था भक्त वा भक्ति की और चौथी अभक्त वा संसारी (दिखावटी साधु) की है। अब पांचवीं अवस्था ज्ञानी की है जो इन सब से ऊपर और उत्कृष्ट है वह तुरीया में वरत कर तुरीयातीत हो जाता है। (१) भक्ति, (२) भक्त, (३) माया, (४) जगत, (५) ज्ञानी सब को सीस। पांच प्रभाव वषानियां सुन्दर दोहा तीस"। ३०। इन अवस्थाओं को "प्रभाव" कहा है, क्योंकि इनमें भक्ति वा माया का असर उस साधु पर जैसा पड़ता है, उसही अनुसार उस की अवस्था वा कक्षा होती है।

(९) गुरु सम्प्रदाय—किसी के पूछने पर स्वामीजी ने अपनी सम्प्रदाय को बताई है। ५३ दोहा चोपाई में, प्रतिलोम क्रम से, सुन्दरदासजी ने अपने आप से लगा कर, दादूजी से द्योसा स्थान में शिष्यत्व प्राप्त होने का कथन करके, परब्रह्म तक ३८ नाम 'ब्रह्म सम्प्रदाय' बताया है। "परम्परा परब्रह्मतैं आयौ चलि उपदेश। सुंदर गुरु तैं पाइये गुरु विन लहै न लेश"। ४८।

(१०) गुन उत्पत्ति नीशानी—एक दोहा और २० नीसानी छंद में बहुत चमत्कारी और प्रभावोत्पादक वर्णन सृष्टि के प्रसार, विभाग, भेद; नानात्व अदि का सुंदर प्रकार से किया है। ग्रन्थ बड़े मजे का है। ध्यान से पढ़ने योग्य है। जड़ में चेतन सर्व व्यापक है। "जड़ उपजै विनसै"। "चेतन शक्ति जहां तहां घट घट नहिं छानी"। नीशानी दो अर्थ में है (१) छंद (२) पहिचान।

(११) सद्गुरु महिमा नीसांनी—दो दोहे और २० नीसानीं छंदों में, स्वामीजी ने निजगुरु श्री दादूदयालजी की महिमा, उनका प्रभाव, उनके गुण चरित्रादि का वर्णन बहुत भक्ति भावना और मनोमोद के साथ किया है। 'रामनाम उपदेश दे, भ्रम दूर उड़ाया। ज्ञान, भगति, वैराग हू ये तीन दृढाया'।३। सुन्दरदासजी का काव्य कल्लोल अधिक वेग और गति तथा हृदयोद्गार से गुरु महिमा, ब्रह्म और ब्रह्मानंद के वर्णन में होता

है। वीररस और नीति के कहने में भी अद्वितीय हैं। यह ग्रन्थ बहुत काम का है।

(१२) बावनी—में ५८ दोहा चौपाई छंदों में वर्णमाला के अक्षरों के प्रत्येक छंद के आदि में, और फिर उस छंद के प्रायः सब शब्दों के आदि में, देकर अध्यात्म का वर्णन बहुत चतुराई और सुन्दरता से किया है। क्षुद्र काव्यों में इस प्रकार बावनी की रचना करने की कवियों और संतों में प्रथा सी थी। गोरषनाथजी, कबीरजी वा दूसरे संतों वा कवियों ने भी ऐसा किया है। ※

(१३) गुरुदया षट्पदी—२ दोहे आदि में और फिर ६ त्रिभंगी छंदों में अपने गुरु श्री दादूदयालजी की कृपा और महिमा का बहुत सरस सुललित चमत्कारी वर्णन है। और प्रत्येक छंद के अंत में "दादू का चेला चेतनि भेला, सुन्दर मारग बूझेला" यह तुक बहुत सुन्दर आई है।

(१४) वें से (२५) वें ग्रन्थतक सुन्दरदासजी के प्रसिद्ध अष्टक हैं, जो रचना और अर्थ में गंभीर, मनोहर, चमत्कारी और मधुरता से भरे हुए हैं। प्रत्येक का न्यूनाधिक अंतर से विषय प्रयोजन का भेद है। विषय और प्रयोजन नामही से प्रगट हैं, यथा :—(१४) भ्रम विध्वंश अष्टक—"दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै खेला" छंदों के अंत में है।

(१५) गुरु कृपा अष्टक—"दादू गुरु आया शब्द सुनाया, ब्रह्म बताया अविनाशी" यह प्रत्येक छंद के अंत में आया है।

(१६) गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक—"दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम है"। यह प्रत्येक 'गीतक' छंद के अन्त में आया है।

(१७) गुरु देवमहिमा स्तोत्र अष्टक—"नमो देव दादू नमो देव दादू"। यह प्रत्येक ही भुजंगप्रयात छंद के अन्त में आया है।

※ हमने इस प्रकार की बावनियों का संग्रह किया है जिसमें बीसों की संख्या है। इस प्रकार के काव्य को 'कक्का' वा कहीं-कहीं 'बारहषड़ी' भी कह दिया है।

(१८) रामजी अष्टक—'तुम सदा एक रस रामजी रामजी'—यह प्रत्येक मोहिनी छंद के अन्त में आया है।

(१९) नाम अष्टक—प्रत्येक मोहिनी छंद भगवन्नाम और अन्त 'हे हरे', 'ईश्वर' आदि की वृत्ति (बार बार आना) है।

(२०) आत्मा अचल अष्टक—८ कुंडलिया छंदों में, आत्मा की अचलता (गतिरहितता-स्थिरता) का वर्णन है। यह लौकिक दृष्टांतों से समझाया है कि साधारण जन विपरीत ज्ञान में आस्था लाते हैं। यथा आकाश में चलते तो बद्दल हैं, परन्तु उनके पीछे चंद्रमा को चलता हुआ समझते हैं, दृष्टि के भ्रम से। चलते तो हैं वैल, लाट और पाट और मकड़ी (ऊपर की लकड़ी), परन्तु कोल्हू, जो स्थिर सदा रहता है, उसही को चलता कहते हैं। इत्यादि।

(२१) पंजावी भाषा अष्टक—८ चौपइया छंदों में अचिंत्य अव्यक्त सर्वभूतव्यापक परमात्मा को सदा सब खोजते रहे, परंतु उसका पूरा पता किसी को प्राप्त न हुआ। हां इतना कह सकते हैं कि (जैसे वेद में नेति नेति का प्रकरण अथवा ज्ञान की एक विधि है)—"भी यहु नहिं यहु नहिं यहु नहिं होवै इसदै परे सु तूं हीं। वेह अवशेष रहै सो सुन्दर सो तूंहीं सो तूंही"।

(२२) ब्रह्मस्तोत्र अष्टक—संस्कृतमय भाषा में, ८ भुजंगप्रयात श्लोकों में, परमात्मा की स्तुति की है। अन्त में प्रत्येक छंद के 'नमस्ते नमस्ते नमस्ते' देकर एक नाम ब्रह्म का दिया है जिससे अनुप्रास भी बन जाता है। यमक और मिष्ट शब्दों से पूर्ण यह स्तोत्र स्वामीजी का वड़ा रसीला और स्वादु है।

(२३) पीरमुरीद अष्टक—फ़ारसी अरवी शब्द-मय दोहा और चामर छंदों में पीर (गुरु) और मुरीद (शिष्य) का संवाद बहुत रम्य रचना में हैं। पीर ने अपने मुरीद की मारिफ़त (ब्रह्मज्ञान) की बारीक राह बताई है। और जब उस मंज़िल (गति) तक पहुंचता है तो पीर चुप हो

ज़ाता है, या आंख बंद कर रह जाता है। "जो खूब तालिब होइगा तो समझि लेगा सैंन"। सूफ़ी फ़कीरों का सा ढंग उक्ति में है।

(२४) अजब ख्याल अष्टक—इसमें भी फ़ारसी अरबी शब्दमय रचना और वही सूफ़ियों का सा ढंग उक्ति में है। यह दुनिया अजायबात से भरी हुई है। यह एक अद्भुत अजायब घर है। मनुष्य की बुद्धि उस परवरदिगार की महिमा सोचते विचारते हैरान परेशान हो जाती है। खूब उस्ताद मिलै तब भेद को पावै। "यौं कहत सुन्दर कञ्ज दुन्दर अजब ऐसा ख्याल हैं"। यह प्रत्येक गीतक छंद के अन्त में आया है। एक दोहा और एक छंद का जोटा लगाया है। बहुत ही सुन्दर और प्रभावोत्पादक अष्टक है।

(२५) ज्ञान झूलना अष्टक—८ झूलना छंदों में वही सूफ़ी वा तसव्वुफ़ का सा विषय बहुत मनोहारिणी और सारभरी रचना में कहा गया है। यह अष्टक भी बहुत प्रसिद्ध और काम का है। उपनिषदों के 'नेति नेति' दार्शनिक ज्ञान प्रणाली का मानों यह अष्टक एक छोटी सी व्याख्या ही है। "अनुभव बिना नहिं जान सकै निरसंध निरंतर नूर है रै"। "वह सुन्दर सुन्दर सुन्दर है, कोई सुन्दर होय सु पावता है"। 'कोई वार कहै कोई पार कहै उसका कछु वार न पार है रे"। "तहां रूप नहीं तहां रेख नहीं तहां सुन्दर कछु न चिन्ह है रे"। इत्यादि "नहिं सुन्दर भाव अभाव है रे" ।८। इतना कह कर समाप्त किया है।

इस प्रकार ये अष्टक स्वामीजी ने एक स्थानी किये हैं। जो लघु ग्रन्थावली के बहुमूल्य भूषण हैं। दादूद्वारों, असथलों, जमाअतों, मेलों, गोष्ठियों, मंदिरों, सत्संगतियों आदि में बड़े ही प्रेम से गाये जाते हैं। ऐसे बहुत कम दादूपंथी होंगे जिनको एक वा अधिक अष्टक कंठस्थ न रहते हों। हमने नरायणे के मेले में दादूद्वारे के मंदिर में, दादू महाविद्यालय, जयपुर के दादूद्वारे आदि में इन अष्टकों को नित्य सायंकाल आरती के साथ गाते सुना है। दादू पंथी साधुओं के अतिरिक्त अन्य धार्मिक इति-

हास के प्रेमी पुरुषों वा भक्तों के मुख से भी अष्टकों को सुने हैं। निदान अष्टकों का ऐसा प्रभाव और महत्व है। ये छोटे २ ग्रन्थ हैं परंतु आत्म विद्या के प्रभाव के उत्पादन में नावक के तीर जैसे कारगर कर देते हैं। इनमें दो एक अष्टक सिद्धिदाता वा मंत्रों समान भी माने गये हैं, कि जिनको, सच्चे भाव से वारंवार, पढ़ने से सत्फल प्राप्त होते हैं।

अष्टकों तक २५ ग्रन्थ हो चुके। अब आगे १२ ग्रन्थ और रहे। ग्रन्थ 'सहजानन्द' से लगाकर 'पूर्वी भाषा बरवै' तक। इन में से 'सहजानन्द' आदि दो चार ग्रन्थ तथा तीनों "चितावनियां" बहुत उपयोगी और सार-भरे हैं। अन्य ग्रन्थ भी अपने २ स्थान में अच्छे हैं। इन बारहों ग्रन्थों का भी दिग्दर्शन करा देते है।

(२६) सहजानंद ग्रन्थ---श्री स्वामी दादूदयालजी और उनके शिष्यों का विशेषतया जो चरम सिद्धांत है वही इस ग्रन्थ में संक्षेप से परंतु अच्छे ढंग से रुचिरा वाणी में वर्णन किया गया है। 'सहजानंद' शब्द से प्रयोजन है वह आनंद (आत्मानंद) जो विना कष्ट कल्पना, काया कष्ट वा आचार वा कर्म काण्ड के आडम्बर के ही नैसर्गिक सहज क्रिया वा सुखावह रीति से ही, प्राप्त हो जाता है। "हिन्दू तुरक उर्यौ यह भर्मा। हम दोऊ का छाड्या धर्मा। नां मैं कृत्तम कर्म वषानौं। नां रसूल का कलमा जानौं। ना मैं तीन ताग गलि नाऊं। नां मैं सुनत करि वोराऊं। चिन्ह विनां सब कोई आये। यहां भये दोई पंथ चलाये। ··· देव पितर नहिं पीर मनाऊं। धरती गड़ौं न देह जलाऊं।····· हिन्दू की हद छांडि के तजी तुरक की राह। सुन्दर सहजैं चीन्हियां एकै राम अलाह। ···देह कष्ट मैं करौं न कोई। सहजैं सहजैं होइसु होई।...सतगुरु कहि समझाइया निज मत वारंवार। सुन्दर कष्ट कहा करैं पाया सहज विचार॥ १८॥ सहज निरंजन सब में सोई। सहजै संत मिले सब कोई" ॥—शिव सन-कादि, गोरष, कबीर आदि लेकर गुरुदादू तक सहज ही आनन्द प्राप्त किया। "एकै सहज सुभाव हि संतनि कियो विलास। मनसा वाचा कर्मना तिहिं पथि सुन्दरदास" ॥ २४॥

(२७) गृह वैराग बोध ग्रन्थ—२१ रुचिरा छन्दों में गृहस्थी और वैरागी का सुन्दर संवाद है। संवाद का सार यही है कि—"विरकत धर्म रहै जु गृही तैं गृही कौं विरकत तारै जू। ज्यौं वन करै सिंघ की रक्षा सिंघ सुवनहि उवारै जू॥ विरकत सुतौ भजै भगवंतहि गृही सु ताकी सेवा जू। अश्व के कान बराबर दोऊ जती सती कौ भेवा जू"॥

(२८) हरिबोल चितावनी—३० दोहों में मनुष्य की भूलें सुझाकर उसको चितावनी दी है। मनुष्य जन्म की महिमा और उसको वृथा खाने का उलाहना देकर सदा ईश्वरभजन करने का उपदेश दिया है। प्रत्येक दोहे के अन्त में "हरिबोलो हरि बोल" ऐसा उपदेशात्मक वाक्य है।

(२९) तर्क चितावनी—५६ चौपाइयों में युक्तियों और दलीलों के साथ मनुष्य को सतर्क रह कर अपनी अमूल्य मनुष्य देह का सदुपयोग करना चाहिये। आयुष्य की चारों पनोतियों में प्रभु को भूल कर माया के जाल में फंसा रहे तो क्या यही तुम्हारी बुद्धि है? ऐसी तर्क प्रत्येक चोपाई के अन्त में इन शब्दों में दी है—"अइया मनुषहु बूझ तुम्हारी?"

(३०) विवेक चितावनी—४० चौपाई छन्दों में संसार की अनित्यता दरसा कर विवेक के लिये उत्तेजना की गई है। शरीर नाशमान है। मृत्यु अवश्य होगी। "समझि देखि निश्च करि मरना" प्रत्येक चौपाई के अन्त में आया है।

(३१) पवंगम छंद ग्रन्थ। (३२) और अडिल्ला छंद ग्रन्थ। (३३) तथा मडिल्ला छंद ग्रन्थ। ये तीनों ऐसे हैं कि जिनको "फुटकर काव्य संग्रह" में रक्खा जाता। परन्तु ग्रन्थों के क्रम के बीच में ये आ गये तो वहीं रखना उचित समझा गया।

प्रथम दोनों ग्रन्थों में लाटानुप्रास अलंकार की रीति से अन्त के शब्द के चार-चार अर्थ रक्खे हैं। और तीसरे एक शब्द के दो-अर्थ रक्खे हैं। पवंगम में (आतमा) विरहनी की विरह वेदना से पुकार है। अडिल्ला में वही विरह कथा तथा संसार की असारता और उपदेश है। और मडिल्ला में प्रायः उपदेश ही हैं।

(३४) वारहमासिया ग्रन्थ—में १३ पवंगम (अरिल) छंदों में आत्मा विरहनी की पुकार वारहों मास की है। यह काव्यभेद भी स्वामीजी की काव्य-कला का एक उत्तम उदाहरण है। प्रायः कवियों ने "वारह मासिया" लिखे हैं।

(३५) आयुर्वल भेद आत्मा विचार ग्रन्थ—छोटा-सा १३ चौपाई का ग्रन्थ। आयुष्य के परिमाणों को वताता हुआ इसकी अस्थिरता और क्षीणता का परिचय कराता है। उसके प्रतिकूल आत्मा अमर अजर है नित्य स्वयं प्रकाश चेतन है। इस प्रकार अनित्य और नित्य, क्षर और अक्षर का विवेक कराया है।

(३६) त्रिविध अंतःकरण भेद ग्रन्थ—इस नन्हे से ग्रन्थ, ६ चौपाइयों के में अंत.करण के (मन, बुद्धि, चित्त अहंकार के) प्रत्येक के तीन-तीन भेद करके वारह भेद वनाये हैं। प्रश्नोत्तर में। १ वाह्य, २ अंतः और ३ परम—यों एक-एक के तीन-तीन भेद कहे। यह विलक्षण परंतु समझने योग्य उक्ति है।

(३७) पूर्वी भाषा वरवै ग्रन्थ—पूर्वी भाषामय २० वरवै छंदों में, विपर्यय अर्थ के गूढार्थ को लिये हुए, ब्रह्मज्ञान की वारीक वातें कही हैं। इसके कुछ पदार्थ समझने के लिए सवैया ग्रन्थ का "विपर्यय शब्द का अंग" टीका सहित भी देखना चाहिये। वरवै वहुत सरस वने हैं। वरवा छंद पूर्व देश का विशेष छंद होता है।

इस प्रकार इन ३७ लघु ग्रन्थों का अति संक्षेप के साथ दिग्दर्शन करा दिया गया है। इससे इतना-सा सहारा लगेगा और विषय प्रवेश में इतनी-सी सुगमता होगी कि आगे समग्र ग्रन्थ को साररूप में पहचानने में सहायता होगी।

(३) तृतीय विभाग—"सवैया" सुन्दर (विलास) ❀

"सवैया" ग्रन्थ स्वामी सुन्दरदासजी की रचनाओं में शिरोमणि और

❀ नोट—अन्यत्र हमने चिता दिया है कि असल (क) और (ख) पुस्तकों में

अधिक विख्यात है। इसका नाम छंद के नाम से ही रक्खा गया था, क्योंकि सवैया के अन्य भेद "इंदव" आदि छंद इसमें हैं, यद्यपि "मनहर" छंद भी कम नहीं हैं। (जिसको सवैया छंद का भेद नहीं कह सकते हैं)। मनहर संभवतः सवैया छंदों के साथ बोले जाने में समध्वनि दे सकता है, परंतु यह सवैया का भेद नहीं माना जा सकता। स्वामीजी के समय से पूर्व तथा उनके समय में वा पीछे भी कवियों में सवैया छंद में कविता करने का रिवाज़ सा ही था। तदनुसार स्वामीजी ने भी इस छंद में रचना की है। वे इस प्रकार की रचना के प्रेमी भी थे, ऐसा प्रतीत होता है। यह बात प्रमाण सहित जीवन चरित्र में कही जायगी कि "सवैया" ऐसा ही नाम ग्रन्थ का ग्रन्थकर्त्ता ने ही रक्खा था। "सुन्दरविलास" यह नाम किसी साधु ने वा किसी सम्पादक ने ग्रन्थ छपाते समय रख दिया है। "सवैया छंद विवरण" शीर्षक परिशिष्ट में सवैया छंद के भेद, और स्वामीजी ने कौन २ से भेद सवैये के काम में लिये हैं इत्यादि बातें हमने बताने का प्रयास किया है। सवैया छंद (१) मात्रिक भी होता है और (२) वार्णिक भी। स्वामीजी ने दोनों को ही प्रयोग में लिया है। ग्रन्थ में सर्व छंद संख्या ५६३ है। इनमें नीचे लिखे प्रकार के छंद आये हैं:—

(१) सवैया (किरीट—वीर—केतकी—सवाया)······४२
३ . ३७ २
(२) इंदव (सवैया भेद) मत्तगयंद अपर नाम)···२२२
(३) दुमिला (सवैया भेद) ······२
(४) हंसाल (सवैया भेद) ······६
} =२७२

फुटकर काव्य का बड़ा विभाग "सवैया" ग्रन्थ से पूर्व ही लघुग्रन्थावली से अनन्तर दिया है। हमने फुटकर काव्य को पृथक् विभाग में रक्खा है। 'सुन्दरसार' में भी वही पुराणा क्रम उक्त पुस्तकों का रहा है।—सं०।

(५) मनहर (सवैया भेद नहीं)	...२८९	}=२९१
(६) कुण्डलिया (सवैया नहीं)	......२	

सर्व छंद संख्या— =५६३ है।

यही वात परिशिष्ट में कुछ विस्तार से कही गई है। इससे स्पष्ट है कि रचना का वड़े छंदों में करना ही स्वामीजी को अभीष्ट था। परंतु इंद्व और मनहर छंदों की प्राधान्यता है। और खास सवैया इनकी अपेक्षा कम ही हैं। हमने परिशिष्ट में सिद्ध किया है कि मात्रिक सवैयों में 'वीर' नाम का प्रधान है, और वार्णिक सवैयों में भगण—(ऽ।।—गुरु—लघु-लघु) प्रधान 'मदिरा', 'चकोर', 'इंद्व' 'किरीट' आदिक उत्तम होते हैं। इंद्व का लालित्य ७ भगण (ऽ।।) और अंत में दो गुरु (ऽऽ) होने से वहुत वढ़ कर है। इस ही से स्वामीजी ने इस छंद में प्रारंभ ही से रचना की है। सवैया नाम ग्रन्थ का रखने का विशेष कारण भी यही कहा जा सकता है कि ग्रन्थ इंद्व सवैया से चला है। मनहर को सवैयों के साथ क्यों लिखा इसका कोई हेतु इसके अतिरिक्त नहीं हो सकता है कि वड़े छंदों में रचना अपेक्षित थी। और मनहर की मनोहर गति काव्य का सौष्टव और विषय प्रकाशन में उत्तमता को वढ़ाता है।

"सवैया" ग्रन्थ की रचना महान् कवियों की सी रचना है। इसके विषय वा प्रकरणों पर विचार करने से, इसकी शब्द योजना और काव्य शैली को देखने से, शांतरस (ज्ञान, भक्ति वैराग्य नीति आदि) के वर्णन पर ध्यान देने से, ३४ अंगों (अध्यायों) में कहा जाने से यह भी शांतरस का एक महाकाव्य कहा जा सकता है। यद्यपि महाकाव्य के लक्षणों की रूढ़ी साहित्य-विशेषज्ञों के अनुसार थोड़ी सी निराली ही है। हुआ करै। हमको हमारी समझ में जो आया इसको "शांतरसमय महाकाव्य" कहने का साहस हुआ है। अथवा यह एक "ज्ञान की संहिता' है जिसमें संहिताओं के ढंगपर पृथक् २ विषयों पर वड़ी उत्तमता से प्रकरणों को संग्रह किया है।

सवैया ग्रन्थ के ३४ अंग हैं। आगे 'साखी' ग्रन्थ में ३१ ही अंग हैं। इन दोनों को पढ़ कर पाठक जान सकेंगे कि साखी ग्रन्थ में सवैया के वहुत से छंदों का दोहों में सार ही दे दिया है। दोनों के अङ्गों का मीलान नीचे लिखे प्रकार से ज्ञात होगा :—

[—"सवैया" में—]		[—"साखी" में—]	
सं०	अंगनाम	सं०	अंगनाम
१	गुरुदेव को अंग	१/१	गुरुदेव को अङ्ग
२	उपदेश चितावनी	२/६	उपदेश चितावनी
३	काल चितावनी	३/७	कालचितावनी
४	देहात्म विछोह	४/८	देहात्म विछोह
५	तृष्णा	५/१०	तृष्णा
६	अधीर्य उराहना	६/११	अधीर्य उराहना
७	विश्वास	७/१२	विश्वास
८	देह मलिनता गर्वप्रहार	८/१३	देह मलिनता गर्वप्रहार
९	नारी निंदा	९/×	(साखी ग्रन्थ में यह नहीं है)
१०	दुष्ट	१०/१४	दुष्ट
११	मन	११/१५	मन
१२	चाणक	१२/१६	चाणक
१३	विपरीत ज्ञानी	१३/×	(साखी में नहीं)
१४	वचन विवेक	१४/१७	वचन विवेक
१५	निर्गुन उपासना	१५/×	(साखी में नहीं)
१६	पतिव्रत	१६/५	पतिव्रत
१७	विरहनि उराहना	१७/३	विरह
१८	शब्दसार	१८/×	(साखी में नहीं)
१९	सूरातन	१९/१८	सूरातन
२०	साधु	२०/१९	साधु

[—"सवैया"में—]	[—"साखी"में—]
२१ भक्ति ज्ञान मिश्रित	२१/x (साखी में नहीं)
२२ विपर्यय शव्द	२२/२० विपर्यय
२३ आपना भाव	२३/२२ आपना भाव
२४ स्वरूप विस्मरण	२४/२३ स्वरूप विस्मरण
२५ सांख्य ज्ञान	२५/२४ सांख्य ज्ञान
२६ विचार	२६/२६ विचार
२७ ब्रह्म निःकलंक	२७/x (साखी में नहीं)
२८ आत्मा अनुभव	२८/२८ आत्मा अनुभव
२९ ज्ञानी	२९/३० ज्ञानी
३० निःसंशय	३०/x (साखी में नहीं)
३१ प्रेमपरा ज्ञान ज्ञानी	३१/x (साखी में नहीं)
३२ अद्वैत ज्ञान	३२/२९ अद्वैत ज्ञान
३३ जगत् मिथ्या	३३/x (साखी में नहीं)
३४ आश्चर्य	३४/२१ समर्थाई आश्चर्य *

इस मीलान से नीचे लिखा निष्कर्ष निकलता है :—

(१)"सवैया" ग्रन्थ में संख्या (९) नारी निन्दा। (१३) विपरीत ज्ञानी।(१५) निर्गुन उपासना। (१८) शव्दसार (२१) भक्तिज्ञान मिश्रित। (२७) ब्रह्मनिः कलंक। (३०) निः संशय। (३१) प्रेम परा ज्ञान ज्ञानी।

---

*नोट—संख्या का क्रम साखी में सवैया से सर्वत्र नहीं मिलता। इसलिये साखी की संख्याएँ विभाजक में देदी हैं।

विशेष—गणना में दूसरा अङ्क ग्रन्थ साखी में दी हुई संख्या है। और पहली संख्या यहां के क्रम की है। जो अंग सवैया में तो है परन्तु साखी में नहीं है उसके आगे ब्रेकेटों में उसका न होना लिख दिया गया है। और आगे निष्कर्ष अन्त में दे दिया गया है।

(३३) जगत मिथ्या तो हैं परन्तु ये ६ अङ्ग "साखी" ग्रन्थ में (इन नामों के) नहीं हैं।

(२) और "साखी" ग्रन्थ में (२) सुमरण। (४) वंदगी (८) नारी पुरुप श्लेप। (२५) अवस्था। (२७) अक्षर विचार। (३१) अन्योऽन्य भेद। ये छह अङ्ग हैं, सोही सवैया ग्रन्थ में (इन नामों के) नहीं आये हैं।

(३) संख्या को मिलाने से साखी में ३१ और सवैया में ३४ अङ्ग होने से, साखी में पहिले ही ३ अङ्ग कम हैं।

(४) साखी ग्रन्थ में "दादूवाणी" और "सवैया" के अतिरिक्त सुन्दर-दासजी ने अपने अन्य ग्रन्थों से भी सार खैंच कर साखी ग्रन्थ में रक्खा है। ऐसा प्रतीत होता है।

(५) उपरोक्त सं० (१) और (२) में दिये नामों के अतिरिक्त दोन ग्रन्थों के अंग सं० १-२-३-४-५-६-७-८-१०-११-१२-१४-१६-१७ १६-२०-२२-२३-२४-२५-२६-२८-२६-३२-३४ ये २५ (अङ्ग) आपस में न्यूनाधिक दोनों गून्थों के मिलते हैं। अतः (१) २५+६=३४ हुए। और (२) छह नहीं मिलते तो ३१-६-२५ हुए इस से यह निष्कर्ष सिद्ध होता है, संख्या (१) और (२) में दिये निष्कर्षों से ही। अर्थात् सवैया के चौतीस अङ्गों में ६ नहीं मिले तो २५ रहे। और साखी के इकत्तीस अङ्गों में की कमी भी (६-६=३) इस ही से आ जाती है।

संतों की वाणियों में प्रायशः "साषी" और "पद" अवश्य होते हैं। कोई २ संत वड़े छंदों में भी वचन को कह देते हैं। सुन्दरदासजी का सवैया ("साखी" और "पद" से भिन्न) वड़े छन्दों में वहुत उत्तम वना है। कवीरजी, रज्जवजी आदि की रचनाओं में वड़े छन्दों की यत्र तत्र भरमार या किंचित् गंध सी है परन्तु सुन्दरदासजी ने यह सब से वढ़कर काम किया है कि अध्यात्म के विपयों को, शांतरस के सव रंगों को तथा गहन से गहन पदार्थों को ऐसे उत्तम वड़े छन्दों (सवैया, मनहर आदि) में कहा है।

अब यहां अति संक्षेप से ३४ अङ्गों के प्रकरणों, पदार्थों वा विषयों का प्रदर्शन कराते हैं जिससे उनके प्रयोजन समझने में प्रवेश भी हो और किंचित सुगमता पड़े और जाना जाय कि इनमें क्या २ हैं।

(१) गुरुदेव को अङ्ग—२७ छन्दों में अपने गुरु श्रीदादूदयाल की महिमा और स्तुति गाई है। परमगुरु का लक्षण भी कहा है। सबही छन्द बहुत सारभरे और उपादेय हैं। भारतवर्ष में शिष्य का गुरु के साथ कैसा सम्बन्ध रहता चला आया है इस को दर्पणवत् यहां देखिए। अन्यत्र भी स्वामीजी ने गुरु की अतिगति के साथ महिमा बखानी है। इस से आज कल की शिक्षा प्रणाली को शिक्षा लेनी चाहिए। ज्ञान और रहस्यों की प्राप्ति तब ही हुआ करती है।

(२) उपदेशचितावनी—३३ छंदों में नाना प्रकार के ज्ञान भरे उपदेश दिये गये हैं। जीव को सूवा (सुग्गा), तोता, तूती, मैंना के नाम से संबोधन करके बड़े सुन्दर शब्दों में परमात्मा की ओर झुकाया है और उसकी भूल और असावधानी को दरसाया है। आगे चाणक के तड़ाके लगाये हैं—"उपदेश औषध कवन विधि लागै ताहि, सुन्दर असाध्य रोग भयौ जाके मन है"। "मूसा इत उत फिरै ताकि रही मिनकी" "चंचल चपल माया भई किन किनकी"। १०।"ठगनि की नगरी में जीव आइ पर्यो है"। "घरी घरी घटत छीजत जात छिन छिन' बड़ा सुन्दर छंद उपदेश का है। १३। "देपत ही देपत वुढ़ापो दौरि आयो है" (वुढापे और आयु की अस्थिरता पर बहुत सुन्दर कहा है) । १४। 'सुन्दर या नर देह-अमोलिक तीर लगी नवका कत बोरै' । १६। 'सुन्दर जा तन में हरि पावत सो तन नाश कियौ मति भोलै"। २२। "होइगो हिसाब तब आवै नहिं ज्वाव कछु"। "उहां तो नहीं है कछु राज पोपाँ बाई को"। २६। और इसही अङ्ग में कई चित्र काव्य के छंद हैं—'नागपास" आदिक जिन में उत्तम उपदेश हैं। यह अङ्ग बहुत काम का है।

(३) काल चितावनी—२७ छंदों में काल की महिमा, शक्ति और

अनिवार्यता वहुत अच्छे ढंग से वर्णित है। "सुन्दर काल अचानक आइ लिया लिया कि लिया कि लिया है।" । ४। "ऊठत वैठत काल सोवत जागत काल"...इत्यादि। "झूंठे हाथी झूंठे घोरा...(सर्व दीर्घाक्षर छंद) वहुत सुन्दर उपदेशमय है। "सुन्दर काल मिटै तव ही पुनि ब्रह्म विचार पढ़ै जव पाटी"। २७।

(४) देहात्म विछोह को अंग—११ छंद का छोटा सा अंग है परंतु अर्थ की गंभीरता में एक रत्न ही है। जीव की चैतन्य महिमा, जड़देह जीव विना निरी गर्हित वस्तु, जीव की अनिर्वचनीय महानता इत्यादि वहुत सुन्दर वातें वर्णन की हैं। "सुन्दर कहत जव चेतना सकति गई, उहै देह-ताकी कोऊ मानत न आन है"। ११।

(५) तृष्णा को अंग—१३ छंदों में तृष्णा का वर्णन और उसकी विडंवना का अच्छा वर्णन है। "तृष्णा दिन ही दिन होत नई है"। १। "हे तृष्णा अजहूं नहिं धापी" । ७। "हे तृष्णा कहुं छेह न तेरो"। ६। "हे तृष्णा अव तो करि तोपा"। १०। "हे तृष्णा कहिकैं तोहि थाक्यौं" ।१२। "हे तृष्णा तोहि नेकु न लाजा"। १३। ये वाक्य जिन छंदों के अन्त में आये हैं उनमें तृष्णा (तथा भूख का भी) अच्छा चित्र खैंचा है। संतोप का महत्व इन वर्णनों से प्रतिभासित हो जाता है।

(६) अधीर्य उराहने को अङ्ग—११ छंदों में भूख और पेट की विडंवना पर वहुत आनंदभरी कविता उपदेशमय की है। "किधौं पेट चूल्हो किधौं भाठी किधौं भार आहि"...इत्यादि छंद। तथा "एक पेट काज एक एक कौ अधीन है"। ५। "पेट न हुतौ तौ प्रभु वैठे हम रहते" । ११। 'पेट ही के वसि रंक पेट ही के वसि राव...पेट ही के वसि प्रभु सकल जिहान है । १२। पेट वनाने के भगवान को वहुत प्रेम भरे उलहने दिये हैं। और भी पेट संवंधी काव्य रचनाएं देखी हैं परंतु यह कविता अनुपम है।

(७) विश्वास को अङ्ग—१४ छंदों में जगत्कर्त्ता ईश्वर पर विश्वास

रखने का उपदेश है कि वह जगद्भर्त्ता सब सृष्टि का पोषण करता है। चिंता नहीं करनी चाहिए। जिसने चूंच दिई है वही चूंन देने की चिंता रखता है। "सुन्दर कहत तूं विश्वास क्यों न राषै सठ बार बार संमुझाइ कह्यौ केती बार है"। "चूंच के समान चूंन सबही कौ देत है" ।१२। "भूषौ तू कहे न रहै सुन्दर कहत है" ।१३। "जगत कियौ है सोई जगत भरतु है" ।१४।

(८) देह मलीनता गर्व प्रहार कौ अङ्ग - केवल ५ छंदों में यह बताया है कि इस स्थूल शरीर का मनुष्य क्या गर्व करता है—जो मल, मूत्र, मेद मांस, मज्जा हड्डी से भरी है। अनेक प्रकार के रोग और दुःख इसमें होते हैं। फिर भी इस में ऐंठे रह कर भगवान को मनुष्य भूले रहता है।

(९) नारी निंदा कौ अङ्ग—९ छंदों में नारी से बचे रहने का उपदेश है। "सुन्दर कहत नारी नरक कौ कुन्ड यह, नरक मैं जाइ परै सो नरक पाती है"। ३। और इस ही अङ्ग में श्रृंगारी कवियों और उनके नायिका भेद के ग्रन्थों की निंदा की है। "रसिकप्रिया रसमंजरी और सिंगारहि जांनि। चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आंनि।......५।९।

(१०) दुष्ट कौ अङ्ग—केवल ५ छंदों में दुष्टों का वर्णन और उनकी निंदा लिखी है। इससे यह प्रयोजन कि दुष्ट का सा स्वभाव कदापि नहीं रखना चाहिए। "सुन्दर और भले सब ही दुख दुर्जन संग भलौ जिनि जांनो"।५।

(११) मन कौ अङ्ग - सवैया ग्रन्थ के अति उत्तम अङ्गों में से यह अङ्ग है। २९ छन्दों में कहा गया है। मन की चंचलता, स्वभाव, लक्षण, शक्ति, गुण, अवगुण, महिमा आदि बड़ी खूबी के साथ वर्णन किये गये हैं। "हटकि हटकि मन राषत जु छिन छिन, सटकि सटकि चहुं वोर अब जात है..."।१। "मन सौ न कोऊ हम देष्यो अपराधी है"। "मन के नचाये सब जगत नचत है" ।८। "सुन्दर जो मन ब्रह्म विचारत तौ मन होत है ब्रह्म स्वरूपा"।१९। "हाथी कौ सौ कान किधौं पीपर को पान

किधौं…"। यह छंद भी वहुत सुन्दर और मन के स्वभाव का समझाने-वाला है। २०। "सुख मानै दुख मानै सम्पति विपत्ति मानैं…"। २१। इसमें मन इस नाम वा शव्द की व्युत्पत्ति है। वढ़ कर दार्शनिक विचार आगे कहा है—"जोई जोई देपै कछु सोई सोई मन आहि,…" यहां से अन्त तक तीन चार छंदों वा अन्त के २६ वें छंद तक—"मन मिटि जाइ एक ब्रह्म निज सारौ है"। २६। आध्यात्मिक सूक्ष्म अद्वैत ज्ञान कहा गया है।

(१२) चाणक को अंग—अद्वैतज्ञान के, सव ही छंदों में, सुन्दर उपदेश हैं। "हाथ मांहि आरसी न फेरै मूढ करतै"। ४। 'जँगने की जोति कहा रजनी विलात है"। ५। "जप तप करत धरत व्रत…" निर्मात्रिक प्रसिद्ध चित्रकाव्य का भेद है। "देपौ भाई आंधरे ने ज्यौं वजार लूट्यौ है"। ७। "आसन मार्‍यौ पै आस न मारी"। १०। "सुन्दर एक अज्ञान गये विनु, सिद्ध भयो नहिं दीसत कौंना"। १३। "सुन्दर वित्त गड्यौ घर मांहि सु वाहिर ढूंढत क्यौं करि पावै"। १५। "सुन्दर एक भजै भगवन्त हि तौ सुखसागर में नित झूलै"। २३। कितने उत्तम जोरदार प्रभावो-त्पादक उपदेश भरे हैं।

(१३) विपरीत ज्ञानी को अंग—६ छन्दों में अशुद्ध मनवालों, दम्भी-ज्ञानवालों की पोल खोली है जो मुंह से तो अद्वैतज्ञान कहें और अन्दर मन में विकार भरे रहें। "एक ब्रह्म मुख सौं वनाइ करि कहत है अन्तह-करन तो विकारनि सौं भर्‍यौ है"। १। 'ज्ञान की सी वात कहै मन तो मलीन रहै…। ५। "सुन्दर कहत ज्ञानी वाहर भीतर शुद्ध ताकी पटतर और वातनि की वात है"। ६।

(१४) वचन विवेक को अङ्ग—विषय नाम ही से प्रगट है। १४ छंदों में वांणी उच्चारण के सम्बन्ध में ज्ञान और नीति भरे सुन्दर उपदेश हैं। 'एक वांणी रूपवंत भूषण वसन अङ्ग…" इस छंद में तीन प्रकार की वाणी के भेद कहे हैं। २। "वोलिये तो तव जव वोलिवे की सुधि होइ, नांतो मुख मौंन करि चुप होइ रहिये"। ४। "वचन तौ वहै जामें पाइये विवेक

हैं" । ८ । "प्रथम ही गुरुदेव मुख तें उचार कर्यौ, इस छंद में अपनी ज्ञानप्राप्ति दादूदयालजी से होना, और फिर उस ही ज्ञानोपदेश के प्रताप से इतनी रचनाएं परोपकारार्थ करना दरसाया है। १० । "वचन तें दुरि मिलैं वचन विरुद्ध होई"…। ११ । "कुवचन सुनतहि प्रीति घटि जात है" ।१२। "वचन तें जीव भयौ वचन तें ब्रह्म होइ, सुन्दर वचन भेद वेद यौं कहतु हैं" । १४ ।

(१५) निर्गुण उपासना को अंग – ८ छन्दों में निर्गुण ब्रह्म—निरंजन ईश्वर—की उपासना–निज इष्ट—निज निरंजन मत का सिद्धांत खोल कर बताया है। निरंजन शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ और व्याख्या भी की है। सारे छंद बड़े काम के हैं।

(१६) पतिव्रत को अङ्ग—यह आठ छंदों का अङ्ग अति प्रसिद्ध है। ईश्वर में अनन्य और सुदृढ़ भक्ति और विश्वास ही, आलंकारी निरूपण में, पतिव्रत है। "पति विन पति नांहिं पति विन गति नांहिं, सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है" । ७ । "तैसें ही सुंदर एक प्रभु सौं सनेह जोरि, और कछु देपि काहू वोर नहिं वहिये" । ८ ।

(१७) विरहनि उराहने को अङ्ग— विरहनि (आत्मा-जीवसंज्ञा) अपने पति (परमात्मा-परब्रह्म) से अज्ञानवश दूर रह कर उसकी स्मृति में विरह-विभोर हो दुःख से पुकार कर उलाहना (शिकायतें) करती है।—"पिय कौ अन्देसौ भारी तो सौं कहौं सुनि प्यारी, यारी करि गये सुतौ अजहूँ न आये हैं"…। १ । "भई हौं अति वावरी विरह घेरी वावरी, चलत ऊंचौ वावरी परौंगी जाइ वावरी ।…। ५ । यह लाटानुप्रासमय चार-चार अर्थोंवाले शब्दों का सुंदर छंद भी इसी में है जो वहुत ही विरह-द्योतक है।

(१८) शब्दसार को अङ्ग—शब्दों के यमक और अर्थों के चोज वखान कर अद्वैतज्ञान का अच्छा उपदेश किया है १० छंदों में। 'पांन उहै जु पीयूष पिवै नित…। २ । "सूर उहै मन कौं वसि रापत…। ३ । "चाप

उहै कसिये रिपु ऊपर···। ४। इत्यादि कहते हुए आगे—'सोवत सोवत सोइ गयौ सठ···। ६। देषत देषत मारग···। जागत जागत जागि पर्‍यौ जव, सुंदर सुंदर सुंदर पायौ"। १०।

(१६) सूरातन को अङ्ग—१३ छंदों में साधुओं का मन और इंद्रियों के साथ, लड़ाई (संग्राम) करके, विजयी होना आदि का वीररस भरा कितना उत्तम वर्णन है। हम कह आये हैं और आगे भी कहेंगे और पाठक पढ़ कर स्वयम् जानेंगे कि शांतरस में ही वीररस का स्वामी सुंदर-दासजी कितना उत्तम वर्णन करते हैं। पढ़ते ही शूर-वीरता का संचार हो उठता है। 'सुणत नगारै चोट विगसै कंवल मुख अधिक उछाह फूल्यौ माइहू न तन मैं···सोई सूर वीर रुपि रहै जाइ रन मैं। १। "सूरमा कै देपियत सीस विन धर है"। ४। "ज्ञान कौ कवच अङ्ग काहू सौं न होइ भंग। टोप सीस झलकत परम विवेक है···(यह छंद परमोत्तम है)। ७। और आगे "साधु कौ संग्राम है अधिक सूर वीर सौं"। ८। "वैरी सव मारि कै निचिंत होई सूतौ है"। ११। "ऐसौ कौन सूर वीर साधु के समान है"। १३। वड़े ओज भरे छंद हैं।

(२०) साधु को अङ्ग—यह अङ्ग भी उत्तम अङ्गों में से है। ३० छंदों में साधु संतों की महिमा, उनकी सत्संगति का प्रभाव, उनकी निंदा का प्रवल निषेध, उनकी सेवा का उत्तम फल इत्यादि वर्णन किये हैं। "छूटिवे कौ सुन्दर उपाइ एक साधु संग जिनिकी कृपा तें अति सुख पाइय तु है'। ।१३। धूलि जैसो धन जाकै··· ।१५। कामही न क्रोध जाकै लोभ ही न मोह ताकै ·· ।१६। संतजन आये हैं सु पर उपकार कौं। १६। "हीरा हीन लाल हीन पारस न चिंतामनि···संतनि कै सम कहौं और कहां दीजिये" ।२०। 'संतनि की महिमा तौ श्रीमुख सुनाई है" ।२१। "संत-जन निशदिन लेवौई करत है" ।२२। संतजन निशदिन देवौई करत है" ।२३। "संतनिकी निंदा करै सुतौ महानीच है। २७। 'संतनिकौ गुण गहै सोई वर भागी है।" ।२६। "मनवच काय करि अन्तर न रापै कछु संतनिकी सेवा करै सोई निसतरै हैं। ३०।

(२१) भक्ति ज्ञान मिश्रित को अङ्ग—भक्ति से मिला हुआ ज्ञान ही श्रीदादूजी का वा सुन्दरदासजी का प्रधान सिद्धांत है। इस ही को ६ छन्दों में कहा है। "बैठत रामहि ऊठत रामहि······" । १ । से लगाकर— शून्यहु राम अशून्यहु रामहि सुन्दर रामहि नाम अनामैं। ६ । तक परमात्मा को प्रेम पूर्वक सदा सर्वदा सर्वत्र चिंतमन वा ध्यान में रक्खै।

(२२) विपर्यय शब्द को अङ्ग—विपर्यय कहने से उलटा, विपरीत, असंगत अर्थ लेना, परंतु उसमें वास्तविक अभिप्राय बहुत गहरा और ऊंचा होता है। कबीरजी आदि महात्माओं ने ऐसे रहस्य भरे वचन कहे हैं। सुन्दरदासजी ने भी ३२ छंदों में विपर्यय-मय वचन कहे हैं जो गूढ और रहस्य से भरे हैं। सब पर विस्तृत टीकाएं हमने दे दी हैं। पाठक मूलको टीका के साथ पढैंगे तो बहुत आनंद पावैंगे। 'श्रवनहुं देषि सुनैं पुनि नैंनहु, जिव्हा सूंघि नासिका बोल ··ऊंचे पाइ मूंड नीचे कौं, विचरत तीनि लोक मैं डोल···। १ । "मछरी बगुला कौं गहि पायौ, मूंसै पायौ कारो सांप। सूवैं पकरि बिलइया पाई··· । ५ । इत्यादि विपर्यय के नमूने हैं, जिनका आनंद टीका पढ़ने से ही आ सकता है।

(२३) अपने भाव को अङ्ग—१२ छंदों में अपने आप का परिचय पहिचान, भ्रम वा भूल से कुछ और समझ रखने की चितावनी, इत्यादि सुन्दर ढंग पर कहा है। "एकहि आपुनो भाव जहां तहां बुद्धि के योग तैं विभ्रम भासै। ···जैसोई आपु करैं मुख सुन्दर तैसोई दर्पन मांहि प्रकासै" । १ । "जोई कछु देषियेसु आपुनोई भाव है । ३ । "आपुनै भावतें सूरसौ दीसत आपुनै भावतें चंद्र सौ भासै" । ८ । "सुन्दर आपुने भावको कारन आपुहि पूरन ब्रह्म पिछान्यौं" । १० । "सुन्दर जैसोहि भाव है आपुनो तैसोहि होइ गयौ यह प्रानी" । १२ ।

(२४) स्वरूप विस्मरण को अङ्ग—२६ छन्दों में दिखाया गया है कि चेतन ब्रह्म निर्मल निर्भ्रान्त सर्वज्ञ है फिर उसको अपने स्वरूप की विस्मृति कैसे हुई? उसका उत्तर देते हैं कि—"देह कौ संयोग पाइ

इन्द्रिनि के वसि पर्यौ, आपुही कौं आपु, भूलि गयौ सुख चाहे तैं'। ४। "तैसैहि सुन्दर यह भ्रम करि भूलौ आपु, भ्रम के गये तैं यह आतमा अनूप है"। १३। "अहंकार गये यह एक ब्रह्म आप है"। १७। "त्यौं यह सुन्दर भूलि स्वरूपहिं ब्रह्म कहै कब ब्रह्महि पाऊं"। २१। "सुन्दर यौं उपज्यौ मन कै मल; ज्ञान विना निज रूपहि भूला'। २२। "त्यौं यह सुन्दर आपु न जानत; भूलि स्वरूपहि और कहावै"। २६।

(२०) सांख्य ज्ञान को अङ्ग—३६ छंदों में सांख्य का ज्ञान संक्षेप से परंतु सुन्दरता से कहा गया है। सांख्य का वर्णन 'ज्ञान समुद्र' में भी आ चुका है। पंच महाभूत, पंच तन्मात्रा, पंच ज्ञानेंद्रिय पञ्चकर्मेंद्रिय और अन्तःकरण चतुष्टय—यों चोवीस तत्व, पच्चीसवां जीव और छव्वीसवां ब्रह्म है जो सर्व व्यापक अखण्ड एक रस निहकर्म निरसंध है। १। फिर इनके देवता कह कर, वताया है कि ये देवता जिसकी सत्ता से प्रकाशमान हैं वह आत्मा न्यारा है। २। "प्राण कौ प्राण है, जीव कौ जीव है सुन्दर सोई"। ५। शिष्य के पूछने पर गुरु वताते हैं कि—ब्रह्म से पुरुष और प्रकृति प्रगट हुये। प्रकृति से महत्तत्व। महत्तत्व से अहंकार। अहंकार से तीनों गुण। सतोगुण से मन आदि देवता। रजोगुण से दशों इंद्रियां तमोगुण से पंच महाभूत हुये। परंतु ये "सव मिथ्या भ्रमजाल है"। ७। फिर शिष्य के पूछने पर ब्रह्म वा स्वात्मा का यह स्वरूप वतायां कि—"नांहिं नांहिं करते रहैं सु तेरौ रूप हैं" ।६। 'ब्रह्म अव जान्यौं हम जान्यौं है तो निश्चै करि; निश्चै हम कीयौ है तो चुप मुख द्वार तै"। १४। यह सृष्टि का क्रम जैसे एक ब्रह्म से प्रगट होकर फैला हुआ है वैसे ही अनुक्रम से विलोमरीत्या सिमट कर ब्रह्मही में समा जता है"। १७। "देवल तैं न्यारौ देव देवल मैं देषियत; सुन्दर विराजमान और कहां जाइये"। २०। 'प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और···। २१। यह प्रसिद्ध छंद भी (जो जैन कवि वनारसीदासजी का भेजा हुआ है) यहीं आ गया है—"आतमा सौ देव नांहिं देह सौ न देहरा'। २१। फिर आत्मा चेतनरूप का अद्वैत-

रूप बताते हैं कि--"आपु कौ भजन सुतौ आपु ही करतु है। २२। अब यहां सांख्य में वेदांत का पुट मिलाकर सांख्य की वेदांत में उपयोगिता करते हैं—'तीनौं को साक्षी रहै तुरियातत, सुन्दर सोई स्वरूप हमारौ" । २७। "तत्र प्रतिबिंब मिलै शशि बिंबहि सुन्दर जीव ब्रह्ममय होई" । ३६।

(२६) विचार को अंग—२८ छंदों में ब्रह्म और आत्मा का विचार निरूपण किया है। श्रवण, मनन, निदिध्यासन से द्वैत बुद्धि निवृत्त होकर साक्षात्कार आत्मा का होता है। "देइ तो विचार करि, लेइ तो विचार करि, सुन्दर विचार करि याही निराधार है" । २। "परी की डरी सौं अङ्क लिपि कै विचारियत, लिपत लिपत वह डरि घस जात हैं। तैसे हि सुन्दर बुद्धि ब्रह्म कौं विचार करि, करत करत वह बुद्धि हू बिलात है" । १४। "कर्म सुभासुभ की रजनी ··" यह प्रसिद्ध छंद भी विचार की तीन कोटियों को बताता है। ११। "आतमा विचार कियें आतमा ही दीसै एक, सुन्दर कहत कोऊ दूसरो न आंन है" । २८।

(२७) ब्रह्मनिः कलंक को अंग--४ छंदों में ब्रह्म सर्व व्यापी होने पर भी निर्लिप्त और निःसंग, निःकलंक है ।—"ब्रह्म कौं न लागै जगत विकार है" । ३। "ब्रह्म निःकलंक सदा जानत महंत है" । ४।

(२८) आत्मानुभव को अंग - विषय नाम ही से प्रगट है। ३४। छंदों में आत्मा के अनुभव का निरूपण किया है। यह अंग सवैया ग्रन्थ के उत्तमोत्तम अंगों में से है। "क्या कहिये कहतें न बनै कछु जो कहिये कहतें ही लजइये" । १। २। ३। और "जीव कि ब्रह्म न जीवन न ब्रह्म तौ है कि नहीं कछु है न नहीं है" । ५। जोई कहूं सोइ है नहिं सुन्दर है तो सही परि जैसे कौ तैसौ" । ६। "वचन कै परै है सु वचन मैं आवै नांहि, सुन्दर कहत अनुभौ प्रमांन जू" । ८। "सुन्दर आतम कौ अनुभौ सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैना" । १४। 'जाग्रत तौ नहिं मेरै विषै कछु स्वप्न सुनौ नहिं मेरे विषै है ··(यह प्रसिद्ध और उत्तम छंद भी इसही में है) । १५। 'कोऊ तो कहत ब्रह्म नाभि के कँवल मध्य · ". इत्यादि छंद

काम के हैं। १६। "आंधरनि हाथी देषि झगरा मचायौ है"। १७। "इंद्रि-निको भोग । २०। इंद्रियों का आनंद होकर नष्ट हो जाता है, तुच्छ है। स्वर्गादिक के भोग भी अवधि पर नष्ट हो जाते हैं। परंतु आत्मानंद की जब प्राप्ति हो जाती है तब वह पूर्ण रहता है नष्ट नहीं होता है। इस ही लिए आत्मानंद अथवा ब्रह्मानंद ही सर्व में श्रेष्ठ है। 'सुन्दर कहत ब्रह्म ज्यौं को त्यौं ही देखियत, न तौ कछु भयौ अब हैं न कछु होइ हैं"। २३। "आतमा के अनुभव आतमा रहतु है"। २५। "अनुभव जानैं तब सकल सन्देह मिटै, सुन्दर कहत यह प्रत्यक्ष प्रमांण है"। २७। "आतमानुभव ज्ञान प्रलय अग्नि जैसैं, सुन्दर कहत द्वैत प्रपंच विलात है"। २६। "सुन्दर साक्षात्कार नृपति वषानिये"। ३४।

(२६) ज्ञानी को अंग—३२ छंदों में, ब्रह्मज्ञानी के लक्षण, उसकी अवस्था, ज्ञानी, अज्ञानी का भेद, भक्तिमय ज्ञान ज्ञानी, इत्यादि कहे हैं। यह अंग भी उत्तम अंगों में से है।—"जाकै हृदि मंहिं ब्रह्म प्रकाशत ताकौ सुभाव रहै नहिं छांनौं"। १। 'सुन्दर ज्ञानी की ज्ञानी ही जानै'। ५। "दीसत है व्यवहार विषै नित सुन्दर ज्ञानी की कोउ न पावै"। ६। 'देह कौ त्यौहार सब मिथ्या करि जानत है सुन्दर कहत एक आतमा ही रुख है"। ११। सुंदर कहत ज्ञानी सब भ्रम भान्यौं है। १५। जगत को स्वप्न-वत् ही ज्ञान मानता है—१५ से १७ तक। "एक परमातमा कौ ज्ञान अनु-भव जाकै, सुन्दर कहत वह ज्ञानी भ्रमछीन है"। २४। ज्ञानी की तीन २ अवस्थाएं—२६ से ३२ तक। 'जीव नरेश अविद्या निद्रा ··। और ' ज्ञानी कर्म करै नाना विधि···। ये दो विख्यात सवैये (३१-३२) भी इस ही अंग में हैं।

(३०) निरसंशै को अङ्ग—४ छंदों में यह दिखाया है कि ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति हो जाने पर संशय लेशमात्र भी नहीं रहता है। फिर देह का मोह बिलकुल जाता रहता है। यह शरीर कभी भी, कहीं भी, किसी भी सुखदुःख की अवस्था में भी रहै ज्ञानी को कुछ चिंता नहीं रहती और मृत्यु कहीं भी वा कभी भी हो तो परवाह नहीं रहती है।

(३१) प्रेमपरा ज्ञान ज्ञानी को अङ्ग—५ छंदों ही में पराभक्ति सम्पन्न परमज्ञानी की मस्ती की अवस्था का वर्णन है। और "गोकुल गांव को पैंडो ही न्यारो" यह अंत्य चरणार्ध पांचों छंदों में आया है। बहुत सुन्दर और तात्विक वर्णन है।

(३२) अद्वैत ज्ञान को अङ्ग—२५ छंदों में बहुत ही सुन्दर और सारभरे अद्वैत ज्ञान की परिपक्व अवस्था के भावों को मार्मिकता के साथ वर्णन किया है। यह अङ्ग भी उत्तमोत्तम अङ्गों में से इस "सवैया" ग्रन्थ का है। पाठक बहुत ध्यान और विचार से पढ़ कर मनन करेंगे तो बहुत ही प्रसन्न होंगे और अलभ्य लाभ प्राप्त करेंगे। छंद १ से ११ तक गुरु शिष्य के प्रश्नोत्तर में अद्वैत ज्ञान को खोलकर समझाया है। फिर भांति भांति से इस ही ज्ञान और विचार की व्याख्या की है। "आपुमैं आपुकौं आपुही लह्यौ है" ।१२। फिर १३ से अन्ततक भी "सर्वंखल्विदं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किंचन" इस महावाक्य के विचार को अनेक सुन्दर-सुन्दर उदाहरणों से समझाया है। और यह सकल सृष्टि ब्रह्म से निकलती है और उसही में फिर समा जाती है। यह सम्पूर्ण जगत "ब्रह्ममय" है इसको भांति भांति से वर्णन किया है। "ब्रह्म सौ जगतमय वेद यौं कहत हैं" ।१५। "ब्रह्म सौ जगतमय याहि निरधार" है ।१६। "ब्रह्म सौ जगतमय निश्चै करि मानिये" ।१७। और "ब्रह्म मैं जगत यह ऐसी विधि देपियत··· यह प्रसिद्ध १८ वां छंद "ब्रह्म अरु माया जैसे······" ये छंद १६ वां, २० वां, २१ वां २२ वां और "ब्रह्म अरु माया कै तो मांथे नहिं शृङ्ग है" २३ वां तथा २४ वां और अन्त का २५ वां—इसही चरम विषय के वर्णन में बहुत उत्तम और प्रशस्त छंद समझे जाते हैं। हम कह चुके हैं कि जहां अद्वैत के वर्णन का अवसर मिलता है अथवा आध्यात्मिक वीररस के कथन का मौका आता है वहां स्वामीजी धारा प्रवाह वेग और गति से प्रवचन बहा देते हैं।

(३३) जगत मिथ्या का अंग—५ छंदों में संसार का मिथ्यात्व

दरसाया है। यह पीपल (अश्वत्थ) वृक्ष के समान वेद में कहा गया है परन्तु असंग (ज्ञान) रूपी कुल्हाडे से मूलोच्छेद कर दिया जाता है। अर्थात् यह वस्तुतः ब्रह्म का ही फैलाव और विकाशमात्र है। दृश्यमान जगत् रज्जु, चांदी, सींपड़ी आदि की तरह अध्यास रूप से भासता है असल में यह जैसा कुछ दीखता भासता है वैसा है नहीं। असल में ब्रह्म ही एक है। "सुन्दर कहत यह एक ई अखंड ब्रह्म ताही कौं पलटि कैं जगत नाम धर्‌यौ है" ।५।

(३४) आश्चर्य को अंग—१५ छंदों में यह अन्तिम (३४ वां) अंग है—जिसमें ब्रह्मज्ञान परायण, अद्वैत सिद्धि को प्राप्त किये हुए हमारे परमविज्ञ स्वामी सुन्दरदासजी ने परब्रह्म परमात्मा की अगाध, अचिंतनीय, अलौकिक सत्ता, शक्ति और वास्तविकता का बहुत रोचक और सार भरा वर्णन किया है। अल्पमति इस मनुष्य की क्या सामर्थ्य है कि उस अगम्य ईश्वर की महिमा और यथार्थ स्वरूप को जान सकै। यह बुद्धि तो उसकी ढूंढ़ खोज किया ही करती है परंतु पार नहीं पाती है। क्योंकि "यो बुद्धेः परतस्तु सः"—वह परमात्मा पुरुषोत्तम इस मनुष्य की पहुंच और गति से परे हैं। इसही से परात्पर है। "सुन्दर कह्यौ न जाइ"। "बूझत बूझत बूझि कैं सुन्दर, हेरत हेरत हेरि हिरानैं" ।८। "जो कहिये तौ कहै न वनैं कछु, सुन्दर जांनि गही मुख मौंना" ।१०। और "सुन्दर मौंन गही सिध साधक कौंन कहै उसकी मुख वातैं"—यह अतिप्रसिद्ध सत्य रस भरा चरण तीन छंदों में (१३–१४–१५ में) है, जो सुन्दरदासजी के सारे रचना-भवन का स्वर्ण कलश समान अपनी जाज्वल्यमान प्रभा से चमकता है—"नैनन वैनन सैनन आसन······।१३।—"वेद थके कहि तंत्र थके कहि······।१४।—"योगी थके कहि जैन थके कहि···" ।१५।। इति ।।

यहांतक (१) ज्ञान समुद्र ग्रन्थ, (२) लघुग्रन्थावली के ३७ ग्रन्थों और (३) सवैया ग्रन्थ (सुन्दर विलास) का अति संक्षिप्त विवरण, दिग्दर्शन और परिचय के निमित्त, यहां भूमिका में दिया गया है। आगे (४)

साखी ग्रन्थ, (५) पद (भजन) और (६) फुटकर काव्य संग्रह रहे। इनका इस प्रकार विवरण असम्भव हो नहीं अनावश्यक भी है। क्योंकि उनका स्वाद तो उनके पढ़ने से आपही आ जायगा। साखी ग्रन्थ का परिचय सवैया ग्रन्थ के साथ करा दिया गया ही है। तथापि यहां पर इन तीनों विभागों का संकेतमात्र परिचय फिर भी देते हैं :—

(४) चतुर्थ विभाग—"साखी" ग्रन्थ

ऊपर सवैया ग्रन्थ के सार विवरण में सवैया ग्रन्थ और साखी ग्रन्थ के अंगों का परस्पर मीलान करके हमने निष्कर्ष निकाल कर बता दिया है कि साखी ग्रन्थ बहुत अंश में सवैया का मानों सार ही है। कुछ अंग साखी के सवैया से नहीं मेल खाते हैं। तथापि अधिकांश में विषय प्रयोजन के विचार से पार्थक्य नहीं है। यह बात दो एक उदाहरणों से भी स्पष्ट हो जायगी तथा सवैया ग्रन्थ के विपर्यय अंग की टीका में साखी ग्रन्थ के विपर्यय अङ्ग की साखियों को हमने (सवैया के विपर्यय अंग के) छन्दों के नीचे टीका में देकर अर्थ वा अभिप्राय का साम्य स्पष्ट दिखा दिया है। पाठक वहां देख कर निश्चय करलें।

(१) सवैया गुरुदेव को अङ्ग छन्द ४—

"भौ जल में वहिजात हुते जिनि काढ़ि लिये अपने कर आदू"।

साखी गुरुदेव को अङ्ग छन्द १—

"दादू सद्गुरु वंदिये सो मेरै सिरमोर।
सुन्दर वहिया जाय था पकरि लगाया ठौर॥ १॥

तथा छन्द १२—

सुन्दर सद्गुरु आपु तैं गहे सीस के वाल।
बूडत जगत समुद्र में काढ़ि लियो ततकाल॥ १२॥

(२) सवैया अङ्ग १४ वचनविवेक छन्द १—

"जाकें घर ताजी तुरकनि कौ तबेलो वंध्यो,
ताकैं आगें फेरि फेरि टटुवा नचाइये।
जाकैं पासा मलमल सिरीसाफ़ ढेर परे,
ताकैं आगें आनि करि जौ सई रपाइये॥

जाकौं पंचामृत पात पात सब दिन बीतै,
सुन्दर कहत ताहि सवरी चपाइये।
चतुर प्रवीन आगै मूरष उचार करै,
सूरज कै आगै जैसे जैंगणां दिषाइये" ॥ १ ॥

साखी अङ्ग उक्त सं० १७-छंद १७ से २० तक—

"सुन्दर घर ताजी बन्धे तुरकनि की घुरसाल।
ताके आगै आइके टटुवा फेरै बाल ॥ १७ ॥
सुन्दर जाकै वाफता षासा मलमल ढेर।
ताकै आगै चौसई आनि धरै बहुतेर ॥ १८ ॥
सुन्दर पंचामृत भषै नित प्रति सहज सुभाइ।
ताकै आगै रावरी काहे कौं लै जाइ ॥ १९ ॥
सूरज के आगै कहा करै जींगणां जोति।
सुन्दर हीरा लाल घर ताहि दिखावै पोति" ॥२०॥

इससे, वा अन्य अङ्गों के छन्दों को परस्पर मिलाने से, यह भी प्रतीत हो जाता है कि साखी ग्रन्थ का बहुत-सा अन्श सवैया के अनेक अङ्गों के बन जाने के अनन्तर वा साथ ही रचे गये थे। और मिलान से बहुत स्थलों में परस्पर की भिन्नता और अन्तर भी प्रगट होते हैं।

(५) पंचम विभाग—पद (भजन)

सुन्दरदासजी ने २७ रागोंमें २१३ पद (भजन) बनाये थे। पद इनके टकसाली, सरस, गंभीर, मनोरंजक, भावपूर्ण और रहस्य रंगमें रंगे हुए हैं। साधु सत्संग, गुरुमहिमा, नाम महिमा, ज्ञान महिमा, विरह, अध्यात्मतत्वनिदर्शन, साधु आगमन महिमा, ब्रह्मस्तुति, मनोद्गार प्रकाशन, सत्यसिद्धान्त निरूपण, अनन्यभक्ति, पराभक्ति, विवेक गौरव, उपदेश, चाणक प्रहार, विपर्यय शब्द, ब्रह्मचर्य महिमा, माया, योग रहस्य परिचय, इत्यादि बहुत सुन्दरता से रुचिर वाणी में रचे वा कहे हैं।

इनका आनंद पढ़ने, समझने वा गाने से ही मिलता है वा मिल सकता है। उदाहरण देने या अवतरण देने से वैसा सुख नहीं मिलता है। ये पद समय-समय और अवसर २ पर कहे हुए प्रतीत होते हैं, एक समय के सराड़ा ढंग पर रचे नहीं हैं। रागों की विभिन्नता, प्रसंग वा आशय और अर्थ वा विषय संबंध से, हुई है। तथापि कोई भी पद किसी भी राग में गाया जा सकता है। सुन्दरदासजी गायन में भी निपुण और चतुर थे। पदों पर प्रायः तालें हम ने सुगमता के लिए लगा दी हैं। रागों का विवरण राग-तालिका परिशिष्ट में दे दिया गया है वहां से थोड़ा ज्ञात होगा। पाठक वहां देखेंगे।

(६) षष्टम विभाग—फुटकर काव्य

फुटकर काव्य के छोटे २ ग्रन्थ वा छंदादि लघु ग्रन्थावली के अन्त में दोनों (क) और (ख) प्राचीन पुस्तकों में हैं। वहां से उठा कर तथा अन्य प्रकीर्णक छंदादि को सम्मिलित करके यह षष्टम भाग नाम से एकत्रित संग्रह, सुविधा के लिए, किया गया। यही बात अन्यत्र लिखी गई है।

इस संग्रह में सूचीपत्रके अनुसार जो जो काव्य वा छंद हैं सो ज्ञात ही हैं। इनमें चौबोला, गूढार्थ--इन दो में तो-श्लेषार्थ से एक-एक शब्द के चार ४ तथा दो-दो अर्थ निकलते हैं। और आद्यक्षरी, आद्यंताक्षरी और मध्याक्षरी काव्यों में नामों के अनुसार शब्दों से अक्षर निकल कर वाक्य बनता है। फिर छठे में १४ चित्रकाव्य के छंद हैं--छत्रबंध से लगा कर द्वितीय कंकण बंध तक हैं। इनके चित्र पृथक् बनाये जा कर ब्लाकों में ढले हैं और प्रत्येक के साथ छंद और पढ़ने की तरकीब लिख दी गई है। फिर ७ में कविता के लक्षण, गणागण विचार, इत्यादि कह कर संख्या वाचक शब्दादि का उत्तम संग्रह है। तथा नवनिधि, अष्टसिद्धि, सात वार, बारह महीने, बारह राशियों को अध्यात्म में घटाया है। इनके आगे स्वामीजी ने ग्यारह छप्पय छंद अध्यात्म और वेदांत ज्ञान पर ऐसी लिखी हैं जिनकी जितनी भी श्लाघा की जाय उतनी थोड़ी। अनन्तर, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका,

निर्मात छंद, आदि सुन्दर २ काव्य किये हैं जिनमें गहरा अध्यात्म कूट २ कर भर दिया है। दो चार संस्कृत मिश्रित छंद दिये हैं। हमने "देशाटन के सवैये" (जिनको कहीं २ लिखित पुस्तकों में दशों दिशा के दोहे यह असंगत नाम भी दिया है) और अन्त समय की साखियां देकर संग्रह समाप्त किया है। यह संग्रह सुन्दरदासजी का इस बात का बड़ाभारी प्रमाण है कि ऐसे प्रकार के काव्यों में जहां शृंगारी वा अन्य रसिक कवि नायिका-भेद, शृंगारी आडम्बर वा राजा अमीरों वा नायकों नायिकाओं का वर्णन करते हैं वहां, स्वामीजी ने शांत रस भरे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, नीति, सदुपदेश अथवा ऐसे ही उत्कृष्ट और उन्नायक विषयों को सुन्दर सुमधुर, सरल भाषा में वर्णन किया है। यह शांतरस के कवियों की बड़ी-भारी विजय है। निकृष्ट शृंगार और रसिकता तथा नायिकाभेद आदिक हीन और घृणित काव्यों को हेय समझ कर स्वामीजी ने उनका इस विधि से निषेध वा कर्तृत्व-परायणता से सर्वथा खंडन कर दिया है। और यह दिखा दिया हैं कि शांतरस में भी, इस प्रकार के काव्यांगों में उत्तम रचना हो सकती है। जो रचना मनुष्य को इस लोक और परलोक में सहायक और सन्मार्ग में प्रवर्त्तित करने में हितकारी शक्ति का काम देने वाली है।

इस संग्रह के अतिरिक्त हमको स्वामी श्री ख्यालीरामजी की कृपा से स्वामी श्री सुन्दरदासजी के आठ छंद और मिले जो स्वामी श्री दादूदयालजी की दोनों पुत्रियों की प्रशंसा और वर्णन में हैं—जो, दयालजीके टीकाई शिष्य और पुत्र गरीबदासजी के अनंतर, नरायणे की गादी पर विराजी थीं। ये छंद जीवन-चरित्र के परिशिष्ट (ख) में रखना हमने उचित समझा है। क्योंकि ये छंद ग्रन्थ छपते समय तो पहुंचे नहीं, ग्रन्थ पूर्ण छप जाने के पीछे आये और ख्यालीरामजी ने अपना संग्रह भी भेजा उसके पीछे इन्हें भेजा। इस लिए ही उनके भेजे संग्रह ही में रक्खा जाना आवश्यक तथा युक्त समझा गया पाठक वहां उन्हें अवश्य ही पढ़कर प्रसन्न होंगे।

इस प्रकार स्वामी सुन्दरदासजी के सम्पूर्ण ग्रन्थों का साररूपेण संक्षिप्त विवरण पाठकों के सौकर्य्य, सुविधा और मनोरञ्जन के अर्थ दिया गया।

स्वामीजी का रहस्य वचन अनेक स्थलों में विशेषतः पराभक्ति वर्णन में, विपर्यय शब्द में अष्टकों में अनेक पदों में तथा फुटकर काव्यों के कई अंशों में ऐसा झलकता है कि एक मस्त भक्त कवि का कथन दिये विना नहीं रहा जाता:-

'दिलवरी खतम है माशूके हक़ीक़ी तुझ पर।
तू तो पर्दे में है और ख़ल्क़ तमन्नाई है॥ १॥
होता मालूम है तुझ में भी हया का जज्वा।
जव कि मिलने की जगह गोशए तनहाई है" ॥ २॥

टीका-सम्बन्धी

आवश्यकता एवं कठिनता:— ऊपर कह आये हैं कि इस ग्रन्थावली की टीका के कार्य के कारण से ही अधिकतर इसके सम्पादन वा प्रकाशन में अत्यधिक विलम्ब हुआ है। अनेक मित्रों, साधुओं वा साहित्यिक अनुभवी पुरुषों की यही इच्छा रही कि इस पर अवश्य ही टीका-टिप्पणी हो जानी चाहिए। क्योंकि वहुत से शब्द, वाक्य वा स्थल टीका की अपेक्षा रखते हैं, यद्यपि स्वामी सुन्दरदासजी की रचना वैसे सरल, सुवोध और अक्लिष्ट ही है। परंतु कहीं शब्दों की कठिनता, कहीं अर्थ की गहनता, टीका की अपेक्षा प्रगट करते हैं। और इससे पूर्व समग्र वा समस्त ग्रन्थों पर टीका हुई भी नहीं है। छापे के ग्रन्थों में किसी ग्रन्थ पर कुछ शब्दार्थ दिये हैं वे प्रायः अशुद्ध हैं। और इतने से काम भी नहीं चल सकता है। केवल विपर्यय के अङ्ग पर पण्डित पीताम्बरदत्तजी की टीका उत्तम हुई है। परंतु यह काम प्रारम्भ में थोड़े समय तक तो

सहज-सा दिखाई दिया। परंतु फिर तो कठिन हो गया। कठिनता का प्रधान कारण सम्पादक की अल्पज्ञता और सहायक ग्रन्थों की न्यूनता तथा अनुभव की हीनता ही समझना चाहिए। इन त्रुटियों को मिटाने को ग्रन्थों का संग्रह करना पड़ा, महात्माओं के सत्संग और शिक्षा की प्राप्ति यथावसर की गई और श्रवण, मनन, अध्ययन और पूर्वापर विचार करने से मार्ग में किञ्चित्-किञ्चित् सरलता होती गई। यह काम अयोग्य के हाथ में रहने से अनेक हानियां हुई हैं तथा त्रुटियां रह गई हैं। सो विज्ञ पाठक टीका पढ़ कर समझ सकेंगे। "सहायक ग्रन्थावली" के अवलोकन से पाठकों को विदित हो जायगा कि टीका लिखने में कितना परिश्रम करना पड़ा और समय भी कितना लगा है।

लक्ष्य और अधिकारीः— किसी ग्रन्थ के बनाने, लिखने लिखाने, वा टीका आदि के निर्माण में कुछ लक्ष्य सामने रहता है। अधिकतर अधिकारी का ध्यान रहता है वा आवश्यकता वा लिखने वा रचना करने के प्रधान कारण का सामना होता है। हमारी टीका का भी लक्ष्य एक तो शब्दादि की कठिनाई की निवृत्ति, दूसरे अधिकारी का विचार—यही रहा है। अधिकारी हमने साधारण कक्षा के पाठकों, साधुओं वा जिज्ञासुओं को ही माना है। विषय पारंगत, महापंडित अनुभवी साधुसंतों को हमने इस लक्ष्य से ऊपर रक्खा है। अर्थात् उनके लिए हमारी यह टीका नहीं है। उनके सामने यह कोरी बाललीला है। वे चाहें तो इसकी त्रुटियों को मिटा दें, इससे कई गुणी अच्छी टीका बना दें, वा गहन स्थलों और मर्म के प्रकरणों के उत्तम-उत्तम भाव वा आशय बता दें। बस, हमने अपनी टीका का प्रयोजन कह सुनाया।

टीका का नामः— इस टीका का नाम "सुन्दरानंदी" बहुत समझ कर ही रक्खा गया है। इस नाम में (१) एक तो ग्रन्थकार स्वामी सुन्दरदासजी का शुभ नाम आ गया है। (२) फिर इसके होने से स्वामीजी की आत्मा को कुछ आनंद मिलैगा ही। और कुछ

न सही—केवल यही कि उनके ग्रन्थों की उजलाई का वा भूषण का कुछ बुरा भला काम हो तो जायगा। अतिरिक्त (३) आनंद ही तो सारे ग्रन्थ का फल है—वह है ब्रह्मानंद वा आत्मानंद। अर्थात् यह टीका सुखांत है, दुःखांत नहीं है। (४) यह सुन्दरदासजी के ग्रन्थों का आनंद (स्वाद, मज़ा, मर्म) देनेवाली है! (५) वा, यह टीका सुन्दर (सुचारु, सुस्वादु, सुरूप शोभायमान) आनंद वा सुखवाली है। (६) अथवा, सुन्दरानंद शब्द सुन्दरदास नाम का पर्यायवाची है, जैसे महात्माओं के नामों में प्रायः आनंद शब्द आता है—योगानंद, ब्रह्मानंद, अच्युतानंद, भास्करानंद इत्यादि। अर्थात् यह सुन्दरानंदी है—जिसका तात्पर्य यह होगा कि यह सुंदरदासजी के ग्रन्थों पर है, उनकी है वा उनका अर्थ वतानेवाली है। (७) अन्त में हमारा एक विशेष आशय यह है कि हम सुंदर+आनन्द हैं - अर्थात् सुंदरदासजी के ग्रन्थों के अन्दर हमारी भक्ति होने से हमें उनका आनन्द मिला है। अतः हमारी (सुंदरदासजी की वाणी से आनन्द प्राप्त हम जो हैं उनकी वनाई वा सम्वन्धी) यह टीका है। इसको हरिनारायणी कहना हम अविनय और अभिमान समझते हैं। इस कारण हमारे पक्ष में यह ('सुन्दरानंदी') नाम हमारे अभिप्राय का भी द्योतक होता है। (८) अन्यतया, सुन्दर – श्रेष्ठ, श्रेयस्कर जो परमात्मा ब्रह्म उसका ज्ञानानंद जिनमें है सो ही सुन्दरानंदी – ब्रह्मविद्या, अध्यात्मविज्ञानवाली टीका। अर्थात् अध्यात्म के ग्रन्थों की टीका। (९) अपिच, सुन्दर जो श्रेष्ठ पुरुष, भगवान की भक्ति वा उसका खोज करनेवाले सर्वप्रिय सर्व सुखकारी जन हैं उनको आनंदकारी यह टीका है। ऐसे ही अर्थों के विचार से "सुन्दरानंदी" यह नाम इस टीका का रक्खा गया है। (१०) अन्त में, सुन्दरदासजी के उत्तम उपदेशों और ज्ञान-शिक्षाओं का, जिसके देखने और विचारने से आनंद आवेगा वही सुन्दरानन्दी यह टीका है।

टीका की विडम्बना:—

प्रायशः वैद्यों की तरह, टीकाकार भी अधिकतर काम करनेवाले होते हैं। इनमें से हमारी भी गणना होती है। जैसे वैद्य साधारण रोग को भयानक बता देते हैं वा विषय को मामूली बता कर चिकित्सा कुछ नहीं करते हैं। वैसे ही सरल स्थलों पर विशद टीका देते हैं टीकाकार और कठिन पर लिख देते हैं कि "अर्थ स्पष्ट ही है" अथवा वहां उड़ा ही जाते हैं। ऐसा अपराध हमसे भी बन आया है। सो टीकाकार होने से ऐसा स्वभाव-सिद्ध गुण समझा जाय। क्षमा की याचना इस ही कारण विडम्बना ही है। क्योंकि टीका का करना ही विडम्बना मात्र है।

टीका विवरण:—

हमने, जहां तक हो सका, टीका का विस्तार नहीं किया है। केवल अधिकारी की दृष्टि से, आवश्यक अर्थ वा भाव दे दिया है। जहां प्रमाण की आवश्यकता देखी वा प्रमाण मिल गया वहां प्रमाण भी दे दिया है। प्रमाणों के संकेत संकेतावली में प्रायः देखलें। टीका की न्यूनाधिकता, ग्रन्थ, प्रकरण वा शब्दादि की सरलता वा कठिनता के अनुसार रही है। और सर्वत्र टीका का यही नियम है।

(१) ज्ञानसमुद्र में सांख्य, वेदांत, भक्ति, योग आदि के दर्शनिक तत्व होने से वहां शास्त्रों के कुल ग्रन्थों का अवलोकन करके यथा संभव प्रमाणों के साथ टीका टिप्पणी दी गई है। कई जगह विषय गहन है। फिर भी पूरी टीका स्थानाभाव से नहीं हो सकी है। ※

※ नोट—यह बात सुनने में, आई थी कि ज्ञान समुद्र पर किसी महात्मा ने टीका की थी। परन्तु हमको यह टीका नहीं मिली। महंत श्री गंगादासजी जयपुरवालों के यहां ज्ञा० स० एक साधु के पास से सं० १९७२ का मिला। इसमें चक्रों पर और मुक्ति पर थोड़ी सी टीका है। यह टीका साधु पं० निश्चलदासजी के किसी शिष्य की प्रतीत होती है, क्योंकि शैली उनकी सी ही है।

(२) लघुग्रन्थावली के ३७ ग्रन्थों में ज्ञान समुद्र की अपेक्षा थोड़े पाद-टिप्पण दिये गये हैं। क्योंकि वहां अपेक्षा अधिक अर्थ वा व्याख्या की नहीं रही। जो अर्थ वा व्याख्या पूर्व में आ गई उसकी पुनरावृत्ति नहीं करनी पड़ी।

(३) सवया ग्रन्थ में अनेक अंगों के अनेक शब्दों वा प्रकरणों पर टीका जो दी गई है वह आवश्यकता के अनुसार है। सांख्य, योग, भक्ति, विरह, वैराग्य, ब्रह्मज्ञान, गुरु साधु संत आदिक विषय आये हैं उन पर न तो अधिक और न न्यून टीका, टिप्पण, शब्दार्थादि लिखे गये हैं। "विपर्यय अंग पर" जो टीकाएं लिखी गई हैं वे (१) महंत गंगारामजी की दी हुई दो पुराणी हस्तलिखित टीकाओं से (२) पं० पीताम्बरदत्तजी अहमदाबादवालों की मुद्रित टीका से (३) तथा हमारे नोट आदि उदाहरण 'सुन्दरानंदी' नामक टीका देकर—की गई है। यह विपर्यय का विषय ही ऐसा गहन है कि जिसका स्पष्टीकरण विना इतनी व्याख्या के हो नहीं सकता था। इनही सामग्रियों और आवश्यकता से इस अंग की टीका ने इतना स्थान रोका। तब भी 'सांई का घर दूर'—असली बातें गुरुगम्य ही हैं।

(४) साखी ग्रन्थ के अंगों पर अधिक टीका यों करने की आवश्यकता नहीं रही कि "सवैया" ग्रन्थ में प्रायः वहुत से वा सबही प्रकरण आ चुके थे। फिर विशद टीका केवल पिष्टपेशण वा पुनरावृत्ति ही होती। तब भी कई स्वतंत्र विचार उसमें हैं।

(५) पदों में वहुत स्थलों में कठिनता नहीं थी। गायन की चीजों पर वहुत से गान-रसिक पाठक टीका को चाहते भी नहीं। रागों के विवरण तो रागतालिका परिशिष्ट में एकत्र दे दिये गये हैं, इस कारण प्रत्येक राग के साथ उनको वहां फुटनोट में नहीं दिये। और तालें, मूल ग्रन्थ में न होने से आवश्यक समझ कर जयपुर के एक नामी कलावंत से तथा चतुर्वेदी सूर्यनारायणजी "दिवाकर" कविकी सहायता से, दे दी

गई हैं कि गायक पाठकों को यदि आवश्यक हो उस से काम निकाल सकैं। पदों में अनेक स्थलों में ऐसे रहस्य और गंभीर भाव हैं जिन से भावुक जनों के हृदय ही (उनके) सच्चे अभिप्राय को समझ कर आनन्द ले सकैंगे। स्वयम् ग्रन्थकार ही ने कह दिया है—"संतो पद में अचिरज-भारी" (पद ६ राग ललित पृ० ८२६) 'जहां रहस्य निर्देश हुआ है वहां विपर्यय शब्द की वचन चातुरी आगई है। उनकी अधिक टीका इसलिए अनावश्यक समझी गई कि सवैया और साखी के विपर्यय अंगों की टीका से काम चल सकता है। वृथा विस्तार नहीं किया गया। जहां पंजाबी, गुजराती, संस्कृत वा फारसी मिश्रित कविता आई है—जैसे लघु ग्रन्थावली और फुटकर काव्यों में भी—वहां उनके अर्थ दे भी दिये गये हैं, दो चार जगह छोड़ भी दिये गये हैं कि अधिक की आवश्यकता नहीं जानी गई। कहीं २ ऐसे शब्द आये हैं जिनके अर्थ सहजही नहीं मिले जैसे (राग काफी पद ४ पृ० ६२० पर) मुलाइ शब्द ('तुमही लिये मुलाइ') का अर्थ कठिनता से प्राप्त हुआ। और (राग सोरठ पद ३ के २ रे अन्तरे में) पृ० ८८५ पृष्ठ पर 'सबाहि' शब्द है जो सांगि के साथ आने से किसी शस्त्र विशेष का भी नाम हो सकता है। इसही प्रकार और भी कई एक शब्द हैं जो कुछेक आगे देते हैं।

पदों के अर्थ के संवन्ध में हम तो हमारे स्वामीजी की वचन शैली के साथ सहमत हो कर चले हैं, उन्होंने (पद ३ राग देवगंधार—पृ० ८५६ में) कहा है—"पद में निर्गुन पद पहिचाना। पद कौ अर्थ विचारे कोई पावै पद निर्वाना"। इत्यादि के पढ़ने और समझने से ज्ञात होगा कि इसके पदों के कैसे ठीक अर्थ हो सकते हैं? क्योंकि कहीं २ सरस, सहज ज्ञान है तो कहीं २ "महाकठिन यह पंथ अलौना" (पृ० ८६२) भी है। इनके मर्म पहुंचवान महात्मा संत ही पा सकते हैं। अस्तु।

(६) फुटकर काव्य। यह रंगारंग विभाग भांति २ के काव्यों से भरा हुआ है। इसकी टीका में वहुत परिश्रम और विचार तथा ग्रन्था-

वलोकन करना पड़ा है। तथापि अनेक स्थल यथार्थ स्पष्ट नहीं हो सके हैं। चौवोला, गूढार्थ, चित्रकाव्य के कई छन्दों, संख्या वर्णन (पृ० ६७७—८७ तक), अन्तर्लापिका, वहिर्लापिका, निगडवंध, ("करन देत काहू कछू" विशेपतया) संस्कृद छन्द अनुष्टुप; आदि की टीकाओं को देख और विचार करने से इस कथन का अनुमान विज्ञ पाठकों को होगा।

टीका में सर्वत्र ही छन्दों, पदों आदिकी संख्या वा नाम देकर उनके भीतर के कठिन शब्दों वा स्थलों पर पाद टिप्पण किया गया है। शब्दों आदि पर पृथक अङ्क इस लिए देना उचित नहीं समझा कि ऐसा करने से मूल पाठ विरूप हो जाता और संख्याओं की भरमार भी हो जाती, जो कीड़ियों की तरह मूलके शब्दादि पर वैठी सी दिखाई देतीं। पाठक आवश्यकता के अनुसार नीचे देख लेंगे ही पाद टिप्पणी में।

कठिन शब्दः—

स्वामी सुन्दरदासजी के ग्रन्थों में अनेक ऐसे शब्द भी आये हैं जिनके अर्थों के ढूंढ़ने में बहुत श्रम करना पड़ा है, कई पंडित संतजनों को भी पूछना पड़ा। फिर भी कतिपय शब्द ऐसे हैं जिनका निश्चित और यथार्थ अर्थ प्राप्त नहीं हो सका है। यहां कुछ शब्द वैसे लिख देते हैं। वहुत विस्तार करना आवश्यक नहीं। न तो समय ही है न स्थान ही। टीका में कठिन शब्दों के अर्थ यथा सम्भव दे भी दिये गये हैं। यहां केवल शब्द * ही देते हैं:—

(१) बावनी ग्रन्थ में—छंद २८ में—ऊली। ३१-में नखिर। ३२-टगे।

(२) रामजी अष्टक–छंद २—कुव्विकर।

(३) आत्मा अचल अष्टक–छंद ६—मोल्हू।

(४) अजव ख्याल—छंद १– गुञ्जसिनाल है। कञ्जदुन्दर। ऊक। दुरस दिल।

---

* नोट—यहां केवल शब्दमात्र उनके स्थल वा ग्रन्थों के नामों सहित दिये जाते हैं। अर्थों का प्रयास पाद टिप्पणी में किया ही गया है।

(५) सहजानंद—छंद ४—ऊजू ।

(६) हरिबोल चितावनी— छंद ३—चपरि । धमसोल । घेधक्क धीना ।

(७) तक चितावनी-अइया । छंद ५६—डहकावो ।

(८) विवेक चितावनी—छंद १६—खोखी ।

(९) गुरु कृपा अष्टक—छंद ५—समसरि ।

(१०) गुरु उपदेश अष्टक—छंद ३—कसीस करि ।

(११) भ्रम विध्वंस अष्टक—छंद ६—त्रगनी ।

(१२) सर्वाङ्गयोग प्र०—छंद ४१—मगरभोज ।

(१३) ज्ञान समुद्र—४ उल्लास—छंद ५—कुरुपं । समोसं ।

(१४) सवैया—अङ्ग २—छं० १५—घींच । २०—त्रपत्यारि ।

" " ५—छंद ३—पाह । छंद ६ अघेरौ ।

" " ७—छंद ७ ओखै ।

अङ्ग ८—छंद ५-छिपाहुति । अङ्ग ११—छंद ९—पौंदू । अङ्ग १२ छंद ७ धूस्यो है । अङ्ग १३—छंद ३—पैका । अङ्ग १४—छंद १—सिरी । अङ्ग १५—छंद २-लुक । अङ्ग १७—छंद ३—समाण । अङ्ग १८-छंद ५—चौंन । अङ्ग १९—छंद ३—झुम्झाऊ । अङ्ग १९—छंद ११—लसौ है । अङ्ग २०-छंद २६—आंखुटी । अङ्ग २१—छंद १—धीमत । अङ्ग २२—छंद ११—ताति । अङ्ग २२—छंद २३—भैठि । अङ्ग २३—छंद ७—वीठौ । अङ्ग २५—छंद १५—लघुनीति । अङ्ग २८—छंद १७ - चिटोरा । सयाखौ । अङ्ग २८—छंद ३०—कफमन । अङ्ग २९—छंद २—वूठे । अङ्ग २९ छंद ३१—पुटपरी । अङ्ग २१—छंद १—धीमत ।—अङ्ग २४—छंद १५—निहाली । छंद २१—सानि । अङ्ग २५।३३ वांन । अंग २६।२७—लरक । अंग ३१ । १ गारौ ।—अंग ३२।१५—थीजिकै ।

(१५) साखी ग्रन्थ में—अंग १—छंद ७४—पिरि । अंग ३।२० ढुगर । विलक । अंग ५—छंद ४०—अवगारि । अंग ६।४२ खाटि । टांगरा । छंद २२—भाहि ।—अङ्ग १६।१४ खूंदि । अङ्ग १८।२—नगा-

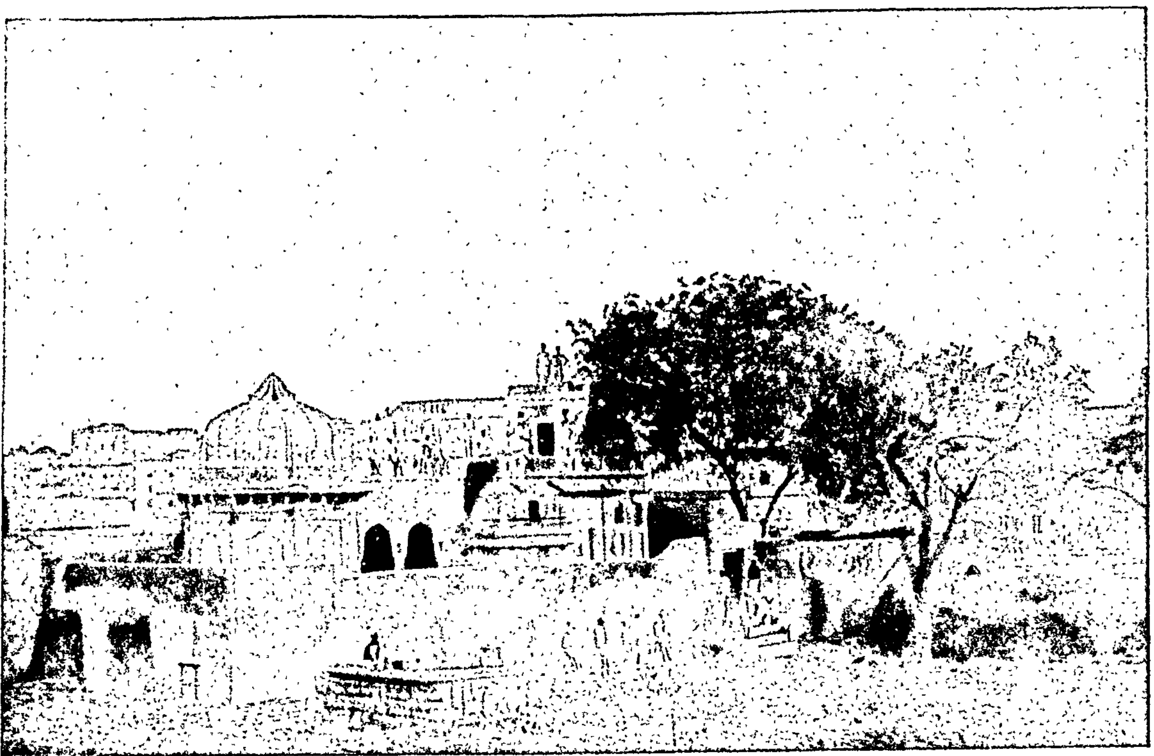
सणां।—अंग २१।३४ खटतीस।—अंग २३।४६ —सान्यौ।—अंग २५।५ वौंट।—अङ्ग ३१२—चोक।

(१६) पदों में—पद १६२। मंधला। कंधला। पद १६७— शीत। पद १७८—ऋपिका पद १८२—राइ गिरगिरी। पद १८४—मुलइ।

इस प्रकार अनेक स्थलों में ऐसे शब्द आये जिनके अर्थों के लिए आकाश-पाताल ढूंढना पड़ा। कुछ वाक्य भी ऐसे कठिन आये जिनका अभिप्राय सहज ही नहीं मिल। उनके लिए भी सिर खपाना पड़ा। वास्तव में उस महान् और उच्चतम अनुभवशाली महात्मा के गहन गम्भीर ज्ञान-सागर का पार अस्मदादि से क्या लग सकता। यह काम कुछ और हाथों के योग्य था। कोई उत्कृष्ट ज्ञान, वैभव और अनुभव सम्पन्न, अध्यात्म और साहित्य का पारंगत पुरुष होता तो उसको ये कठिनाइयां कदापि न होती। फिर भी साहस कर लूले लंगड़े, टूटे-फूटे सामान से मंज़िल को पार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ग़नीमत है। संस्कृतमय रचना, गुजराती. पञ्जावी, पूर्वी वा उर्दू फ़ारसीमय रचनाओं का भी जैसा हो सका अर्थ लगाया गया। फिर भी कहीं २ रह गया। वा यथार्थ अर्थ नहीं हुआ। सो विज्ञवर पाठक ठीक कर लें। हिंदी से अन्य भापाओं के काव्यों के कठिन शब्दों को यहां दिखाने की आवश्यकता नहीं है।

इतना कुछ टीका सम्वन्धी कथन इसलिए किया गया कि हमको इन वातों को पाठकों के ध्यान में लाने की आवश्यकता थी। अर्थात् हमको यह जताना था कि बहुत कुछ करने पर भी हम स्वामीजी के वचन की यथार्थ और पूर्ण व्याख्या नहीं कर सके हैं। क्यों नहीं कर सके, उसके कारण साथ के साथ वताते गये हैं। स्वामी सुन्दरदासजी की वाणी दीखने में प्रायः सरल और सीधी है। परन्तु विपय और पदार्थ की गहनता, रहस्यों की गूढ़ता और ज्ञान की उच्चता रहने से साधारण जानकारी के पुरुप की वहां तक पहुंच नहीं हो सकती है।

टीका संवंधी दूसरी वात यह कहनी है कि टीका करके स्वामीजी की



स्वामी सुन्दरदासजी की कुटी, फतहपुर

स्वतः अलंकृत स्वरूपमाधुरी का हम क्या रूप वता सकते हैं वा उसे क्या वढ़ा सकते हैं। वे महात्मा तो आप ही स्वयम् विभूपित हैं। स्वामी नाभादासजी ने सच कहा हैः

"सुन्दर जे हैं आपहि सुन्दर तिनको कहा सिंगार"। और हमतो महाकवि केशवदासजी के वचन का अनुसरण करके यही कहेंगे कि—

"काहे को सिंगारि के विगारति है मेरी आली,

याके अंग विनांही सिंगार के सिंगारे हैं"। (कविप्रिया। ६।१२) स्वामी सुन्दरदासजी—जो आपही सुन्दर हैं वे "यथानाम अरु रूप तथा गुन होत उजागर" हैं. फिर हम क्या उन्हें उजागर करेंगे।——(दीनदयाल गिरिजी की उक्ति शा० १। ४६)

भाषा।

हम ऊपर वा अन्यत्र भी कह आये हैं कि सुन्दरदासजी की भापा परिष्कृत-साधुभापा है। परन्तु साधुभापा रहते हुए भी यह अन्य कई एक साधु-सन्तों की अपेक्षा शुद्ध, परिमार्जित और अधिक नियमानुकूल है। इनकी भापा के अध्ययन और तत्वानुशीलन से ऐसा प्रतिभासित होता है कि व्रजभापा के आधार पर वा उसके अन्दर मिल कर साधुभापा, खड़ी वोली और राजस्थानी का मेल है। साधुभाषा के कहने से वह भापा का ढंग जो साधु-सन्तों के ग्रन्थों वा वोलचाल में प्रचलित है। कवीरजी, दादूजी, रज्जवजी, आदि के ग्रन्थों के पढ़ने से इस ढचर का ज्ञान हो जाता है। उनलोगों का ढंग सरल-सीधा-सा है, कष्ट-कल्पना, तोड़मरोड़, शव्दाडम्वर आदिक नहीं हैं। गोरखनाथजी, नानकजी, नामदेवजी, रैदासजी, मीरांवाई आदि की भापा में भी वही सरलता है, यद्यपि उनके वचन में उनके देशों की भापा का मेल आ जाता है। सुन्दरदासजी काशी आदिक स्थानों में वहुत वर्षों तक संस्कृत के तथा भापा के रीति-ग्रन्थों को पढ़े थे इससे उनकी भापा में यह परिष्कार स्वभावतः हुआ है। वे वाल-कवि थे,

जैसे वे वाल-ब्रह्मचारी और वालयोगी थे। काव्य का गुण मानों जन्म सिद्ध-सा ही था। उनके लिखने में शास्त्रीयता और परिपक्वता का रंग आया हुआ है। परन्तु उस जमाने के प्रभावानुसार, देशाटन की संगति, वा मुसलमान नवावों वा फकीर ओलिया आदि के संसर्ग से कुछ-कुछ फ़ारसी अरवी के शव्द भी प्रयोग में आये हैं। फ़ारसी उर्दू मिश्रित कविता भी हुई है। यह विशेपतः मुसलमान-प्रेमियों के हित के लिये ही समझना चाहिये। ऐसे ही गुजराती, पूर्वी, पंजावी आदि भापाओं में उन भापाओं के देशों में भ्रमण करने तथा उन भाषाओं के वोलने वा जाननेवालों के प्रेम से ही (रचना) का होना प्रतीत होता है।

ब्रजभापा की प्रधानता तो पढ़ते ही ज्ञात हो जाती है। अन्य भापाओं के शव्दों के साथ मिश्रित होने से प्रायः शुद्ध ब्रजी-पन तुरन्त कहीं-कहीं नहीं दरसता है, तथापि ब्रजभापा की ही मूल में अधिकता स्पष्ट है। और साधुभापा की वात कह ही आये। राजस्थानी भापा के प्रयोग के कुछ उदाहरण, इस भापा को कम जाननेवालों के लिए ही, दे देते हैं। यथाः—

(१) जुडिगै (ज्ञा० स० २।७)। (२) कदे (ज्ञा० ३।१६)। (३) कै --(ज्ञा० । स०)। (४) पांभी—(आत्मा अचल अप्टक । १)। (५) गैल -(उक्त)। (६) दीसत—दीसै (उक्त—४)---(७) निकसिर—(पवंगम छन्द—४) (८) वारनै (उक्त)। (९) लार—(पृ० १८६।२) (१०) तांई—(११) लगार—(१२) तपस्या। (१३) कांनीं-(पृ० २०७।१८)—(१४) सैंनाणी-निसांणी—(पृ० २०७।१९)। (१५) इसा (पृ० २११।७) (१६) ल्याया - (पृ० २११।७)। (१७) भौलैं—(पृ० ४२—२२)। (१८) भेला—(चेतन-भेला) (गुरुदयापट्ट पदी)। (१९) पछेला—(भरम-पछेला) (भ्रमविध्वंस अष्टक)। (२०) भांवैं -(स० । ३०।१) (२१) भाजना—(उक्त) (२२) भर—(उक्त)। (२३) म्हारौ-थारौ (स० । ३१।३)। (२४) मांही, कांनी—इत्यादि। इतने केवल चाशनी वानगी—वा उदाहरण के अर्थ दिये हैं। सवको इकट्ठा करने से छोटा सा

कोश बनै। यह बात ध्यान में रहने योग्य है कि सुन्दरदासजी का जन्म ढूंढाहड़ का है और रहन-सहन शेखावाटी (गोडावाटी) का रहा है। इससे राजस्थानी का मेल होना ही था ॥

(क) गुजराती भाषा के शब्द वैसे भी कहीं-कहीं बीच में आते हैं। परन्तु इसके तो पद ही कई हैं: –

(१) पद ७—राग बिहागड़ो – "भाई रे आपणपो जूं ज्यो··· ।

(२) पद ५ – राग भैरूं—"किम छै किम छै ·········· ।

(३) पद १ – " काल्हैडो—"जोवोपूरण ब्रह्म ·············· ।

(४) " २—" "—"कांई अद्भुत बात ·············· ।

(५) " ३—" "—तम्हें सांभलिज्यो··············· ।

(६) " ४ –" "—जन्हे हृदये ब्रह्मानन्द··············· ।

(ख) पंजाबी भाषा में:—

(१) पंजाबी भाषा अष्टक—(पृ० २७५)—

(२) पद ५ राग बिलावल—"आव असाडे यार तूं·· । (पृ० ८६०)

(ग) पूर्वी भाषा में:—

पूर्वीभाषा बरवै—(पृ० ३७७)

कहीं २ बहुत थोड़े पूर्वीभाषा के शब्द भी आये हैं।

(घ) फ़ारसी-अरबी-उर्दू–मिश्रित भाषा में:—

(१) सवैया-उपदेश चित्तावनी का अङ्ग। २—३-४-२७—

"नफ्स शैतान को आपने कैद करि···। २।

"आब की बूंद औजूद पैदा किया ··। ३।

"अवल उस्ताद के क़दम की खाक हो । ४।

"दुनियां कौ दौड़ता है··· । २७।

"है दिल में दिल्दार सही···(स० आत्मानुभव। २८। १)

(२) पीरमुरीद अष्टक—(पृ० २८३)

(३) अजब ख्याल अष्टक—(पृ० २८६)

(४) ज्ञान झूलना अष्टक—(पृ० २६७)

(५) पद ११—राग काफ़ी—"खूब तेरा नूर यारा··· ।

(६) पद १२—राग काफी—"महबूब सलौने······ ।

(७) पद १—राग एराक—"लालन मेरा लाडिला······ ।

इत्यादि रचनाएँ की हैं। फ़ारसी और अरबी वा उर्दू के लहजे वा मुहाविरे के शब्द यत्र तत्र बहुत थोड़े आते हैं। खड़ी बोली जिसको कहते हैं उसका प्रयोग भलीभांति हुआ है। वह युग इस बोली के परिपक्वावस्था का था, और स्वामीजी काशी, प्रयाग, देहली आगरा, लाहौर आदि स्थानों में भ्रमण किये हुए थे, और मुसलमान फ़कीर, फुकरा, ओलिया, सूफ़ी, नवावों, मोलवियों आदि के साथ भी विचारादि करते रहे हैं। इससे उनकी बोली और उनके शब्द (रूढ़ी और योगरूढ़ी आदिक भी) भी काम में लिये हैं। हम कह चुके हैं कि भाषा का परिमार्जित रूप काशी-वास, भ्रमण और उत्तम भाषा-भाषियों के सत्संग से हुआ है। अपनी प्रतिभा वा निज की अभिरुचि तो प्राकृतिक कारण हैं ही। फ़ारसी अरबी के सब शब्दों का एकत्र संग्रह कर देने का विचार समयाभाव से पूर्ण नहीं हो सका। वैसे टीका टिप्पण में प्रायः सब ही अरबी फ़ारसी के शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं। कुछेक नमूने देते हैं :—वलायत, मुल्क, ग़ाफ़िल, हाज़िर, हुजूर, मालिक, मोला, मीयां, दम, नफ़स, फ़िक्र, फ़कीर, फ़ारीक, हज़रति, दरगाह, खुदाइ, हक्क़, पीर, पैग़म्बर, शेख़, मशाइक, हैरान, हिर्स, हरदम, कोतवाल, काज़ी, पाजी, सिकदार, दीवान, पादशाह, शाहज़ादा, इत्यादि। परन्तु जहाँ शुद्ध हिन्दी की रचना है वहां भाषा, अपभ्रन्श और संस्कृत शब्दों ही की अधिकता वा प्रधानता है। यही स्वामीजी की रचना की विशेषता है।

(ङ) संस्कृतमय रचनाएं :—

(१) ब्रह्मस्तोत्र अष्टक—(पृ० २७६)—"अखंडं चिदानन्द देवाधिदेवं··· ।

(२) ज्ञानसमुद्र पंचमोल्लास के अन्त में (पृ० ७७ और ८० पर):-

"शिप यह अस्यंताभाव होई....से लगा कर—

"नहिं ध्ये ध्याता नहिं ध्यानगम्य ।३८। तक । इनमें संस्कृत प्रयोग वहुत हैं ।

तथा - "क्वाहं कत्वंक्च संसार···से लगाकर—

"वहुना किं उक्तं च अनूपं ।" ५२ । तक । संस्कृतमय हैं ।

(३) पद १०—राग धनाश्री—"दृश्यते वृक्ष एक अति चित्रं··· ।

(४) पद ११— " " —"क्वागतन्निजपर विभ्रमभेदं...... ।

(५) फुटकर काव्य के अंत में :–(पृ० १००२--१००३ तक पर)

शार्दूलविक्रीड़ित--"माधुर्योत्तर-सुन्दरं ममगिग······ । १-२ ।

अनुष्टुप्—"अहं ब्रह्मोत्थहं ब्रम । ३-४ ।

भुजंगप्रयात "न वेदो न तंत्रं···। ५ ।

अनुष्टुप्- "ब्र-ई-जी-चत्रिधाप्रोक्तं··· । ६ ।

वैसे संस्कृत शब्दों के शुद्ध प्रयोग वहुत छन्दों में भी प्रचुरता से आये हैं। यह वात पांडित्य के कारण स्वभाविकी क्रिया सी ही स्वामीजी की थी। उनकी भाषा उत्तम होनेका कारण वा रहस्य उनका संस्कृतज्ञ होना ही विशेपतया है। वैसे भाषा के वे प्रखर, और दीर्घ पंडित थे। और भाषा पर उनका अधिकार वहुत गहरा था। यह वात उनके शब्द-विन्यास, शब्द-प्रयोग और शब्द-रचना से स्पष्ट होती है। मुहाविरे, लोकोक्तियां, किंवदंतियां, ज़र्वुल्मसलैं और लोकव्यवहार में मंजी हुई उक्तियां और वाक्य तथा शब्दों का भी खूब ही प्रयोग किया है। एक परिशिष्ट में हमने मुहाविरे और लोकोक्तियों का संग्रह कर दिया है। यहां अव उदाहरणों की आवश्यकता नहीं। दो तीन नमूने विषय सूचनार्थ दे देते हैं :—(१) "जो गुड़ खाइ सु कान बिंधावै।" (स० २ । १८)। "उहां तो नहीं है कछुराज पोपां वाई कौ "(स० । २ । २६)।" चूंच के समान चूंनि सव ही कौं देत है।" (स० । ७ । १२)। "साधु कौ संग सदा अति

नीको। (स० । २१ । १)। "दीवा करि देखिये सु ऐसी नहीं लाइ है"। (स० २८ ।)

स्वामीजी की भापा की विशेपताओं में उनकी सरलता प्रधान है। परंतु सरल और सीधी होने पर कठिन भी है और कहीं कहीं उसमें न्यून-व्यवहृत शब्द भी आये हैं जिनका कुछ उल्लेख उदाहरणों सहित ऊपर कर दिया हो गया है। कठिन शब्दों की सूची जो हमने तयार की सो यहां देना वा परिशिष्ट में रखना उसका अनावश्यक ही समझा गया। क्योंकि ऐसे सब शब्दों के अर्थ वा आवश्यक विवरण टीका टिप्पणी में दे दिये गये हैं। इसके लगाने से ग्रन्थ का भार और भी बढ़ता। हमारे विचार में स्यात् ही कोई ऐसा कठिन शब्द रहा होगा जिसके अर्थ के लिए यत्किंचित प्रयास नहीं किया गया होगा। हां कई अर्थ यथार्थ नहीं हो सके हैं।

स्वामीजी की भापा की विशेपताएं कुछेक ऊपर "सम्पादन" के प्रकरण में दी गई हैं। यहां थोड़े से प्रयोग देते हैं :—

(१) 'आगय,' 'भागय' (ज्ञा० १ । २)। (२) 'संभलियं' (गुजराती भापा का) (ज्ञा० २ । ३)। (३) द्वित्व कहीं कहीं- यथा 'उप्पजय" (ज्ञा० १ । १ ।) "हृदय" "किज्जय"(ज्ञा० १ । ४) (४) 'विल्ग' (ज्ञा० २ । १०)। (५) परिवर्तित रूप-यथा 'स्पर्शय' (ज्ञा० ३ । १३) (६) ह्रस्व इकार का प्रयोग वहुवचन में, कर्म में, सप्तमी में सर्वत्र हुआ है। यह प्राचीन भापा की शैली थी—यथा 'संतनि', 'तत्वानि' 'कर्मेन्द्रियनि' इत्यादि (ज्ञा० १ । ८-९ । तथा ४ । २६-३०) (७) जांनई, मांनई (ज्ञा० १ । १६) इयादि। (८) मांहीं, महिं, देखतं (ज्ञा० १ । २०) (९) मानिर (ज्ञा० १ । ३३)। (१०) सुनहि, छूटहि (ज्ञा० ४ । ६६) (११) जानियहु (ज्ञा० ४ । २२) इत्यादि। (१२) पाटियतु, काटियतु, इत्यादि (स० अं०) 'त' और 'स'—तो, तु और सो, सु के स्थान में (पद २ राग १६ मरंत जीवत)। (१३) संस्कृत के शुद्ध वा कुछ विकृत

प्रयोग। यथा:—भिद्यन्ते, छिद्यन्ते (ज्ञा० १। १५, २। १०) त्यजणं, भजणं, हरणं मरणं (ज्ञा० ३ । २४), वर्त्तते, निवर्तते (ज्ञ० ३ । ८५) (ज्ञा० ३ । ८८) क्षीर क्षीरं— अज्य आज्ये वक्तव्पं, श्रोतव्यं आनन्दं घ्रातव्यं, मलत्यागं, वोधव्यं अहंकृत्य (ज्ञा० ४ । ३१-४४,), चिदानंदघनचिन्मयं (ज्ञा० १ । १५) वर्णय (ज्ञा० ४ । ५६), संतुष्टय (ज्ञा० ४ । ५७) । इत्यादि । तथा स्वामीजी के अन्य ग्रन्थों में भी एतादृश प्रयोग हैं। पाठक वहां देखें।

लोक में भापा आदि के ज्ञान के सम्बन्ध में स्वामीजी ने कहा है:—

'केचित् कहैं संस्कृत वानी। कठिन श्लोक सुनावहिं जांनी ॥ २५ ॥
केचित् तर्कत शासतर पाठी। कौशल विद्या पकरत काठी ॥
केचित् वाद विविधि मत जानैं। पढि व्याकरण चातुरी ठानै ॥ २६ ॥
केचित् कविता कवित सुनावैं। कुंडलिया अरु अरिल वनावैं।
केचित् छंद सवैया जोरैं। जहां तहां के अक्षर चोरैं ॥ २७ ॥
केचित् वीणा वेणु वदीता। ताल मृदंग सहित संगीता ॥
केचित् नट की कला दिखावैं। हस्त विनोद मधुर सुर गावैं ॥ २८ ॥
(सर्वाङ्ग योग। पृ० १)

भापा के उच्चारण, कथन, बोलने के लिये विवेक पर सुन्दरदासजी ने "सवैया" ग्रन्थ के अन्दर एक हित भरा अङ्ग ही वर्णन कर दिया है। वहां कैसा सुन्दर कहा है:—

"एक वांणी रूपवंत भूपन वसन अङ्ग,
अधिक विराजमान कहियत ऐसी है।
एक वांणी फाटे टूटे अम्बर उढ़ाये आंनि,
ताहू मांहिं विपरीति सुनियत तैसी है ॥
एक वांणी मृतकहि वहुत सिंगार किये,
लोकनि कौं नीकी लगै संतनि कौं भैसी है।
सुन्दर कहत वांणी त्रिविधि जगत मांहिं,
जानै कोऊ चतुर प्रवीन जाकै जैसी है" ॥ २ ॥

और भी—"चतुर प्रवीन आगै मूरख उच्चार करै,

सूरज के आगै जैसे जैंगणा दिखाइये" ॥ १ ॥

इस अङ्ग के वैसे तो सब ही छंद एक से एक बढ़ कर हैं। परन्तु उनमें कई तो वहुत सरस और प्रयोजनीय हैं। यथाः—

"एकनि के वचन कंटक कटु विष रूप,

करत मरम छेद दुख उपजावने।

सुन्दर कहत घट-घट में वचन भेद,

उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावने" ॥ ५ ॥

"काक अरु रासभ उलूक जब बोलत हैं,

तिनके तौ वचन सुहात कहि कौन कौं।

कोकिला ऊ सारौ पुनि सूवा जब बोलत हैं,

सब कोऊ कान दे सुनत रव रौन कौं॥

ताहितें सुवचन विवेक करि बोलियत,

यौंही आक बाक बकि तेरिये न पौंन कौं।

सुन्दर समुझि कैं वचन कौं उच्चार करि,

नांही तर चुप ह्वै पकरि बैठि मौंन कौं" ॥ ६ ॥

और आगे कैसा सरस कहा है:—

"कहिये तो तब जब मन मांहि तौलिये"।...

"सुन्दर समुझि करि कहिये सरस बात

तबही तौ बदन कपाट गहि खोलिये" ॥ ७ ॥

"सुन्दर सुवचन सुनत अति सुख होत,

कुवचन सुनत हि प्रीति घटि जात है" ॥ १२ ॥

(वचन विवेक का अङ्ग)

इन वचनों से स्पष्ट है कि कविवर महात्मा सुन्दरदासजी को भाषा की मिष्टता, मंगलमय होने, सुन्दर और सुहावनी भी होने का कितना विचार रहता था। वे आप स्वयम् बहुत ही मधुर भाषी थे, जैसे कि

उनके गुरु दादूदयालजी और अन्य गुरु भाई "मीठी वोली" और "दया-लुता"-मय वाक्योच्चारण के लिए मशहूर थे।

भाषा का उत्तम, सरस और सुन्दर होना ही कविता को वैसे ही रूप में कर देता है। और ये कवि के अन्दर होने से ही भाषा और कविता में आते हैं, अन्यथा नहीं। जो कवि स्वभाव से ही कठोर, कर्कशस्वभाव के होते हैं उनकी वाणी भी वैसी ही कठोर, कुरूप, कर्णकटु और अप्रिय होती है। वे निंदक; दोषदर्शी और अधम कवि हैं।

छंद और कविता।

स्वामी सुन्दरदासजी के सब ही ग्रन्थ पद्यात्मक हैं, छंदों में रचित है। उन्होंने गद्य कुछ भी हमारे लिये नहीं लिखा। वे छंदः शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे। ऐसा उनकी छंद रचना और उनके छंदों पर के विचार से प्रगट होता है। छंदोभंग की उन्होंने आपही अवहेलना कड़े शब्दों में की है। अन्त्यानुप्रास (तुकांत) को उन्होंने, उस युग के छंदश्चार के अनु-सार, भलीभांति वर्त्ता है। उनके अन्त्यानुप्रास खैंचतांण और तोड़मरोड़ के नहीं हैं। इससे कहना होगा कि भाषा कोश पर उनका भारी अधि-कार था, जैसा कि उनकी सुथरी और स्फीत शब्द-योजना से भी स्पष्ट प्रतीत होता है। वे स्वयम् 'कवितालक्षण' को बताते हैं :—

"नख शिख शुद्ध कवित्त पढ़त अति नीकौ लग्गै।
अङ्गहीन जो पढ़ै सुनत कविजन उठि भग्गै॥
अक्षर घटि बढ़ि होइ खुड़ावत नर ज्यौं चल्लै।
मात घटै बढ़ि कोइ मनौ मतवारो हल्लै॥
औढेर कांण सो तुक अमिल, अर्थहीन अन्धो यथा।
कहि सुन्दर हरिजस जीव है, हरिजस बिन मृत कहि तथा" ॥२५॥

(फुटकर काव्य–पृ० ९७२)

फिर गणागण विचार, दग्धाक्षर विचार, फिर काव्य के दोष और

अलंकारों की संख्या दी है। और केशवदासजी की तरह संख्यावाची शब्दों को विस्तार से छंदों में दिया है। ये बातें स्वामीजी ने केवल दिग्दर्शन मात्र के लिये लिखी हैं। उनको कोई पिंगल का ग्रन्थ, यहाँ अध्यात्म के ग्रन्थों में, थोड़े ही ठूँसना था।

स्वामी सुन्दरदासजी के सब ही छंद सरस, सुमधुर, गंभीर अर्थ गर्भित, गहरे प्रयोजन को लिये हुए, संक्षिप्त और काव्यरीति के अनुसार हैं। छंद ऐसे प्रयोग में लिये हैं जो सर्व को प्रियकर वा व्यवहृत हों। छंदोभेदों का आडम्बर, केशवदासादि की नांई, नहीं किया है कि जिससे पाठकों और श्रोताओं को पिंगल के ग्रन्थों को ढूँढ़ना पड़े। उस समय के प्रचलित वा साधारण लोक में विख्यात छंदों को ही अधिक प्रयोग में लिया है। यह भी उनकी लोकप्रियता का एक हेतु है। छोटे छंदों में दोहा, सोरठा, चौपाई आदि और वड़े छंदों में सवैया (कई भेदों सहित), मनहर और छप्पय भी अधिक वरताव में लिये गये हैं। छंदोभेदों की अधिक संख्या "ज्ञानसमुद्र" में और सबसे न्यून "सापी" ग्रन्थ में है। जिनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है। सब ग्रन्थों में, छहों विभागों में, छंद संख्या ३५९३ है। यथा :—

(१) ज्ञानसमुद्र में—३४ प्रकार के छंद—सर्व संख्या ३१४।
(२) लघुग्रन्थावली में-१६ प्रकार के छंद–सर्व संख्या १२१६।
(३) सवैया ग्रन्थ में—१० प्रकार के छंद –सर्व संख्या ५६३।
(४) सापी ग्रन्थ में—१ प्रकार का छंद– सर्व संख्या १३५१।
[(५) पदों में—× छंदों की संख्या नहीं दी जा सकती। पद २७ रागों में ❊ २१३ हैं।]

❊ पदों (भजनों) में छंद हैं किसी में एक तरह का, किसी में दो तरह के, किसी २ में अधिक तरह के। विना छंद के तो पद वन ही कैसे सकता है। छंदों के साथ ही तालें हैं। परन्तु रागें स्वतंत्र हैं। वही पद दूसरी राग में भी गाया जा सकता है। परन्तु ताल सहसा नहीं वदली जा सकती।

(६) फुटकर काव्य में—१० प्रकार के छंद—सर्व संख्या १४६ ।

किन २ पिंगल के ग्रन्थों के आधार पर वा अनुसार स्वामीजी ने छंदों की रचना की है, इसका पता लग नहीं सका है। परन्तु उनके प्रयुक्त छंद, पिंगल की प्रचलित पुस्तकों के अनुसार ही, मिलाने से, प्रतीत होते हैं। किसी २ छंद के नाम में भेद आया है जिनका संकेत पाद-टिप्पणी में कर दिया गया है। "रणपिंगल" आदिक के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि एकही छंद के कई २ नाम, देश, आचार्य और व्यवहार के भेद से, हैं। इस उक्त ग्रन्थ में प्राप्य यावन्मात्र छंदोग्रन्थों की सहायता ली गई है। इस विचार से स्वामीजी के दिये हुए छंदों के नामों का फ़र्क उक्त कारणों से ही हो सकता है। छंदों के लक्षण यथासम्भव प्रामाणिक ग्रन्थों के अनुसार टिप्पणी में दे दिये गये हैं। इस कारण छन्दों की पृथक् तालिका वा नक़शा लगाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं रही।

"सवैया" छन्द का संक्षिप्त विवरण परिशिष्ट में दे दिया गया है। इस छन्द के नाम (सवैया) ही से एक ग्रन्थ ही स्वामीजी का है। और उसमें इतर नाम और लक्षणों के छन्द भी हैं। इससे विशेष विवेचना की आवश्यकता हुई। हमने "सवैया" छन्द का एक वृहत् विवरण कोई ५० पृष्ठों पर लिखा था। उसही से आवश्यक सार परिशिष्ट में दिया गया है। सवैया छन्द स्वामी सुन्दरदासजी को वहुत प्रिय था। उनके सवैया सुन्दर वने हैं। सवैया के वनाने में वे सिद्धहस्त थे। जैसे सूर का पद, तुलसी की चौपाई, नाभा की छप्पै, केशव का कवित्त, गिरधर की कुण्डलिया, विहारी का दोहा—वैसे ही सुन्दर का सवैया समझना चाहिये। यह सवैया "इंदव" है जिसे मत्तगयंद भी कहते हैं—जो सुन्दरदासजी की अति मिष्ट रचना है। स्वामीजी का कुण्डलिया छन्द भी गिरधर के लवे लगने योग्य है, तथा छप्पय भी टकसाली वनी है, यद्यपि इन छन्दों की संख्या अधिक नहीं है। दोहे भी स्वामीजी के ख़ासा ललित और अच्छी वंदिश के हैं। कई दोहे तो परम सुढार और मनोहर हैं।

सुन्दरदासजी कविता की सुन्दरता छंदों से करना भी जानते थे, जैसे कि अर्थ और भाव और आशय की उच्चता से उसे उन्नत बनाना वे जानते थे। वे वैसे अनेक कवियों को भी संसार में फिर कर देख चुके थे जो दूसरों की चालें उड़ा कर अपनी कर दिखाने में दक्ष थे। ऐसों से स्वामीजी को घृणा थी। उनकी कविता की चाल-ढाल स्वतन्त्र ही सी है। वे ऐसे हीन कवियों की घृणा करते थे। उन्होंने कहा है:—

"केचित् कविता कवित सुनावैं, कुण्डलिया अरु अरिल बनावैं।
केचित् छन्द सवैया जोरैं, जहां तहां के अक्षर चोरैं" ॥ २७ ॥
(सर्वाङ्गयोग प्रदीपिका)

स्वामी सुन्दरदासजी के ग्रन्थों की प्रचुरता के सम्बन्ध में डाक्टर "ग्रीयर्सन साहब" की विख्यात पुस्तक "लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इण्डिया" में जिल्द ६ भाग २ के पृ० ३२ पर, पादरी "जान ट्रेल साहिब" के पत्र के हवाले से, लिखा है कि राजस्थानी-भाषा के अन्दर कविता करनेवालों में दादू और उसके शिष्य प्रशिष्यों का प्राधान्य है। और रज्जब आदि के आठ दस नाम दिये उनमें सुन्दरदासजी के नाम के सामने १२०,००० (एक लाख बीस हजार) लाइंस (पंक्तियां) लिखना बताया है। अर्थात् सुन्दर-दासजी ने बहुत ग्रन्थ लिखे जिनकी पंक्तियां एक लाख बीस हजार हैं। सबसे अधिक संख्या के छंदों का लिखनेवाला सुन्दरदासजी ही को बताया है। परन्तु यह बड़ी संख्या समझ में नहीं आती है कि ट्रेल साहिब ने किस हिसाब से वा गणना से लिखी है? सुन्दरदासजी के समस्त ग्रन्थों के सारे छंद जैसा कि ऊपर लिखा गया, ३५९३ हैं। इनमें प्रत्येक छंद के चार-चार चरण प्रायशः मानें तब भी १५००० से अधिक नहीं होते (दोहों सोरठों के आधाली से दो-दो चरण मानें, और कुण्डलिया और छप्पय आदि के छह-छह चरण लें तब भी) और हम बता आये हैं कि अनुष्टुप् संख्या से ८००० करीब ग्रन्थ भार होता है अनुष्टुप के चार चरण से ३२००० ही होते हैं। फिर ट्रेल साहिब ने इतनी बड़ी संख्या किसी साधु के

कहने से लिखी है, यही बात विचारांश से पाई जाती है। ग्रीयर्सन साहिब को विशेष अनुसन्धान का, ऐसी बातों के लिए, अवसर कहां था? इंग्रेज की लिखावट को इंग्रेज़ बहुत विश्वास और निश्चय से मानता है, चाहे उसने निराधार वा असत्य ही क्यों न लिखा हो।

स्वामी सुन्दरदासजी की कविता शांतरसमय होकर भी काव्यांगों को धारण करती है। काव्य के सब ही गुण उसमें हैं। अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना (ध्वनि) छंद रचना-चातुर्य्य, सुन्दर शब्द योजना, गुणीभूत व्यंग, रस, अलङ्कार, प्रसाद और माधुर्य गुण से सर्वत्र परिप्लुत वा रञ्जित हैं तो कहीं-कहीं ओजगुण भी झलकता है। अपनी रचनाओं से यह सिद्ध कर दिया है कि शृङ्गारादि अन्य रसों ही में काव्यांगों की रचनाएं हो सकती है ऐसा नहीं है, वरन् शांतरस में भी सब ही प्रकार की कविता हो सकती है। सवैया, पद, अष्टक आदि की रचना से स्वामीजी की काव्य-शैली और प्रखर प्रतिभा का भली-भांति प्रकाश और ज्ञान होता है। रस और प्रसंगानुसार गौड़ी वैदर्भी, लाटी आदि रीतियों का भी प्रदर्शन और अनुसरण हुआ है। कोमलावृत्ति और माधुर्य की मात्रा इतनी है कि जिसके जोड़े के तुलसीदासादि कुछेक कवि-जनों को छोड़ कर, सुन्दरदासजी अपने स्थान में आप ही हैं। कविता प्रायः मौलिक और स्वतंत्र है। किसीकी नकल वा चोरी करना प्रगट नहीं होता है। वैसे आशय और भाव तो, निजगुरु दादूदयालजी, कबीरजी, गोरखनाथजी, वेदांदि दर्शणों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों, शांकरभाष्यादि, योगवाशिष्ट, गीता, भागवत, हठयोगप्रदीपिका, गोरक्षपद्धति आदिक अनेकानेक स्रोतों से लिया ही है। कवियों के अनेक ग्रन्थ, पिंगलादि आवश्यक काव्य-रीति के ग्रन्थ अध्ययन किये और अनेक सत्कवियों और महात्माओं का सत्संग किया था। कह चुके हैं कि दादूजी के प्रधान शिष्यों जगजीवणजी, रज्जबजी और प्राग-दासजी आदिकों से आपका बहुत प्रेम और संग रहा था। उनका प्रभाव और प्रतिबिंब पड़ा ही था। परंतु रचना में कुछ भी वैसे नहीं प्रगट होता। रचना स्वच्छंद ही प्रदर्शित होती है।

शांतरस में ऐसी उच्च और सुन्दर कविता के करनेवाले होने से सुन्दरदासजी भाषा-संसार में आदर्श कवियों में हैं। और शृङ्गारादि रसों पर मानों विजय पाकर शांतरस का यह किला बना कर उस पर विजय का झण्डा फहरा दिया है। इस पक्ष में वे आचार्य माने जाने के योग्य हैं। अध्यात्म-विद्या और भक्तिमय ज्ञान की उत्तम शैली प्रदेश में कविता, इस उत्तमता और अधिकता से, करनेवाला कवि हिन्दी-भाषा-संसार में विरला ही होगा।

काव्य और छंद तथा भाषा के गौरव, लालित्य, मनोरमता आदिको बढ़ाने के लिये अनेक ललित, सुन्दर, प्रियकर चमत्कारी छंदों, वृत्तों और पदों का प्रयोग और समावेश करना सिद्धहस्त कवियों का एक आवश्यक काम होता है। परंतु साथ ही सरल, साधारण, सुमधुर, सुललित, लोकप्रिय भाषा और छंदों में ग्रन्थों के लिखे जाने से ही सर्वसाधारण और लोक का उपकार और प्रचार में सुख और सुगमता होती हैं। भाषा के प्रकृतरूप वा व्यवहारगत प्रवाह की प्रगति वा उसकी उन्नति के लिए यह सरलता का अवलंबन वा प्रयोग ही हितकर है और भाषा की रक्षा और व्याप्ति भी इस सीधेपन से ही बढ़ती है। रामचन्द्रिका, विनयपत्रिका आदिक अधिक संस्कृत-गर्भित होने से चाहे वे भाषा के बहुमूल्य रत्न माने जाते हैं, परन्तु रामचरितमानस के बहुत अङ्ग सरल सीधी व्यवहृत भाषा में होने से उसकी अधिक प्रतिष्ठा, उससे अधिक लाभ और वह अधिक लोकप्रिय है। सोही चतुर और अनुभवी स्वामी सुन्दरदासजी ने किया है। वेदान्त के अलौने पाषाण खण्डों को माखन-मिश्री खण्ड-खाद्य सा बना दिया है। गहन विषयों को ऐसी सरलसी सीधी सी साधुभाषा में कथन किया है कि समझने में कठिनता नहीं होती। परन्तु सरलता रहते भी भाषा की स्फीतता, शुद्धता, गम्भीरता, प्रसाद-गुण और माधुर्य-गुण भलीभांति प्रगट हैं। और सुन्दरदासजी का मधुर-मन्द-कान्त- मुसक्यान तथा लोकपर दयामय-निर्मल-भाव (दादूदयालजी का सा), रचना का चमत्कारी, चटकीला, रसीला

अनोखा और चोखापन तो प्रत्येक ग्रन्थ में, प्रत्येक प्रकरण में तथा प्रायः प्रत्येक छंद में भव्यता से झलका वा टपका पड़ता है। निरूपण में मानों सजीव चित्र सा खैंच देते हैं। पदार्थ विवेचन में मार्मिकता, सारता और सरसता कहीं नहीं छूटती। निदान, स्वामी सुन्दरदासजी की कविता—(१) प्रसाद-माधुर्यगुण विशिष्ट (२) सरल-सरस-सुन्दर (३) लोक-प्रियभाषा-लोकोक्ति-सदुक्ति-सम्पन्न (४) गहन गम्भीर विषयों को स्पष्ट सीधे ढंग से वर्णित करने वाली (५) ज्ञान-भक्ति-वैराग्य-नीति-सदुपदेशादि का भंडार होने से सर्वश्रेष्ट है। स्वामीजी ने स्वयम् कहा है:—

"माधुर्योत्तर-सुन्दरां ममगिरां गोविन्द-सम्बन्धिनीम्।
यो नित्यं श्रवणं करोति सततं स मानवो मोदते॥" (फुटकरकाव्य पृ० १००२

और नम्रता और आर्जव की हद कर दी है:—

"न्यूनाधिक्य विलोक्य पण्डितजनो दोषं च दूरी कुरु।
मे चापल्य सुवालबुद्धि कथितं जानाति नारायणः"॥ (उक्त)

मधुर और सुन्दर तथा भगवत् संबंधी कविता करने का अपना मनोनीत भाव कवि ने आपही प्रगट कर दिया था। इससे समझना चाहिए कि ये वातें उनकी स्वाभाविकी ही थीं। परोपकार दृष्टिवाले ही कवि को ये सात्विक वातें फुरती हैं। थोथे आडम्बर की विडम्बनावालों में ये दैवी सम्पत्ति की बातें नहीं होती हैं।

स्वामी सुन्दरदासजी की काव्य-रचना नीति (पॉलीसी) केवल परोपकार पद अवलम्बन रखती है। मूल अभिप्राय उनका यही हैं कि साधारण जिज्ञासु जो संस्कृत भाषा में प्रवीण नहीं हैं और जो इस न्यूनता से संस्कृत ग्रन्थों को न पढ़ने से उन अनुपम आध्यात्मिक पदार्थों से वंचित रहते हैं—उनकी सुविधा और लाभ के लिए ही स्वामिजी ने, स्वयम् वड़े पंडित और शास्त्रज्ञ होने पर भी, सरल सुवोध काव्य में उन कठिन, दुरूह और क्लिष्ट पदार्थों को ऐसा माखन-मिश्री सा वना दिया है कि उनके प्रसाद करने में कहीं कोई प्रयास नहीं होता है। झट गले उतर

जाते हैं, मानों। "परोपकाराय सतां विभूतयः" इस सदुक्ति का अक्षरशः पालन करते हुए, स्वामीजी ने अपनी विद्या, अनुभव, ज्ञान, और सुसंचित सामग्री को जनसाधारण के लिए ऐसे सुलभ, सुकर और निर्मल रूप वा वेश में बनाकर, बड़ा भारी काम कर दिया। क्या यह कम कारीगरी वा थोड़ी चतुराई है कि महा पंडितों के लिए भी दुर्ज्ञेय, मुनिगण को भी दुष्प्राप्य और अगम्य ब्रह्मविद्या के कठिन कर्कश इंद्रियातीत गहन विषयों और प्रकरणों को इतना सहज और सुगम कर दिया है? यह कारीगरी ही नहीं है यह जादूगरी है। संस्कृत जानने वालों को भी, संस्कृत में लिपटे रहने से, जो बातें ढीम वा ढेले सी प्रतीत होती थीं, वेही बातें साधारण हिन्दी जानने वाले साधारण पुरुषों तक को भी मनोमोदकारी रुचिरा और सहज, घरकी सी चीजें, प्रतीत होने लग जाती हैं। यही नहीं, अपितु पढ़कर वा सुनकर मनमुग्ध हो जाता है, चित्त चितारहित होकर चैतन्य हो जाता है, रुचि रोचकता से प्रचुरता धारती है, बुद्धि को सुबोधता के कारण, वा सुबोध की प्राप्ति के कारण, सन्तोष तथा समाधान मिल जाता है, हिये का एक वह 'शूल' कांटे की तरह निकल जाता है जो "बिन निजभाषा" मिले खटकता सा रहता था। यह तो एक प्रकार से कांचन मणि संसर्ग है, स्वर्ण और सुगन्ध का मेल है, कि अध्यात्म ऐसे अमूल्य रत्न को-सृष्टि के कोहिनूर को—ज्ञान के सत्य सौंदर्य को—ब्रह्म वा परमात्म तत्व को—स्वर्णमयी नागरी गुण आगरी में विराजित वा प्रकाशित करके स्वामी सुन्दरदासजी ने संसार के अज्ञान तिमिर को हटाने का यह बड़ाभारी और सहज काम (कारीगरी वा जादूगरी का) करके जगत में सावधानी से छोड़ा है।

अपनी कविता में छन्दों की विशेषता को अधिकार स्वामीजी ने यहां तक दिया था कि छन्दों के नाम से ही ग्रन्थों के नाम रख दिये। यथाः—
(१) सवैया। (२) गुन उत्पत्ति नीसानी (३) गुरुमहिमा नीसानी (४) ज्ञानझूलना अष्टक (५) पवंगम छंद (६) अडिल्ला छन्द। (७) मडिल्ला छन्द (८) पूर्बीभाषा बरवै।

रस

"रसवदेव काव्यम्"—"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"※ काव्य वह वाक्य है जो रसात्मक (वाक्य) हो। शब्दयोजना का वह रूप जो पूरा अर्थ दे वह वाक्य। और जिस पूर्ण शब्दयोजना में रस हो – शब्द और मन (बुद्धि वा चित्त) को रसास्वादन मिले वह काव्य है। "काव्य में रसही सर्वोपरि चमत्कारक आस्वादनीय पदार्थ है। रस के स्वरूप का ज्ञान और इसका आस्वादन ही काव्य के अध्ययन (श्रवण और मनन) का सर्वोपरि फल है" ।‡

रस क्या है और उसकी निष्पत्ति क्योंकर होती है ?—

"विभावानुभाव-व्यभिचारि-संयोगाद्-रस-निष्पत्तिः" (नाट्यशास्त्र अ० ६)

"कारणान्यथ कार्याणि सहकारिणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेनाट्यकाव्ययोः ॥ ३७ ॥
विभावा-अनुभावाश्च कथ्यंते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभाद्यैः स्थायीभावो रसस्मृतः" ॥ ३८ ॥

(काव्यप्रकाश ४।)

लोक व्यवहार में रति आदि चित्तवृत्तियों वा मनके विकारों वा भावों के जो (१) कारण (२) कार्य और (३) सहकारी कारण कहे जाते हैं वे ही नाटक और काव्य में रति आदि भावों के कारण (प्रयोजन वा हेतु) से, क्रमशः (१) विभाव, (२) अनुभाव और (३) व्यभिचारी (वा संचारी) भाव कहे जाते हैं। उन विभावादि से व्यक्त (प्रगट) होकर ही रस कहाता है। (स्थायी भाव है सो ही रस, और रस है सो ही स्थायीभाव है)। (१) विभाव—रसका कारण वा हेतु है। इसके दो भेद होते हैं (क) आलंबन

※ "साहित्यदर्पण" पृ० २१—"वाक्यं रसात्मकं काव्यं दोषास्तस्यापकर्षकाः। उत्कर्षहेतवः प्रोक्तागुणालंकाररीतयः ॥३॥

‡ "काव्य-कल्पद्रुम" पृ० ९५–१५० पर्यंत।

विभाव, और (ख) उद्दीपन विभाव। (२) अनुभाव—विभावों के पीछे रसों का अनुभव करानेवाले हैं। मानों सहायक हैं और फलस्वरूप भी हैं। और भावबोधक भी हैं। स्तंभादि आठ ८ सात्विकभाव भी इन ही के अन्तर्गत वा मिलते-जुलते हैं (३) संचारीभाव (वा व्यभिचारी) चित्त की चिंता आदि न्यारी २ वृत्तियों का नाम है। रस वा स्थायीभाव के ये सहकारी कारण हैं। रस में यथासंभव संचार करते हैं। परन्तु ये रस की तरह अधिक स्थिर नहीं रहते हैं। अवस्था विशेष में उत्पन्न होकर अपना प्रयोजन हो चुकने पर, स्थायीभाव को उचित सहायता देकर लोप हो जाते हैं। - (४) स्थायीभाव—भाव की परिपक्व और स्थिर अवस्था को स्थायीभाव कहते हैं। तब ही यह रस है॥

शांतरस

स्वामी सुन्दरदासजी की रचनाओं के सम्बन्ध में रस की चर्चा करने में अन्यत्र हम कह चुके हैं कि उनकी समस्त रचनाएं शांतरस-प्रधान हैं। यह भी हम कह चुके हैं कि भाषा-साहित्य में यह स्वामी जी,उन परोपकारी धर्मनीति प्रतिष्ठापक कवियों में से हैं जिन्होंने शृङ्गाररस की हानिकारक कविता का तिरस्कार करके हिन्दी काव्य की अनेक छटाएँ शांतरस को ही प्रधान बना रख कर, कर दिखाई हैं। इसमें उनको अच्छी सफलता भी हुई है। और इस सफलता के बल से ही वे इस मार्ग में सिंह के समान अद्वितीय और शूरवीर के समान विजयपताका धारण किये हुए हैं। शृङ्गाररस ही को सर्वप्रधान मानने की प्रथा हिन्दी कवियों ही में नहीं, संस्कृत के कवियों में भी प्राचीनकाल से रूढ़ी-सी हो गई थी। यहां तक कि रस के नाम से (जैसे वैद्यक में वैद्य लोग पारद ही को रस कहते सिहाते हैं, वैसे) शृङ्गार-रस को ही रस नाम से पुकार कर प्राचीन साहित्यिक विद्वानगण अपने आपको मानों धन्य ही मानते रहे हैं। परन्तु ऐसी कल्पना की रूढ़ी उनकी एक वृथा-सी रूढ़ी ही है। जब कि वेद भगवान् ने ही "रसोवैसः" कह कर रस को ब्रह्म का स्वरूप बता दिया है

तो इन तुच्छ सांसारिक विषय के प्रतिपादक मानवियों के इस ढखोसले की वात कैसे मान्य होने के योग्य समझी जा सकती है। सच कहा है कि "अमली मिश्री छांड के आफू खात सरात"। उनको तो चसका रसिकता का लगा हुआ रहता था, उनकी महिमा और प्रतिष्ठा राजा वादशाह रईसों को रिझा कर हाथी, पालकी, आभूषण, इज्जत आदि मान की वातें इस ही शृङ्गारी कविता के प्रताप से प्रायः प्राप्त होती थीं। हां, उनमें से कुछ कवि शृङ्गार के अतिरिक्त वीर और शांत की कविता के करने में भी मन लगाते थे। और हम कहेंगे कि सच्ची वड़ाई उनकी, इन रसों की कविता से ही परमेश्वर और न्याय-परायण लोक के सामने, निर्णीत होने के योग्य समझी जानी चाहिये। इस ही कारण महाकवि केशवदास, रामभक्त होने और भक्ति और ज्ञान वैराग्य की शांतरस-प्रधान कविता के भी करने से ही, सच्ची प्रतिष्ठा पाने के योग्य समझे गये। ऐसा वे न करते तो उनकी इतनी उच्चता की मर्यादा उनको स्यात् प्राप्त भी नहीं होती। और तुलसी-दास—सूरदास के पास वे कैसे विठाये जाते। समझदार सत्यप्रिय साहि-त्यिक-समालोचकों ने शृङ्गार की हीनता और इसके अनिष्टकारी अवगुणों को ध्यान में रख कर इसे (शृङ्गार रस) को उच्चता नहीं दी है। यथा हम यहां हमारे समय के एक विद्वान्—पं० वदरीनाथजी भट्ट ही—की सम्मति को उद्धृत कर देते हैं जिससे हमारे कथन की प्रतीति हो जायगी। वे अपने छोटे परन्तु वहुमूल्य ग्रन्थ "हिन्दी" के पृ० ८३ पर लिख चुके हैं कि—

"केशवदासजी को स्थान हिन्दी-कवियों में कितना ऊँचा है, यह वात इस दोहे से प्रकट हो जाती है:—"सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास, अवके कवि खद्योत-सम जहँ-तहँ करत प्रकास"॥ यह ओड़छे के रहनेवाले थे। अकवर के प्रसिद्ध मुसाहिव वीरवल इनका वड़ा आदर करते थे। सुनते हैं कि केवल एक ही छंद पर रीझ कर एक वार उन्होंने केशव को छः लाख रुपये दे डाले थे। अवतक हिंदी-काव्य में शृङ्गार और भक्ति का

मेल किया जाता था। परंतु, 'रसिकप्रिया', 'नखशिख' आदि पुस्तकें लिख कर, केशवदास ने शृङ्गार की चर्चा भक्ति से अलग भी की, और काव्य-विज्ञान के ग्रन्थों का बीज-सा डाल दिया, जिससे साहित्य के खेत में जड़ की ओर से सरस और ऊपर की ओर से सूखा-सा एक अजीव पेड़ खड़ा हो गया, जिसमें पीछे से अनगिनती, देखने में सुन्दर किंतु नीरस फल लगे जो आज भी देखे जा सकते हैं"। देखिये, भट्टजी ने कितनी अच्छी वात कह दी है। उनका खास अभिप्राय केशवदासजी के उस अनिष्टकारी करतूत से है, जिस द्वारा, भक्ति से शृंगार को पृथक् कर डालने के कारण, कोरी "गुलो बुलबुल, मुलो काकुल", सनम के नखरे और कामोत्तेजक भापा-लालित्य और अश्लील काव्य-रचना–साहित्य में फैल कर सर्वनाश का सामान वना। उनकी देखादेख अनेक कवि केवल नायिकाभेद और नग्न शृङ्गार-रस में प्रवृत्त हो गये। जिससे घराने नष्ट हो गये, राज्य और सलतनतें चोपट हो गये, मर्द गर्द में मिल गये, समाज में कामी पुरुपों की भरमार हो गई, शृङ्गार का वोलवाला हो गया, धीरवीर हिंजड़े हो गये, शूरता रसातल में धस गई, भारत मानों कायरता से गारत-सा हो गया। और भी अनेक हानियाँ, काम की अधिक प्रवृत्ति से, हुई जो शृङ्गार-प्रधान काव्यों से हमारे देश में भलीभांति देखने वा सुनने में आई और इतिहास से जानी जाती हैं। वह वीज विप का था जिससे शृङ्गार का विपवृक्ष उगट कर विप फल लगे जिनको खाते ही मर गये और अव भी मर जाते हैं। नीरस शब्द कह कर वहुत गहरी वात कही गई है। अर्थात् कोरे शृङ्गार-रस से नीरसता आई। इससे समझ लिया जाय कि शृङ्गारस उत्तम रस कहां रहा। हमारे साहित्यिक विद्वानों में ऐसे भी दीर्घ विचार के महात्मा (?) हो गये हैं कि जिनको शांतरस तो रस ही प्रतीत नहीं हुआ।* और वे इतने वढ़ कर कह गये कि रस आठ ही हैं, शांतरस

---

*यह मत किसी २ नाटकाचार्य का ही है कि शांतरस नाटक में दिखाया जा नहीं सकता, इससे लीन नहीं।

को गणना ही में नहीं लिया। अर्थात् शान्तरस को रस न मान कर वे कोरे "दुनयवी" ही बने रह गये—वे ऐहलौकिक रसिक ही बने रह गये। उनको यह न सूझा कि वेद तो रस को ब्रह्म वा ब्रह्म का स्वरूप बताता है, क्योंकि ब्रह्म आनंदस्वरूप है और आनंद (परमानंद) रस का पूर्ण फल है। सुतराम्, शांतरस ही (जिस ही से ब्रह्म की प्राप्ति होती है और हो सकती है) प्रधान रस है, अन्य रस गौण हैं। इस सिद्धांत की विशद व्याख्या की जा सकती थी। परंतु स्थानाभाव से इतना ही यहां अलम् है। स्वयम् स्वामी सुन्दरदासजी केशवदासजी की 'रसिकप्रिया' ग्रन्थ पर इस ही कारण, आक्षेप कर चुके हैं। आक्षेप ही क्या उन्होंने शान्तरस की विजय और शृङ्गार की पराजय कर डाली है। जो अन्यत्र लिखा गया है।

"रसिकप्रिया रसमंजरी और शृंगारहि जान···" इत्यादि छंद कहा है। स्वामीजी उत्कृष्ट कवि थे। हीन विचार की रचना का, कभी उनको, स्वप्न में भी, संसर्ग नहीं होता था। उन्होंने कहा है कि जिस कविता में भक्ति और ज्ञान नहीं वह कविता शून्य और फीकी है। उसमें (शांतरस न होने से) रस कहां? क्योंकि सच्चारस तो शांतरस ही है। उसके होने से ही कविता में वास्तविक रसीलापन (आत्मानंद) आता है। यह सिद्धांत शांतरस-विधायिक कवियों का रहता है। सोही सुन्दरदासजी का है। प्रसिद्ध साहित्याचार्यों में पण्डितराजश्री जगन्नाथजी ने (रस गंगाधर साहित्य ग्रन्थ में) शांतरस को उच्चासन दिया है। उन्होंने रसगणना के प्रमाण श्लोक में शांतरस को शृंगार करुण के साथ तीसरे नंबर पर कथन किया है।

यथाः—"शृंगारः करुणः शांतो रौद्रो वीरोऽद्भुतस्तथा।
हास्यो भयानकश्चैव वीभत्सश्चेति ते नव"॥

और फिर आठरस के मत को मम्मटादि आचार्यों, महाभारतादि के प्रमाणों से खण्डन कर दिया है और काव्य में नवरसों को ही सिद्ध किया

है। और रसगङ्गाधर के टीकाकार विद्वद्वरिष्ट नागेशभट्ट ने भी, पंडितराज के अनुसार ही, नवरस मंडन और शांतरस को नाटक में जिसने रस न माना, उसके विरोध में "प्रबोध चन्द्रोदय" नाटक का प्रबल प्रमाण देकर, उसका खंडन किया है। अतः प्रमाणित हुआ कि शांतरस नवरसों में है और प्रधानतया है। सो हम हेतु ऊपर कथन कर चुके।

अपने "काव्यकल्पद्रुम" में, रस अलङ्कार के उद्भट्ट विशेषज्ञ विद्वान् सेठ कन्हैयालालजी ने (प्रथम भाग रसमंजरी में) शांतरस की प्रधानता को अच्छी रीति से वर्णन की है। किया वहां भक्ति को भी एक रस ही बताया है और कहा है कि यह देव-विषयक रतिभाव है। और उन्होंने बहुत अच्छी तरह, भक्ति के रस होने में, व्याख्या की है। यथाः—

"देव-विषयक रति, अर्थात् भक्ति-रस को साहित्याचार्यों ने भाव संज्ञा दी है। भक्ति रस को शृंगार-रस नहीं कहा जा सकता, क्योंकि शृंगार की व्यंजना तो कामी जनों के हृदय में ही उद्भूत हो सकती है। यह बात शृंगार शब्द के यौगिक अर्थ से भी स्पष्ट है। किन्तु भक्ति को एक स्वतंत्र रस न मानना केवल प्राचीन परिपाटी मात्र है (अर्थात् उन लोगों की रूढ़ी वा गतानुगतिक प्रथा ही है।) वास्तव में अन्य रसों के समान रसोत्पादक सभी सामग्री इसमें भी है। जैसे भक्तिरस के आलम्बन भगवान् श्रीरामकृष्ण आदि हैं। श्रीमद्भागवतादि का श्रवण उद्दीपन (विभाव) है। रोमांच, अश्रुपात, आदि द्वारा अनुभव गम्य और हर्ष, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भावों द्वारा परिपुष्ट होता है"। इतना लिखकर, "रसो वेसः" रस ॐ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" इत्यादिक उपनिषदों (श्रुति) के प्रमाण देकर, वे लिखते हैं कि जब ब्रह्मानंद पर सब रसों का अवलम्बन है, तो उस ब्रह्मानन्द से भी अधिक जो भक्ति का आनंद उन भगवद्भक्तों को होता है वह क्यों नहीं एक स्वतंत्र रस माना जायगा ? जब कि क्रोध से रौद्र, शोक से करुणा, भय से भयानक, जुगुप्सा से वीभत्स रस तो रस माने जांय. और यह सब रसों का आदिस्रोत परमात्मा के अवलम्बन

वा व्यंजना से स्पष्ट ही उत्पादित भक्ति-रस रस न माना जाय, यह युक्ति-युक्त नहीं है। जैसे अन्य रसों का प्रमाण भावुकों का हृदय होता है, वैसे भक्ति-रस का प्रमाण भी हृदय ही है। इससे आगे उन्होंने (१) गुरु-विषयक-रति-भाव (गुरुभक्ति श्रद्धा और पूज्य-भाव), (२) पुत्र-विषयक-रति-भाव (वात्सल्य वा स्नेह), (३) राज- विषयक-रति-भाव (राजा में प्रेम वा राज-भक्ति) आदि को भी रस बताया है।

इसके कहने से हमारा प्रयोजन यही है कि भक्ति और शांत-रस दोनों को ही नहीं, साथ ही गुरुभक्ति को भी स्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में प्रतिपादन किया है। सो सब उनका युक्ति-युक्त, संगत और शास्त्राचार्यों के मत से प्रमाणित है। हम ऊपर भक्तिरस के अवयव (आलम्बन विभाव अनुभावादि) कह आये हैं। अब शांतरस के अङ्गों को बताते हैं:—

शांत-रस की उत्पत्ति (विभाव) प्रायः तत्वज्ञान और वैराग्य से होती है। इसका स्थायीभाव निर्वेद वा शम है।

इसका आलम्बन - संसार की असारता का ज्ञान और परमात्म-तत्व का चिंतन।

इसका उद्दीपन—तपस्वियों, ऋषियों और मुनियों के आश्रम, गंगा आदि पवित्र तीर्थ, एकांत निवास वा वनोवास, सत्संगति आदिक।

अनुभाव इसका—रोमांच होना, संसार-भीरुता, अध्यात्मविद्या का श्रवण मनन निदिध्यासन।

संचारीभाव इसका—निर्वेद, हर्ष, स्मृतिसुमति आदि।

(१) –'काव्य प्रकाश" के आचार्य श्री मम्मटाचार्य के अनुसार निर्वेद से जो स्थायीभाव है. वह तत्व ज्ञान से होता है और इष्टनाश वा अनिष्ट प्राप्ति से निर्वेद हो वह संचारी है।

(२) आचार्य हेमचन्द्र ने "काव्यानुशासन" में भी ऐसा ही कहा है। वे यों लिखते हैं—"वैराग्यादि विभावो, यमनियमाध्यात्मशास्त्र चिन्तनाद्यनुभावो, धृत्यादि व्यभिचारी शमः शांतः"—फिर निज रचित टीका में

व्यांख्या करते हैं—"वैराग्य संसार भीरुता-तत्व ज्ञान-वीतराग परिशीलन परमेश्वरानुग्रहादि विभावो, यमनियमाध्यात्मशास्त्र चिंतनाद्यनुभावो, धृतिस्मृति निर्वेदमत्यादि व्यभिचारी, तृष्णाक्षय रूपः शमः स्थायिभाव श्चर्वणां प्राप्तः शान्तो रसः"। फिर विशद टिप्पणी भी देते हैं।

(३) निजरचित "रसगंगाधर" प्रसिद्ध ग्रन्थ में पंडितराज जगन्नाथ ने भी इस से मिलता जुलता परन्तु बढ़िया शान्तरस का कथन किया है। "अनित्यत्वेन ज्ञातं जगदालम्बनम्। वेदांति श्रवण तपोवन तापसदर्शनाद्युद्दीपनम्। विषयारुचि शत्रुमित्र द्यौदासी न्यचेष्टाहानिनासाग्रदृष्ट्यादयोऽनुभावाः।हर्षोन्माद स्मृति मत्यादयो व्यभिचारिणः"।

(४) श्री विश्वनाथ कविराज ने सुप्रसिद्ध अपने "साहित्यदर्पण" में यों कहा है:—"शांतः शमस्थायि भाव उत्तम प्रकृतिर्मतः । २४५ ।

कुन्देन्दु सुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः ।
अनित्यत्वादिनाशेषवस्तुनिः सारता तुया । २४६ ।
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालंबनमिष्यते ।
पुण्याश्रम हरिक्षेत्र तीर्थ रम्यवनादयः । २४७ ।
महापुरुष संगाद्या स्तस्योद्दीपन रूपिणः ।
रोमांचाद्याश्चानुभावास्तथास्युर्व्यभिचारिणः । २४८ ।
निर्वेदहर्ष स्मरण मति भूतदयादयः" ॥ इत्यादि ।

(५) "चंद्रलोक" में शांतरसका निरूपण इस प्रकार किया है :— "निर्वेदस्थायिकः शांतः सत्संगादि विभावभूः । क्षमादिकानुभावोऽयं स्थम्भादि व्यभिचारिकः" ॥ १३ ॥ अर्थात्—शांतरस का स्थायीभाव तो निर्वेद है (संसार दुःखानुभाव वैराग्य)। सत्संगादि उद्दीपन विभाव। क्षमादि अनुभाव। स्थम्भादि (मस्ती, समाधि स्तब्धतादि) व्यभिचारिभाव—हैं। (चन्द्रलोक। मयूख ६। १३)। "काव्यकल्पद्रुम" में (भाग १ रसमंजरी में) उपरोक्त ग्रन्थों के मतों के अनुसार ही लिखा है। और विशेषताओं को ऊपर दिया गया है।

(६) जगन्नाथ प्रसाद भानुकविने "काव्यप्रभाकर" में शांतरस का वर्णन यों किया है :—

"सुरस शांत निर्वेद है जाको थाई भाव। सतसङ्गति गुरू तपोवन
मृतक समान विभाव ॥ १ ॥
प्रथम रोमाँचादिक तहां भाषत कवि अनुभाव।
धृति मति हरषादिक कहे शुभ सञ्चारी भाव ॥ २ ॥
शुद्ध शुक्ल रंग देवता नारायण है जान।
ताको कहत उदाहरण सुनहु सुमति दै कान ॥ ३ ॥

फिर इसही की व्याख्या की है और उदाहरण दिये हैं पचासेक, जिनमें सुन्दरदासजी के २ दो छन्द भी, तुलसी दासजी आदि के छन्दों के साथ, दिये हैं।

(७) बाबूराम "नवीन" की लिखी "हिन्दी काव्य में नवरस" नाम की पुस्तक में उक्त काव्य-प्रभाकर के विवरण को ज्यों का त्यों लिखा है (यद्यपि नाम तक उस सहाय ग्रन्थ का नहीं दिया है)। और आगे अच्छी व्याख्या की है। रसों पर यह ग्रन्थ हिन्दी में अच्छा ही है, "काव्य-कल्पद्रुम" तो सर्वश्रेष्ट है। "नवीन" ने भक्ति को शृङ्गार ही में माना है, परंतु सेठ कन्हैयालालजी ने पृथक् रस सिद्ध किया है। सेठजी का मत समीचीन है जो साहित्य के प्राचीन कई एक आचार्यों से सम्मत वा अनु-सारी ही है। यदि भक्तिरस को शांतरस का अंगीभूत वा सहायक वा आश्रित कहा जाय तो और भी उचित है। भक्तजनों के मत में तो ज्ञान से भक्ति वढ़ कर ही है और इस कारण शांतरस से गुरुतर ही है। परंतु आध्यात्मिक रहस्य वाले महात्माओं के विचार में इन दोनों का अलौकिक और अपार वैभव है। यही सिद्धांत कवीरजी, दादूजी आदि पहुँचवान महात्माओं और सुन्दरदासजी का है। "गोकुल गांव को पैंडोही न्यारो"। इत्यादि वचनों से उनके अनुभव का पता लगाता है।

शन्तरस और भक्ति तथा गुरुभक्ति के उदाहरणों को यहां पृथक् दिखाने

१४

की कुछ आवश्यकता नहीं, जब कि वे प्रचुरता से ग्रन्थ में पाठकों के सामने हैं। हां, गुरुभक्ति के कुछ संकेत देंगे।

वीररस (ज्ञान वीरता सम्पन्न रस) और भक्ति के उच्चतम भाव-व्यञ्जनावस्था में विरहकातरता, मनःक्लेश, पश्चात्ताप इत्यादि शृङ्गारी भावों का भी वर्णन ग्रन्थ में आता है।

शांत रस में अन्य रस

शांतरस ही में वीर, शृङ्गार आदि का मिश्रण वा वर्णन आया है तो वहां जैसे त्रिवेणी में यमुना-सरस्वती मिलने पर भी गंगा का प्राधान्य रहता है वैसे ही शांतरस ही बोलता हुआ रहता है--

(१) वीर रस यथा :—

"दादू सूर सुभट दल थम्भण रोपि रह्यौ रन मांहीं रे।

× × ×

रहै हजूरि राम कै आगै मुख परि वरपै नूरा रे।

× × ×

कछू एक जस गुरु दादू कौ सुन्दरदास सुनायौ रे" । ४ । (राग सिंधूडो पद १)

(२) "सोई सूरवीर सावंत सिरोमनि, रन मैं जाइ गलारे रे।

× × ×

सुन्दर लटकौ करै स्याम कौं तव तौ सूर कहावैं रे" । ४ (उक्तराग । पद २)

(३) "द्वै दल आइ जुड़े धरणी पर विच सिंधूड़ौ वाजै रे।

× × ×

बहुत वार लग जूझे राजा राइ विवेक हंकार्यौ रे।

ज्ञान गदा की दई सीस मैं महामोह कौं मार्यौ रे। ६।

× × × । १० । (उक्त राग पद ३)

(४) "तड़फड़ै सूर नीसान घाई पड़ै, कोट की वोट सब छोरि चालैं।

× × ×

पिसुन सब पेलि झड़झेलि सनमुख लड़ै, मर्द कौं मारि करि गर्द मेलै।
पंच पचीस रिपु रीस करि निर्दलै, सीस भुइ मेल्हि को कमध पेलै। ३।
अगम को गमि करै दृष्टि उलटी धरै, जीति संग्राम निज धाम आवै।
दास सुन्दर कहै मौज मोटी लहै, रीझि हरिराइ दरसन दिषावै"। ४।

(उक्त राग पद ४)

(५) "महासूर तिनकौ जस गांऊं जिनि हरि सौं लै लाई रे।

× × ×

गुरु दादू प्रगटे सांभरि मैं ऐसौ सूर न कोई रे।
वचन बान लाग्यौ जाकै उर थकित भयौ सुनि सोई रे। १३।

× × ×

सुन्दरदास मोज यह पावै दीजे परम विवेका रे। १४। (उक्त राग पद ५)

(६) ऐसौ तैं, जूझ कियो गढ घेरी। कोई, जान न पायौ सेरी।

× × ×

दत गोरप ज्यौं जस तेरा, यौं गावै सुन्दर चेरा। ८। (राग सोरठ। पद १)

(७) "भाजै कांई रे भिडि भारत साम्हौं, सूरा सत जिणि हारै।

× × ×

भला सूर सावंत सराहै सो सूरातन कीजै।
सुन्दर सीस उतारि आपणौं स्याम काम कौं दीजे॥ ४॥

(राग सोरठ। पद २)

(८) "सोई औगाढ रे रण रावत वांकौ, पाछा पांव न मेल्है।

× × ×

खण्ड विहण्ड होइ पल मांहीं करै न तनकौ लोभा।
सुन्दर मरै त मुकती पहुंचै, जीवै त जग मैं सोभा"॥ ४॥

(उक्त राग। पद ३)

इत्यादि पदों को पूर्ण और ध्यानपूर्वक भलीभांति से समझने से, तथा उनको तत्तत् रागों में अच्छी तरह गाने से वा दूसरों के गाये हुए सुनने

से, विदित होगा कि यह वीररस किस ढंग का है। शांतरस का उत्पादक अथवा शांतरस का फलस्वरूप है। अतः शांतरस का अंगीभूत ही कहा जाने के योग्य है।—वीररस के ऐसे ही वर्णन अधिक रोचकता के साथ "सवैया" (सुन्दरविलास) के अङ्ग १६ सूरातन के में वर्णित है।

"सुणत नगारै चोट विगसै कंवल मुख।···

× × × १। २। ३ · इत्यादि

ऐसो कौन सूरवीर साधु के समान है" ॥ १३ ॥—ये सब तेरहों ही छंद वीररसमय शांतरस हैं।—इसही प्रकार से "सापी" ग्रन्थ के सूरातन के अङ्ग १८ वें में वीररस वर्णित है, जो स्पष्ट ही शांतरस मिश्रित है।—

"सुन्दर सूरातन करै सूरवीर सो जांनि।
चोट नगारै सुनत ही निकसि मंडै मैदानि ॥ १ ॥
······२। ३। ४···इत्यादि—··· ···
"मारै सब संग्राम करि पिसुनहु ते घट मांहिं।
सुन्दर कोऊ सूरमा साधु बराबरि नांहिं ॥ २४ ॥
साधु सुभट अरु सूरमा सुन्दर कहे बखांनि।
कहन सुनन कौं और सब यह निश्चय करि जांनि" ॥ २५ ॥

स्पष्ट ही साधु को सूरमा कहने से तथा उसकी संयमात्मक वीरता से यह वीररस विशिष्ट शांतरसात्मक है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं रही।

(२) शृंगार-रस यथाः—

(क) "हो वैरागी राम तज किहिं देश गये···। (राग विहागड़ो। पद १)

(ख) "माई हो हरि दरसन की आस···(राग विहागड़ो। पद २)

(ग) "किति विधि पीव रिझाइये, अली सुनि सखिय सहानी··· (राग विलावल। पद ३।)

(घ) "जौ पिय को व्रत लै रहै सो पिय ही पियारी ।
…(राग विलावल । पद ४)

(ङ) आव असाडे यार तू चिरकि कूं लाया …(राग विलावल । पद ५)

(च) "मेरौ मन लागौ माई री परम पुरुष गोविन्द
…(राग टोडी । पद ७)

(छ) "तुम खेलहु फाग पियारे कन्त ।…(राग वसन्त । पद ६)

(ज) "मेरा प्रीतम प्राण अधार कब घरि आइ है ।…(राग गौंड पद १)

(झ) "तुम वेग मिलहु किन आइ मेरा लालरे ।…(राग गौंड । पद २)

(ञ) "विरहनि है तुम दरस पियासी ।…(राग गौंड । पद ३)

(ट) "लागी प्रीति पिया सौं सांची । …(राग गौंड । पद ४)

(ठ) "मेरो पिय परदेश लुभानो री ।…(राग सारंग । पद १)

(ड) "पिय मेरै वार कहां धौं लाई ।…(राग मलार । पद ३)

(ढ) "हम पर पावस नृप चढ़ि आयो (राग मलार । पद ४)

(ण) "मेरे मीत सलौने साजना हो । …(राग काफ़ी । पद २)

(त) "मोहि फाग पिया विन दुख भयौ हो ।…(राग काफ़ी । पद ३)

(थ) "पिया खेलहु फाग सुहावनौ हो ।…(राग काफ़ी । पद ५)

(द) "वहुतक दिवस भये मेरे समरथ साइंयां ।…(राग क़ाफ़ी पद ७)

(ध) "तूंही तूंही तूंही तूंही, तूंही तूंही सांई ।…(राग काफ़ी । पद ८)

(न) "पीव हमारा, मोहि पियारा, कब देखौंगी मेरा प्रान अधारा ।
(उक्त । पद ९)

(प) "आज तो सुन्यौं है माई संदेसौ पियाको । (राग काफ़ी पद १०)

(फ) "खूब तेरा नूर यारा खूब तेरे वाइकें ।…(राग काफ़ी । पद ११)

(ब) "ढोलन रे मेरा भांवता मिलि मुझि आइ सवेरा ।
…(राग एराक । पद २)

(भ) "सजन सनेहिया छाइ रहे परदेस ।…(राग धनाश्री । पद ६)

(म) "हरि निरमोहिया कहां रहे करि वास । (राग धनाश्री पद ७)

इन २५ पदों में शृंगाररस-मय शांतरस है। यह उत्कृष्ट शृंगार का रूप है। जीव का ब्रह्म से प्रेम, विरह, पुकार, उलाहना, दुःख का प्रकाशन, इत्यादि वैराग्य, भक्ति, ज्ञान और गुह्य आंतरिक वेदना आदि निर्वेद सूचक हैं। इसही प्रकार अन्य रसों के उदाहरण भी शांतरस मिश्रित जानने चाहिए।

शांतरस की प्राधान्यता, विशेषता और महिमा पर स्वयम् स्वामी सुन्दरदासजी ने कहा है:—

"कहि सुन्दर हरिजस जीव है हरिजस विन मृतकहि तथा"। २५।

(फुटकर काव्य पृ० ६७२)

अर्थात् जिस काव्य में भगवान् का कीर्त्तन, कथन वा वर्णन नहीं, जिसमें ईश्वर सम्बन्धी चर्चा नहीं, प्रभु का यशगान नहीं, ज्ञान-विज्ञान का निशान नहीं और थोथी स्त्रैणता भरी हो वा नर संबंधी महिमा हो, वह कविता मुर्दे की लाश की तरह है उसको गाड़ दो या जला दो या पानी में फेंक दो। कविता का जीवन सच्चा भगवत्संबंधी रचना ही है। यही तो सात्विक गुण का भंडार शांतरस है। इसही को काव्य का जीव स्वामीजी ने कहा है।

छंद के गणों के विचार में भी यही कहा है:—

"हरिनाम सहित जे उच्चरहिं तिनको सुभगण अट्ठ हैं।
यह भेद जके जानै नहीं सुन्दर ते नर सट्ठ हैं॥ २६॥

भगवन्नाम जिस कविता में आवे वही शुभफलप्रदा है। यही तो वारीक भेद कविता का है। इसको जो लोग नहीं जानते (वा नहीं मानते) वे निरे मूर्ख हैं। अर्थात् उनकी कविता हीन ही है।

और भी पद में कहा है:—

पंडित सो जु पढ़ै या पोथी।
जामें ब्रह्म विचार निरंतर और वात जानों सव थोथी।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते, विद्या पढ़ी जहाँ लग जोथी।
दोप बुद्धि जो मिटी न कबहूं, यातैं और अविद्या को थी। १।

लाभ पढ़े कौ कछू न हूवो, पूंजी गई गांठ की:सो थी।
सुन्दरदास कहै समुझावै, बुरौ न कबहूं मानौं मो थी"। २। (पृ०८३७)
तथा पद का टुकड़ा :—
"सीतल बानी बोलि कै रस अंमृत पावै हो। १।
कै तौ मौन गहे रहै कै हरिगुन गावै हो।
भरम कथा संसार की सब दूरि उडावै हो"।२। (पद ४। पृ० ८४४)
और भी सवैया ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर आया है। यथा :—
"जो कोउ राम बिना नर मूरख औरन के गुन जीभ भनैगी।
आनि क्रिया गढ़ते गड़वा पुनि होत है भेरि कछू न बनैगी।
ज्यौं हथ फेरि दिखावत चांवर अंत तो धूरि की धूरि छनैगी।
सुन्दर भूल भई अति से करि सूते की भैंस पडाइ जनैगी"। १७।
(चाणक का अंग। स०)

अर्थात्—जो मनुष्य (शांतरस बिना) अन्य रसों को लेकर भगवान् की स्तुति तो करते नहीं मनुष्यों को रिझाने की उनकी प्रशंसा में कविता करते हैं उनकी सब क्रिया विपरीत फल लावैंगी गड़वे से भेर होगी मानों। वे करना कुछ चाहते हैं और होता कुछ भयंकर है, और यह उनकी बड़ी भारी भूल है जो (मनुष्य देह पाकर) ऐसी विपरीत क्रिया करते हैं। इस बाजीगरी से (असत्य और विवेकहीन क्रिया से) उनका वैसा ही हाल होता है जैसे सोते हुए (असावधान-मूर्ख) की भैंस की जँणी हुई पाड़ी को दूसरा उठा ले गया और अपनी भैंस का पाड़ा ला रक्खा। अर्थात् हीरे के बदले कंकर मिले। वास्तव में अच्छा फल न मिल कर बुरा फल मिला। विवेक शून्य कविता करने का ऐसा ही भयंकर परिणाम होता है।

फिर कहा है :—"बचन तो उहै जामैं पाइये विवेक है"।
और तो बचन ऐसे बोलत है पशु जैसे,
तिनके तौ बोलिबे में ढंगहू न एक है।

कोऊ रात दिवस बकत ही रहत ऐसे,

जैसी विधि कूप मैं बकत मानौं भेक है।

विविध प्रकार करि बोलत जगत सब,

घट घट मुख मुख वचन अनेक है।

सुन्दर कहत तातैं वचन विचारि लेहु

वचन तो उहै जामैं पाइये विवेक है"। ८। (स० १४)

अर्थात्---जिन कवियों ने ज्ञान-विवेक-भक्ति आदि परमात्म संबन्धी नियम वर्णन को छोड़कर सांसारिक विषय वासनाओं में कथन किया. और वह चाहे कितना ही किया, बड़े २ पोथे भी लिख डाले, परन्तु उनका कूप मंडूक की तरह हीन कार्य है। कविता तो वही उत्तम है जिसमें विवेक हो, ज्ञान की बातें हो। विवेक-भ्रष्टता हुई तो किस काम की। *

और भी—"वचन में वचन, विवेक करि लीजिये"। (स० १४। ६)

इन वचनों से स्वामी सुन्दरदासजी ने ज्ञानमय काव्य-शांतरसमय कवि की वास्तविक उपयोगिता को सर्वोच्च सिद्ध किया है। और असल में देखैं तो, और परिणाम दृष्टी से देखैं तो, बात सोलह आना सत्य यही है कि परमात्मतत्व का विचार ही मनुष्य देहधारियों को अच्छा फल है। नायिका भेद और मनुष्य-काव्य का कलाप वा कार्य परमार्थ से बहुत दूर वा गिरा हुआ है।

परिणामदर्शी बुद्धिमान कवियों की ऐसी सम्मति मिलेगी कि परमार्थ संबन्धी कविता करना ही ऊंचा दर्जा समझा जाता है। यथाः—

"उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरि रसलीन।

मध्यम बरणत मानुषनि, दोषनि अधम अधीन"। १।

संसार में जितने प्रकार के काव्य करने वाले पुरुष, कवि, हैं वे तीन

---

* "विवेक भ्रष्टा नाम्भवति विनियातः शतमुखम्"। विवेक भ्रष्टों का भयंकर पतन होता है। अंत में दुर्गति और नाशता प्राप्त होती है।

त्रिभागों में विभक्त हो सकते हैं—(१) प्रथम वे जो भगवान् के ज्ञान वा भक्ति के रस में लवलीन वा अनुरक्त हैं—ये तो उत्तम हैं। और (२) दूसरे वे हैं जो मनुष्यों का यशगान करते हैं, शृङ्गारादिरसों में रहकर नायकाभेद आदि में कविता करते हैं—ये मध्यम हैं। तथा (३) तीसरे वे हैं जो धर्म विरुद्ध कार्य करते हैं, निन्दा, दोपारोपण, अपकीर्त्ति आदि की घृणित कविता करते हैं जो परमार्थ के विरुद्ध हैं—ये कवि अधम और महा निकृष्ट हैं।

इस कहने का अभिप्राय यही है कि भक्ति, ज्ञान, धर्म नीति, अध्यात्मविद्या, सात्विक गुणों के विपयों के वर्णनादि, जो शांतरस के प्रकरण हैं, उन सम्बन्धी कविता करके अपना और लोक का भला करने वाले कविगण ही कवि समाज में सर्वोत्कृष्ट और शिरोमणि हैं। और वर्गों में सर्वोच्च जैसे ब्राह्मण है ऐसे ही कवियों में वह कवि ब्राह्मण-समान ऊंचा है जो शांतरस (ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि पवित्र विपयों के संबन्धी रसाङ्ग) में अपना काव्यशक्ति का प्रयोग और अभ्यास करता है।

ऐसे कवियों के मनस्तरंग की आनंदभरी, मोजमजेदार, रसछकी, मदमाती कविता ही अति सरस और सुहावनी होती है यथा :—

"सत संगति को करिकै, मनतैं दुरबुद्धि को भाव भगावनों है।
गुरु जे उपदेश किये तिनकों कहुँ बैठि इकंत जगावनों है॥
हनुमान जिते कहैं बैन तिते छल छन्दन कों नहिं गावनों है।
विपयादिक सों रति हौं न चहौं रघुवीर में प्रेम लगावनों है" ॥ १ ॥

"जग जांचिये कोउ न जांचिये तौ जिय जांचिये जानकी जानि हरे।
जेहि जांचत जाचकता जरिजाइ जो जारत जोर जहानहि रे॥
गति देखु विचारि विभीपण की अरु आनु हिये हनुमानहि रे।
तुलसी भजि दारिद-दोप-दवानल, संकट-कोटि कृपानहि रे" ॥ १ ॥

"अपराध अगाध भये जनते अपने उर आनत नाहिन जू।
गणिका गज गीध अजामिल के गनि पातक पुंज सिराहिन जू॥

लिये वारक नाम सुधाम दिये जेंहि धाम महामुनि चाहिंन जू।
तुलसी भज दीन-दयाल हि रे रघुनाथ अनाथन दाहिंन जू" ॥ १ ॥

"जड़ पंच मिलै जेहि देह करी करणी लघुधा धरणी धर की।
जनकी कहु क्यों करि है न सम्हारि जो सार करै सचराचर की ॥
तुलसी कहु राम समान को आन है सेवकि जासु रमाधर की।
जग में गति तेहि जगत्पति की परवाहि है ताहि कहा नर की" ॥ १ ॥
"जानत्र नींको गुमान वड़ो तुलसी के विचार गँवार महा है।
जानकी जीवन जान न जान्यो तो जान कहावत जान कहा है" ॥ १ ॥

"वैठि सदा सत्संगति में विप मान विपै रस कीर्त्ति सदा ही।
त्यों पदमाकर झूठ जितो जग जानि सुज्ञान हि के अवगाही ॥
नींक की नोंक में दीठि दिये नित चाहै न चीज़ कहूं चित चाही।
संतत संत शिरोमणि है धन है धन वे जन वेपरवाही" ॥ १ ॥
"भोग में रोग वियोग संयोग में योग में काय कलेश कमायो।
त्यौं पदमाकर वेद पुराण पढ्यौ पढ़िकै वहु वाद वढ़ायो ॥
दौस्यौ दुरास में दास भयों पै कहूं विसराम को धाम न पायौ।
खायो गमायो सो ऐसे ही जीवन हाय मैं रामको नाम न गायौ" ॥ १ ॥
"होत विनोद जु तौ अभिअन्तर सो सुख आपु मैं आपुही पइये।
वाहिर कौं उमग्यो पुनि आवत कंठ तैं सुन्दर फेरि पठइये ॥
स्वाद निवेर्‍यौ न जात मनौं गुर गूंगेहि ज्यौं नित पइये।
क्या कहिये कहते न वनै कछु जो कहिये कहते ही लजइये" ॥ ३ ॥

(स० अं० २८)

भावैं देह छूटि जाहु काशी मांहि गंगातट,
भावैं देह छूटि जाहु क्षेत्र मगहर में।
भावै देह छूटि जाहु विप्र के सदन मध्य,
भावै देह छूटि जाहु स्वपच के घर में ॥

भाव देह छूटौ देश आरज अनारज मैं,
भावें देह छूटि जाहु वन में नगर मैं।
सुन्दर ज्ञानी कै कछु संशै नहिं रह्यौ कोई.
स्वरग नरक सब भाजि गयौ भर मैं॥ १॥
(सं० अं० ३०)

"ज्ञान दियौ गुरुदेव कृपाकरि दूरि कियौ भ्रम पोलि किवारौ।
और क्रिया कहि कौंन करै अब चित्त लग्यो परब्रह्म पियारौ॥
पांव विना चलिकै तहिं ठाहर पंगु भयौ मन मित्त हमारौ।
सुन्दर कोउ न जांनि सके यह गोकुल गांव कौ पैंडौ हि न्यारौ॥ २॥
(सं० अं० ३१)

"ब्रह्म हि मांहिं विराजत ब्रह्महि ब्रह्म विना जिनि और हि जानौं।
ब्रह्महि कुंजर कीटहु ब्रह्महि ब्रह्महि रंक रु ब्रह्महि रानौं॥
कालहु ब्रह्म स्वभावहु ब्रह्महि कर्महु जीवहु ब्रह्म वपानौं।
सुन्दर ब्रह्म विना कछु नाहिं न ब्रह्म हि जांनि सवै भ्रम भानौं॥ २१॥
(स० अं० ३२)

"वेद थके कहि तन्त्र थके कहि ग्रन्थ थके निसवासर गातैं।
शेप थके शिव इन्द्र थके पुनि पोज्ञ कियौ वहुभांति विधातैं॥
पीर थके अरु मीर थके पुनि धीर थके वहु वोलि गिरातैं।
सुन्दर मौंन गही सिध साधक कौंन कहै उसकी मुख वातैं॥ १४॥
(स० अं० ३४)

इस प्रकार शांतरस रसों में सम्राट् समान राजता है। शृंगारादि अन्य सब रस इसके सामने उच्चता और शुद्ध नहीं रखते। इसकी झलक से कहीं उनमें भी सात्विकता आ जानेसे उत्तम हो जाते हैं। हमने ऊपर कहा है कि ब्रह्म रस स्वरूप है। और ब्रह्म शांताकार होने से शांतरस का परम आधार है। अतः सब रसों का ही यह शांतरस ही, इस प्रकार

से भी, मूल आधार है। महाकवि केशवदास ने इसही सिद्धांत को दूसरी तरह कह दिया है। यथा:—

"श्रीवृजभानु कुमारि हेतु शृंगार रूपमय,
वास हास रस हरे मातु बन्धन करुणामय।
केशी प्रति अति रौद्र वीर मारो वत्सासुर।
भय दावानल पान कियौ वीभत्सव को उर॥
अति अद्भुत वंच विरंचि मति, शांत संत ते सोच चित।
कहि केशव सेवहु रसिकजन, नवरस में व्रजराज नित"॥ १॥

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" इस प्रमाण से भगवान् स्वयम् नवरसों के आधार हैं. वा उनमें व्यापक हैं। और आप शांत-स्वरूप होने से, शांत-रस सब रसों का आधार सिद्ध होता है। इस प्रकार शांतरस की महिमा निरूपित हुई।

अलङ्कार

कवि की उक्ति में अलंकार अवश्य होता ही है। शांतरस-प्रधान कविता होने पर भी सुन्दरदासजी की कविता में अलंकारों की कमी नहीं हैं। यद्यपि अलंकार का अपने काव्य में बलात् प्रवेश करना ग्रन्थकर्त्ता का अभिप्राय नहीं था, जैसा कि शृंगारी वा अन्य मनुष्य-प्रसन्नकारी कवि अलंकारों को, येन केन उपायों वा प्रयत्नों से, अपने काव्य में घुसाकर अपनी रचना को सुशोभित करते ही हैं। हमें यहां अलंकारों को बहुत दिखाना अपेक्षित नहीं है। हम केवल यही बता देना चाहते हैं कि स्वामी सुन्दरदासजी की रचनाओं में प्रायः स्वभावतः ही अलंकार आ गये हैं, खैंचतान कर अलंकारों को उन्होंने नहीं जमाये वा धसाये हैं। अर्थात् वे स्वाभाविक कवि थे, उनके अनुभव और ज्ञान में प्रकरणानुसार भाषा की रचना में भाव, व्यंग्य और लक्षण आदि के सहकारी, नैसर्गिकता से अलंकार भी आ गये हैं। "ज्ञान समुद्र" से अधिक किन्ही २ लघुग्रन्थों

में और फिर "सवैया" ग्रन्थ और पदों में, और सब से अधिक "फुटकर काव्य" में अलंकार आये हैं। थोड़े से दिखा देते हैं। ज्ञान-समुद्र के प्रारंभ में, ज्ञान-समुद्र को जल समुद्र के साथ "रूपक" अलंकार से वर्णित किया है, जिसकी व्याख्या टीका में कर दी गई है। अब कुछ और अलंकारों को ग्रन्थों में से उक्त अभिप्राय से उन पाठकों की प्रसन्नता के लिए व.र्णत करते हैं जिनको इस जानकारी की अपेक्षा हो।

(१) अर्थालंकार

(१) "गुरुदेव विना नहिं मारग सूजय, गुरु विन भक्ति न जानैं" इत्यादि। (१०, ११। ज्ञा० उ०-१-स०) इसमें "विनोक्ति" अलंकार है। जिसके विना जो न हो वहां विनोक्ति होता है। यहां गुरु विना सन्मार्ग, भक्ति ज्ञान, संशय-निवारणादि नहीं हो सकते। इसही प्रकार सवैया अङ्ग छंद १६ में वा १५ में—"गुरुविन ज्ञान नहि···वक्रोक्ति अलंकार है।

(२) "निद्रामहिं सूतौ है जौलौं। जन्म मरण को अन्त न तौलौं॥
जाग परेतें स्वप्न समाना। तब मिटि जाय सकल अज्ञाना॥ ३५॥
(ज्ञा० स० उ० १) यहां "विचित्रालंकार" है। नींद से जागने पर स्वप्न नहीं होता पर यहां होता है। और अज्ञान के मेटने का उपाय नहीं प्रतीत होने पर भी अज्ञान मिटता है। अथवा "पर्याय" अलंकार कहा जा सकता है। जिस संसारको सत्य समझा वही असत्य (स्वप्न समान) प्रतीत हुआ, और जिस बुद्धि में अज्ञान था वहां ज्ञान उत्पन्न हो गया। क्योंकि पर्याय में यह लक्षण मिलता है कि एक ही वस्तु वा आश्रय में अनेक वस्तु आवें वा हों।

(३) "श्रवन विना धुनि सुनय, नैन विना रूप निहारय।
रसन विना उचरय प्रशंसा बहु विस्तारय॥···" (५०। ज्ञा० स० उ० २) यहां "विभावना" (पहले प्रकार का) अलंकार है। कारण के विना कार्य की सिद्धि है।

(४) "ज्यौं जल में झप मांसहि लीलत स्वाद बंध्यौ जल बाहरि आवै···

इन्द्रिन के सुख मानत है शठ याहित त बहुते दुःख पावै।
इसमें "उपमा" अलङ्कार है। और अन्यत्र अन्य छंदों में जहां, ज्यों, जैसे, ऐसे, जिम इत्यादि से समानता वर्णित है वहां भी उपमा अलङ्कार है। (स० २।१८)

(५) (क) जौ गुड़ खाइ सु कान विंधावै। (स० २।१८)
(ख) तीर लगी नवका कत बौरै। (स० २।१६)
(ग) लेखा लेत राई राई को।
(घ) वहां तो नहीं है कछु राज पोपां बाई को। } स० २।२६
(ङ) चूंच हुई सोई चूंनि हु दै है। (स० अं० ७।२)
इत्यादि में "लोकोक्ति" अलङ्कार है।

(६) "हंस स्वेत बक स्वेत देखिये समान दोऊ।
हंस मोती चुगै बक मछरी को खात है।…" (स० १३।६।)
इस छंद के पादों में पूर्वार्ध में "सम" अलंकार और उत्तरार्ध में 'विषम" अलङ्कार है।

(७) "गुरु के अनन्त गुन कापै कहे जात हैं।
भूमि हू की रेनु की तो संख्या कोऊ कहत है।
+ +" (स० १।२१)—इसमें अधिकालंकार है।

(८) 'काव्यलिंग" अलंकार के उदाहरण के छंदः—
(क) "ऐसी कौन भेट गुरुदेव आगे राखिये…" (स० १।२३)
इसमें चतुराई से अन्य भेट गुरु के अयोग्य कह कर सीस-चरणों में रख कर कार्य कर लिया। निज उक्ति का समर्थन करके नमस्काररूपी भेट अर्पण की।
(ख) "गुरु की तो महिमा अधिक है गोविंद ते…।" (स० १।२२)
यहां स्वामी ने कितनी चतुराई और प्रमाणों से गुरु को ईश्वर से भी बड़ा सिद्ध करके चमत्कार दिखाया है।

(९) "कामिनी को देह मानौं कहिये सघन वन…"। (स० ९।१)

इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है और उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा भेद का है। क्योंकि 'मानों' शब्द से तो उत्प्रेक्षा—बलवती कल्पना—सघन वन की सांग की है और कामिनी की देह—उत्प्रेक्षा का विषय—प्रथम प्रगट कह दिया गया है।

(१०) "भूमि परे अप, अप हू कै परै पावक है,
पावक कै परै पुनि वायु हू वहतु है।

\+ + +

महत्तत्व परे मूल माया, माया परे ब्रह्म,
ताहिते परात पर सुन्दर कहतु है। १६। (स० सांख्य का अङ्ग, २४)

यहां "एकावली" अलंकार है। अथवा उत्कर्ष भेदवाला "सार" अलङ्कार है। शृङ्खला में एक से आगे दूसरा परै वा उत्तम है।

सुन्दरदासजी के ग्रन्थों में शब्दालङ्कार बहुत हैं। परन्तु अधिक का दिया जाना आवश्यक नहीं। कुछ शब्दालंकार देते हैं।

(२) शब्दालङ्कार

(१) वृत्यानुप्रास—यथा, (क) घरी घरी घटत, छीजत जात छिन छिन।
यहां घ और छ की वृत्ति है। स० २।१३।

(ख) दंत भया मुख के उखरे नखरे न गये सु खरे खर कामी।
इसमें ख और खर की वृत्ति है। स० २।१५।

(ग) कम्पति देह सनेह सुदम्पति सम्पति जम्पति है निशजामी।
स० २।१५। इसमें अम्पति अक्षरों की वृत्ति है।

इत्यादि में बहुत स्थलों में माधुर्यगुण उपजानेवाली उपनागरिका और कोमलावृत्ति आई हैं। सो पाठक देख कर विचारैं।

(२) चित्रकाव्यों—छत्रबन्ध, कमलबन्ध, नागबन्ध, सर्पबन्ध आदिकों में चित्रकाव्य हैं।

(३) निर्मात—जैसे "जप तप करत धरत व्रत जत सत···स०। १२।२

(४) सर्वगुरु—(वा दीर्घाक्षरी) झूठे हाथी झूठे घोरा झूठे आगे झूठा दौरा⋯स० । ३ ।२५ ।

(५) "हटकि हटकि मन⋯सटकि सटकि चहुं लटकि लटकि ललचाइ⋯" स० ११।१ में "वीप्सालङ्कार है"। पुनरुक्ति कर ताकीद इत्यादि है।

(६) यमक—यथाः—(क) धार वह्यौ, खगधार हयौ, जलधार सह्यौ, गिरिधार गिर्‍यौ है।

⋯ ⋯(सारा ही छन्द । स० १२।१२)

(ख) डासन छांडि के कांसन ऊपर आसन मार्‍यौ पै आस न मारी। (स० १२।१०)

(७) फुटकर काव्य (विभाग ६—पृ० ६४१—६६६ तक) में अनेक शव्दालङ्कार हैं। परन्तु सब ही शांतरस वा उच्च भावों को लिये हुये हैं।—यथाः—

(क) चौवोला (पृ० ६४१—६४६ तक) में श्लेपालङ्कार है। चार-चार शव्दों में दो-दो अर्थ हैं।

(ख) गूढार्थ (पृ० ६४७– ६५२ तक) में भी श्लेपालङ्कार है। यहां दो-दो शव्दों में दो-दो अर्थ हैं।

(ग) आद्याक्षरी (पृ० ६५३—६५४ तक) में छन्द के पदों के पहिल अक्षरों को लेने से तो "स्वामी दादू सत्यकरि⋯" एक पृथक् छन्द दोहा निकलता है, और इसे न निकालें तो सारे आद्याक्षरी के छन्दों का भी अध्यात्म में वा दादूजी की प्रशंसा में अर्थ स्पष्ट है।

(घ) आदि-अन्त-अक्षरी (पृ० ६५५—६५८ तक) में छन्दों के पादों के आदि के को आदि के तथा, वा, अन्त के को अन्त के अक्षरों के साथ ही लेने से—जो शव्द (एक, दोय, तीन आदि) निकलते हैं उनका सम्वन्धार्थ उस ही छन्द में है जिसके वे आद्य, अन्त्य अक्षर हैं। वड़ी चतुराई की गई है।

(ङ) मध्याक्षरी (पृ० ६५९—६६२ तक) में तीन हैं। तीनों में से

प्रश्ना के उत्तर के शब्दों के मध्य के अक्षरों में से उत्तर निकलता है। वहिर्लापिका का भेद है। टिप्पण देखें।

(च) चित्रकाव्य—चित्रकाव्यों की व्याख्या और उनके पढ़ने की विधि उनके साथ वा टिप्पणी में दे दी गई है। सव चित्रकाव्यों में अध्यात्म का अर्थ भरा हुआ है। इस कारण ये सव वहुत सरस और प्रयोजनीय हैं। थोथे नायिकाभेद और अशिष्ट श्रृङ्गारी रचनाओं की अपेक्षा ये सव अत्यन्त शुद्ध और आत्महित करनेवाले हैं। (पृ० ६६३—६७२ तक)

(छ) अन्तर्लापिका–(पृ० ६६२–६६३ तक) तीन हैं। उनमें से अन्दर ही अर्थ निकलता है और अन्दर ही दिया हुआ है। टिप्पणी से ज्ञात होगा।

(ज) वहिर्लापिका—(पृ० ६६४ पर) जो दी है यह भी अन्तर्लापिका ही वास्तव में है क्योंकि उत्तर छंद ही में से निकलता है। नर+मोर+नार+थर+सर+वर+सुर+खर+कर—ये ६ शब्द 'नमोनाथ सव सुखकर' में से अन्त के र कार के साथ (न से क तक) के अक्षरों को जोड़ देने से निकलते हैं। टिप्पण में स्पप्ट कर दिया गया है।

(झ) निगड़ वंध—(पृ० ६६५-६६७ तक) दो हैं। दोनों के अर्थ टीका में खोल दिये गये हैं। ये दोनों एक प्रकार के अन्तर्लापिका के रूप ही हैं। सुन्दरदासजी के चित्रालंकारों में ये दोनों अति प्रसिद्ध हैं और पांडित्यपूर्ण हैं।

(ञ) सिंहावलोकिनी और प्रतिलोम अनुलोम—(पृ० ६६८-६६६ पर) जो हैं, इनकी टीका छपने से रह गई, सो अंत में परिशिष्ट रूप में दी गई है। वहां देखें।

(१) सिंहावलोकिनी में "सदामारसी काम" है इन अक्षरों से, दो २ से, शव्द वनते हैं। इससे यह भी अन्तर्लापिका ही है। और इसमें प्रत्येक शव्दों को उलटा करने से जो शव्द (सिंहावलोकन से) वनते हैं वे भी सार्थक हैं। और (२) प्रतिलोम-अनुलोम में, "यह रस कथा दयाल की" इसमें, से अंत से दो २ अक्षरों के शव्द वनते हैं (ये तो प्रतिलोम रीति से)

और फिर ("का प्रत्यक्ष कहावै"--इत्यादि प्रश्नों के उत्तर में) इधर से (प्रारम्भ से) (अनुलोमरीत्या) जो शब्द, दो २ अक्षर के बनते हैं सो स्पष्ट ही हैं। (नोट—"दयालु" शुद्ध पाठ में से लु अक्षर और आगे की अक्षर मिलकर लुकी होता है उसका अर्थ लुक–झाल (अग्निशिखा – दाह है।)

(ट) निमात छंद सं० ४७ और दीर्घाक्षर छंद सं० ५२ का उल्लेख हो ही चुका।

(ठ) संस्कृत मय श्लोक चाहे संस्कृत भाषा के समझें चाहें "भाषा-समक" अलंकार के भेद में समझें (पृ० १००२—१००४ तक में)।

इस प्रकार कुछ अर्थालङ्कारों और फिर शब्दालंकारों का निदर्शन सूक्ष्मतया कर दिया गया। विस्तारभय से यह थोड़ासा बानगी के रूप में, इच्छुक पाठकों की प्रीति के लिए, लिख दिया गया है। शांतरस और अध्यात्म के महोच्च विषयों में (जहां त्याग वैराग्य का राज्य है) अलंकारों के ग्रहण (संग्रह और सांसारिकता) करने का क्या अधिकार है। परन्तु, भाषा (सरस्वती) के सर्वाङ्गता-निरूपणार्थ हमें ऐसा करना पड़ा है।

इस प्रकार "सुन्दरग्रन्थावली" सम्बन्धी वक्तव्य इस भूमिका में संक्षेप से कहा गया। समयाभाव तथा स्थानाभाव से वे सब बातें जिनके लिए बहुतसी सामग्री तथा नोट संचय किये, यथावत नहीं लिखे जा सके।

इतने निवेदन के साथ भूमिका को समाप्त करते हैं कि सुविज्ञ पाठक इतने ही से संतोष करें। और न्यूनता और त्रुटियों को पूरी करें वा सुधारें। दोष को दूर कर गुणों का ग्रहण करना ही सज्जनों का स्वभाव होता है।

यह सम्पादन जैसा कुछ हुआ सामने है। अगाड़ी कोई योग्य और उत्कट विद्वान महात्मा के हाथों में दूसरा संस्करण होगा तो इस सम्पादन से बहुत कुछ काम चल सकेगा, तथा दोषादि की निवृत्ति भी।

इसके आगे स्वामी सुन्दरदासजी का "जीवन-चरित्र" आता है। उसमें भी जो कुछ कमी रही हो उसे पूर्ण करने की पाठक वा साधु-संत कृपा करें। और हो सकै तो इस लेखक को सूचना देने की भी कृपा करैं। जिससे ठीक कर लिया जाय। जीवन-चरित्र प्रायः भूमिका से पूर्व ही लिखा गया था। परन्तु सुविधा के लिए इस भूमिका के अनंतर रक्खा गया है।

जिन-जिन सन्त-महन्तों, साधु-सज्जनों और विद्वान् पुरुषों ने इस सम्पादन में सहायता दी है उनके शुभ नाम कृतज्ञतापूर्वक "कृतज्ञता-प्रकाशन" परिशिष्ट में दिये हैं। और जिन-जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है उनकी नामावली "सहायक-ग्रन्थावली" परिशिष्ठ में धन्यवादपूर्वक लिखी गई है। इसही प्रकार अन्य विषय परिशिष्टों में दे दिये गये हैं। पाठक सुविधा से अवलोकन करने की कृपा करैं। किम्बहुना विज्ञेषु।

जयपुर,	विनीत निवेदक—
बसंतपंचमी, १९९३	पुरोहित हरिनारायण शर्म्मा



परिशिष्ट (क)

[लोकोक्ति—मुहाविरा-कहावत-सूक्ति-ज़र्बुल्मसल]

सुन्दरदासजी के ग्रन्थों में लोकोक्तियां, कहावतें, आदिक स्थान २ पर मोके २ पर ऐसी सुन्दर रीति से आई हैं कि जिनसे दृष्टांत का काम देकर विषय के स्पष्टी-करण में एक चमत्कार सा पैदा कर देती हैं। तुलसीदासजी, सूरदासजी, आदिक महाकवियों; कबीरजी आदिक महात्माओं के वचनों में भी ऐसी ही लोकोक्तियां और कहावतें आई हैं जिनसे भाषाके महत्व की वृद्धि ही नहीं अर्थ के अन्दर चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। भाषा पर पूर्ण अधिकार रखनेवाले सत्कवियों की रचनाओं में विना प्रयास ही ऐसी सूक्तियां आ जमती हैं, जो सरस और सुरम्यता के बढ़िया हेतु हो जाती हैं। ऐसी लोकोक्तियों के थोड़े उद्धरण हमने, स्वामीजी के "सवैया"; कुछेक लघुग्रन्थों; और "साखी" ग्रन्थ से निकाल कर, पाठकों के सुभीते और पृथक् मनोरंजन के लिए, इस परिशिष्ट में दे दिये हैं। इनका तारतम्य, सम्बन्ध और आस्वादन तत्तत् छंदों को पूर्ण पढ़ने और तत्तत् विषयों और प्रकरणों के पूर्वापर के विचार से प्राप्त हो सकैगा। इनको पृथक् पढ़ने और स्वतन्त्र मनन करने से एक दूसरा ही आनंद आता है। कई इन में सिद्धांतरूप से, सूत्ररूप से, शिक्षा रूप से, विधि वा निषेधरूप से प्रतीत हो जाते हैं। ये कई एक अलङ्काररूप भी दिखाई देते हैं। लोकोक्तियां कभी २ क्या प्रायः अलंकार होती भी हैं। "घोरे गये पै बगैं न गई जू"। "कूकर की पूंछ सूधी होत नहीं तबहू"। "जितनीक सौर पांव तितने पसारिये"। "सूते की भैंस पडा ही जनैंगी"। "भूमि पर पर्‌यो कोऊ चंद कूं गहतु है"। "डागुली की दौर"। "सूरज

आगे जैसे जैंगणां दिखाइये"। इत्यादि कसे रोचक, भाव भरे, शिक्षामय आख्यायिका-गर्भित, अलंकार-द्योतक और प्रयोजनीय वाक्य हैं। इनसे भाषा का सौंदर्य, अर्थ का स्पष्टीकरण, आशय वा तत्व का निर्देश, तथा अनेक उपयोगी बातें सिद्ध होती हैं। यह भाषा के आचार्यों की रचना ही में अधिक मिल-सकते हैं। क्योंकि उनही को शास्त्र और लोक, वाह्य और अभ्यंतर के अनुभव सफलता से प्राप्त होते हैं। और वे ही लोकोपकार के लिए लिख देते हैं।

(१) सवैया (सुंदर विलास) से

सं०	छंद	लोकोक्ति
		अङ्ग (१)
१	८	सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु
२	१०	लोह कौ घाट लुहारहि जानै
३	१५	कौड़ा विन हाट नांहिं
४	१६	विनही पढ़ेतैं कैसे आवत है फारसी
५	,,	गुरु विन ज्ञान जैसे अँधेरे में आरसी
६	१९	फेरि घाट घड़ि करि
७	२०	सीस धुन्यो है
८	,,	देख्यौ है न सुन्यौ है
		(२)
९	६	काज को विगारि के अकाज क्यों करतु है
१०	७	तेरै तो कुपेच पर्यो गाठि अति वुरि गई ब्रह्मा आइ छोरै क्यौंहि छूटत न जवहू।
११		तेल सौं भिजोइ करि चीथरा लपेट राखे कूकर की पूँछ सूधी होत नहीं तवहू॥
१२		सासू देत सीख वहु कीरी कौं गिनत जाइ
१३		कहत कहत दिन बीत गयो सवहू।

सं०	छंद	लोकोक्ति
१४	८	वालू माँहीं तेल नहिं निकसत काहू विध
१५		पाथर न भीजै वहु वरषत घन है।
१६		पानी के मथेते कहूँ घिव नहिं पाइयत
१७		कूकस के कूटे नहिं निकसत कन है
१८		सून्य कूं मूठी भरें तें हाथ त परत्त कछू
१९		ऊसर के वाहें कहा उपजत अन्न है
२०	९	खोसि खोसि खाहिंगे
२१	१०	मूसा इत उत फिरै ताकि रही मिनकी
२२	,,	चंचल चपल माया भई किन किनकी
२३	११	ठगनि की नगरी में जीव आय पर्‍यो है
२४	१३	वार वार चढ़त न त्रिया कौ सौ तेल है
२५	,,	जूवा कौ सौ खेल है
२६	१४	देखत ही देखत वुढ़ापौ दौरि आयौ है
२७	१५	नभजो भगवंत सु लौन हरामी
२८	१६	दुःख परे जव आहि दईजू
२९	,,	घोरे गये पै वगैं न गई जू
३०	१९	जो गुर पाइ सो कौंन विंधावै
३१	”	तीर लगी नवका कित वौरै
३२	२१	एक कमी शिर शृंग नहीं है
३३	२२	सोई उपाय करै जु मरै पचि
३४	”	मुख तैं कछु और की और ई वोलै
३५	२३	ऐसिहि भांति गये पन तीनों
३६	२५	तू दमरी-दमरी करि जोरै
३७	”	तू खरचै नहिं आपुन खाई
३८	”	तेरि हि चातुरी तोहि लै वौरै

सं०	छंद	लोकोक्ति
३९	२६	सुन्दर कहत लेखा लेत राई राई को
४०	"	उहां तो न ह्वै है कछु राज पोपां वाई को
४१	२७	गुनहगार है खुदाइ का
४२	२९	जनम सिरानौ जाई
४३	३०	झूठ-मूठ
४४	"	वारि वारि डारिये
४५	३१	लोह कौ सौ ताव जात
४६	३२	मुख धूरि परै
४७	३३	रन लोह बजै
		(३)
४८	१	काठ की पूतरि ज्यौं कपि मोहैं
४९	२	तेल जर्‌यौ रु बुझी जब बार्ती
५०	३	कहै नर मेरी हि मेरी
५१	७	तेरो विचार धर्‌यो हि रहैगो
५२	"	भाग्य लिख्यौ तितनौ हि लहैगो
५३	१०	घामस धूमस लाग रह्यो शठ
५४	"	तो सिर ऊपर काल दहारै
५५	११	मूंड हि मूंड भरा भरि बाजै
५६	१४	आवत···चपाकि दे
५७	"	लीलत लपाकि दै
५८	"	ग्रसत गपाकि दै
५९	"	लेइगो टपाकि दै
६०	१५	ऐसी नहि जानै मैं तौ कालही कौ चारो हौं
६१	१८	खेलत अरु खात है
६२	१८	तेल घटि गये जैसे दीपक बुझात है

श्री रामराम॥ संवत १६८८ सो
लहसै अठ्यासिये कातिगमासवि
चार अशित पष्ठ मीतिथि द्रुतीवा
रव हत बुधवार याडु को लप
संतजन ता की पटनरकौन आज
दासजग जीति कैं की पोष्ट मषदगौ
न: दीली पति न कोरीर सुत रामाप
द्रिकलान: दौलति कांद्रिपत ते हप्रिता
नदनताहरखाना॥ लंबदा कस नविवि
सरस्स वल लंबली लंहरामसान
लडबिधि रचा जलोंकहि न्यामल संत॥

स्वामी सुन्दरदासजी के स्थान पर शिलालेख

सं०	छंद	लोकोक्ति
६३	२२	रीतें ही हाथनि जैसो आयो तैसो जाइ है
६४	२३	लागत पुरानो है
६५	"	वावरे ज्यौ देत वायु लागत वौरानो है
		(४)
६६	२	तोरत तान वजावत तोली
६७	११	टेढ़ी पाग वाँधि वार वारहि मरोरै मूंछ
		(५)
६८	१	तृष्णा दिन हि दिन हौत नई है
६९	५	मारि कै थाप मिलाइ है माटी
७०	७	वोर न छोर कछू नहिं आवत
७१	८	काढ़त आँखि डरावत प्रानी
७२	"	दांत दिखावत जीभ हलावत
७३	१०	वादि वृथा भटकै निशिवासर
७४	११	क्यौं जग मांहि फिरै झख मारत
७५	"	स्वारथ कौन परी
७६	"	ज्यौं ररिहाइ गऊ नहिं मानत
७७	१२	हे तृष्णा कहि के तोहि थाक्यौ
७८	"	तैं कोऊ कान धरी नहिं एकहु
७९	"	वोलत वोलत पेटहू पाक्यौ
८०	"	हौं कोऊ वात वनाइ कहूं जव
८१	"	तैं सव पीसत ही सव फाक्यौ
८२	१२	तैं अव आगे ही को रथ हांक्यौ
८३	१३	दुखाइ कहौं अव
८४		(६)
८५	५	पेटहि पसारै

सं०	छंद	लोकोक्ति
८६	५	एक पेट काज एक एक कौ आधीन है
८७	६	पेट सौ और नहीं कोउ पापी
८८	१०	ज्यौं घर ही घर नाचत कीसै
८९	११	पेट न हुतौ तौ प्रभु वैठि हम रहते
९०	१२	पेटहि कै वसि प्रभु सकल जिहान है

(७)

९१	१	पेट दियौ सोइ पेट भरैगो
९२	"	चंच दई सोइ चिंत करैगो
९३	२	चंच दई सोइ चूनि हू दैहै
९४	७	सुन्दर वैठि रहै किन ओखै
९५	६	जितनीक सौरि पांव तितने पसारिये
९६	११	चूंच कै समान चूंनि सवकौ देत है
९७	"	तेरे सिर रेत है
९८	१४	पचि कै मरतु है

(८)

९९	२	भीतर भंगार भरि ऊपर तैं कली है
१००	४	काहे को तू नर चालत टेढ़ौ
१०१	५	तूं अव चालत देखत छांही

(९)

१०२	१	राक्षस वदन खांउ खांउ ही करतु है

(१०)

१०३	१	पांव के तरोस की…सिर ऊपर वरतु है
१०४	२	लोटत पोटत व्याघ्रहि……………ताकत है पुनि ताहि की पीठी

सं०	छंद	लोकोक्ति
		(११)
१०५	१	हटकि हटकि राखत है
१०६	"	सटकि सटकि जात है
१०७	१	लटकि लटकि ललचाइ
१०८	"	गटकि गटकि खातु है
१०९	"	झटकि झटकि तोरत है
११०	"	पटकि पटकि सिर
१११	"	फटकि फटकि जाइ
११२	२	तासौं पर्यो पानौ है
११३	"	मनकी प्रतीत कोउ करै सो दिवानौ है
११४	३	होती अनहोती करतु है
११५	"	मन को सुभाव कछु कह्यो न परतु है
११६	५	काहू को कह्यौ न करै आपुनी ही टेक परै
११७	"	नेकहु न लाज है
११८	६	करत बुराई सर औसर न जात कछु
११९	"	दिन चालत भमत मैं
१२०	८	मन के नचाये सब जगत नचत है
१२१	१०	वायु लगी तब तैं भयो बैंडा
१२२	"	बारह बाट अठारह पैंडा
१२३	१३	भूख मरै नहिं धापत क्यौं ही
१२४	१४	अमृत छाडि चचोरत हाडे
१२५	१८	बाजीगर कौ सौ ख्याल
१२६	२४	ठौर ही कौ ठौर है
१२७	२६	हाथ न परत्त कुछु
		(१२)
१२८	३	पचि पचि यौं ही मरै

सं०	छंद	लोकोक्ति
१२९	४	सुन्दर कहत मूंधी वोर दिश देखै मुख
१३०	”	हाथ मांहि आरसी न फेरै मूढ करते
१३१	५	मनमें सिहात है
१३२	”	आवन की हौंस कैसे अक्डोडे जात है
१३३	”	जैगने की जोति कहा रजनी विलात है
१३४	६	वृथा भुस कूट्यौ है
१३५	७	देखो भाई आंधरनि ज्यौं बजार लूट्यौ है
१३६	८	मूरख लोगनि या सिधि पाई
१३७	९	घूंटत घूमहिं देह झुलाव
१३८	”	हाथ कछू न परै कबहूं कन मूरख कूकस कूदि उड़ावै
१३९	”	घर बूडत है अरु झाझण गावै
१४०	१०	डासन मारि कै कासन ऊपर
१४१	”	आसन मार्‍यौ पै आस न मारी
१४२	११	लाठिनि मारिये ठेलि निकारिये
१४३	१२	सुन्दर कारिज कौन सर्‍यौ है
१४४	१५	सुन्दर वित्त गड्यौ घर मांहिं सु बाहिर ढूंढत क्यौं करि पावै।
१४५	१६	आगे कछु नहिं हाथ पर्‍यौ
१४६	”	सब छाडि भये नर भांड के दौना
१४७	१७	ज्यौं बनिया गये बीस के तीस को
१४८	”	बीस हु में दशहू नहिं होये।
१४९		ज्यौं कोउ चौबे छबे कौं चल्यौ, पुनि होई दुबे दुइ गांठि के खोये
१५०	१८	सूत की भैंस पड़ाइ जनैगी
१५१	१९	मौन गही मन तौ न गह्यो है
१५२	२१	आपने आपने थान मुकाम

सं०	छंद	लोकोक्ति
		(१३)
१५३	१	जैसे ठग गोवर को कूपौ भरि राखत है
		सेर पाँच घृत लैकैं उपर को कस्यौ है।
१५४	२	थिरता न लहै जैसे कंदुक चौगान मांहि
१५५	"	भूमि पर पर्यौ कोऊ चंद कौं गहतु है
१५६	३	मारग के जल में न प्रतिव्यंव लहिये
१५७	"	गांठ मैं पैका कोऊ भयौ रहै साहूकार
१५८	"	वातनि ही मुहर रुपैया गनि गहिये
१५९	"	राजा भोज सम कहा गांगो तेली कहिये
		(१४)
१६०	१	सूरज के आगे जैसे जैंगणा दिखाइये
१६१	६	यों ही आंक वांक वकि तोरिये न पौन को
१६२	७	···ढीम सौं न दीजे डार
१६३	"	··छाती नहिं छोलिये
१६४	"	·· कहिये सरस वात
		(१५)
१६५	२	सुन्दर तौ लग अन्धे की जेवरी
१६६	८	क्यों परि है तिनकी कहि पामी
		(१६)
१६७	१	एक रत्ती विन एक रती कौ
१६८	२	वूडि मरै किनि कूप मँझार
१६९	३	सुन्दर छार परौ तिनि कै मुख
१७०	४	सुन्दर है तिनकौ मुख कारौ
१७१	६	डागुल की दौर

सं०	छंद	लोकोक्ति
		(१७)
१७२	१	यारी तोरि गये
१७३	,,	कल न परत
१७४	,,	किन विरमाये हैं
१७५	,,	अब कौन के कहाये हैं
१७६	२	सुन्दर कहत ताहि काटिये जु कौन भांति
१७७	,,	जु तौ रूंख आपने ई हाथ सौं लगाइये
१७८	३	सुन्दर कहत जाकै पीर सो करै पुकार
१७९	,,	जाकै दुख दूरि गयौ ताके भई वोत है
१८०	४	अनूप पाटी पढ़े हैं
१८२	,,	वज्र ही के गढ़े हैं
		(१८)
१८३	१	देन परदक्षणा न दक्षणा दे आपको
१८४	६	ढोवत ढोवत बोझहि ढोयौ
		(१९)
१८५	१	पतंग जैसे परत पावक मांहिं
१८६	,,	सोई सूरवीर रुपि रहै जाइ रन मैं
१८७	२	सीस कौ उतारि कै सुजस जाइ लीनौ है
१८८	३	घर मांहिं सूरमा कहावत सकल है
१८९	४	टूक टूक होइ
१९०	,,	सूरमा के देखियत सीस विन धर है
१९१	५	ताकि ताकि करै घाव
१९२	,,	लोट पोट होइ जाइ
१९३	,,	मीर जाइ मारि है
१९४	६	वाल वाल सब डाढ़े होहिं

सं०	छं०	लोकोक्ति
१६५	६	खेल नहिं छाडै···
१६६	७	ऐसौ सूरवीर कोऊ कोटिन में एक है
१६७	६	और रह्यौ पह्यो
१६८	१२	···यौंहि खपि गये
		(२०)
१६६	१	सुन्दर जैसे प्रवाह नदी कौ
२००	"	साधु कौ संग सदा अति नीकौ
२०१	२	ज्यौं जल और मलीन महा अति
	"	गंग मिले होइ जात है गंगा
२०२	"	है जग मांहि वड़ो सतसंगा
२०३	६	सुन्दर सूर प्रकाश भयो है
२०४	७	ज्यौं कपि मूठि गहै शठ गाढे
२०५	"	हाट हि हाट विकावत आढे
२०६	१०	जानत ताहि बयारहि वाजै
२०७	१४	·· जन्म जीति गयौ है
२०८		अंतकी सी यारी है
२०६	१६	···राम जी को प्यारौ है
२१०	२१	संतन की महिमा तो श्री मुख सुनाई है
२११	२५	कूप मैं को मैंडुका···
२१२	"	···कितीयक जर है
२१३	२६	देव कौ देवातन गयौ तौ कहा भयौ वीर
२१४	"	पीतर कौ मोल सुतौ नांहि कछु गयौ है
२१५	२८	परि है वज्रागि···
२१६	२६	सोई वड़भागी है
		(२१)
२१७	३	सुन्दर रामहि म्हां महि थांमै

सं०	छंद	लोकोक्ति
		(२२)
२१८	४	राई माँहि समानौं मेर
		(२३)
२१९	५	भूत होइ लागें
		(२४)
२२०	५	ज्यौं कोउ खांइ रहै ठग मूरि हि
२२१	६	सुन्दर पेचं पर्यौ अतिसैं करि
२२२	९	भूतनि मैं भूतं मिलि भूत सौ ह्वै रह्यौ है
२२३	११	जैसे कोऊ वायु करि बावरो वकत डोलै
२२४	१४	जैसे काहू भूत लग्यौ वकत है आक वाक
२२५	१६	एक आवै रोज अरु दूजें वड़ी हांसी है
२२६	१९	है कर कंकण दर्पण देखै
		(२५)
२२७	३९	निज रूप भूलि कै करत हाइ हाइ है
		(२६)
२२८	६	सुन्दर आपुकौ न्यारौ हि जानैं
		(२८)
२२९	९	दीवा करि देखिये सु ऐसी नहिं लाई है
२३०	१७	आंधरनि हाथी देखि झगरा मचायौ है
२३१	१९	सुन्दर समुझि कर चुप चाप ह्वै रहै
२३२	२०	सुन्दर समुद्र माँहिं सर्व जल आयौ है
२३३	२७	सुन्दर कहत यह प्रत्यक्ष प्रमाण है
		(२९)
२३४	३१	जहाँ जहाँ जाइ तहाँ तहाँ अन्ध कूप है

सं०	छंद	लोकोक्ति
२३५ }	२३	सुन्दर कहत जैसे दंत गजराज मुख
२३६ }	,,	पाइवे कै औरई दिपाइवे कै और है
२३७	२५	सुन्दर कहत मिटि जाइ सब दौर धूप
२३८	३३	सुन्दर कहै सुनौ दृष्टान्तहि नागो
२३९	,,	न्हाइ सु कहा निचोवै
		(३१)
२४० }	१	सुन्दर कोउ न जानि सकै यह
	,,	गोकुल गांव कौ पैंडौ हि न्यारौ
२४१	५	शान गुमान न जीतन हारौ
		(३४)
२४२	१	हाथ न परत कछु ताते हाथ झारयतु है
	[२]	('सर्वाङ्ग योग प्रदीपिका" से)
		(१ उपदेश)
२४३	३५	केंचित दीसै रंगा चंगा
		[२] ("पंचेद्रिय चरित्र" से)
		(मीन चरित्र।)
२४४	५४	घर घालै वहुत निपूती
२४५		[३] ("हरि वोल चितावनि" से)
२४६	६	चहल पहल सी देखि कै
२४७	८	हाहा हूहू में मुवौ करि करि घोलमथोल
२४८	९	तीनि लोक भटकत फिर्यौ हूवौ डांवांडोल
२४९	१४	वूड़े कालीधार में
२५०	१३	मूछ मरोरत डोलई ऐंठ्यौ फिरत ठठोल
२५१	२२	खुरन खोज कहुँ पाइये
२५२	२८	राई घटै न तिल वढ़ै

सं०	छंद	लोकोक्ति
२५३	२६	तासौं पचि पचि कौ मरै (सवैया)
२५४	३०	चेति सकै तौ चेतियौ
		[५] ("तर्क चितावनी" से)
२५५	१	जिनि यहु नख शिख साज वनाया
२५६	७	करि संयोग वड़ी झख मारी
२५७	३५	मारी अपने पांव कुल्हाड़ी
		[६] ("विवेक चितावनी" से)
२५८	२६	जैसा करै सु तैसा पावै
		[७] ('अडिल्ल" ग्रन्थ से)
२५९	६	सुन्दर विरहिनि तोला मासा
		[८] ("मडिल्ल" ग्रन्थ से)
२६०	३	हरद हींग लै भयौ पसारी
		[९] ("साखी" से)
		-(गुरुदेव का अङ्ग)-
२६१	७७	सुन्दर सबको कहत हैं कोडा विना न हाट
		-(विरह का अङ्ग ३)-
२६२	२१	हाकी वाकी रह गई-चित्र लिखी रहि जाई
		-(उपदेश चितावनी का अङ्ग ६)
२६३	१७	और कियौ सनमंध अव भई कोढ में खाजि
		-(दुष्ट का अङ्ग)-
२६४	३	जैसे कीरी महल में छिद्र ताकती जाइ
२६५	८	नीचैं आगि लगाइ करि ऊपर छिरकै नीर
२६६	१४	पर कौ काम विगारि दे अपनौ होउ न होइ
२६७	२५	जो कोउ मारै वान भरि सुन्दर कछु दुख नांहि

सं०	छं०	लोकोक्ति
२६८	२५	दुर्जन मारै वचन सौं सालतु है उर मांहि
		-(मन को अङ्ग १५)-
२६९	८	साख सगाई ना गीनै लखै न ठौर कुठौर
२७०	२४	ज्यौं पतंग वसि नैन कै जोति देखि जरि जाइ
२७१	३५	सुन्दर घोरे चढन की घोरा वैठौ कंध
२७२	४४	सुन्दर सव कछु मानि ले ताही ते मन नाउं
		-(चाणक को अङ्ग १६)
२७३	१	जोई करै उपाइ कछु सुन्दर सोई फन्द
		-(वचन विवेक को अंग १७)
२७४	२	विन वोलै गुरुवा कहैं वोलैं हरवा होइ
२७५	५	आक वाक वकि और की वृथा न छाती छोल
२७६	२०	सूरज के आगै कहा करै जींगणा जोति
		(१८)
२७७	२४	सुन्दर कोऊ सूरमा साधु वरावर नांहि
		(१९)
२७८	२	जोई वैठे नाव में सो पारंगत होइ
२७९	४	लोहा पारस कौं छुवै कनक होत है रौंन
२८०	५	परै क्षुद्र जल गंग मैं व्है होत पुनि गंग
२८१	११	पात्र विना नहिं ठाहरै निकसि निकसि करि जाइ
२८२	१७	सव अज्ञान मिटाइ करि करत जीव में सीव
२८३	४३	सुन्दर संतनि के चरण गंगा वंछै आप
२८४	४८	संतनि मांहें हरि वसै सन्त वसै हरि मांहिं
२८५	५३	है सत संगति सार
		(२१)
२८६	६	सुन्दर समरथ राम कौं करत न लागै वार

सं०	छंद	लोकोक्ति
२८७	६	पर्वत सौं राई करै राई करै पहार
२८८	४७	लिपै छिपै कछु नांहिं
२८९	६०	लौंन पूतरी उदधि मैं थाह लेन कौं जाइ
२९०	,,	सुन्दर थाह न पाइये बिचही गई बिलाइ
		(२२)
२९१	२४	सुन्दर तैसोई भयौ जाकै जैसौ भाव
२९२	२६	पूछत डोलै और कौं सुन्दर आपुहि मांहि
२९३	३०	ज्यों लकरी के अश्व चढ़ि कूदत डोलै बाल



परिशिष्ट (ख)

सिद्धांत-सूची

महात्मा सुन्दरदासजी के सिद्धान्त वैसे तो पूर्णरूप में उनके ग्रन्थों को ढ़ने से ही जाने जा सकते हैं, परन्तु सूची के ढङ्ग पर, पाठकों की सुविधा नेमित, इस परिशिष्ठ में, संक्षेप में दिये जाते हैं। यथा:—

(१) भक्तिमय ज्ञान—भक्ति सहित ज्ञान विवेक, वा भक्ति लिये हुए ा उससे मिला हुआ ज्ञान यही तो कवीर, दादू आदि का सिद्धांत था, और यही सुन्दरदासजी का रहा। भगवद्गीता में जो भक्तिमय ज्ञान अ० २।६६ आदि में दिया है, जो भागवत में स्थल-स्थल पर, रामायण मानसादि ां वहुत सुन्दरता से वर्णन किया है, उसे ही निराकार और निरंजन पासक होकर भक्ति को ज्ञान के साथ स्वामीजी ने वड़े ही उत्तम ढङ्ग से ांधा है। रहस्यवाद, आध्यात्मिक गुह्य विचार में विना भक्ति ज्ञान की ाति नहीं है। 'मिस्टीसीज़म' जिस ज्ञानशैली का नाम दिया हुआ है उस े समान यह भक्ति-मिश्रित ज्ञानमार्ग है। इसका रंग प्रायः कई ग्रन्थों में लका हुआ है। उनमें से कुछ को संकेतित करते हैं:—

(क) ज्ञा० स० २।२—"सुनहुं शिष्य ये तीनि उपाई। भक्तियोग ठयोग कराई। पुनि सांख्य सुयोग हि मन लावै। तव तूं शुद्ध स्वरूपहि ावै॥ २ ॥ इत्यादि।

(ख) सर्वाङ्गयोग प्र० (पृ० ८७ पर) "भक्तियोग हठयोग पुनि ांख्य सु योग विचारि"॥ २॥ इस ग्रन्थ में भक्तियोग के पीछे ज्ञानयोग, ्ञयोग और अद्वैतयोग कहा है। तथा पृ० २११ पर—"सद्गुरु महिमा ीसानी" ग्रन्थ में—"ज्ञान भगति वैराग हू ये तीन दृढाया"॥ ३॥

(ग) भक्तिज्ञान मिश्रित का अंग २० (स० पृ० ५०२—५०३) में 'वासुदेवमयं जगत्"—भक्ति और ज्ञान के मेल और वल से हो जाना

वर्णित है। इस ही प्रकार "पतिव्रता के अंग" १६ (पृ० ४७५—४७७) में अनन्यता के साथ ज्ञान का समावेश है। और "साखी" ग्रन्थ के इन ही अङ्गों में ऐसा ही वर्णन भक्तिमय ज्ञान का है। देखैं पृ० ६९०—६९५।

(घ) स० अं० २९ पृ० ६३९—"एक ज्ञानी कर्मनि मैं... ...

कर्म-भक्ति-ज्ञान तीनौं वेद में वपानि कहे,

सुन्दरु वतायो गुरु ताहि में लरक है" ॥ २७ ॥

(ङ) इस ही प्रकार अन्य स्थलों में, अन्य ग्रन्थों में, पठन के समय प्रमाण मिलगे।

(२) अद्वैतज्ञान—कर्म-भक्ति-ज्ञान से आत्मा निर्मल होते ही, अद्वैत का ज्ञान उत्पन्न होता है। यही सुन्दरदासजी के वेदांत का परम सिद्धांत है। यही आत्मानुभव और आत्मा—साक्षात्कार का हेतु है।

(क) निर्गुण उपासना के अङ्ग १५ (पृ० ४७२—७४ तक) में—"याही तें सुन्दर त्रीगुन त्यागि सु निर्मल एक निरंजन ध्यावै" ॥ १ ॥ फिर छंद ३—४—आदिक में। और—"सुन्दर एक सदा सिर ऊपर और कछू हमकौं नहिं चहिये" ॥ ७ ॥

(ख) स्वरूप विस्मरण के अंग २४—पृ० ५०९—८७ में—"भ्रम के गये तें यह आतमा अनूप है ॥ १३ ॥ 'सुन्दर कहत अहंकार ही ते जीव भयौ। अहंकार गये (तें) यह एक ब्रह्म आप है" ॥ १७ ॥

(ग) "खरी की डरी सूं अङ्क लिखिकें विचारियत।......

तैसें ही सुन्दर बुद्धि ब्रह्म कौं विचारि करि,

करत करत वह बुद्धि हू विलात है" ॥ १४ ॥ (पृ० ६०७)

"आतमा विचार कीयें आतमा ही दीसै एक,

सुन्दर कहत कोऊ दूसरो न आन है ॥ २८ ॥ (पृ० ६१३)

(घ) आत्मानुभव का अंग २८—(पृ० ६१५—६३० तक) सारा का सारा इस विषय का उत्तम और स्पष्ट प्रतिपादनकारी है।—"आतमा के अनुभव आतमा रहतु है" ॥ २५ ॥—"अनुभव जानें जव सकल संदेह मिटै,

सुन्दर कहत यह प्रत्यक्ष प्रमाण है" ॥ २७ ॥ "सुन्दर साक्षात्कार अनुभौ प्रकास है" ॥ ३१ ॥

(ङ) अद्वैतज्ञान का अंग ३२--(पृ० ६४५—६५२ तक) भी समग्र इस प्रकरण का ज्ञापक है। "सुन्दर या निहचै अभिअन्तर, द्वैत गये फिरि द्वैत न आवै" ॥ २२ ॥ सुन्दरदासजी जगत को ब्रह्ममय और ब्रह्म को जगतमय कहते हैं। अर्थात् ब्रह्म का कारण (निमित्त) और उपादान कारण और आधार तथा व्यापक मानते हैं। और वहुत स्थलों में इस विचार को सुन्दरता से कहा है।—छंद १३ से छंद १८ तक इसका उत्तम वर्णन है।—"तोहि मैं जगत यह तूं ही है जगत मांहिं'''१४। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किंचन" को खूब खोल कर कहा है।-"तैसैं ही सुन्दर यह जगत है ब्रह्ममय, ब्रह्म सौ जगतमय वेद यौं कहत है" ॥ १५ ॥ तथा १६-१७-१८ में यही विचार स्पष्ट कह कर वता दिया है। और उदाहरण वा दृष्टांत मनोहर हैं।

(च) परन्तु इतना कहने पर उस ही जगत् को मिथ्या कहा है जगन्मिथ्या का अंग पृ० ६५३ में। ब्रह्ममय होकर, ब्रह्म में अधिष्ठित होकर भी जगत् मिथ्या सिद्ध करना "विवर्त्तवाद" का वड़ाभारी चमत्कार है। और यही पक्ष वड़े-वड़े ज्ञानियों (रामानुजादि महामतियों) के समझ में नहीं आया हो ऐसा प्रतीत होता है। इस ही को पाश्चात्य दार्शनिक "कांट," "शोपेनहोर," "डाईसन" प्रभृतियों ने वड़े विस्तार से प्रतिपादन किया है। तव भी संसार को एक इच्छा वा भावना मात्र कहा है ("दी वर्ल्ड इज़ एन आइडिया एण्ड विल") इस वात को समझने को शुद्ध-बुद्धि ("प्यूअर रीज़न") की आवश्यकता, हमारे यहां के दार्शनिकों की तरह (पारमार्थिक बुद्धि), उन्होंने भी वताई है। उस अभौतिक अनुभव के विना "नेह नानाऽस्ति' का अपरोक्षज्ञान असम्भव है। रज्जु-सर्प, शुक्ति-रजत, कनक-कुण्डल, वीज-वृक्ष, जल-मरीचिका, आदि दृष्टांतों द्वारा, ज्ञान का अज्ञान से ढका होने के कारण, उपाधि वा अध्यासकृत भ्रम रहने

से, आवरण से, ब्रह्म (सत्य पदार्थ) पर जगत् (असत्य-मिथ्या पदार्थ) सत्य भासता है। प्रकाश होने, ज्ञान होने, और अन्धकार वा भ्रम वा अज्ञान मिटने पर, सत्य पदार्थ की प्रतीति होती है।—"तैसै एक ब्रह्म ई विराजमान सुन्दर है, ब्रह्म कौं न देखै कोऊ देखै सब सृष्टि कौं" ॥ २ ॥ अवांतर रीति से—"ब्रह्म ई जगत होइ ब्रह्म दुरि रह्यौ है" ॥ ४ ॥ "ताहि कौं पलटि कैं जगत नाम धर्‌यौ है" ॥ ५ ॥ और देखैं—"साखी" ग्रन्थ में "अद्वैत" का अंग (पृ० ८०१—६ तक) इसमें सब साखियां पढ़ कर अन्त की ५ साखियों में प्रमाणों पर विचार अवश्य करें विद्वत्ता भरी है।

(३)—सहजानंद ज्ञान-प्रक्रिया—बिना ही कष्ट और कार्याडम्बर और साधनों की अटपटाहट के, ब्रह्मज्ञान की सहज-सरल रीति सहजानंद प्रक्रिया है। "सहजानंद" ग्रन्थ (पृ०३०३—३०६ तक)में इसका ललित वर्णन है। यह दादूजी का मत, कबीर, नानक, रैदास, आदि ज्ञानियों के अनुसार, रहस्यवादियों की शैली का है। इस प्रक्रिया में किसी मतमतांतर कर्मकांडों, नियमों, सिद्धांतों आदि की आवश्यकता नहीं रहती।—"हिंदू तुरक उठ्यौ यह भर्मा। हम दोऊ का छाड्या धर्मा ॥२॥—नां मैं तीन ताग गल लाऊं। नां मैं सुन्नत कर बोराऊं। ३। माला जपौं न तसबी फेरौं। तीरथ जाऊं न मक्का हेरौं। न्हाइ धोइ नहिं करूं अचारा। ऊजू तं पुनि हूवा न्यारा"। ४। इत्यादि "सतगुरु कहि समुझाइयो निजमत वारंवार"। १८। "सहज निरंजन सब में सोई। सहज संत मिले सब कोई"। १६। "सहजै नाम निरंजन लीजै और उपाइ कछू नहिं कीजे। ७। सहजै ब्रह्म-अगनि पर जारी। सहज समाधि उनमनी तारी। ८। इस क्रिया में "सोऽहं-सोऽहं" का अजपाजाप भी कहा है जिसे अजपा गायत्री कहते हैं। (ख)—"सुख समाधि" ग्रन्थ (पृ० १५३) में भी कुछ इस ही सहजानंद की तरंग सी है। "कौंण हरि-नाम सार संग्रह करि, और क्रिया कौ काटै पास। ४। आतम तत्व विचार निरंतर, कीयौ सकल कर्म कौ नास। ५। कौंण करै जप तप तीरथ व्रत, कौंण करै यम नेम उपास"। ७। इत्यादि। (ग)—और भी—"योगी

जागै योग साधि, भोगी जागै भोगरत……सोवै सुख सुन्दर सहज की समाधि मैं"। २१। (विचार का अङ्ग। पृ० ६१०) (घ)—"स्वासो स्वास सोऽहं जाप याही माला फेरिये" ।२३। (पृ० ६११) (ङ)—"स्वासो स्वास राति दिन सोऽहं सोऽहं होइ जाप"…।२२ (स० पृ० ५६७)।(च)—"ब्राह्मण कहावै तो ब्रह्म कौ विचार करि, सत-रज तम तीनौ ताग तोरि डारिये"। २४। (उक्त)

(४)—जीवन्मुक्ति–मोक्ष के लिए स्वामी सु० दासजीने सर्वत्र यही लिखा है कि यह एक अवस्था विशेप आत्मा की है जब आत्मानुभव, आत्मासाक्षात्कार वा ब्रह्मानंद की प्राप्ति हो जाती है। तब ज्ञानी जीवित अवस्था में ही मुक्त हो जाता है। मरने पर ही मोक्ष मिलती हो, यह कोई नियम नहीं है। जीवदशा की निवृत्ति—जो अहंकार और तज्जनित रागादि, विपयादि, द्वन्द्वादि के हट जाने से होती है—आत्मानुभव की दशा है और वही मोक्ष है और यह कोई लोक वा स्थान विशेप को गमन नहीं है। इसको बड़े बल से प्रतिपादन किया है। यथाः—

(क)—"शुद्ध हृदय जाकौ भयौ, उहै कृतारथ जांन।
सोई जीवन मुक्त है, सुन्दर कहत वपांन ॥ २१ ॥
(उक्त अनूप—पृ० १७५)

(ख)—"जीवत ही पायौ मोक्ष एक ब्रह्म जान्यौ है ॥ १ । २७ । स०
(पृ० ३९४)

(ग)—"सुन्दर कहत ऐसैं जीवत ही मुक्त होय,
मुये तें मुक्ति कहै तिनिकौं परिहरिये" ॥ २० ॥ (पृ० ६१०।)

(घ)—"सुन्दर आतम कौ अनुभौ सोई जीवत मोक्ष सदा सुख चैना"
॥ १४ ॥ (पृ० ६१९)

(घ)—"जीवत ही देवलोक जीवत ही इन्द्रलोक,
जीवत ही जन तप सत्यलोक आयौ है।

जीवत ही विधिलोक जीवत ही शिवलोक,
जीवत वैकुण्ठलोक जो अकुण्ठ गायौ है ॥
जीवत ही मोक्ष शिला जीवत ही भिस्ति मांहि,
जीवत ही निकट परमपद पायौ है ।
आतम कौ अनुभव जिनिकौं जीवत भयौ,
सुन्दर कहत तिनि संसय मिटायौ है" ॥ २२ ॥
(पृ० ६२३)

(ङ)—"केवल ज्ञान भयौ जिनिकै, उर ते अध ऊरध लोक न जांहीं ।
+ + + + ×
त्यौं मुनि मुक्ति जहां वपु छांडत, सुन्दर मोक्षशिला कहुं कांहीं"
॥ ६ ॥ (पृ० ६३२)

(यह इस वात का प्रतिपादक है कि, जीवन्मुक्ति अवस्था विशेप है, कुछ उत्तम लोकान्तरगमन नहीं ।)

(च) "वर सो जीवनमुक्त है तुरिया साक्षीभूत ।
लिपै छिपै नहिं सव करै अनकरता अवधूत ॥३३॥ (साखी पृ० ७८६)

(वर, वरियान, वरिष्ट ज्ञानियों की अवस्था कही हैं, वहां यह अंग सारा "अवस्था" का (पृ० ७८२—७८८ तक) अवश्य पढ़ने योग्य है।)

(छ)—"जौ विचार यह ऊपजै तुरत मुक्त ह्वै जाइ ।
सुन्दर छूटै दुखन तैं पद आनन्द समाइ" ॥ ४४ ॥
(पृ० ७६२-साखी)

(ज)—"आतम अरु परमातमा कहन सुनन कौं दोइ ।
सुन्दर तव ही मुक्त है जवहि एकता होइ" ॥ ३६ ॥
(पृ० ८०५—साखी)

(झ)—"मुक्तिशिला मूयें कहैं ते तौ अति अज्ञांन ।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिए केवल ज्ञांन" ॥ २८ ॥
(पृ० ८०६—साखी)

"भावै तनु काशी तजौ भावै वागड मांहि ।
सुन्दर जीवन्मुक्त कै संसय कोऊ नांहि ॥ २६ ॥
(साखी—पृ० ८०६)

(ञ) पद—"सब कोऊ आप कहावत ज्ञानी ।······
... ...
अहंकार की ठौर उठावै आतम दृष्टि एक उर आनी ।
जीवनमुक्त जानि सोई सुन्दर, और बात की बात बखानी" ॥
(पृ० ८३६)

(ट) पद—"मुक्ति तौ धोखै की नीसानी,
सो कतहूँ नहिं ठौर ठिकाना जहाँ मुक्ति ठहरानी । टेक ।
... ...
निज स्वरूप कौं जानि अखण्डित, ज्यौं का त्यौं ही रहिये ।
सुन्दर कछू ग्रहै नहिं त्यागै, वहै मुक्तिपद कहिये ॥
पद ६ । (पृ० ८७५-८७६)

(ठ) पद—"जीवन पद सौं परचै नांहीं मूयें पद किन जांना" ।
पद ३ । (पृ० ८५६)

(ड) अंत समय की साखी—"जीवन-मुक्त सदेह तूं लिप्त न कबहू होइ ।
तौ कौं सोई जांनि है तव समान जे होइ ॥२॥
सुन्दर संसो को नहीं, बड़ो महोच्छव येह ।
आतम परमातम मिले, रहौ कि विनसौ देह ॥६॥
(पृ० १००७-८)

जीते हुए ही ज्ञानीजन मुक्तावस्था को पाते हैं, यह बात कुछ सुन्दर-दासजी ही ने नहीं लिखी है । यह तो वेदान्तशास्त्र ही में एक सिद्धान्त है । "जीवन्मुक्ति विवेक" विज्ञ पाठकों से छिपा नहीं है । भगवद्गीता में इस ही को अ० ५ । श्लो० २१—२८ में, इस ही सदेह मुक्ति को, स्पष्ट कहा है—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीर विमोक्षणात्। कामक्रोधोद्भवं वेगं स मुक्तः स सुखीनरः ॥ २३ ॥ योंऽतः सुखोंऽतराराम स्तथांऽतर्ज्योतिरेव यः। स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधि गच्छति ॥ २४ ॥ लभंते ब्रह्मनिर्वाण मृपयः क्षीणकल्मपाः।·······यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिमोक्षपरायणः। विगतेच्छा-भय-क्रोधो यः सदामुक्त एव सः" ॥ २८ ॥

अर्थात् इस प्रकार का योगी-मुनि-ऋपि, साधन सम्पन्न—इन्द्रियादि का विजय करनेवाला सदा ही—जीते जी ही—निर्वाणपद, मोक्षपद को पाया हुआ है।

यह तो वेदान्त का सिद्धांत शंकरमतानुसार ही है। परन्तु सत्कार्यवाद-वाले---रामानुजाचार्यादि—जीवन्मुक्ति को असार वाक्य कहते हैं। उनके मत में देह रहते मुक्ति का होना सम्भव नहीं है। क्योंकि वे जीव को ब्रह्म में लीन होना नहीं मानते हैं--जीवधारी मर कर भी जीव ही रहता है, कभी ब्रह्म नहीं हो सकता। फिर जीते जी - अर्थात् जीवसंज्ञा में, वा जीवावस्था में, ब्रह्म कैसे हो जायगा ? हाँ, ब्रह्मानन्द का तो भोग करैगा, परन्तु रहैगा ब्रह्म से भिन्न, उसका दास, सेवक, भक्त ही। परन्तु वेदान्त का मत इससे ऊँचा है।

(५) सेश्वर सांख्य—सुन्दरदासजी ने सांख्य का मत सारा संक्षेप में कह कर फिर ईश्वर को—ब्रह्म को—एक अधिक पदार्थ कहा है जो सबका प्रेरक, अधिप्टान, सत्ताकारी है, जिसके विना जड़ प्रकृति से, अकेली से, सृप्ट्यादि कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते हैं। यहाँ वेदान्त का मत आ गया है। इस प्रकार सांख्य को वेदान्त से जुटा दिया गया है। इस ही को ईश्वरवाला (सेश्वर) सांख्य कहा जाता है। यथाः —

(क) ज्ञा० स०—उ० ४ में---(पृ० ५७--६९) पुरुप प्रकृति के संयोग से सृप्टि होती है। प्रकृति से पुरुप भिन्न हो जाय तब ही मोक्ष है। सांख्यशास्त्र में अनन्त जीवों को ही पुरुप कहा है। पृथक् स्वतंत्र कूटस्थ ब्रह्म नहीं माना है। परन्तु वेदान्त ने सर्वेश्वर सर्व नियन्ता ब्रह्म माना है।

और सांख्य के इस ही पक्ष का शंकराचार्यादि ने निरास किया है कि प्रधान (प्रकृति) विना चेतन ब्रह्म की सत्ता और सकाश के (सांख्यमत में) सृष्टि करती है। अर्थात् वेदांत का सिद्धांत है कि जड़ प्रकृति---जो अनित्य और असमर्थ है—सृष्टि करने में ब्रह्म की सत्ता से ही समर्थ होती है। इस ही वात को सुन्दरदासजी ने सांख्य के वर्णन में मिलाया है। उनका सांख्य सिद्धांत वेदांत से ऐसा मिला-जुला-सा हो गया है कि जो वेदान्तियों को खटक नहीं सकता, अपितु प्रियकर होता है और मोक्ष के लिये सहायक है। यह गीता के मत से मेल खाता है।

(ख) 'सांख्ययोग प्रदीपिका"—(ग) "सवैया" में सांख्य का अंग—(घ) "साखी" ग्रन्थ में भी सांख्य का अंग इन ही वातों को भलीभांति चताते हैं। हम केवल संकेत मात्र देते हैं। अधिक लिखना पिष्टपेपण और ग्रन्थभार करना है। ग्रन्थों में ही पढ़ने से स्पष्ट होगा।

(६) गुरु महिमा—गुरु की महिमा, प्रार्थना, गुणगान, कृतज्ञता, भावना, गुरु ही ज्ञान का मुख्य हेतु है, "गुरु विन ज्ञान जैसे अंधेरे में आरसी," गुरु ही सर्वस्व है, गुरु ही भगवान् की प्राप्ति का कारण है, अपितु गुरु साक्षात् ईश्वर ही है, "गुरु तो अधिक है गोविंद तें", इत्यादि पवित्र और शुद्ध विचार स्वामीजी ने इस सुन्दरता, स्पष्टता, भक्ति और सद्भाव से वर्णित किये हैं, जिनके पढ़ने से हमारे आर्यों की शिक्षा-प्रणाली की उच्चता, नैसर्गिक स्वाभाविकता, मानुषीयता आदि भलीभांति प्रगट होती हैं। वहुत स्थलों में मन भर भर कर स्वामीजीने इस गुरु महिमा को कहा है। प्रत्येक ग्रन्थ के प्रारम्भ में, मंगलाचरण में तो, ईश्वर के नाम के साथ गुरु की वंदना है ही। उसके अतिरिक्त, विशेपता से वहुत प्रकार से भी कही है। यथाः—

(क) ज्ञा० स० । १ उ० । पृ० ८-१० तक—"गुरुदेव विना नहिं मारग सूझय······ । ······वुद्धिमंत सव संत कहैं गुरु सोइ रे। और ठौर शिप जाइ भ्रमै जिन कोइ रे। १६। इसके आगे "गुरु प्रार्थना अष्टक" वड़े चमत्कार का है (पृ० ११-१२)।

(ख) "सद्गुरु महिमा नीसानी"—(पृ० २११—) सारा का सारा ग्रन्थ गुरु दादूदयाल की महिमा का है। "रामनाम उपदेश दे भ्रम दूरि उड़ाया। ज्ञान, भगति, वैराग्य हूये तीन दृढ़ाया" । ३ ।……सद्गुरु की महिमा कही, मति अपनी उनमान। सुन्दर अमित अनंत गुन को करि सके वपान ॥ ३२ ॥

(ग) "गुरुदया षट् पदी"—(पृ० २२६—) नाम ही से विषय प्रगट है। वड़ी सुन्दर है। गुरु की महिमा मैं।

(घ) "भ्रमविध्वंस अष्टक"—में भी "दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा व्है खेला"—कह कर गुरु के प्रति पूर्ण कृतज्ञता भाव अर्पण किया है ॥ (पृ० २३५—)

(ङ) "गुरु कृपा अष्टक"— (पृ० २४१—)—"दादू सद्गुरु के चरण अधिक अरुण अरविंद। दुःखहरण तारणतरण, मुक्त करण सुखकंद" । १ । से लगा कर—"सतुगुरु ब्रह्मस्वरूप रूप धारहिं जगमांही…" । ६ । तक वहुत उत्तम गुरु महिमा है।

(च) "गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक"—(पृ० २४७—) "दादू सद्गुरु सीस पर, उर मैं जिनको नाम। सुन्दर आये सरन तकि तिन पायौ निज धाम" । १ । से लगाकर अंत तक "दादूदयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम है"। इस अन्त्य चरण सहित सव छंद वड़े सुन्दर सरस गुरु गुणगान में कहे हैं ॥

(छ) "गुरुदेव महिमास्तोत्राष्टक"—(पृ० २५५—)—"परमेश्वर अरु परम गुरु दोऊ एक समान। सुन्दर कहत विशेष यह, गुरुतैं पावै ज्ञान" ॥ १ ॥ से लगा कर "नमोदेवदादू नमोदेवदादू" इस चरणार्ध सहित मनोरम उदार छंद हैं। अन्त में यह सिद्धांत दिया है—"परमेश्वर महिं गुरु वसैं, परमेश्वर गुरु मांहि। सुन्दर दोऊ परस्पर, भिन्न भाव सो नांहि" ॥ १ ॥

(ज) "सवैया" ग्रन्थ का प्रथम अंग "गुरुदेव का अंग"—(पृ०

३८३ –) गुरु महिमा। और गुणकीर्त्तन का सब से अच्छा काव्य है। इसमें ग्रन्थकार ने वड़ी मौज और मनस्तरंग से गुरु की प्रशंसा की है और गुरु के प्रति पूर्ण सद्भावना प्रगट की है॥ २७ छंद वड़े ही उदार विचार के और आदर्श गुरुभक्ति के प्रमाण हैं॥

(झ) "साखी" ग्रन्थ में प्रारम्भ का अंग भी (उसी प्रकार)— (पृ० ६६५—) गुरु-गुणगरिमा-निदर्शन में एक सुन्दर काव्य है। १०२ दोहे रत्नों की मालाही है। "सुन्दर सद्गुरु आपतं, अलख खजाना खोल। दुख दरिद्र जाते रहे, दीया रत्न अमोल"। १५। "सुन्दर सद्गुरु हैं सही, सुन्दर शिक्षा दीन्ह। सुन्दर वचन सुनाइ कैं, सुन्दर-सुन्दर कीन्ह" ।१०२। ये कैसे मर्म भरे, सार भरे, वचन हैं जिनमें गुरुभक्ति के सिद्धांत का पूर्ण विकास है।

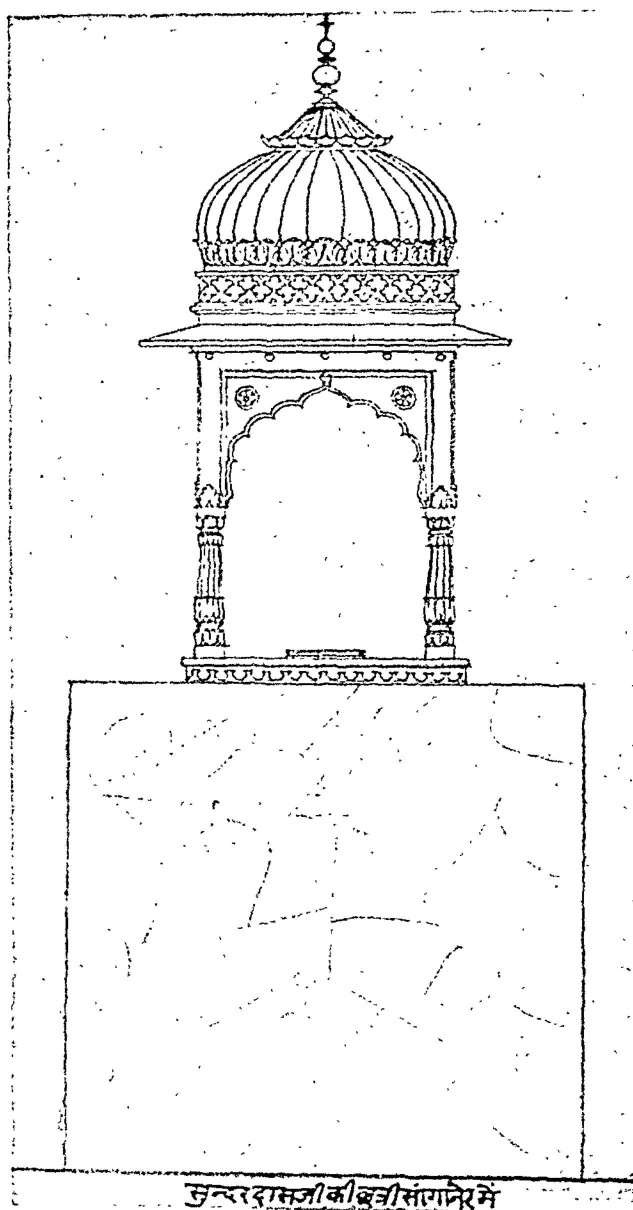
(ञ) "पदों (भजनों") में गुरुभक्ति विवरण, और भी अधिक सरसता से, छिपा है। यथा

पृ० पद

१—८२६ ११ "भया मैं न्यारा रे। सतगुरु के जु प्रसाद भया मैं न्यारा रे।
२—८३१ २ "सतसंग नित प्रति कीजिये ···। सतगुरु विना न पाइये।
३—८३२ ६ "गुरुज्ञान वाताया रे·········।
४—८३३ ३ "हमारे गुरु दीनी एक जरी······।
५—८४७ ३ "वीरज नास भये फल पावै, ऐसा ज्ञान गुरु समुझावै"।
६—८५१ ५ "आज मेरे गृह सतगुरु आये।···
७—८५५ १ "अब के सतगुरु मोहि जगायौ ।······
८—८६२ १० "गुरु विन गति गोविन्द की जानी नहिं जाई।······
९—८६४ १३ "सतगुरु तैं संसा गया, दूजा भ्रम भागा (अंतरा ४)—।
१०—८६३ ११ "ऐसा सतगुरु कीजिये करनी का पूरा।······
११—८६८ ५ "पोजत पोजत सतगुरु पाया ।······
१२—८६६ ६ "एक पिंजरा ऐसा आया।······

१३—८७० १० "आया था इक आया था।...ऐसा दादूराया था।...
१४—८७२ ४ "मेरा गुरु द्वै पप रहित समाना।......
१५—८७२ ५ "मेरा गुरु लागै मोहि पियारा।......
१६—८७८ १४ "औधू एक जरी हम पाई।...सतगुरु मोहि बताई।
१७—८७६ १ "दादू सूर सुभट दल थंभण...... ।
१८—८८२ ५ "महासूर, तिन कौ जस गाऊं। गुरुदादू प्रगटे सांभरि में।
१९—८८४ १ "ऐसो तें जूझ कियौ गढ घेरी...... ।
२०—८८६ ४ "जो कोई सुनैं गुरू की वानी...... ।
२१—८८७ ५ "मेरा मन राम नाम सों लागा।...सो सुंदर गुरू हमारा (अं० ४)
२२—८८७ ६ "ऐसौ योग युगति जब होई...। गुरु दादू दिया दिपाई...। (अं० ४)
२३—८८६ ९ "मोहि, सतगुरु कहि संमुझाया हो।...
२४— " १० "मेरे सतगुरु वड़े सयाने हो।...
२५—८९० ११ "उस सतगुरु की वलिहारी हो।......
२६—८९१ १४ "भाई रे सतगुरु कहि संमुझाया।......
२७—८९२ १५ "भाई रे प्रगट्या ज्ञान उजाला। सतगुरु किये निहाला
२८—८९६ ३ "सतगुरु शब्दहुं जे चले, तेई जन छूटे।...
२९—९०० २ "मेरे हिरदै लागो शब्द वान। तकि मारे सतगुरु सुजान।
३०—" ३ "ऐसो वाग कियौ हरि अलप राइ।...ऐसो सतगुरु चन्दन और नांहि।......
३१—९११ ६ "स्वामी पूरन ब्रह्म विराजही...।...सुन्दरदास कहै गुरु दादू हैं सब के सिरताज ही॥
३२—९१३ १२ "अहो यहु ज्ञान सरस गुरुदेव को।...

इस प्रकार गुरुमहिमा स्वामीजी ने, वड़ी मनस्तत्परता और उमंग से गाई है पाठक इन संकेतित ग्रन्थों वा छन्दों तथा पदों को समग्र पढ़ कर



सुन्दरदासजी की छत्री सांगानेर में

विचारेंगे, तब अत्यन्त अल्हाद होगा। सूफियों में भी गुरु (पीर-उस्ताद) का बहुत बड़ा आदर है। "फ़ना फ़िश्शेख़" प्रथम अभ्यास गुरु के ध्यान में गर्क-गुम-लुप्त होकर मिट जाना। फिर "फ़ना फ़िल्लाह"—ब्रह्म लीन होने का दरजा आता है॥

(७) नीत्युपदेश और शिक्षा लोक और मुमुक्षुजनों के लिए स्वामीजी ने खूब भरपूर प्रसंगानुसार दी है। ज्ञा० स० के योग विवरण में (क) अहिंसा (ख) सत्य (ग) दया (घ) आर्जव (ङ) मिताहार (च) शौच (छ) दान (ज) वाणीसार-ग्रहण (झ) लज्जा। इत्यादि उपदेश किये हैं।

"सवैया" ग्रन्थ और "साखी" ग्रन्थ तथा "लघुग्रन्थावली" के कई एक ग्रन्थों में उत्तम २ उपदेश हैं। मनका अंग, पतिव्रता का अंग, विचार का अंग, वचन-विवेक का अङ्ग—इत्यादि में बड़े बड़े काम के छंद हैं जिनमें अनुपम उपदेश भरे हैं। मुमुक्षुजन वा अध्ययनशील पाठक लाभ उठावें। यहां अब विस्तार भय से अवतरणादि दिये जा नहीं सकते।

(८) अध्यात्म रहस्य और गोप्य वा गुह्य ज्ञान। हम कह आये हैं कि जैसे गोरखनाथजी, कबीरजी, दादूजी, नानकजी, रैदासजी आदि महात्माओं ने रहस्य बड़े मर्म के कहे हैं*। वैसे ही सुन्दरदासजी ने भी कहे हैं। यह सूफ़ियों का ऐसा ढंग वा मिस्टिक संतों का ऐसा ढर्रा है। पहुंचवान लोगों की स्थति ऐसी ही हो जाती है, और वे अनिर्वचनीय दृश्य वा अवस्था का संकेत अपने वचनों में देते हैं, सो साधारण पुरुषों के सहज ही समझ में नहीं आ सकता है। ऐसा वर्णन गुरुगम्य ही होता है।

---

* स्थानाभाव से अन्य महात्माओं वा दादूजी के भी रहस्य वचन, सुन्दरदासजी की पुष्टि में, नहीं लिखे जा सके, वे सब छोड़ दिये गये। केवल कबीरजी का एक दोहा देकर संतोष करते हैं:—"कबीरा टाटी लाज की रोक रही सब ठांव। सकै तो याको फूंक दे सूझ पड़ै वो गांव" ॥ १ ॥

"विपर्यय अङ्ग" सारा का सारा, एक प्रकार से, इसही आशय को लिये हुए है। योग के रहस्य भी कई पदों वा छंदों में दिये हैं। यथा:—

(क) पद ६ (पृ० ८२८)—"सन्तों भाई पद में अचिरज भारी।···

(ख) पद ३ (पृ० ८५६):—"पद मैं निर्गुण पद पहिचाना।······

पद खोजे त सब पद विसरै विसरै ज्ञान रु ध्यांना।

पद को तात्पर्य सो पावै सुंदर पदहि समाना॥ ४॥

(ग) पद ६ (पृ० ८६२):—"है कोई योगी साधै पौंना।······

चढि आकास परम पद पावै, ताकौं काल कदे नहिं पौंना।

सुन्दरदास कहै सुनु अवधू, महा कठिन यह पंथ अलौना"। १४।

(घ) पद ६ (पृ० ८७२):—"कोई पिवै राम रस प्यासा रे।

गगन मंडल मैं अमृत सरवै, उनमनिकै घर वासारे।···

गोरखनाथ भरतरी रसिया सोई कबीर अभ्यासा रे।

गुरुदादू परसाद कछूइक पायौ सुन्दरदासारे॥ ४॥

(ङ) पद ७ (पृ० ८७३)—"संतो लपन विहूणी नारी।······

(च) पद ८ (पृ० ८७४)—"संतहु पुत्र भया इक धीके। ··

(छ) पद १२ (पृ० ८७७) —"संतो घर ही में घर न्यारा।···

(ज) पद १३ (पृ० ८७७)—"हरिका निज घर कोइक पावै।···

(झ) पद १५ (पृ० ८७८) —"औधू पारा इंहि विधि मारौ।···

(ञ) पद १ (पृ० ८६६)—"इनि योगी लीनी गुरु की सीख।···

(ट) पद १३ (पृ० ६२६) —"सहज सुन्नि का पेला, अभि अंतरि मेला।

(ठ) पद ८ (पृ० ६३५)—"हरि हम जांणियां, है हरि हम हीं मांहि।

(६) निराकार— उपासना—निरंजन (माया रहित) परब्रह्म की ही उपासना दादूजी आदिक का चरम सिद्धांत रहा, सोही सुन्दरदासजी का है। साकार-उपासना इनके मत में लीन नहीं है। जो राम, कृष्ण, गोविंद, माधव, आदि (अवतारादि) के नाम आये हैं वे सब निराकार ब्रह्म ही के अलंकारिक पर्याय हैं। जितने क्षर (परिवर्तन शील होकर

मिट जाने वा बिगड़ जाने वाले) रूप, शरीर वा पदार्थ हैं वे सब, स्थूल और सूक्ष्म, आदिक सब, अनित्य प्रकृति वा माया के बने होने से ही अक्षर, नित्य, निर्विकार ब्रह्म वा परमपुरुषसे भिन्न हैं। अतः उपासनीय नहीं हैं। भक्ति भी जो कही है, सो निरंजन निराकार परमात्मा ही की कही है। यद्यपि भक्ति-विज्ञान वा भक्ति-दर्शन के सिद्धांत में ध्येय-ध्याता, ज्ञेय-ज्ञाता आदिक द्वैत की आवश्यकता होती है। परन्तु इन निराकार उपासकों में (सूफ़ियों, मिस्टिकों की तरह, वा रहस्यवादी योगियों के अनुसार) अन्तरात्मा का ध्यान ही अपेक्षित और कर्त्तव्य है। योग में भी प्रतीक की आवश्यकता होती ही है प्रथम अभ्यास की परिपाटी में। ये लोग भी योग को साधने में कुछ आत्मिक—अतिसूक्ष्म—अवलंबन अवश्य ही करते वा धारते हैं। परंतु वह निराकार ही की छाया वा भांति मात्र समझी जाती है। "गुरुमुख होना," "अंतर्मुख होना" "उनमनी," "सुरति" "सहज सुन्नि में वासा" आदि योग रहस्य की योगलब्धियां हैं जो इन रहस्यवादी निराकार के उपासकों के व्यासंग में व्यवहृत होती हैं। यह पंथ इस ही से कठिन पंथ" और "अलोनी शिला" कहा गया है। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो जाने पर वह अलोना ही बहुत सलोना हो जाता है। उस ही अनुपम—नित्य—निरन्तर सुख की प्राप्ति के लिए सिर काट कर अपने "पीतम" के चरणों में धरना पड़ता है। अर्थात् अहंकार को विजय करना पड़ता है। उस अति दुर्भर साधन के करड़े मार्ग में ही भक्ति-प्रेम-मस्ती-इश्क़-तल्लीनता ध्रुवदृढ़ भावना-लगन आदि (गुरु की बताई हुई प्रक्रियाएं वा विधियां वा सैन भी) सहायक और आगे बढ़ानेवाली सुवाहिनी अवलम्बिकाएं काम देती हैं। त्याग, वैराग्य, संयम, तपस्या, सब आपही होने लग जाते हैं। अनुलोम वा विलोम रीतियों से सिद्धि मिल ही जाती है, यदि प्रारब्ध और ईश्वर कृपा सहायक हों। एक ही अद्वितीय ब्रह्म की उपासना उपनिषदादि का महान् और प्रधान सिद्धांत है। अतः निराकर ईश्वर की उपासना वैदिक है। और इसही सिद्धांत को दृढ़ता

से, अव्यभिचारी भाव से, और परम तत्परता से धारण करने से साकार उपासना बनती नहीं, अपितु प्रतिकूल पड़ती है। यही बात आगे बढ़ कर सत्कार्यवादियों, पुराणादि के सिद्धांतों वाले वैष्णवसम्प्रदायों के स्वतः विरोधी हो जाती हैं। इसी से निरंजन निराकार की सम्प्रदायें, साधुमत-मतांतरों के धारण करके, भिन्न स्वत्व से हो गईं और होती आती हैं। यह ध्येय और लक्ष्य का मौलिक-भेद, केन्द्र से अनेक रेखाओं की तरह, जितना आगे बढ़ता जाता है, उतना ही एक दूसरे से अन्तर बनाता जाता है। परंतु लौटते आने में केन्द्र (मध्यबिंदु, वा मूल) में सब ही मिल जाते हैं, एक हो जाते हैं, कोई भेदभाव नहीं रहता है। अर्थात् आत्मा के परम विशाल, परम महान, परम अनंत लोक में ये सब एक हो जाते हैं। परमार्थ में किसी का भेद नहीं रहता। वही ईश्वर सबका है। ईश्वर कोई न्यारे न्यारे नहीं हैं। फिर भेदाभेद, केवल परिधि की तरफ़ पसार करने, वा बढ़ने, फैलने से, बाह्य प्रकृति वा व्यवहार में जाने से, स्वतः ही होता जाता है वा वृद्धि को पाता है। "प्रकृतिंयांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति"—जीव स्वभाव, प्रकृति की गोद में पहिले पलता और मोटा ताजा हो जाता है, उसही के अभ्यास के बल से उसे स्थूल, बाह्य, भौतिक रूप की तरफ ले जाता है। इससे निग्रह, पूर्ण अभ्यास ही, उसको केन्द्र मूल वा आदिस्रोत (परमात्मा) की तरफ ला सकता है। "अभ्यासेन च कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते"। सच्चा अभ्यास ही इसमें अटल, बहुमूल्य उत्तम निमित्त बनता है। उसके साथ प्रेम-भक्ति-लगन का गहरा मसाला "बांग" का काम देता है, चाट का आस्वादन करा देता है। इसके योग से और बल से चित्त चंचल न होकर आगे बढ़ता जाता है। इसही से ज्ञान के साथ इन निराकारोपासकों ने भी भक्ति का आश्रय लिया है। इसही को, अपने गुरु दादूदयाल के मतानुसार, सुन्दरदासजी ने भी अपने ग्रन्थों में, निराकार की प्राप्ति में, ग्रहण और भलीभांति व्यवहृत

किया है। परंतु यह भक्ति नवधाभक्ति के वाह्यप्रक्रियाओं से मुक्त है *। यह तो पराभक्ति का रूप ही धारती है। मानसी पूजा सेवा की तरह अन्तःकरण में ज्ञान की सहचरी वा सहकारी वनी रहती है। इस निराकार वा निरंजन की उपासना के प्रकरण पर इसके साधक सिद्ध संतजन ही अधिक लिख सकते हैं। क्योंकि जानैं सोही वखानैं। अतः हम सुन्दरदासजी ही के दो चार वचन उदाहरण में देकर इसे समाप्त करते हैं। यथाः—

(क)–"तुरिया साधन ब्रह्मकौ, अहंब्रह्म यौं होइ।
तुरियातीतहि अनुभवै, हूं तूं रहै न कोइ ॥७॥

(इंदव) "जाग्रत तो नहिं मेरे विषै कछु, स्वप्न सुतो नहिं मेरे विषै है।
नांहि सुषोपति मेरे विषै पुनि, विश्वहु तैजस प्राज्ञ पषै है ॥
मेरे विषै तुरिया नहिं दीसत, याही तें मेरो स्वरूप अपै है।
दूर तें दूर परै तें परै अति सुन्दर कोउ न मोहि लषै है ॥८॥

(तथा पृ० ६१६।१५)

(दो०) "नाहीं नाहीं करि कह्यौ, है है कह्यौ वषांनि।
नांही है के मध्य है, सो अनुभव करि जांनि ॥४०॥
यह ही है पर यह नहीं, नांही है है नांहि।
यह ई यह ई जांनि तू, यह अनुभव या मांहि" ॥४१॥

(ज्ञा० स० । उ० ५)

(ख)–इस ही प्रकार "सर्वाङ्गयोग प्रदीपिका" ग्रन्थ के अद्वैतयोग में (पृ० ११३—१४ पर) वर्णित है।

चौपई—अब अद्वैत सुनहुं जु प्रकासा। नाहं ना त्वं ना यहु भासा।
नहीं प्रपंच तहां नहीं पसारा। न तहँ सृष्टि न सिरजनहारा" ॥ ३७ ॥

... ...

---

*"ये चारौं अँग भक्ति के, नवधा इनही मांहिं।
सुन्दर घर महिं कीजिये वाहिर कीजै नांहि" ॥ (सर्वाङ्ग योग पृ० १०१)

दोहाः— ज्ञे ज्ञाता नहिं ज्ञान तहं ध्ये ध्याता नहिं ध्यान।
कहनहार सुन्दर नहीं यह अद्वैत वपान" ॥ ५० ॥

(ग) पूर्वीभापा वरव में—(पृ० ३७६ पर) जीवात्मा परमात्मा का मिलना अद्वैतभाव, ब्रह्मसाक्षात्कार को कितना सुन्दर कहा हैः—

वरवैः— रस महियां रस होइहिं नीर हि नीर।
आतम मिलि परमातम पीर हि पीर ॥ १८ ॥
सरिता मिलइ समुद्रहिं भेद न कोइ।
जीव मिलइ परब्रह्महि ब्रह्महि होइ" ॥ १६ ॥

(घ)– "सवैया" ग्रन्थ में तो अनेक अंगों के अनेक छंदों में सुललित वर्णन निराकार ध्यान, अद्वैतभाव और आत्मानुभव का है, सो वहां पढ़ने से ही आनन्द आ सकता है। दो एक छंद तव भी नमूने के देते हैंः—

१—पतिव्रत के अङ्ग में—(पृ० ४७५—७६) भी वड़े वल के साथ, एक निरंजन ही को ध्याने का उपदेश और वर्णन हैः—

"सुंदर छार परो तिनि कै मुख, जो हरि कौं तजि आंनहि ध्यावै" ॥ ३ ॥
"होइ अनन्य भजै भगवंत हि और कछू उर मैं नहिं रापै।
देविय देव जहां लग हैं, डरिकै तिनसौं कहुं दीन न भापै॥
योग हु यज्ञ व्रतादि क्रिया, तिनकौं नहिं तौ सुपने अभिलापै।
सुन्दर अमृत पान कियौ तव तौ कहि कौन हलाहल चापै ॥ ५ ॥

इस ही प्रकार इस "सवैया" ग्रन्थ में अन्य कई अङ्गों में निराकार ब्रह्म की उपासना, उसके ज्ञान ध्यान, उसकी प्राप्ति, और प्राप्ति से परमानंद आदि का स्थान-स्थान में कथन व वर्णन है। स्थानाभाव अधिक लेख का अवरोधक है।

(ङ) इस ही प्रकार "साखी" ग्रन्थ के अङ्गों में यत्रतत्र इस निरंजन सिद्धांत के वाक्य हैं, जिनमें निराकार-महिमा कथित है। यथाः—

१—"अञ्जन यह माया करी आपु निरंजन राइ।
सुन्दर उपजत देखिये वहुरयौं जाइ विलाइ ॥ १६ ॥ (पृ० ७६३)

२—"कीयौ ब्रह्म विचार जिनि, तिनि सब साधन कीन।
सुन्दर राजा कै रहै प्रजा सकल आधीन ॥ १४ ॥ (पृ० ७८६)

३—"सुन्दर हौं नहिं तूं नहीं जगत नहीं ब्रह्मण्ड।
हौं पुनि तूं पुनि जगत पुनि व्यापक ब्रह्म अखंड ॥२॥ (पृ० ८०१)

(च) - पदों में भी, कई सुन्दर पदों में, निरंजन निराकार की उपासना और महिमा वर्णित है। यथाः—

१—अलख निरंजन ध्यावउं और न जाचउं रे।...(पद २। पृ० ८२३)

२—ताहि न यह जग ध्यावई, जातैं सब सुख आनंद होई...
(पद ३। पृ० ८२५)

३ - ऐसा ब्रह्म अखण्डित भाई, वार पार जान्यौं नहिं जाई।
...पद ६। पृ ८४८।

४—तूं अगाध तूं अगाध देवा।... (पद १। पृ० ८५०)

५ —एक तूं एक तूं व्यापक सारै।... (पद ६। पृ० ८६८)

६—राम निरंजन तूंही तूंही।...(पद १०। पृ० ८७६)

७ —संतो घर ही मैं घर न्यारा। .. (पद १२। पृ० ८७७)

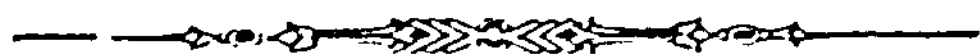
(१०) परमात्मा का नाम—रामनाम की महिमा वहुत स्थलों में कही है। इस ही के निरंतर अभ्यास से परमात्व तत्व की प्राप्ति होती है, इस ही के प्रताप से जीवन्मुक्ति मिलती है। गोरख, कबीर, नानक, रैदास, नामदेव, दादू आदि सब ही संतों ने नाम का महात्म्य सर्वोपरि माना है। उस ही प्रकार सुन्दरदासजीने महिमा गाई है।इस के उदाहरणोंके दिये जाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि ग्रन्थों के पढ़ने से स्पष्ट ही ज्ञातहो जाता है।

(११) वेदांत की परिपाटी—सुन्दरदास जी ने, अपने ग्रन्थों में, शांकर वेदांत की, शास्त्रोक्त सिद्धांतों के अनुसार, यथाक्रम परिपाटी दिखाई है। ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या, जीव और ब्रह्म एक, साधन अभ्यास और

भजन से आत्मशुद्धि होकर यह जीव ब्रह्म हो जाता है। वही परमगति, वही ब्रह्मानंद, वही परम ज्ञान का फल, वही ब्राह्मीभूत अवस्था है। इस को उदाहरणों से दरसाना केवल लेख भार बढ़ाना है। "ज्ञान समुद्र" कई एक "लघु ग्रन्थों" "सवैया" के कई अंगों, "साखी" ग्रन्थ "पदों" आदि में, इस प्रकरण को खोलकर कहा है। पाठक पढ़कर विचारेंगे। जिन जिन सिद्धांत ग्रन्थों से तथा निजगुरु, और अपने अनुभव से इसको लिया और वर्णन किया है वह स्पष्ट प्रगट हो रहा है। ग्रन्थों में- शांकर भाष्य, ब्रह्मसूत्र, पंचदशी, गीता, योगवाशिष्ट, दत्तात्रेय संहिता, अष्टावक्र गीता, भागवत, आदिक के नाम दिये हैं। निज अनुभव और गुरुप्रदत्त ज्ञान को भी खोल कर कहा है। सो पढते समय आप ही विदित होता है। उदाहरण अपेक्षित नहीं।

(१२) योग—हठ योग को भलीं भांति ज्ञान समुद्र वा कुछ कुछ पदों में कहा है। राजयोग और ब्रह्मयोग, लययोग, अद्वैतयोग ऐसे ऐसे नाम देकर (गीता के ढंग पर) योग शब्द देकर, अद्वैत सिद्धांत के पृथक् पृथक् रूपों वा प्रकरणों को कहा है।

इस प्रकार और भी छोटे वड़े कई एक सिद्धांत, दार्शनिक विचार, और निश्चय सुन्दरदासजी के हैं, जो उनके ग्रन्थों में प्रसंग से जाने जाते हैं। विचारवान पाठक आप ही ध्यान से पढ़ने पर जानेंगे। सुन्दरदासजी के ग्रन्थ, ज्ञान के खजाने और सद्विचारों के भण्डार हैं। जो भक्ति भाव से, मन की तल्लीनता से, अभ्यस्त संतजनों से, वांचेंगे और विचारेंगे, उनको परमलाभ प्राप्त होगा। हजारों पुरुषों को इनके प्रभाव से अपरिमित सुफल मिले हैं और सदा मिलते रहेंगे। ये अध्यात्मविद्या-ब्रह्मज्ञान—और तदुपयोगी, तदनुसारी ज्ञान-प्रकरणो की समुच्चय राशि और स्थायी निधि हैं।



परिशिष्ट (ग)

सुन्दर-ग्रन्थावली के सर्व छन्दों की संख्या-विभागवार।

सं०	छंद नाम	१ ज्ञान समुद्र	२ लघुग्रंथ	३ सवैया	४ साषी	५ पद	६ फुटकर	जोड़	
१	दोहा	७६	२९४		१३५१	२७ राग रागिनियोंमें २१३ पद (भजन) हैं इनमें के छन्दों की छांट वा पृथक्करण अनावश्यक और असंगत है	७८	१७९९	अंत समय की प्रथम दो साखियां ज्ञा० स० में भी है इससे दो दोहे कम किये
२	सोरठा	१५						१५	
३	चौपई	३४	४१३				५	४५२	
४	इन्दव	७		२२१			१०	२३८	इसी को मत्त-गयंद कहते हैं। और घनाक्षरी को भी इस ही से लिया गया है।
५	सवैया	७						७	
६	चौपइया	१८	८				१	२७	
७	छप्पय	२०	२				३५	५७	
८	त्रोटक	४						४	
९	मनहर	७		२८९			९	३०५	
१०	रोड़ा	१						१	
११	पवंगम	३	३१					३४	इसीको अरिल कहते हैं।
१२	नन्दा	१						१	
१३	अर्धभुजंगी	८						८	

सं०	छंद नाम	१ ज्ञान समुद्र	२ लघुग्रंथ	३ सवैया	४ साखी	५ पद	६ फुटकर	जोड़	
१४	पद्धड़ी	२७						२७	
१५	बोधक	१						१	
१६	गीतक	१०	१६					२६	
१७	कुंडलिया	८	८	२			१	१९	
१८	मालती	४						४	
१९	चम्पक	१५						१५	
२०	गीता छंद	९						९	
२१	मोतीदाम	८						८	
२२	लीला	१						१	
२३	हंसाल	३		६				९	
२४	दुर्मिला	२		२				४	
२५	कुण्डली	१						१	यह कुंडलिया से भिन्न है ।
२६	रासा	१						१	
२७	नराय	३						३	
२८	रंगिका	१						१	
२९	विज्जुमाला	२						२	

सं०	छंद नाम	१ ज्ञान समुद्र	२ लघुग्रंथ	३ सवैया	४ साषी	५ पद	६ फुटकर	जोड़
३०	चन्द्रार्णा	१						१
३१	हरसंपार्णा	१						१
३२	चर्पट	१३						१३
३३	पायक्का	१						१
३४	त्रिभंगी	१	२२					२३
३५	साखी		१९५					१९५
३६	अर्धसवैया		३२					३२
३७	नीसानीं		४०					४०
३८	भुजंगप्रयात		१६				१ (सं:)	१७
३९	मोहिनी		१६					१६
४०	चामर		८				१	९
४१	झूलना		८					८
४२	रुचिरा		२१					२१
४३	अडिल्ला		३०					३०
४४	मडिल्ला		२०					२०
४५	बरवै		२०					२०

सं०	छंद नाम	१ ज्ञान समुद्र	२ लघुग्रंथ	३ सवैया	४ साखी	५ पद	६ फुटकर	जोड़
४६	किरीटसवैया			३				३
४७	वीरसवैया			३७				३७
४८	केतकीसवैया			२				२
४९	उल्लाला						२	२
५०	शार्दूलविक्रीड़ित						२ सं०	२
५१	अनुष्टुप्						३ सं०	३
५२	पद (भजन)					२१३		२१३
	जोड़	३१४	१२००	५६२	१३५१	२१३	१४८	३७८८

नोट—पुनर्गणना से लघुग्रन्थावली के १२००, सवैया के ५६२, और फुटकर काव्यसंग्रह के १४८ छन्द हुए। अतः सर्व छन्द संख्या ३५७५, और पदों सहित ३७८८ होता है।

ब्योरा कमी का इस प्रकार है :—

(१) लघु ग्रन्थावली में–संख्या १२१६ की जगह १२०० रही–कमी १६ की-(१६ छन्द पहिले अधिक जोड़े गये।)

(२) सवैया ग्रन्थ में—५६३ की जगह ५६२ रही-कमी १ की- (ज्ञा० स० उ० ५।८ का छन्द स० ।२८।१५ में फिर आया।)

(३) फुटकर काव्य संग्रह में—१४९ की जगह १४८ रही–कमी १ की (अन्त समय की साखी पहिले १ ही कम की गई थी, इससे १४९ आये थे। वास्तव में २ कम होनी चाहिए थीं क्योंकि ज्ञा० स० उ० ५ में ५७-५८ के २ दोहे अन्त समय की १-२ प्रथम की साखी दुहार आ गई थी अब १ और कम की गई।)

परिशिष्ट (घ)

सवैया छन्द का संक्षिप्त विवरण।

हमने स्वामी सुन्दरदासजी के "सवैया" ग्रन्थ के नाम और रचना तथा छंदों पर भूमिका में थोड़ा कह दिया है। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ इंदव छंद से है, और इसमें इन्दव और सवैया के अन्य कुछ भेदों के छंद भी हैं, जिनका कथन हम कर चुके हैं। सुन्दरदासजी के "सवैया" ग्रन्थ में (जैसा कि भूमिका में पृ० ५१–५२ पर कहा गया है) नीचे लिखे प्रकार के छंद हैं:—

(१) सवैया—किरीट—वीर—केतकी—सवाया।
(२) इंदव।—(३) हंसाल।—ये तो सवैया छंद के ही भेद हैं।

परंतु—(४) मनहर।—(५) कुण्डलिया भी आये हैं। ये दोनों सवैया के भेद नहीं हैं। और "सवैया" के अतिरिक्त "ज्ञानसमुद्र" ग्रन्थ में और फुटकर काव्य में तथा लघुग्रन्थावली में भी नीचे लिखे सवैया छंद के भेद आये हैं:—(१) इंदव। (२) सवैया (रूप सवैया सहित) (३) सवाया। (४) हंसाल। (५) मालती। (६) डुमिला। (७) झूलना (जो "ज्ञानझूलना अष्टक" में आया है)। (८) त्रोटक (अर्ध सवैया) (९) अर्ध सवैया। (१०) मोतीदाम। इतने नाम के छंद आये हैं। इससे यह नतीजा निकला कि सुन्दरदासजी ने सवैया छंद के भेद वा नाम अपने ग्रन्थों में इतने (नीचे लिखे) प्रकार के काम में लिये हैं:—

(१) सवैया। (२) सवाया। (३) इंदव। (४) कीरीट। (५) वीर। (६) केतकी। (७) सवाया। (८) हंसाल। (९) मालती। (१०) डुमिला। (११) झूलना। (१२) त्रोटक। (१३) अर्ध अवैया। (१४) मोतीदाम। इनमें इन्दव का दूसरा नाम मत्तगयंद है। इन छंदों के लक्षण ग्रन्थों में यथा स्थान दे ही दिये हैं। अब ये छंद सवैया छंद के भेद वा नामांतर हैं इसमें प्रमाण दिखाते हैं।—

(१) "छंद:प्रभाकर" में मात्रिक सवैया के भेदों में (क) वीर सवैया। (ख) रूप सवैया। (ग) मागधी। (घ) हंसाल। (ङ) समान सवैया। (च) डुमिला। (छ) बत्तीसा सवैया। (२) "प्राकृत पिंगलसूत्र" में (३) "रणपिंगल" में (४) भिखारीदासजी के "छंदोऽर्णव" में (५) रसिकविहारीजी के "काव्य-सुधाकर" में मात्रिक सवैयों को देकर वार्णिकों का वर्णन विस्तार से किया है। साधारण समीकरण मत से १३ प्रकार वा भेद के सवैये होते हैं:—

(१) मदिरा—७ भगण (SII) २१ अक्षर का।

(२) इंदव (मत्तगयंद)—७ भगण (SII)+२ गुरु (SS)—२३ अक्षर का।

(३) चकोर—७ भगण (SII)+१ गुरु (S)+१ लघु (I)—२३ अक्षर का।

(४) अलसा—७ भगण (SII)+१ रगण (SIS)—२४ अक्षर का। (इसे अरसात भी कहते हैं)

(५) किरीट—८ भगण (SII)—२४ अक्षर का।

(६) मानिनि—७ जगण (ISI)+१ लघु (I)+१ गुरु (S)—२३ अक्षर का। (इसे सुमुखी भी कहते हैं।)

(७) मंजरी—७ जगण (ISI) +१ यगण (ISS)—२४ अक्षर का। (इसे वाम भी कहते हैं)

(८) मुक्तहरा (मोतीदाम) ८ जगण (ISI)—२४ अक्षर का।

(९) दुमिला—८ सगण (IIS)—२४ अक्षर का।

(१०) माधवी (चंद्रकला)—८ सगण (IIS)+१ गुरु (S)—२५ अक्षर का। (इसे सुन्दरी भी कहते हैं)

(११) भुजंग—८ यगण (ISS) २४ अक्षर का।

(१२) लच्छी—८ रगण (SIS) २४ अक्षर का।

(१३) आभार—८ तगण (SSI) २४ अक्षर का।

इनमें—(क) १ से ५ तक संख्या के भगणाद्य हैं—इनमें भगण प्रारम्भ से है और ये भगण प्रधान वा भगणमय हैं।

(ख) ६ से १० तक भगण-ध्वनि प्रधान हैं। इनमें प्रारम्भ के १ वा २ अक्षरों के पीछे से भगण ध्वनि वा लय से अक्षर आते हैं और उच्चरित होते हैं। क्योंकि भ-ज-स ("भजसा यांति गौरवम्") तीनों गणों का एक वर्ग है।

(ग) और ११ से १३ तक भगण भिन्न हैं—अर्थात् इनमें भगण (वा जगण सगण) वनते हीं नहीं, क्योंकि ये तो य-र-त गणों से वनते हैं ("यरता लाववम् यांति") जिनमें गुरु वर्णों का प्राधान्य है। इनमें भगण की ध्वनि का आना असंभव है।

सवैया छंद के नाम और भेद "प्राकृतिपिंगण सूत्र" में वहुत दिये हैं अर्थात् वहां १०५ की संख्या है। और "रणपिंगल" में १०२ नामों और भेदों की संख्या है। दोनों का समीकरण करने से कोई २०० के क़रीव सवैया छंद के नाम वा भेद हो जाते हैं। इससे इस सरस सुन्दर छंद का वभव, विस्तार, प्रचार और प्राधान्य प्रगट होता है। अनेक देशों में अनेक कवियों और पिंगल शास्त्र के आचार्यों में, पृथक् २ प्रचार रहने से इतने भेद वा नाम वन गये हैं।

सवैयों की ढालों और उच्चारणों से स्पष्ट प्रगट हो जाता है कि भगणाद्य वा भगण प्रधान सवैये अति सुन्दर होते हैं। और भगणभिन्न सवैये उतने सुन्दर नहीं होते हैं। मात्रिक सवैयों का ढंग कुछ निराला सा है। परंतु मात्रिकों में भी कई तो भगण की ध्वनि को धारने से सुष्टु हो जाते हैं। यथा हंसाल और दुमिला।

सव ही छंदों के उच्चारण में लय प्रधान है। वैसे ही सवैया छंद में भी लय का ध्यान रखना आवश्यक है। भगण, जगण, सगण आदि के गुरु लघु का निभाव जहां नहीं हो सकता हो वहां लय वा ढाल से ही काम चला लेना पड़ता है। जगन्नाथजी "भानु" कवि ने (और उनके अनुसार

वा० भगवान दीनजी ने) लय से छंद को ठीक कर लेने का विधान बताया है। जहां गण (भगण, जगण, सगणादि) ठीक करना हो वहां गुरु का लघु और लघु का गुरु उच्चारण में वा उच्चारण के निमित्त अवश्य बनाना चाहिए, अथवा यों कहना चाहिये कि वैसे बन ही जाता है। तब ही छंद उत्तम बुलता है। "छंदः प्रभाकर" में और "अन्योक्ति कल्पद्रुम" की भूमिका में उक्त विद्वानों ने कहा है। और भगण से वा भगण की ध्वनि जगण सगण से बने सवैयों में पाठक स्वयम् उच्चारण के समय देखते होंगे वा देख लेंगे ॥

तुलसीदासादि महा कवियों और अन्य कविवरों ने छंदः शिरोमणि सवैया छंद को बड़े चाव भाव से प्रयुक्त करके अपनी रचनाओं को सुशोभित किया है। केवल "सेनापतिजी" ने (अपना नाम इसमें ठीक २ न बैठने के कारण) सवैया को काम में नहीं लिया है। सुन्दरदासजी सवैया छंद की रचना के आचार्य ही हैं।

प्रायः सब ही कवियों ने सवैयों के साथ मनहर, घनाक्षरी कवित्तादि को भी कहा है। इसही प्रकार, सुन्दरदासजी ने भी इंदवादि के साथ मनहर आदि बड़े छंदों को लिखा है। मानों उस समय वा पीछे भी यह चाली (रीति) ही थी। पंजाब के सिक्ख कवि भाई गुरुदासजी तक ने "कवित्त-सवैया" ग्रन्थ लिखा है उसमें सवैयों के साथ मनहर आदि का प्रयोग किया है। परन्तु बनारसीदासजी ने मनहर को ही सवैया इकतीसा कहा है ("नाटक समयसार" में)। रज्जबजी ने ४० वर्ण का भी सवैया दिया है।

हमने बृहत्‌रूप में, विस्तार के साथ, "सवैया छंद विवरण" लेख लिखा है, जिसमें बड़े २ अनेक सुकवियों के ग्रन्थों से—तुलसी, केशव, देव, मतिराम, भूषण, चिंतामणि, लछिराम पद्माकर, ब्रजनिधिजी इत्यादि—सवैयों के उत्तम उदाहरण देकर सवैयों की अनेक बारीकियां, विशेषताएं,

आदिक बताई हैं। और रज्जब आदि साधु संतों के ग्रन्थों से भी सवैये छांट कर लिये हैं। उसही लेख से यहां थोड़ा सा लिखा गया है। *

अब सुन्दरदासजी के सवैयों से कुछ भगण प्राधान्य सोष्टव आदि के उदारण देकर हमारे उक्त प्रतिपाद्य विषय को निरूपित कर देते हैं:—

(१) इंदव— (मत्तगयंद)—७ भगण (ऽ।।) और अंत में २ गुरु (ऽऽ) का २३ वर्णों का—

"मौजक री गुरु देवद या करि शब्द सु नाय क ह्यो हरि नेरौ।

भ भ भ भ भ भ भ ऽऽ

ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। गुरुगुरु।

(२) दुमिला—८ सगण (।।ऽ)=२४ अक्षर का—

"हठयो ग धरो तन जा त भिया हरिना म बिना मुख धू रि परै।

स स स स स स स स

।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।।ऽ

प्रारम्भ के ह–ठ दोनों लघु वर्णों के पीछे भगण ७ होते हैं, अन्त में गुरु। भगण-ध्वनित होते हैं। सोष्टव तब ही बनता है।

(३) किरीट—८ भगण—२४ वर्ण का—

"पाइ अ मोलिक देह य है नर क्यों न वि चार क र दिल अन्दर।

भ भ भ भ भ भ भ भ

ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।। ऽ।।

वार्णिक सवैयों में, जो भगण सम्मिलित हैं, भगण की ध्वनि है ही, परंतु मात्रिक सवैयों में भी थोड़ी सी भगण की झलक आ जाती है, यद्यपि ऐसा नियम नहीं है। यथा:—

---

* इस लेख में हमने "रणपिंगल" से सवैया भेदों में रागें और तालें भी दिखाई हैं, जो उक्त पिंगलग्रन्थ रत्न में मराठी भाषा की "सङ्गीतानुसार छंदोमंजरी" आदि ग्रन्थों से ली गई हैं।

(४) वीर–मात्रिक १६+१५=मात्रा का—

"ब्रह्म अ रूप अ रूपी पावक व्यापक जुगल न दीसत रंग।

भ भ भ भ भ

(५) रूप सवैया–(सपादी)–मात्रिक—१६+१६=३२ मात्रा का है।

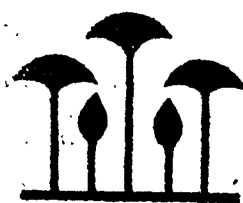
"जाग्रत स्वप्न सु पूपति तीनूं, अन्तहकरण अवस्था पावै।

भ भ भ भ)

दोनों छंदों में कुछेक भगण (ऽ।।) आ जाने से, छंद का मिठास बढ़ गया है। इसी प्रकार सवैया के अन्य भगण-प्रधान भेदों में भगण के रहने के कारण छंद की उत्तमता को जानें।

हम ऊपर कह आये हैं कि जैनकवि "बनारसीदासजी" के "समयसार नाटक" में मनहर को ३१ (इकतीसा) सवैया कहा है। १६+१५=३१ पर यती (विराम) होने से। और ये दोनों समसामयिक कवि और मित्र थे। असम्भव नहीं है कि स्वामी सुन्दरदासजी ने भी "मनहर" को भी सवैया ही माना हो। यद्यपि पिंगल के ग्रन्थों में ऐसा होना कहीं भी पाया नहीं जाता है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो "सवैया" ग्रन्थ में सवैया छन्दों की ही अधिकता हो जाय। और यों (इस कल्पना के कर लेने से) स्वामीजी का इस ग्रन्थ का ऐसा नाम (सवैया नाम) देना और भी अधिक संगत और प्रमाणित हो जाय। परन्तु ऐसा मान लेना पिंगल के नियम से विरुद्ध होने से, इन्दवादि सवैया भेदों के छन्दों की प्रचुर संख्या रहने से ही ग्रन्थ का नाम "सवैया" रखना सुसंगत है। प्राचीन हस्तलिखित यावन्मात्र पुस्तकों में इस ग्रन्थ का नाम "सवैया" ही लिखा मिलता है। अतः दृढ़ता से प्रमाणित है कि इस ग्रन्थ का यही नाम ("सवैया" नाम ही) ग्रन्थकार स्वामीजी ने रक्खा था, "सुन्दर विलास" नाम छापे की पुस्तकों में किसी सम्पादक ने धर दिया है, जो देखादेख (भेड़ी-धसान न्याय से) प्रसिद्ध हो गया। और सवैया छन्द के भेदों में (भगण-प्रधान) इन्दव (मत्तगयन्द) छन्द भेद ही स्वामीजी को अधिक प्रिय था—इस ही सवैया

ग्रन्थ का प्रारम्भ किया और इस ही की संख्या इस ग्रन्थ में बहुत है, यद्यपि मात्रिक वीर सवैया भी प्रयुक्त हुआ है—"विपर्यय" का अङ्ग इस ही में रचा गया और अन्यत्र भी यह सवैया लिखा गया। इस बात को हमने दोहरा कर यहाँ इस ही कारण से लिखा है कि इसकी यथार्थता सब पाठकों को फिर भी विदित हो, और लोगों ने जो मनमानी अनधिकार करतूत कर दी है वह ध्यान में रहे।



परिशिष्ट (ङ)

संक्षिप्त राग-तालिका।

"वसति रसवति हृदि सतां नानाकारान् वहन्नलङ्कारान्।
श्रुतिमात्र वेद्यविभवो वहुतररागोदयोऽच्युतो जयति" ॥ १ ॥

अर्थात्--(श्लेष से आशय देते हैं ब्रह्म पक्ष में तथा राग पक्ष में)— (१) अच्युत ब्रह्म सर्वोत्कृष्टता से विराजता है— जो सत्पुरुषों के रस (भक्तिज्ञान) वाले हृदयों में अनंतरूप और शोभाओं से वसता है— जिसका ज्ञान, श्रुति (वेद) ही से उसके वैभव (विभूति) सहित जाना जा सकता है—और सांसारिक सर्व राग (आनंद) होते हैं। (२) नाना प्रकार के गायन (राग) अलंकारों – मींड, गमक, तान, सरगम--आदिकों--को धारण करनेवाला है जिसका वैभव श्रुति—२२ श्रुतियों और ग्रामों तथा सप्तकों आदि से जानने में आता है। और गायन के रसिकों और संतों के हृदयों में जो वसनेवाला है—नित्य (स्थायी आनंद के साथ) विराजमान-रागरूप में उदय होनेवाला—-नाद ब्रह्म जो है, उसकी जय हो। अर्थात् सब रसों और भावों पर विजय पानेवाला है। सब रसों का उत्पत्ति स्थान है वा सबसे श्रेष्ठ है। जैसे कहा है—"जब आवत है रागरस सब रस धूरि समान"। अथवा—"जब आवत है राग धन सब धन धूल समान"। (आदित्य राम भट्टकृत "सांगीतादित्य" पृ० २५)

ब्रह्मानंद के अनुभवी--नाद ब्रह्म के अच्युतानंद सम्पन्न—श्री स्वामी सुन्दरदासजी ने अपने आत्मानुभव और गुरु तथा संतों के सत्संग से प्राप्त गायन में भक्ति और वैराग्य उत्पन्न करनेवाले तथा विनय, प्रार्थना, पुकार, उलाहना, आदि विषयों के सम्बंधी २१३ पद २७ राग-रागनियों में सुन्दर शब्द योजना और उच्च विचारों से प्रयुक्त, निर्माण किये हैं। दादू सम्प्रदाय में पद विख्यात हैं।

इन पदों की टिप्पणी-टीका के साथ, इनके रागों के स्वरूप वा लक्षण, इस हा विचार से नहीं दिये गये थे कि, इनके संकेत इकट्ठे एक परिशिष्ट में दे देना पर्याप्त होगा। साथ वाले कोष्टक (नक़शे) में जो-जो बातें दी गई हैं उनकी सूचना नीचे दी जाती है। सुन्दरदासजी के पद ही गाये जाते हों सो नहीं, इनके सवैये, अष्टक आदि सब ही गायन में लिये जाते हैं। अन्यत्र कहा गया है कि रागसागरजी के "रागकल्पद्रुम" में और भक्त-रामजी के "वृहद्रागरत्नाकर" में तथा अन्य ग्रन्थों में सवैयों को प्रचुरता से गायनोपयोगी समझ कर अन्तर्गत किया है। परन्तु साधु-संतों में ऐसे वहुत थोड़े हैं जो नियमानुसार गाते हों। वे अपने ढंग ढर्रे और प्रचलित रीति से मोज में आवें वैसे गाते हैं। न स्वर की न ताल की वहुत पावंदी रखते हैं। पृथक्-पृथक् सम्प्रदायों में भिन्न तरीका गाने का है। "सांझ की राग सकारे गावै। सो साधू मोरे मन भावै" ऐसे-ऐसे उनके सिद्धान्त हैं। अतः रागों के लक्षणादि और वारीकियां उनके लिये नहीं दी जाती हैं। जिनको इनकी आवश्यकता हो उन ही के लिए है। पदों की २७ रागों में भैरव एक राग है। मलार को मेघ माना गया है। वाकी २५ रागनियां, पुत्र वा पुत्रवधू वा आमेजी हैं। किसी-किसी रागिनी के साथ उसके अन्य प्रचलित और प्रसिद्ध उपयोगी रागनियों के विवरण भी दे दिये हैं— जैसे कल्याण के नीचे इमन और श्याम। सरगमों का दिया जाना वहुत स्थान और आडंवर चाहता था इससे केवल उतरे (कोमल) और चढ़े (तीव्र) स्वर तथा पाडव ओडवादी में वर्जित स्वर दिये गये हैं। (सा) (षड्ज) और (प) (पंचम) स्थिर हैं, और इनमें विकार नहीं होता इससे इनका दिया जाना सरगम में होता इससे यहां कैसे लिखे जाते? राग रागनी में उतरे-चढ़े का जान लेना भी वहुत ही जरूरी होता है। और ऋतु-समयादि भी जानना उत्तम ही है। विशेष के कोष्ट में कोई-कोई आवश्यक वा, विशेष वातें दी गई हैं। संख्या के कोष्टक में ऊपर तो तालिका कोष्टक की क्रमिक संख्या और नीचे ग्रन्थ में की क्रमिक संख्या

दी गई है। साथ ही ग्रन्थ का पृष्ट लिख दिया है जहां राग (पद के राग) का आरम्भ होता है कि जिसमें राग को तुरंत निकाल लेने में आसानी रहे।

(१) इन पदों में "एराक" राग एक आई है सो भारतीय सङ्गीत की नहीं है। जैसे हुजाज सोरठ भी यहां की नहीं है। यह राग फारसदेश की है और मुसलमानों में कहीं-कहीं गाई जाती है विशेपतः फ़क़ीरों में। फ़ारसी गांधर्वविद्या (इल्मे मूसीक़ी) के अनुसार रागों के वारह १२ मुकाम हैं उनमें से "एराक" एक है। इसे इराक़ भी कहते हैं। इसके गाने का समय दिन के दो पहर पहिले। इसके दो शोवे होते हैं। प्रथम में जिसको मुखालिफ़ कहते हैं, पांच नग़में हैं। और दूसरे शोवे में, जिसे मग़लूव कहते हैं आठ नग़में होते हैं※। यह विलावल और टोडी से मिलती जुलती प्रतीत होती है। स्वामीजी ने पंजाव में वा कहीं सूफ़ी फ़क़ीरों से एराक को सुना है, तव ही इसमें भी पद कह दिया है।

इन पदों में एक गौड राग है। यह गौड मलार है। उसही का लक्षण दिया गया है। इसे गुण्ड भी कहा है। किताव "उसूले—नग़माते आसफ़ी" के अनुसार यह रागिनी मेघराग की है। और "सांगीत सुदर्शन" में सेनियों के मतानुसार, इसका नाम गौन लिखा है। यह खयाली और धुरपदी दो प्रकार की होती है। हमने केवल ख़याली का लक्षण दिया है जिस में चढ़ा निपाद स्वर लगता है, उतरा कभी नहीं लगता है और कुछ चाल भी निराली होती है।

(२) पदों में जो काल्हेड़ो रागिनी दी है यह कालंगड़ा का विगड़ानाम ज्ञात होता है। कालंगड़ा का ही लक्षण लिखा गया है। यद्यपि पद इसमें गुजराती भापा के हैं। शायद गुजरात की कोई राग हो।

※ "गयासुल्लुगात"—नवलकिशोर प्रेस की छपी—पृ० ४५९, से यह आशय लिया गया है।

(३) कान्हड़े वहुत प्रकार के होते हैं। हमने शुद्ध वा अड़ाने का स्वरूप दिया है।

(४) मारू तो मारवा रागिनी है। उसही का लक्षण दिया गया है। साधु इसको और तरह भी गाते हैं। रुक्मिणी-मंगलवाले इसे और ढङ्ग से गाते हैं।

(५) देवगंधार रागिनी भैरव और भैरवी का मेल है। इसे गांधारी भी कहते हैं, उसही का लक्षणा दिया है। "सूरसागर" में प्रारम्भ में इस ही रागिनी से श्री गणेश किया है।

(६) सिधूड़ा—सिंधूरा, वा सिंडुरा है। उसही का लक्षण दिया है। यह वीर रस प्रधान राग है।

(७) सोरठ—अनेक प्रकार की होती है। शुद्धता का विवरण ही दिया है। साथ ही देशसोरठ का भी लिख दिया है। क्योंकि इसे लोग वहुत गाते हैं।

(८) रामगरी को रामकली वा रामग्री भी कहते हैं। उसही का विवरण है।

(९) वसंत के साथ वहार का भी लक्षण दे दिया गया है कि साधु इसे गाते हैं।

(१०) संकराभरन को शंकरा भी कहते हैं, उसही का लक्षण दिया गया है। इसी प्रकार और भी जानें। यह निश्चित है कि यह नक़्शा साधारण जानकारों को उपयोगी नहीं हो सकता है। हां, ऋतु और समय को वे जान लेंगे। यदि सरगमें नोटेशन सहित (जिसमें सप्तक वा ग्राम भी) होते और आरोही अवरोही में किन स्वरों का कोमल तीव्र, मींड, सूत, प्रसार आदि है ऐसी सूचना के साथ विवरण होता तव भी जो वाद्य से अनभ्यस्त हों उनको तो वैसे विवरण भी काम नहीं देते। यदि रागों की प्रसिद्ध चालें भी लिखी जातीं तो उन चालों (वा बीज़ों) को जो पहिले से जाने हुए होते वही उनसे काम ले सकते थे। अतः उपरोक्त

कोष्टक ("सांगीत सुदर्शन" आदि ग्रन्थों * के अनुसार) दिया जाना अलम् समझा गया।

असल बात यह है कि यह गाने की विद्या कान और हाथ और गले की विद्या है और नितांत (आदि से अंत तक) गुरुगम्य है। बिना सिखाये सीखे. सुने सुनाये, अभ्यास करे कराए, तालीम–रियाज़–प्रेक्टिस आदि साधनों के बिना यह कोरी किताबों से ठीक नहीं आती है। साधु संतों में भी अच्छे अभ्यस्त गानेवाले से पदों को सुनने और फिर अभ्यास-गाने का करें, तब आता है।

श्री दादूदयालजी, रज्जबजी तथा अन्य दादूपंथी महात्माओं ने पदों को अनेक रागों में कहा है। सुन्दरदासजी ने सबही सुने वा पढ़े होंगे और उनको गा २ कर अभ्यास किया होगा। सुन्दरदासजी की रागों को दादूजी की कही रागों से मिलाने से दादूजी ने ये रागें अधिक कही हैं—(१) परज, (२) भांणमली। (३) हुसैनी बंगलो। (४) सूहौ। (५) जैतश्री। और रज्जबजी ने एक जैतश्री सिवाय कही। परन्तु उक्त दोनों महात्मओं की रागों में "ऐराक" नहीं है। और न जैजैवंती और शंकरा ही हैं। यह इनके साथ रागों का मीलान हुआ। संतों की सीधाई के कहने से कहीं यह न समझा जाय कि दादूपंथियों में गानविद्या के जाननेवाले ही नहीं हैं। प्रत्युत इन लोगों में बड़े २ गायनाचार्य हो गये हैं और अब भी हैं। स्वयम् दादूजी के पुत्र और शिष्य गरीबदासजी नारद और तुंबरु समान गानेवाले थे। फिर हमने भी इनमें वीणाकार और ध्रुपदी देखे हैं। नारायणे के मेले पर वा समाजों में अच्छे २ गाने वाले दादूपंथी संत आते हैं।

---

* "सांगीतादित्य"। "सांगीतपंचरत्न"। "संगीतरत्नाकर"। और "रागमाला"।

पदों की—रागों के आकारादि क्रम से संक्षिप्त राग-तालिका कोष्टक।

संख्या	पृष्ठ	नाम	ऋतु	समय	जाति	उतरेस्वर	चढेस्वर	वर्जित स्वर	विशेष
१/१४	८७०	आसावरी	सब	दिन के १-२ पहर	संपूर्ण	सब	०	०	शांतरस-वैराग्य में—
२/२५	९२७	ऐराक							इसका नोट ऊपर दिया गया है-यह भारतीय सांगीत की नहीं है।
		कल्याण (शुद्ध)	सब	५॥ पहर	सं०	०	सब		म् न् स्पष्ट नहीं लगते (ग) प्रधान स्वर है
३/३	८२३	इमन कल्याण	सब	५॥ पहर	सं०	म्	सब		म् न् स्पष्ट लगते हैं।
		श्याम कल्याण	सब	५॥	सं०	म	सब	म ध	म-ध-न लगानेसे भूपाली कल्याण।
४/२४	९१८	काफी	फागुन	१—६	सं०	ग-म-नी	(मध नहीं भी) रे - ध	०	
५/८	८५२	कालंगड़ा	सब	प्रभात सूर्योदयसे पहिले २	सं०	रें-म-ध	ग—नी		वैराग्य—शृङ्गार में
६/४	८३५	कानड़ो शुद्ध तथा अडाणो	सब	५-८ पहर रात	सं०	ग म ध नी	रे		स्वर बहुत छूटे वा फैलकर लगते हैं।
		कानड़ादरवारी	सब	५—६	सं०	ग म ध नी	रे		इसमें स्वर आरोही अवरोही में भरे लगते हैं।

संख्या	पृष्ठ	नाम	ऋतु	समय	जाति	उतरेस्वर	चढेस्वर	व.जित स्वर	विशेष
७/६	८४१	केदारो	सब	५—८	सं०	म	रे-ग-म-धनी		वैराग्य-शृङ्गार तथा रासविलास में।
८/२०	९०३	गौंड (मलार)	वर्षा	९-६	सं०	म-नी-ग	रे-ग-ध-नी		ख़याली में चढानि लगता है।
९/१	८२१	गौरी	सब	साय़ं	सं०	रे-ध-	ग-म-नी		
१०/१७	८९४	जेजेवंती	सब	१ रात	सं०	ग-म-नी	रे—ध—		
११/१३	८६६	टोडी	सब	१—२	सं०	रे-ग-ध	म—नी—		कई प्रकार की टोडी है।
१२/११	८५५	देवगन्धार	सब	१ – २	सं०	म—नी—	रे-ग-ध-नी		शांतरस—योग—
१३/२७	९३०	धनाश्री	सब	३ – ४	सं०	रे—ध-	ग-म-नी		शांतरस—
१४/२१	९०६	नट (नारायण)	सब	५ – ६	षाड़व	म	ग-ध-नी	रे	
		छायानट	सब	५ – ६	सं०	म	रे ग म ध नी	०	छाया और नट का मेल।
१५/८	८४६	भरव	सब	प्रभात	सं०	रे-म-ध-	ग नी—		शांतरस-वैराग्य—
		भैरवी	सब	१ – २	सं०	सब	०		कोई पद इसमें भी गाते हैं। दैवीराग है।
१६/७	८४३	मारू	सब	३—४	षाड़व	रे	ग-म-ध-नी	प	सूरदासजीको भी मारूराग प्रिय था।
१७/२	८३०	माली गौडो	सब	३—४	सं०	रे-ध—	ग-म-ध-नी	०	
१८/२३	९१५	मलार (मेघ)	वर्षा	१—६	औडव	नी-म	रे	ग–ध	कई प्रकार की हैं।
१९/१८	८९५	रामगरी	सब	१—२	सं०	सब	ग़	०	कहीं रामगिरी भी लिखा मिलता है।

संख्या	पृष्ठ	नाम	ऋतु	समय	जाति	उतरेस्वर	चढ़ेस्वर	वर्जित स्वर	विशेप
२०/६	८५०	ललित	सब	प्रभात	पाडव	रे-म-ध	ग-म-नी	प	
२१/१८	८६६	वसन्त खयाली	शीत	४-६ दिन	सं०	रे-म-ध-	ग-म-नी-	०	
		वसन्त (वहार)	„	वा रात	„	ग-म-नी	रे—ध—		
२२/१२	८५०	विलावल शुद्ध	सब	२ दिनके	सं०	म्	रेगम्धनी		कई प्रकार की हैं।
२३/५	८३७	विहागड़ों	सब	५—७	सं०	म—	रे-ग-म्-धनी		
२४/२६	६२६	संकराभरन	सब	५—६	सं०	०	रे-ग-म्-धनी		
२५/२२	६०८	सारंग (शुद्ध)	ग्रीष्म	२॥ प०	पाडव	म—	रे-ध् – नी-	ग	सारंग कई प्रकार के होते हैं।
२६/१५	८७६	सिंधूड़ो	सब	३॥ पहर	सं०	ग-म-नी	रे—ध—	०	वीररस प्रधान—
२७/१६	८८३	सोरठ	सब	५—६	सं०	म-नी—	रे-ग्-ध-नी		शांतरस और विरह कई प्रकार की है।
		देस	सब	५-६ रात	सं०	म—	रे-ग-ध-नी		शांत-शृङ्गार और विरह।

नोट—इस प्रकार अतीव संक्षेप में रागों की तालिका (कुञ्जी) लिखी गई। स्थानाभाव से अधिक नहीं लिखी जा सकी है। पाठक स्वयम् विचारें और रागों का जानकारों से अनुभव और अभ्यास करें, केवल वे जो गायन के रसिक वा इच्छुक हैं। पदों के भावों का आनन्द ही प्रधान है! गाने से भाव सोना सुगन्ध हो जाते हैं। सो ही भावुकों से छिपा नहीं है।

परिशिष्ट (च)

सुन्दरदासजी का हिन्दी-साहित्य में स्थान।

विज्ञपाठक स्वामी सुन्दरदासजी के ग्रन्थों को अवलोकन करके उनका स्थान, हिन्दी भाषा के साहित्य, साधु महात्माओं की रचना-भंडार वा काव्य निर्माण-कला-काण्ड में, कौन सा है?—इस बात को स्वयम् ही विचार ले सकेंगे। वैसे हाथ कंगण को आरसी की क्या अपेक्षा? तब भी, इस प्रसंग में कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत होती है। कुछ विद्वानों ने उन पर अपनी २ सम्मतियां अपने २ ढंग पर दी भी हैं। परन्तु हमारे जो विचार हैं उनको स्पष्टतया हमें भी प्रगट कर देने का अधिकार ही नहीं है अपितु उसकी आवश्यकता भी है। उस विषय में हमने एक लेख कलकत्ते से प्रकाशित "राजस्थान" (वर्ष २—अंक १) में प्रकाशित कराया था। उसही के अनुसार अतिसंक्षेप से यहां कहा जायगा।

(१) प्रथम हम उन कतिपय विद्वानों की सम्मतियां यहां संक्षेप में देते हैं जिन्होंने सुन्दरदासजी पर अपने ग्रन्थों में दी है—और साथ ही उन पर अपने विचार लिखते हैं।

(क) सब से बढ़ कर सम्मति पं० चन्द्रिकाप्रसादजी रायबहादुर ने निज सम्पादित "पंचेंद्रिय चरित्र" की भूमिका में, दी है। उसका सार यह है:—

"महात्मा सुन्दरदासजी उत्तम श्रेणी के कवि हैं, हिंदी के कवियों में सुन्दरदासजी को दादूपन्थी सुजन सर्वशिरोमणि मानते हैं। शायद हिन्दी के अन्य रसिक इस पदवी को गुसांई तुलसीदासजी ही को देंगे, पर मेरी अल्पबुद्धि में वे दोनों महात्मा बराबरी की पदवी पाने के योग्य हैं।··· जब सुन्दरदासजी के ग्रन्थ अच्छी तरह प्रचलित हो जांयगे तब उनकी

भी कीर्त्ति हिन्दी रसिकों में उसी प्रकार फैल जायगी। सुन्दरदासजी केवल कवि ही नहीं थे, किन्तु पट्शास्त्रों के पूरे ज्ञाता थे—सांख्य, योग, और वेदान्त के अद्वैतवाद में अति निपुण थे। कर्म-योग, भक्ति-योग, और ज्ञान-योग जिस प्रकार से इन्होंने पहिले पहल हिन्दी में दरसाया है, उस प्रकार किसी दूसरे ग्रन्थकार ने नहीं किया। इसलिये शास्त्रीय विषयों के हिंदी-ग्रन्थाकारों में महात्मा सुन्दरदासजी का आसन सबसे प्रथम है"।

पं० चंद्रिकाप्रसादजी ने स्वामी सुन्दरदासजी के बारे में और सब लिखा सो ठीक और यथार्थ है। परन्तु इन दो बातों से हम सहमत नहीं हो सकते हैं: (१) कवि सम्राट् गोसांई तुलसीदासजी के साथ बराबरी की पदवी के योग्य कहना। (२) हिंदी-ग्रन्थकारों में महात्मा सुं० दा० का आसन सबसे प्रथम है।

प्रथम के बारे में हम कहेंगे कि गुसांई तुलसीदासजी के समान हिन्दी साहित्य और भारतवर्ष ही क्या इस संसार भर में—केवल सूरदासजी को छोड़ कर—कोई कवि ऐसा नहीं हुआ (और न कभी आगे होगा) जो गो० तुलसीदासजी से बराबरी की पदवी पाने के योग्य हो। हम सुन्दरदासजी के युवावस्था से भक्त हैं और इनके सब ग्रन्थों का हमने बड़े भाव चाव और प्रेम से अध्ययन किया है, तब भी इस बात को कभी मानने को तयार नहीं हैं कि वे तुलसीदासजी के समकक्ष थे। तुलसीदासजी लोकमान्य, कवि समाज-मान्य, रसिकमण्डल मान्य, महाकवियों के सिरताज, कविगण-मौलिमण्डित-पादपीठ कवि-चक्रवर्त्ती थे। उनकी निष्पक्ष होकर मुक्तकण्ठ से संसार के सारे साहित्य-धुरन्धरों ने, क्या हमारे देश के और क्या अन्य देश के, इतनी बड़ाई की है कि जिसको यहां लिखने की गुञ्जाइश ही नहीं है। तथापि थोड़ा देते हैं:—

"सूर सूर तुलसी शशी उड़गण कविगण और।
अब के कवि खद्योत हैं चमकहिं ठौर हि ठौर॥ १॥

सूर सूर तुलसी शशी उड़गण केशवदास।
इतर कवी खद्योत हैं चमकत आसहि पास॥ २॥
तुलसी रवि अरु सूर शशि उडगण कालीदास।
अन्य कवी खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास॥ ३॥
"एक लहैं तप पुञ्जन के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गुसांई" ॥३॥
"आनंद-कानने ह्यस्मिन् तुलसी जंगमस्तरुः।
कविता मञ्जरी यस्य राम–भ्रमर–भूषिता" ॥ ४ ॥
"जैं जैं श्री तुलसी तरु जंगम राजई।
आनंद वन के मांहि प्रगट छवि छाजई॥
कविता मंजरि सुन्दर साजैं। राम भ्रमर रमि रह्यो तिहिं काजैं" ॥५॥

अर्थात् कविरूपी चलते-फिरते कल्पवृक्ष की स्वर्गीय सौरभ मकरन्द पर लोलुप होकर स्वयम् श्री रामचन्द्र महाराज भ्रमर की तरह मोहित होते हैं – इसके सुरस, सुन्दर, माधुर्य-प्रसाद-गुण-गुम्फित, पराभक्ति रस-रहस्य रंग रजित कविता-कलाप की किस मानुषीय जिव्हा से प्रशंसा हो सकती है। जिसके अक्षर, शब्द, वाक्य, पाद, छंद, प्रकरण, अलंकार, भाव, रस और वर्णन आदिक अद्वितीय हैं। जिस तुलसीदास की संसार में कोई कवि बराबरी नहीं कर सका उसकी बराबर सुन्दरदासजी को ले जाकर बिठाना केवल निजभावना की अतिगति मात्र ही है। इसमें कोई युक्ति प्रमाणादि ऐसे नहीं पण्डितजी ने दिये हैं कि जिससे उनकी उक्ति को केवल अतिशयोक्ति कह कर हम और कुछ कह सकेंगे। जिसकी रामायण को विदेशी अन्य धर्म्मावलम्बी पण्डितों ने उत्तर भारत की "बाइबिल"— ऐसा नाम देकर सम्मान किया है। जो भाषा-भाषियों में वेद के समान मान्य और मोक्षदाता तथा प्रमाण मानी जाती है। किसी कवि ने तुलसी-दासजी की कविता का गुण और स्वरूप कैसा अच्छा दरसाया है कि जिससे उसकी वास्तविकता, उच्चता और उपयोगिता का सहज ही अनु-मान और भान हो जाता है: –

"सरिजात संचित असंचितहु विसरिजात,
करिजात भोग भवबन्धन कतरिजात।
तरिजात कामकरि वरिजात कोपकरि,
कर्म कील काल तीन कण्टक भमरिजात॥
दुरिजात दारिद दुकाल हू निसरिजात,
जरिजात दम्भ दोष दुःखहू दररिजात।
भरिजात भागभाल किंकर गुविंद त्यौंही,
ज्यौंही तुलसी की कविताई पै नजरिजात" ॥ १ ॥

हाँ, सुन्दरदासजी ने काशी में बहुत वर्षों रह कर तुलसीदासजी के दर्शन वा सत्संग किया होगा, और उनकी काव्य माधुरी का आस्वादन लेकर अपने काव्य में मधुरता अवश्य भरी होगी ऐसा तो प्रतीत होता है। परंतु बराबरी की पदवी का दिया जाना किसी विचार से माना नहीं जा सकता है।

दूसरी बात पर हम कहेंगे कि सुन्दरदासजी से बढ़ कर तुलसीदासजी, सूरदासजी, केशवदासजी तो हैं ही परंतु अध्यात्म, पराभक्ति, योग और आत्मानंद रहस्यादि में गोरख और कबीर सर्वोपरि माने जाते हैं, और मानने के योग्य वे अवश्य ही हैं। इनके अनंतर सुन्दरदासजी के गुरु दादूदयालजी, जिनसे सुन्दरदासजी ने ज्ञान सीखा और जिनकी वाणी और पद इतने सरस, मृदुल, कोमल, आनंदामृत भरे हैं कि उनकी समता कोई साधु-काव्य सहसा कर नहीं सकता, ऐसे हैं कि स्वयम् सुन्दरदासजी ने उनको सर्वोपरि माना है और अपने ग्रन्थों को मानों उनके वचन की टीका वा व्याख्या वा प्रसाद मात्र कहा है।

(ख) भाषा साहित्य के महारथी, उच्च लेखक और गहरे विद्वान मिश्रबन्धुओं ने स्वामी सुन्दरदासजी की बहुत प्रशंसा अपने रचे "विनोद" में की है, यद्यपि स्वामीजी के समस्त ग्रन्थ शुद्ध सुन्दर रूप में उनके अवलोकन में नहीं आये थे। सुन्दरदासजी को उन्होंने (१) उत्कृष्टकवि

(पृ० १०३ ।) (२) दादूपंथी में "सर्वोत्तम" (पृ० १२०) । (३) 'सुकवि' (पृ० १२४-२६) । (४) "हिंदी के पूर्वालंकृत भाग को पुनीत करने वाला" और "दादूपंथ को उन्नत करनेवाला" (पृ० ४२७ भाग २) बताया है। और (पृ० ४३१ पर) कहा है कि सुन्दर भक्त-कवियों में श्रेष्ठ, और भाषा को अलंकृत करने वाले थे तथा भाषा में लालित्य को भाव बिगाड़ कर नहीं लाते थे" । इत्यादि ।

परंतु वर्णन में (दूसरों की नक़ल करके) "ढूसर लिख डाला है और ग्रन्थों के नामादि देने में गड़बड़ हो गई है ।

परंतु सबसे अधिक भूल यह हुई है कि सुन्दरदासजी को "तोप" कवि की श्रेणी में ले जाकर बिठा दिया । तोप कवि एक साधारण शृंगारी कविमात्र है। इतने बड़े महात्मा कवि सुन्दरदासजी को ऐसे कवि के जोड़ बिठाना किसी भी हेतु से संगत और युक्तियुक्त नहीं है। उस हमारे लेख में हमने इसको भलीभांति प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि सुन्दरदासजी का दर्जा बहुत ऊँचा है। सुन्दरदासजी ने ४२ ग्रन्थ, शांतरस प्रधान, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, नीति, धर्मोपदेश आदि विषयों से भरपूर, दार्शनिक तत्वों से सराबोर, बहुत परिष्कृत, सुललित, सुन्दर काव्य-चातुरी से अलंकृत सरस-सुकर—सांद्रमंजुल—उज्ज्वल—कांत—मनोमोदकारी कविता में, रचे हैं। तोपनिधि की फीकी कविता सुन्दरदासजी की सुमधुर सरस सारगर्भित गहन विषय-परिप्लुत कविता के सामने कुछ भी मेलखाने योग्य नहीं ठहर सकती है।

इनके अतिरिक्त पं० पिताम्बरजी ने "सुन्दर काव्य" की भूमिका में सुन्दरदासजी की बहुत श्लाघा की है। "ज्ञानसागर प्रेस" बम्बई से प्रकाशित "सुन्दर-काव्य" की भूमिका में भी सुन्दरदासजी के सम्बन्ध में अच्छा ही लिखा है। और "तत्व-विवेचक प्रेस बम्बई" की भूमिका में भी कुछ ठीक ही लिखा है। इलाहाबाद के "बेल्वेडीयर प्रेस" की "दादू-वाणी" की भूमिका में जो दोष भरी बातें लिखीं थीं उनकी तो दुरस्ती

हमने बहुत पहिले कर दी थी सो "जीवन-चरित्र" में पृ० १५५---१५८ पर देखें। और जो श्लाघा स्वामीजी की की है सो कुछ अंश में ठीक है। इसही तरह अन्य विद्वानों ने भी लिखा है। पादरी ग्रीव्स, पादरी केई, पादरी डाक्टर फार्कहार साहिबान ने भी स्वामी सुन्दरदासजी की अपने ग्रन्थों में प्रसंशा लिखी है। जो हम जीवन-चरित्र तथा भूमिका में लिख चुके हैं। परन्तु इनमें किसी ने भी स्वामीजी का स्थान हिन्दी-साहित्य में निर्णीत नहीं किया। अब, जब कि स्वामीजी के समग्र ग्रन्थ प्राप्त हो गये, उनके ऊपर आवश्यक यथासम्भव टीका-टिप्पणी भी हो गई, खोज के साथ जीवन-चरित्र भी लिखा गया, उनके ग्रन्थों का विवरण और महत्व भी भूमिका में दिग्दर्शन के रूप में प्रदर्शित किया गया, तो अन्य समानाधिकरण के कवि महात्माओं के ग्रन्थों के साथ मीलान करने तथा समीक्षा वा समालोचना के आधार पर तुलनात्मक तत्वानुसन्धान से हमको उचित है कि "स्वामी सुन्दरदासजी का हिन्दी-साहित्य में स्थान" निर्धारित करें। हमने अपने उक्त लेख में जो स्थान निर्णय करने का साहस किया, सोही यहां दिखा देते हैं:—सरस्वती के विशाल दरबार में, भारत-भारती की राजसभा में, हिन्दी-साहित्य के समर्थ शक्तिशाली-पदप्राप्त महारथियों की भव्य-मण्डली में, इन स्वामी-कवि शिरोमणि—महात्मा सुन्दरदासजी की कुरसी, उनका आसन, उनकी बैठक इस प्रकार है:—

(१) सर्व प्रथम तो महात्मा—कवि सम्राट्—भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी।

(२) और महामहिम श्री रसिक-शिरोमणि अनन्य भक्त श्री सूरदासजी।

(३) ज्ञानकोटि की उच्चता, योगमार्ग की परमोत्तम कर्त्तव्यशील पारंगतता योगीश्वर नाथ गणनाथ श्री गोरक्षनाथजी।

(४) अध्यात्मतत्व के रहस्यों की पहुंच में अत्युन्नत पदप्राप्त, सर्वश्रेष्ट सत्य के खोजी, उत्तम सुन्दर स्पष्ट गम्भीर हृदयस्पर्शी कविता में गहन

पदार्थों को लोकोपकार की उदारता के साथ दर्पणवत, सूर्य के प्रकाश के समान, प्रतिभासित करनेवाले महात्मा पहुंचवान श्री कवीरजी।

(५) काव्य की आचार्यता की पदवी-प्राप्त, प्रधान महाकवि, श्री रामचन्द्र के गुणगान करने में तुलसीदासजी की समता रखनेवाले प्रशस्त भक्त, और ज्ञान के प्रकरणों को, शृङ्गारी कविता-परायण होकर भी, वहुत मर्मज्ञता के साथ परिष्कृत, टकसाली कविता में वढ़िया रचना करनेवाले श्री केशवदासजी।

(६) अतिमिष्ट अमृतोपम वाणी में अध्यात्म के रहस्यों को, ज्ञान के परमोत्कृष्ट तत्वों को, लोकप्रिय सुन्दर सरल सुरस काव्य (कविता) में रुचिकररूप में, प्रगट करनेवाले, परमदयालु, महात्मा- स्वयम् सुन्दरदासजी के गुरू श्री दादूदयालजी हैं।

(७) लोकप्रिय, अपने रंग-ढंग के "आप अकेले", कठिन विषयों को सरस काव्य में माखन-मिश्री कर देनेवाले, भक्ति-ज्ञान मिश्रित उच्च विचारों को भाषा में विभूषित करनेवाले, कविश्रेष्ट महात्मा कविवर स्वामी श्री सुन्दरदासजी विराजमान होते हैं।

यह उच्च सिंहासन उनका अधिकार प्राप्त है। भक्ति और उच्चतम कविता में सर्वोपरि तुलसी-सूर-केशव का त्रिक और योग-ज्ञान-वैराग्य का सर्वोच्चस्थान प्राप्त गोरख-कवीर-दादू का त्रिक और इन छहों के पीछे सुन्दर। तुलसी १ सूर २ गोरक्ष ३ कवीर ४ केशव ५ दादू ६ सुन्दर ७ इस प्रकार इन सातों के उच्चासन हैं। यों स्वामी सुन्दरदासजी का स्थान उभय रीत्या स्थिर होता है। यह किसी मनुष्य का दिया नहीं है, यह तो ईश्वर के घरसे, गीर्वाण देवी के दरवार में, आपही दैवीगति और दिव्य-विभूति से प्राप्त है। हमारा काम उसको प्रगट कर देने का रहा। "सुन्दरसार" की भूमिका में, वहुत वर्षों पहिले, हमने प्रगट कर दिया था कि सुन्दरदासजी को तोप की श्रेणी में रखना पर्याप्त नहीं है। इनका स्थान विद्वज्जन समय पाकर आपही निर्णय करेंगे। आज वह समय आ गया।

स्वामीजी के समस्त ग्रन्थ प्रामाणिकता से लोक के सामने प्रकाशित हो गये। अब इस पद वा स्थान वा आसन को संसार के सामने न बताया जायगा तो फिर कब ?

हमने अपने उक्त लेख के अंत में लिखा था कि—इस तोष की श्रेणी में रखने का पूर्वनिर्णय, स्वल्प सामग्री की प्राप्ति के कारण ही, वे हिन्दी साहित्य के महारथी, परमोत्तम रचनाओं के धनी, हिन्दी के उन्नायक नायकत्रय कर सके हैं। जब उनके करकमलों में, स्वामीजी के समस्त ग्रन्थ—टीका-टिप्पण आदि से सुसज्जित रूप में "राजस्थान रिसर्च सुसाइटी" कलकत्ता के सकाश से प्रकाश पाकर—पहुंच जांयगे, और वे अपने कमल-नयनों द्वारा निज हृदय-कमल पर उन ग्रन्थों के (काव्य, अर्थ चमत्कारादि के) गौरव को अंकित कर लैंगे - तब भरोसा और सदाशा है कि वे स्वयम् स्वामीजी को उनके योग्य यथार्थ और यथोचित स्थान दान देने में समर्थ हो जांयगे। हमारी बुद्धि में जो निर्धार प्रादुर्भूत हुआ है—सप्तम स्थान – उन छह महात्माओं के पीछे – वही उत्तमोत्तम समझा जाने के योग्य है। आगे सहृदय, न्याय-परायण, सत्यप्रेमी, ज्ञान-गरिष्ट, साहित्यसेवी सज्जन विद्वज्जन हमारे इस निर्णय को निश्चित निर्णय सम्भवतः समझैंगे या फेर फार करैंगे यह हम नहीं कह सकते।

यह हमारा मुद्रित लेख उक्त विद्वान मिश्रबन्धुओं के अवलोकन में आया। तो उन्होंने कृपाकर उस पर अपने बहुमूल्य जो विचार (अपने कृपापत्र ता० १४-११-३६ को पत्र में १०५—गोलागंज—लखनऊ से) भेजे, उसके लिए हम कृतज्ञता प्रकाश करते हैं और हम साररूप में उस पत्र का अंश नीचे (उनकी आज्ञा से) देते हैं:—"प्रिय महाशय—नमस्कार—आपका भेजा हुआ लेख "राजस्थान" वर्ष २ अंक १ - "हिंदी साहित्य में सुन्दरदासजी का स्थान" ध्यानपूर्वक पढ़ा। आपने हमारे विचारों को कई बार सादर उद्धृत किया है, तथा मतभेद के स्थानों पर भी औचित्य की सीमा के आगे नहीं गमन किया है। एतदर्थ अनेक

धन्यवाद। हम लोगों ने सुन्दरदास को तोप की श्रेणी में रक्खा है। इससे जो आप प्रबल असन्तोष प्रगट करते हैं, सो आपके दृष्टिकोण के अनुसार योग्य ही है। कहां एक साधारण शृंगारी कवि की रचना, और कहां भक्त-शिरोमणि सुन्दरदासजी। यही आपका विचार है। किन्तु साहित्य में उपमा का एक ही अंग लिया जाता है।...श्रेणी-निर्धार में केवल साहित्यिक गौरव पर विचार हुआ है, विषय पर नहीं।.. जो आप तुलसी, सूर, गोरखनाथ, कबीर, केशव, दादू और सुन्दर को एक दूसरे के पीछे रखते हैं सो भक्तिपक्ष की ओर का निर्णय है, शुद्ध साहित्य का नहीं।... आपका तुलनात्मक विचार युक्तिपूर्ण है, अथच अतिशयोक्ति से दूर रह कर औचित्य को लिये हुये चलता है। आप सुन्दरदास में धार्मिक विषयों का अच्छा विश्लेषण पाते हैं। यह बात धार्मिक दृष्टि से मान्य भी है। परन्तु आजकल तक जो दार्शनिक उन्नति संसार ने कर ली है, उसके विचार से अब इनकी रचनाएं अपनी बहुत कुछ लोकमान्यता खो देती हैं। इनके विचार दादूपंथ एवं हिन्दू दर्शनों पर ही चलते हैं, सांसारिक दार्शनिक उन्नति को भी दिखलाते हुये नहीं।......हम लोग केवल साहित्यिक दृष्टि से समालोचना करके अपने ग्रन्थों में ऐसे कथन नहीं करते, और केवल उस दृष्टि से सुन्दरदास का अच्छा मान करते हैं।...आपका लेख पुष्ट और सुपाठ्य है।—भवदीय—मिश्रबंधुत्रय—ह० शुकदेवविहारी मिश्र"।

इसके उत्तर में हमने अपना पत्र १७-११-३६ का भेजा उसमें धन्यवाद, अभिवादनादि के अनंतर हमने लिखा है उसही का अंश देते हैं— आपके इस लिखने को समीचीन मानता हूं कि—श्रेणी निर्धार में केवल साहित्यिक गौरव परही विचार होता है—इसका विचार विषय पर नहीं। परंतु आपके इसही सिद्धांत से सुन्दरदासजी तोप की श्रेणी से मुक्त हो जाते हैं। जब "सुन्दरग्रन्थावली" को आप पूर्ण अवलोकन और अध्ययन कर लेंगे, जीवन-चरित्रादि देख लेंगे, और उनका काव्य-वैभव सर्वांश में दृष्टिगत हो जायगा, तब आप स्वयम् उनको, उनकी काव्योत्कर्षता के

कारण, ऊंचा स्थान प्रदान कर देंगे।...जो निर्णय मैंने दिया है वह वर्षों के अध्ययन और परिश्रम से निकाला गया है। कुछ नायिका भेद, शृंगार रस, शब्दाडंबर में कविता हो वही अच्छी नहीं होती है. अपितु शृंगारादि रसों के अतिरिक्त शांतरस में भी उत्तमोत्तम कविता होती है—यही स्वामीजीने कर दिखाया है। वे भाषा, पिंगल, अलंकार, सुन्दर सुमधुर काव्य रचना करने पर पूर्ण अधिकार रखते थे—काव्यांगों को अच्छा निभाया है। सबको पढ़ने से यह बात हृदयंगम हो जायगी और आप मुझ से भी बढ़ कर—स्यात् चंद्रिकाप्रसादजी की तरह—निर्णय करने को तत्पर हो जायंगे।...

रहा सुन्दरदासजी की रचना का आजकल के दार्शनिक उन्नति के विचारों से मिलाना वा उनसे हीन मानना—यह बात साहित्यपक्ष से भिन्न है। कबीर की कविता ने महामना रवीन्द्र को कवि सम्राट् की पदवी दी, वही कबीर नवरत्नों में किन कारणों से समझा जाने लगा ?—यह विचार काव्य के नाते है या दार्शनिक विषय के नाते ?—सो ही विचारणीय है। उनही कारणों से सुन्दरदासजी का आसन कबीर से दो तीन कुर्सियों के नीचे प्रतिष्टा पाता है। फिर भी हम कहेंगे कि सुन्दरदास का सा सुन्दर, सरस, सुमधुर काव्य कबीर का भी नहीं है। रहा दार्शनिकता का विषय सो हमारा वेदांत-दर्शन सर्वशिरोमणि और मानुपीय विचार की पराकाष्ठा माना गया है। पाश्चात्य दर्शन इस स्थल पर हमसे आगे नहीं बढ़ा है—वह सांइस में बहुत बढ़ गया है यह बात मान्य है। गोरखनाथ को कबीर से हीन मानना उचित नहीं। उसके सब ग्रन्थ उपलब्ध देखने विचारने से यह भ्रांति मिट जायगी। गोरखनाथ ही का यह प्रताप और वैभव है—कबीर, नानक इत्यादि में उनकी ज्ञानधारा और वचनशैली प्रवाहित है, फिर दादू और सुन्दरदास की तो बात ही क्या है वे तो उसही के अध्यात्मिक रहस्यादि के अनुसरणी हैं"।...इत्यादि हमने मिश्रबन्धुओं को लिखा था, सो तदनुसार संक्षेप में यहां दिया है।

परिशिष्ट (छ)

सहायक ग्रन्थावली-सूची ।

जिन-जिन ग्रन्थादि से मूल वा टीका तथा भूमिका एवम् जीवन-चरित्र अपितु परिशिष्टादि में वहुत वा थोड़ी सहायता मिली है, जिनको विचार-विचार कर अर्थ वा अभिप्राय को खोला है, जिनके अंश उद्धृत किये हैं वा अन्य प्रकार से उनसे कोई भी काम लिया, उन सबकी नामावली, पूर्ण कृतज्ञता के साथ, यहां देते हैं। जिन पुरुषों,संत-महंतों, कवियों,लेखकों आदिक से सहायता मिली है उनके शुभनाम "कृतज्ञता प्रकाशन" परिशिष्ट में कृतज्ञता पूर्वक दे दिये हैं।—

उपनिषद्

(दर्शन-वेदान्त)

(१) कठोपनिषद् (२) कौशीतकी उपनिषद् (३) माण्डूक उपनिषद् (४) तैत्तिरीयोपनिषद् (५) छान्दोग्य उपनिषद् (६) मुण्डकोपनिषद् (७) सर्वोपनिषद्-भाषा ।—चरणदासजी (८) अष्टोपनिषद्-भाषा। (९) अष्टादशोपनिषद्—मूल (१०) दृपोपनिवद् (११) ईशोपनिषद् ।

दर्शन

(१) सर्व दर्शन संग्रह (२) औलुक्य दर्शन ।

वेदान्त

(वेदान्त-दर्शन)

(१) ब्रह्मसूत्र सटीक—व्यासदेव (२) शांकर भाष्य— शंकराचार्य (३) महावाक्य विवेक—शंकराचार्य (४) श्री गौडपादाचार्य की कारिका—गौड़पादाचार्य (५) पंचदशी—सायण माधवाचार्य (६) ऐन

साहिब की कुण्डलिया—ऐन साहिब (७) अष्टावक्र गी(८) योगवाशिष्ट—वशिष्ट मुनि (९) विचार सागर-(१०) वृत्ति प्रभाकर—निश्चलदास (११) भगवद्गीता—व्यासदेव (१२) अमृतधारा वेदान्त—भगवानदास निरंजनी सं० १७२८ की रचना (१३) रघुवरचित्त विलास—रघुवरदास जयपुरवाले सं० १९७४ (१४) अभेद पचासा अनन्य कवि (१५) भिक्षु गीता।

सांख्य

(सांख्य-दर्शन)

(१) सांख्यसूत्र – कपिलमुनि (२) सांख्यकारिका—काशिकृत्स्न (३) सांख्यतत्वकौमुदी (४) पंची करण।

योग

(योग-दर्शन)

(१) हठयोग प्रदीपिका सटीक (२) गोरक्षपद्धति सटीक - गोरक्षनाथ। (३) पातंजलयोगसूत्र सटीक – मुनि पतंजलि (४) घेरण्ड संहिता - घेरंड सिद्ध (५) योगचिन्तामणि (६) त्रिपुरसार समुच्चय (७) शिवसंहिता (८) शिव स्वरोदय (९) दत्तात्रेय संहिता (१०) योगाङ्क कल्याणपत्रका (११) गोरखनाथजी की शब्दी (१२) गोरखनाथजी का छन्द (१३) गोरखनाथजी का आत्मबोध ग्रन्थ (१४) गोरखनाथजी का दयाबोध ग्रन्थ।

न्याय

(न्याय-दर्शन)

(१) वैशेषिक दर्शन सटीक—कणाद महामुनि।

भक्ति

(भक्ति-दर्शन)

(१) नारद पांचरात्र—नारद मुनि (२) शाण्डिल्य सूत्र—शाण्डिल्य मुनि (३) भक्ति तरंगिणी।

पुराण

(१) पद्मपुराण - व्यासदेव (२) श्रीमद्भागवत — व्यासदेव (३) गरुड़ पुराण - व्यासदेव (४) ब्रह्मवैवर्त्त पुराण—व्यासदेव।

इतिहास

(१) मिश्रबन्धु विनोद—मिश्रबन्धु (२) सीकर का इतिहास—पं० झावरमल्ल रचित (३) नया शिक्षादर्पण—रामप्रताप भुवाल (४) फ़ख़रुत्तवारीख़—मुहम्मद रमज़ान (५) इतिहास राजस्थान—रत्नू (६) जरनल ए० सु० बंगाल जिल्द ३१ (७) जाति भास्कर (८) खंडेलवाल वैश्योत्पत्ति (९) खंडेलवाल हितैषी मासिक पत्र (१०) जाति अन्वेषण (११) शिखरवंशोत्पत्ति पीढी वार्त्तिक—कविया गोपाल (१२) खंडेलवाल हितैषी पत्र—आगरा (१३) राजस्थान त्रैमासिक पत्र—कलकत्ता (१४) हिन्दीनवरत्न—मिश्रबन्धु (१५) शिवसिंह सरोज—नवलकिशोर प्रेस सन १८६६ (१६) फतहपुर की तवारीख़ (१७) महाभारत—व्यासदेव (१८) रामायण बाल्मीकि-भाषा—बाल्मीकि मुनि (१९) A Sketch of Hindi Literature Rev. E. Grieves. (२०) History of Hindi Literature—Rev. F. G. Keay (२१) Religious Literature of India—Rev. Dr. J. N. Farquihar. (२२) Mysticism of Modern India—Dr. Kshiti Mohan Sen, D. Litt. (२३) Nirgun School of Hindi Poetry—Dr. Pt. Pitambar Dutt, D. Litt. (२४) जयपुर को वंशावली—(ह० लि०) (२५) लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इण्डिया।

स्मृति

(१) मनुस्मृति सटीक—मनु महर्षि (२) याज्ञवल्क्य स्मृति सटीक—

याज्ञवल्क्य (३) अत्रिस्मृति सटीक—अत्रि (४) दक्षस्मृति सटीक—दक्षमुनि ।

हस्तलिखित पुस्तकें

(१) भक्तनाम सुमरणी—मंगलदास चारण (२) चत्रदास का प्रणाली छन्द—चत्रदास (३) प्राचीन मूल गुटका (क)—सं० १७४२ का लिखा (४) सुन्दरदासजी के ग्रन्थ (खुले पत्रे) (ख) (५) स्वर्गीय महन्त गंगारामजी से प्राप्त लिखित सामग्री और मौखिक आख्यानादि । (६) विपर्यय अंग की टीकाएं फतेपुर की । (७) जन्मलीला दादूदयाल की—जनगोपाल (८) जन्मलीला दादूदयाल की (संतगुण सागर)—माधोदास (९) महन्तलीला प्रदीप—आत्मविहारी (१०) ऐनानन्द सागर (वेदान्त)—महात्मा फकीर ऐनानन्द (११) सुन्दरोदय (साधु-काव्य) साधु मंगलरामजी (१२) स्वामी ख्यालीरामजी के छन्द वा वातें (सा० का०)—ख्यालीरामजी (१३) जनगोपालजी का पद—ह० लि० निजी संग्रह ।

शिलालेख

(१) सांगानेर में सुन्दरदासजी की समाधि का शिलालेख (२) गांव मोर के शिलालेख (३) प्रागदासजी का शिलालेख—फतहपुर का (४) सन्तदासजी का शिलालेख—फतहपुर का ।

पत्र

(१) फतहपुर के पत्र और लेखादि (२) सुन्दरदासजी मोहन-दासजी के पत्र (३) मुन्शी देवीप्रसादजी के पत्र (४) म० म० रा० व० पं० गौरीशंकरजी ओझा के पत्र (५) नाज़िम अब्दुर्रहमानजी के पत्र (६) मोलवी मु० रमज़ानजी के पत्र (७) सेठ रामदयालुजी के पत्र (८) लाला आनन्दीलालजी के पत्र (९) पु० जोशी वैंकटलालजी के

पत्र (१०) बा० रघुनाथप्रसादजी के पत्र (११) बा० भगवतीप्रसादजी बिसेन के पत्र (१२) म० ख्यालीरामजी के पत्र (१३) अन्य सज्जनों के कई पत्र।

चरित्र

(१) ध्रुव चरित्र—जनगोपाल ह० लि० (२) प्रह्लाद चरित्र—जनगोपाल ह० लि० (३) नाभाजी की भक्तमाल—नाभाजीकृत सटीक सवार्तिक (प्रियादासजी—रामरसरंगमणि नवलकिशोर प्रेस लखनऊ) (४) राघवदासजी की भक्तमाल—राघवदासजी ह० लि० (५) नानकप्रकाश—भाई सन्तोषसिंह (६) सूरसागर की भूमिका—बाबू राधाकृष्ण दास (७) सुन्दरविलास की भूमिका—बालेश्वरप्रसाद सं० (बेल्वेडियर प्रेस इलाहाबाद) (८) सन्तबाणी संग्रह की भूमिका—(बेल्वेडियर प्रेस इलाहाबाद की)।

संगीत

(१) ब्रजनिधि ग्रन्थावली (काव्य संगीत)—ब्रजनिधिजी। (२) संगीत राग कल्पद्रुम—रागसागरजी। १८४६ कलकत्ता की छपी (३) वृहद्रागरत्नाकर—भक्तराम १६६५ वेंकटेश्वर प्रेस का छपा (४) वृहद् भजनमाला—जगदीश्वर प्रेस बम्बई। (५) गोविन्दलहरी—काशी भारतजीवन प्रेस। (६) सांगीत पंचरत्न—जोशी। (७) सांगीतादित्य—आदित्यराम भट्ट (८) सांगीत सुदर्शन—सुदर्शनाचार्य (९) संगीत रत्नाकर (१०) हियहुलास और रागमाला (११) विनय पत्रिका—तुलसीदासजी। (१२) सूरदास पदावली—सूरदासजी।

कोश

(१) हिन्दी शब्दसागर—ना० प्र० सभा काशी। (२) आप्टे की डिक्शनेरी (संस्कृत से अंग्रेजी)—आप्टे। (३) आप्टे की डिक्शनेरी (अंग्रेजी से संस्कृत)—आप्टे। (४) शब्द कल्पद्रुम (सं० कोश)

(५) अमरकोश सटीक—अमरसिंह । (६) गयासुल्लुगात (कोश फ़ारसी अरबी)—मोलवी गयासुद्दीन । (७) करीमुल्लुगात (कोश फ़ारसी)—मो० करीमुद्दीन । (८) शब्द रत्नावली (९) जटाधर कोश—जटाधर । (१०) मदनकोश—मदनलाल तिवाड़ी । (११) अमर टीका (१२) फैलन साहब की न्यू हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनेरी । (१३) श्रीधर भाषा कोश—पं० श्रीधर ।

व्याकरण

(१) व्याकरण महाभाष्य—पतंजली । (२) हिन्दी व्याकरण—कामताप्रसाद गुरु । (३) प्राकृत मंजरी ।

संस्कृत काव्य

(१) रघुवंश सटीक—कालीदास । (२) काव्य प्रकाश—मम्मटाचार्य । (३) दादूरामोदय (सं०)—हीरादास ।

भाषाकाव्य

(१) सूरसागर (भक्ति काव्य)—सूरदासजी । (२) रामायण मानस—तुलसीदासजी । (३) गिरधर कविराय की कुण्डलिया—गिरधर (४) सतसई की कुण्डलिया—अम्बिकादत्त व्यास । (५) रसिकप्रिया-(काव्य शृंगारी)—केशवदासजी । (६) नखसिख (काव्य शृंगारी) केशवदासजी । (७) रसकाव्य (काव्य शृंगारी) (८) सुन्दर शृंगार (काव्य सृंगारी)—सुन्दर कविराय (९) समयसार नाटक—बनारसीदासजी । (१०) भक्तिसागर (साधु काव्य)—श्यामचरणदासजी (११) कबीरजी का पद (साधु काव्य) कबीरजी (१२) काव्य प्रभाकर (काव्य का रीति ग्रन्थ) (१३) काव्य कल्पद्रुम (रसमंजरी विभाग) सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार । (१४) अभेद ऐकादशा—अक्षर अनन्य (१५) सुन्दर विलासादि (निर्णयसागर की छपी पं० पीताम्बरजी संपादित की भूमिका (१६) पंचेन्द्रिय चरित्र—पं० चन्द्रिकाप्रसाद संपादित

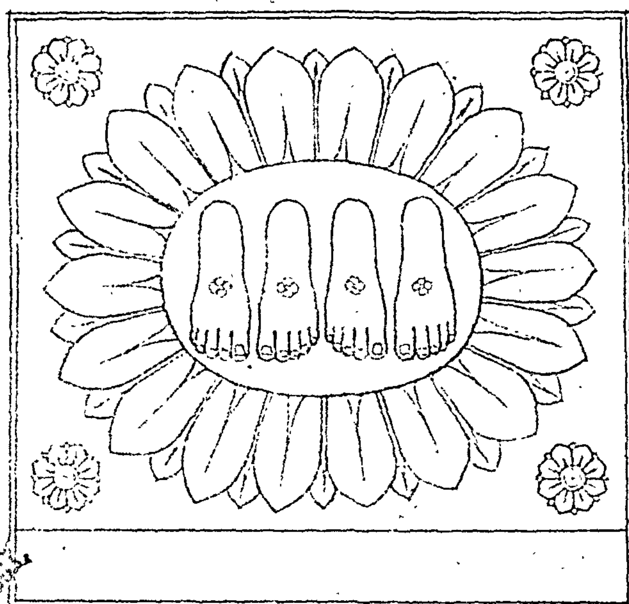
की भूमिका सं० १९७० (१७) सुन्दरविलास—वालेश्वरप्रसाद सं० १९७१ (वेल्वेडियर प्रेस इलाहाबाद) (१८) गुजराती टीका के सुन्दरदास काव्य की भूमिका (१९) सुन्दरदासकृत काव्य की भूमिका—तत्वविवेचक प्रेस वम्बई की। (२०) भाषा काव्य संग्रह—पं० महेशदत्त नवलकिशोर प्रेस १८७९ (२१) शिवसिंह सरोज—शिवसिंह सेंगर (२२) सुन्दरदासकृत काव्य (विपर्यय अंग की टीका) तत्वविवेचक प्रेस वम्बई सं० १९४७ का (२३) सुन्दरविलासादि—निर्णयसागर प्रेस वम्बई सं० १९४७ का (२४) सुन्दरसार—हमारा संगृहीत। (२५) भीपवावनी—भीपजन । (२६ व्रजनिधि ग्रन्थावली (काव्य संगीत)—व्रजनिधि (२७) वनारसी विलास—वनारसीदास जैनकवि, रत्नाकर प्रेस। (२८) दौलत विलास—दौलतराम जैन। (२९) भूधरविलास - भूधर कवि १७८१ की रचना ३०) कवित्त सवैया, भाई गुरुदासजी (सिक्ख कवि) (३१) हफ़ीजुल्लाखां का हजारा—हफीजुल्लाखां १९०५ नवलकिशोर प्रेस। (३२) मुद्राकुलीन—प्रवोध रत्नाकर प्रेस सन् १९४९ (३३) वल्लभ संग्रह - सन् १९१३ (३४) राम भजन वर्षा (३५) साहित्य सुखमा—रामदहिन मिश्र सन १९१८ (३६) कविता कौमुदी १ भाग - पं० रामनरेश त्रिपाठी। (३७ प्रेम प्रभाकर भक्ति काव्य) - मुंशी मथुराप्रसादजी (३८) सुन्दरविलास तथा अन्य काव्यो - गुजराती टीका नरोत्तम सं० १९७२ तत्वविवेचक प्रेस की। (३९) रामायण तुलसीदासजी (४०) कवितावली - तुलसीदासजी।

साधु-सन्त-वाणी

(१) रज्जव वाणी—रज्जवजी। (२) दादूवाणी सटीक और पद—दादूदयालजी, पं० चन्द्रिकाप्रसाद संपादित। (३) ग्रन्थ साहिव, सिक्खधर्म के गुरु ९ नानक आदि। (४) गोरखज्ञान चोतीसा—गोरखनाथजी (५) जगजीवणजी की वाणी—जगजीवणजी। (६) सर्वंगी रज्जवजी की। (७) संत वाणी संग्रह—वालेश्वरप्रसाद संपादित में पूर्व कथन,

॥श्रीरामजी सत्य श्री स्वामी दादूदयालजी सहाइ श्रीसुंदरदासजी॥

॥स्वामीजी श्री सुंदरदासजी का चरणकवल॥



॥बाबाजी श्री नराइणदासजी का चरणकवल॥

॥चोपई॥ संबत सत्रासै छीयाला॥ कातिग सुदि अष्टमी उजाला॥
तीजै पहर भरसपति वार॥ सुंदर मिलिया सुंदरसार॥

— सांगानेर में सुन्दरदासजी की चरणचौकी —

ुलसीदासजी

(वेल्वेडियर प्रेस इलाहाबाद) (८) दादूदयाल की वाणी की भूमिका—बाले-श्वरप्रसाद सं० १६७१, वेल्वेडियर प्रेस इलाहाबाद (९) सूरसागर की भूमिका—बाबू राधाकृष्णदास (१०) प्रागदासजी की वाणी—प्रागदासजी (११) कबीर ग्रन्थावली—काशीनागरी प्रचारिणी सभा में छपी (१२) कबीर शब्दावली—वेल्वेडियर प्रेस इलाहाबाद (१३) बीजक कबीरदासजी सटीक – नवलकिशोर प्रेस (१४) श्यामचरण-दासजी की वाणी(१५) गुरु गोविंदसिंहजी के ग्रन्थ और जीवनी। (१६) हरिदासजी निरंजनी की सापी।

पिंगल-छन्द शास्त्र

(१) रणपिङ्गल, रणछोड़ दीवान। (२) छंदः प्रभाकर—भानुकवि, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई (३) छंदोऽर्णव पिंगल—भिखारीदास। (४) लख-पत जससिंधु—(५) छंद रत्नावली—साधु हीरादास (६) रूपदीप पिंगल (७) प्राकृत पिंगल सूत्र-सटीक (८) काव्य सुधाकर (९) कविकुल कल्पतरु (१०) कविकुल कुमुद कलाधर (११) पिंगल सूत्र सटीक (१२) श्रुतबोध-सटीक (१३) वृत्तरत्नाकर-सटीक।

अलंकार-रस

(१) साहित्य दर्पण। (२) रसगङ्गाधर। (३) चन्द्रालोक -कुव-लयानंद (र ` जयदेव कवि। (४) अलङ्कार प्रकाश (भा०) सेठ

५) अलङ्कार प्रबोध (भा०) (६) अलंकार मंजूषा, भग-

७) प्रिया प्रकाश, भगवानदीन (८) कविप्रिया (काव्य

[illegible]८) केशवदास (९) चित्र चंद्रिका काशिराज स० म० क०।

कर्मकाण्डः—(१) आन्हिक सूत्रावलि। संहिताः—(१) सनत्कुमार संहिता। स्तोत्रः—(१) चर्पट पंजरिका, शंकराचार्य। मतमतान्तरः—(१) वैष्णव मताब्ज भास्कर।

अनेक ग्रन्थों के नाम जल्दी में ही लिखने से रह गये। और अनेक ग्रन्थों के पूरे पते भी नहीं दिये जा सके हैं।

परिशिष्ट (ज)

कृतज्ञता-प्रकाशन

निम्नलिखित पुरुषों, साधु महात्माओं से हमें ग्रन्थों, टीका वा जीवन-चरित्र आदि में सहायता मिली है, अतः हृदय से उनका उपकार मानते हुए कृतज्ञ हैं।

(१) हमारे स्व० पूज्य पिताजी—पुरोहित मन्नालालजी—जिनकी शिक्षा, दीक्षा और उपदेश से सुन्दरदासजी के वचनामृत में तथा हमारे जीवन में वास्तविकता आई।

(२) साधुवर गोपालदासजी—"घाटड़े" के सुन्दरदासोत साधु—इनसे सुन्दरदासजी के वचनों में प्रीति अधिक बढ़ी। अन्य उपदेश भी मिले।

(३) साधुवर पं० देवादासजी—महन्त महाराज जुगलदासजी के यहां विराजते थे। भाषा-साहित्य और दादू-सम्प्रदाय के ग्रन्थादि के अद्वितीय पण्डित थे जिनसे सुन्दरदासजी के समझने वा दादू-सम्प्रदाय के अन्य पदार्थों की प्राप्ति में सहायता मिली।

(४) भण्डारी बालमुकुन्दजी—झूंझणूं की छावनी के भण्डारी साधु थे। इनसे प्रथम सुन्दरदासजी के मूल-ग्रन्थों की सूचना मिली तथा अन्य ग्रन्थ भी मिले। और कई बातें भी ज्ञात हुईं।

(५) स्वामी महन्त गंगारामजी महाराज, सुन्दरदासजी के प्रधान थांभे, फतहपुर के महन्त, इनही के प्रताप, सहायता और उपदेश तथा परामर्श से यह सम्पादन सुन्दरदासजी के ग्रन्थों का हुआ। टीका, ग्रन्थ, भूमिका और जीवन-चरित्र आदिकों में सारा प्रताप उनही का है। परन्तु शोक वे अब संसार में नहीं हैं!

(६) कृतविद्य भगवद्भक्त सेठ रामदयालुजी नेवटिया, फतहपुर के प्रधान और प्रसिद्ध विद्या-सम्पन्न सेठजी से सुन्दर ग्रन्थावली की सामग्री,

फोटोचित्र, हालात आदि प्राप्त हुए। जिस बात के लिये लिखा उसकी पूर्त्ति तुरन्त उन्होंने की।

(७) स्वा० ख़्यालीरामजी म० स्वा० गंगारामजी के प्रधान शिष्य। इनसे सुन्दरदासजी के सम्बन्ध में अनेक बातों की सहायता मिली। "बाईजी के भेट के सवैये" इनही की कृपा से मिले तथा अन्य छंदादि भी।

(८) पं० कन्हैयालालजी, झूंझणूं स्कूल के पण्डित। इनसे मूल-ग्रन्थों (क) वा (ख) के मीलान वा कुछ नक़लें करने में सहायता मिली।

(६) मौलवी मु० रमज़ानजी, कई हालात इनसे ज्ञात हुए और "फखुरुत्तवारीख" ग्रन्थ इनका रचा हमको मिला, जिससे सुन्दरदासजी की जीवनी में सहायता मिली।

(१०) पुरोहित कल्याणबक्ष्जी मुन्शीफ़ाज़िल, हमारे परम कृपालु भ्राता वा मित्र पण्डित, इनसे सुन्दरदासजी के ग्रन्थों की टीका आदि में सत्परामर्श मिले।

(११) पुरोहित श्री नारायणजी पंवालियेवाले, हमारे कृतविद्य स्नेहास्पद भ्राता और उत्साही सहायक। इन्हीं के परिश्रम से समग्र सुन्दर ग्रन्थावली मूल लिखी गई। और इनसे सुन्दरदासजी के कई अन्य छन्द मिले वा सत्परामर्श की प्राप्ति हुई।

(१२) साधुवर रामदासजी दूदलधनियावाले, उत्तराधे साधु। रज्जबजी वा सुन्दरदासजी के प्रकरणों को भलीभांति समझनेवाले। इनसे टीका के कई स्थल स्पष्ट हुए।

(१३) महन्त श्री गंगादासजी महाराज—महन्त गोविन्ददासजी जुगलदासजी की गादी के वर्त्तमान महन्त। इनकी कृपा से, इनके पुस्तक-भण्डार से, सुन्दरदासजी के सम्बन्ध में अनेक प्राचीन ग्रन्थ देखने की सहायता मिली।

(१४) स्व० लाला आनन्दीलालजी राजमहलवाले—इनकी कृपा से मोरगांव से सुन्दरदासजी का रंगीन चित्र मिला तथा कई काम की बातें भी।

(१५) पं० रामचन्द्रजी अध्यापक तथा अन्य सज्जन—द्यौसा के सुन्दरदासजी के जन्मस्थान-सम्बन्धी बातें बताईं।

(१६) पं० गोपीचन्दजी लेखक वा पं० भगवानजी लेखक—इनके लिखाई के कामों से हमारे इस सम्पादन में बहुत सहायता मिली।

(१७) बा० रघुनाथप्रसादजी सिंघानिया विद्याभूषण, विशारद-एम० आर० ए० एस०—सेक्रेटरी "राजस्थान-रिसर्च-सोसाइटी" कलकत्ता इनकी ही कृपा, सहायता, तथा इनही के हार्दिक प्रेम और उत्साह, एवम् परिश्रम से ये सब ग्रन्थ इस उत्तमता और सुन्दरता से छपे। प्रूफ़ों को ध्यानपूर्वक पढ़ने और इस कार्य में दिल और तन्दिही से कष्ट उठाने का इनही कृतविद्य सज्जन का कार्य है। जीवन-चरित्र-सम्बन्धी भी सहायता देने की कृपा की।

(१८) रा० बा० सेठ रामदेवजी चोखानी एम० एल० सी०—कलकत्ते के मारवाड़ी समाज के प्रसिद्ध पुरुषरत्नों में दीप्तिमान – इनके उत्साह, सत्परामर्श और वास्तविक सहायता वा भावुकता से बहुत सहायता मिली। तथा उक्त सोसाइटी के सब ही सदस्य वा सहायक हमारे कार्य में सहायक हुए।

(१९) बा० भगवतीप्रसादसिंहजी—उक्त सोसाइटी के सहकारी प्रमुख कृतविद्य उत्साही सज्जन तथा प्रबन्ध-कर्त्ता "न्यू राजस्थान प्रेस" कलकत्ता।—इनकी सहायता और परामर्श से कई काम अच्छे हुए। काशी के दादूमठ का हाल अन्वेषण करके भेजा इत्यादि।

(२०) स्व० मुन्शी देवीप्रसादजी जोधपुरवाले—इतिहास के अद्वितीय प्रज्ञाता। सुन्दरदासजी के जीवन-चरित्र-सम्बन्धी अनेक अन्वेपणों में बड़ी ही सहायता दी।

(२१) महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकरजी हीराचन्द ओझा-भारतवर्ष में ब्राह्मण-समाज में इतिहास-विद्या के अप्रतिम विशेषज्ञ—सुन्दरदासजी के जीवन-चरित्र में तिथ्यादि निर्णय तथा अन्य परामर्श और उत्साहवर्द्धक सहायता इनसे मिली।

(२२) कृतविद्य स्वामी मंगलदासजी आयुर्वेदाचार्य—जयपुर की दादू-महाविद्यालय पाठशाला के अधिष्ठाता—इनसे सुन्दरदासजी के ह० लि० ग्रन्थादि देखने वा कई एक हालात वा सत्परामर्श मिले।

(२३) जोशी वैंकटलालजी—काशी के "रामनारायण वेंकटलाल" फर्म के स्वामी, उत्साही, हमारे मित्र, और सजातीय भ्राता, इन्होंने कृपा करके, काशी के सुन्दरदासजी के दादूमठ की प्रथम खोज की और उसका विस्तृत हाल भेजा।

(२४) जयपुर के "फोटो आर्टस्टूडियो" के मैनेजर चि० पु० मदनकुमारजी—इनके परिश्रम और उत्साह से सुन्दरदासजी के जीवन-सम्बन्धी अनेक फोटो तयार किये गये।

(२५) म० क० चि० पु० प्रतापनारायणजी कविरत्न—जयपुर के प्रधान ताज़ीमी सर्दारों में से विख्यात—काव्य मर्मज्ञ, साहित्यप्रेमी, विद्यानुरागी कवि। इनकी सहायता से सुन्दरदासजी-सम्बन्धी सांगानेर के समाधि-स्मारक वा अन्य फोटो चित्रों की प्राप्ति हुई।

(२६) अनेक साधु, महात्मा, सत्संगी, पण्डित, विद्वान इत्यादि पुरुष—जिनसे ग्रन्थादि की वा यत्किंचित् न्यूनाधिक जो भी सहायता वा परामर्श मिले।

(२७) मेरी चि० सुपुत्री विदुषी राजबाईदेवी—सुन्दरदास-सम्बन्धी कई पत्रादि का नक़लें करने में सहायता मिली।

(२८) उन सब ग्रन्थादि के विज्ञ रचयिता—जिनकी शुभनामावली "सहायक-ग्रन्थ-सूची" परिशिष्ट में दी गई है। उनके ग्रन्थों की सहायता के बिना यह काम कदापि पूर्ण न होता।

(२९) पं० हरिलालजी नागर—गुजराती-भाषा के अर्थों में सहायक हुए। तथा कुछ लिखने की सहायता दी।

(३०) श्री गुरुनानकदेव सत्संग सभा-गुरुद्वारा जयपुर के ग्रन्थीजी पञ्जाबी के अर्थ बताने में सहायता दी। तथा सरदार अजीतसिंहजी, जिनकी कृपा से "कवित्त सवैया" ग्रन्थादि की प्राप्ति हुई।

परिशिष्ट [क]

अन्तिम निवेदन।

(१) यह "सुन्दर ग्रन्थावली" (सुन्दरदासजी के समस्त ग्रन्थ) टीका-टिप्पणी, जीवन-चरित्र भूमिका, परिशिष्ट, चित्रादि सहित, अक्षंतव्य विलम्ब और दीर्घसूत्रता के साथ वा अवंतर, संसार के सामने साङ्गोपाङ्ग सजधज से सुसज्जित होकर आई है। ऐसे सम्पादन की कितनी आवश्यकता थी, यह बात साहित्यप्रेमियों, पिपासित जिज्ञासुओं, और विद्या-व्यवसायी सज्जनों से छिपी नहीं है। इसमें दोष हमें तो कुछ भी नहीं दिखाई देते हैं। परंतु भलीभांति इसके अवलोकन करनेवालों को स्यात् दिखाई देंगे। ग्रन्थ के लिखने वाले को अपने किये पर थोड़ा वहुत तो गर्व रहता ही है, इसही कारण (जैसे पिता अपने पुत्र में दोष नहीं समझता, वैसे) अपने किये में दोप होने पर भी, थोड़े ही देख सकता है। इस सम्बन्ध में "वृत्तरत्नाकर" के टीकाकार विद्वान् की उक्ति से हम भी सर्वांश में सहमत होते हैं:—

"ग्रन्थेऽस्मिन गुणगणवत्व मुच्यते चेत्।
स्वं कार्यं गुणगणवन्न मन्यते कः॥
तत्संतः शिरसि कृताञ्जलिस्तु याचे।
शोध्यं तत्सदस दिहोदितं मया यत्" ॥ १ ॥

"अर्थात् इस ग्रन्थ में अपने लिखे को अच्छा समझा तो कोई बात नहीं, क्योंकि अपने कार्य को ऐसा कौन है जो गुणभरा हुआ नहीं मानता हो। तब भी सज्जनों से हाथ जोड़ याचना है कि, उस दोष को सुधार लें जो इसमें कहा गया वा आ गया हो।" इस संबंध में हम ऊपर भी कह चुके हैं। परंतु यह बात दोषारोपण के समय भी विस्मृत न की जाय कि अधिकांश काम अन्य सज्जनों से प्राप्त सामग्री पर ही निर्भर है। मेरा

इसमें अपना बहुत थोड़ा है। यदि कोई बड़ाभारी दोष हुआ है तो वह यही हुआ है कि स्वामी सुन्दरदासजी के रचना-भंडार में मैं दोष नहीं देख सका। उस संबंध में संत-सज्जनों ने जो मुझे बताया सोही लिखता हूं। (मैंने जो "हम" शब्द का प्रयोग किया है वह सम्पादकीय अधिकार से आवश्यक समझ कर किया है):-

"सुन्दर-मणिमय-भवने पश्यति छिद्रम्पिपीलिका सततम्"

("सुन्दर" शब्द में श्लेष मानकर)—सुंदरदासजी के रचनारूपी महल में यदि सज्जनगण जांय तो वे उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर लोटपोट हो जांय। परंतु यदि चींटी की तरह छिद्रान्वेषी दुष्ट जांय तो छिद्र-दोष ही ढूंढ कर उसमें घुस जांय।

स्वयम् स्वामीजी ने कहा है:—

"आपने न दोष देषै परके औगुन पेषै,
दुस्ट कौ सुभाव उठि निंदाई करतु है।
जैसे कोई महल सम्हारि राष्यौ नीकै करि,
कीरी तहां जाइ छिद्र ढूँढत फिरतु है"।
[स० । दुष्ट का अंग । १]

इस संसार में भगवान वा उसके शुभ-मंगल के सिवा, सब कुछ है सो सब गुण-दोष से भरा पड़ा है। कहा है:

"जड़चेतन गुणदोष-मय, विश्व कीन करतार।
संत हंस पय पीवही परिहरि वारि विकार" ॥ १ ॥

सुन्दरदासजी की वाणी आद्योपांत ब्रह्म-परमात्मा-सम्बन्धी है। उसमें क्या दोष हो सकते हैं जिनको ढूंढें ? तब भी यदि यह कोई करने का काम है, तो यह काम, हां यही काम इसके विशिष्ट अनुभवी सुयोग्य, सुचेष्ट महानुभावों के लिये छोड़ते हैं, क्योंकि हममें इस कार्य के करने की न तो योग्यता ही है, न शक्ति। और सुन्दरदासजी की वाणी में जो-जो अधिक गुण हैं, जिन तक हम नहीं पहुंच सके हैं, उनको भलीभांति

प्रकाशित करने का काम अन्य आत्मज्ञानी पवित्र आत्माओं को आगे करना और लोक में उनको उजागर करना चाहिये।

(२) हमारे विचार में, इस सम्पादन में विलम्ब का एक अदृष्ट कारण यही था कि सुन्दरदासजी फतहपुर के महात्मा थे। उनके ग्रन्थादि को एक फतहपुर के प्रेमी विद्वान् के हाथों और उद्योग से प्रकाशित कराना ही स्वामी सुन्दरदासजी की आत्मा की इच्छा थी। वह और कोई नहीं— वह हैं हमारे उत्साही कृतविद्य, विद्याप्रेमी बाबू रघुनाथप्रसादजी विशारद—विद्याभूषण - आदिवासी फतहपुर के।

हमारे स्वामी सुन्दरदासजी के गुरु दादूदयालजी सांभर के थे। सुन्दरदासजी द्योसा के थे, जो ढूंढाहड़ की पुराणी राजधानी है। उनका स्थान फतहपुर में है, जो ढूंढाहड़ में एक प्रसिद्ध पुराणा नगर है। और सुंदरदासजी की समाधि सांगानेर में है—जो ढूंढाहड़ का एक नामी स्थान है और युवराज कुमारों की जागीर का शहर सदा से चला आता है। इस प्रकार स्वामीजी तो हमारे ढूंढाहड़ (आमेर-जयपुर) के खास महात्मा कवि और ज्ञानी हैं जिनकी अलौकिक अमूल्य रचनाओं के हम, अल्पमति भक्त खास जयपुर-ढूंढाहड़की प्रसिद्ध राजधानी के निवासी हैं। और उनके ग्रन्थों के सारे पदार्थ सामग्री सहित देनेवाले खास उनके थांभे के खास उत्तराधिकारी महंत-गंगारामजी, ढूंढाहड़ के ग्राम की उत्पति—और अन्य सहायता देनेवाले तथा "राजस्थान रिसर्च सोसाइटी" के संस्थापक, और संरक्षक, सदस्यादि सज्जन प्रायः ढूंढाहड़ वा समीपवर्ती देशों के हैं। यह सौभाग्य की बात है हम सब एक देशी, हमारे देश के सूर्य समान भास्वत प्रतिभासम्पन्न संत-कवि की सेवा, और उनकी कीर्ति के प्रचुर प्रचार में चारुचर्या से लाभान्वित हो रहे हैं। सब कार्यकर्त्ताओं ने अपना २ कार्य बड़े प्रेम, बड़ी भक्ति, बड़ी श्रद्धा तथा श्रम से भलीभांति किया है। तब ही यह ग्रन्थ रत्न "राजस्थान-साहित्यरत्न-माला" का एक रत्न होकर साहित्य-संसार के सामने प्रकाशमान होता है। आशा है इसके ज्ञानमय प्रकाश से, तम-

निवृत्ति पूर्वक उजाला फैलैगा और हिन्दी-साहित्य भण्डार में सुन्दर-वृद्धि होगी।

(३) सुन्दरदासजी की वाणी—एक पवित्र उत्तम महात्मा पुरुष की वाणी है। यह सर्वमंगला, सकल श्रेयस्करी, सदुपदेशादिदातृ है। इसको आबालवृद्ध, स्त्री-पुरुष, स्वल्पमति-महामति, ज्ञानी-अज्ञानी, मूर्ख और पंडित—सब कोई पढ़कर, सुनकर, विचार कर, अपनी २ रुचि, अपनी २ योग्यता, अपनी २ भावना, अपनी २ श्रद्धा और अपनी २ भक्ति के अनुसार लाभ उठावैंगे, फल पावैंगे, ज्ञान उपजावैंगे, भगवद्गुण गावैंगे और उभय लोक में सुख लाभ लैंगे। सरल, सुबोध, सुमिष्ट, सीधी, सुन्दर, सुचारु, सुकर होने से इसे बालक भी पढ़ सुनकर प्रेम में मग्न हो जाते हैं, तो युवक और बड़े आदमी मस्ती में आ जाते हैं, तो पण्डित ज्ञानी भी आनंद में भर जाते हैं। गहरे, गहन, रहस्य और महा कठिन विषय के अन्दर पहुंच जाने की योग्यता वाले जितने औंडे जांयगे उतने ही मुरजीवा की तरह रत्न और मोती लेकर आवैंगे। और ऊपर ही से आनंद लेने वाले मलाई और बर्फ़ी की मीठी पपड़ी के समान आनंद की ऊपरी झलक से तृप्त हो जांयगे। ऐसी वाणी सर्वाधिकारिणी, सर्वोपकारिणी और सर्वलोक सुखप्रसारिणी होती है। फ़ारसी-अरबी के पण्डितों ने ऐसी वाणी को "मोएज़ते हसना" कहा है। क्योंकि ऐसी वाणी सबके लिए प्रिय उपकारी, उदार, सच्चा उपदेश देनेवाली, सत्य बात को सिखानेवाली, इस—लोक और परलोक में सुख उपजानेवाली होती है। और सुन्दरदासजी के उपदेश के लिए बहुत करके बंगदेशीय पंडितों का यह सूत्र सुन्दर उपमा देनेवाला है:—

"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्"

(क) इनका उपदेश सत्य है। क्योंकि "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" ब्रह्म ही सत्य है, उसका ज्ञान ही सत्य है, अनंतज्ञानरूपी ब्रह्म ही जानने योग्य है। तो यह वाणी उसही सत्य को सिखाती है।

(ख) और इनकी वाणी शिव मंगल कारिणी, अमंगलनिवारिणी, शांतिप्रसारिणी होने से शिवस्वरूपिणी है।

(ग) एवम् इनकी वाणी सुन्दर है, मनोमोदकारिणी, हृदयाकर्षण-कारिणी, सरल, सुमधुर, लोकप्रिय, सुन्दर शब्द और सुन्दर अर्थ से भरी है।

इससे यह वाणी सत्य है, मांगलिक है और सुन्दर है। ये महिमाएं इसकी अध्यात्मविद्या सम्बन्धिनी होने से हैं। सत्य और वास्तविक सार केवल अध्यात्म विद्या ही में है। अनित्य संसार में अत्यंत अद्भुत, चमत्कारी, लोकप्रियकारी, जो-जो भी पदार्थ कलाएं-लीलाएं, खेलकूद, महान् कर्म, आविष्कार, उन्नतियां आदि दिखाई देती हैं वे सब अध्यात्मलोक में फलदायिनी होती हैं इस पक्ष को प्रमाणित करने को कोई भी विद्वान् समर्थ कभी हुआ है वा होता है? कदापि नहीं। इस कारण परम-लाभ केवल आत्मशुद्धि और परमात्म सेवन और इष्ट साधन ही में है। सुन्दरदासजी की वाणी इसही कारण परमोत्तम है।

यह महिमा अध्यात्मविद्या ही की है कि जो उभयलोक सुख करने वाली है। भगवद्वाक्य है कि "अध्यात्मविद्याविद्यानाम् वादः प्रवदता महम्" गीता विद्याओं में अध्यात्मविद्याही को भगवान ने अपना स्वरूप बताया है। इस विद्या की उन्नति के कारण यह भारत देश जग-द्गुरु कहाया है और सब देशों में शिरोमणि माना गया है। इसके नष्ट-भ्रष्ट न हो जाने तथा बचे रहने का कारण हमारे देश के "इकबाल" नामी कवि ने बताया है कि "कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी। सदियों से आसमां है नों महरबां हमारा" ?

वह बात क्या है जो हमको रक्षित रखती है? वह है हमारी अध्यात्म-विद्या। अध्यात्मविद्या ही महान् रक्षिका-बचानेवाली कैसे है? यही सुनिए। वही आपके भारत के परमोज्ज्वल नक्षत्र परमज्ञानी महात्मा परमहंस रामकृष्णदेव के प्रधान शिष्य-संसार प्रसिद्ध महान् सुवक्ता,

ब्रह्मविद्या प्रचारक, भारतकीर्ति प्रसारण परमपूज्य महामना विवेकानंदजी स्वामी क्या कहते हैं। अपने "मेरे देवता" नामक ग्रन्थ में—

"भारतीय राष्ट्र का विनाश नहीं हो सकता। वह तो अमृत्य है। जब तक उसकी ज्योति, अध्यात्मज्ञान की ज्योति, जीवित रहैगी उसकी संतान आत्मवाद को जीवन का एकमात्र ध्येय समझती रहैगी, तब तक उसे कोई पराजित नहीं कर सकता, यह एक ध्रुव सत्य है। आज भलेही वे दरिद्र हो जांय, भलेही धर्मान्धता ने उन्हें आच्छन्न कर दिया हो, पर फिर भी उन्हें याद रखना चाहिये कि हम उन्हीं ऋषियों की संतान हैं !! उनकी अवस्था क्या थी ? वृक्षों की छाल पहनना, कंदमूल और फलों पर जीवन-यापन करना, वनवन की धूलि फांकना और अपने इष्टदेव की आराधना करना !! यही प्राचीनता है, ऐसी ही हम चाहते हैं। जहां ऐसी पवित्रता है, भला वह भारत-राष्ट्र कभी विनष्ट हो सकता है ? मैं कहता हूं, नहीं"। यह उत्तर हो गया और बड़ाही जबरदस्त उत्तर हो गया उस सवाल का कि, "वह क्या बात है कि जिससे हमारी हस्ती, (अस्तित्व जीवन अवस्था) नहीं मिटती" ? यदि आत्मा मिटै तो आत्मज्ञानी मिटै, "न जायते मृयते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः"। ऐसी अध्यात्मविद्या है। इस अध्यात्मविद्या को पबलिक के बाजार में महात्मा सुन्दरदासजी सुन्दर सुथरे मनोमुग्धकारी वेश में सज्जित करके लाये हैं। इसकी तो, इस मुद्रित संपादन के द्वारा, अध्यात्मविद्या-प्रेमी सज्जनों ने रक्षा कर ली, इसका बहुलतर रुचिररूप में इस प्रकार योगक्षेम हो गया। परंतु अन्य ख़ज़ाने, अन्य निधियां, अन्य रत्नसमूह इस अध्यात्मविद्या वाणी के, रक्षा की पूर्ण अपेक्षा रखते हैं, जिनके लिए हमने उपर अन्यत्र कहा है। अतः यहां इसके प्रेमी सज्जनों से प्रार्थना अपील करते हैं कि वे इस धन को, इस पैतृक सम्पत्ति को, इस अमूल्य मूलको, इस लोक परलोक हितकारी सत्य पदार्थ को अध्यात्मविद्या के संत-महंत महात्मा-ज्ञानी-योगीजनों के वचनामृत समूह को, संत-साहित्य को रक्षित, चिरस्थायी, जीवित

रखने का उत्तम, स्थायी, प्रचारशील प्रवंध होना चाहिए। विशेपतया मारवाड़ी समाज को इस तरफ़ विशेप ध्यान देना योग्य है। क्योंकि, इस समाज के हाथों से, धन से, मन से, जन से भारत के वड़े-वड़े कार्य हुए हैं और हो रहे हैं। भारत जननी के सुपुत्र मारवाड़ी व्यवसायी अपने धन को उत्तम २ कामों में लगा रहे हैं, वहुत नामवरी के काम कर दिखाये हैं। विद्या और ज्ञान के देश में, प्रांत में, क्षेत्र में भी वीरता के साथ अग्र-गण्य हो गये हैं और आगे वढ़ते जाते हैं। लक्षावधि द्रव्य व्यय कर देश में ज्ञानविभूति फैला रहे हैं। धर्ममार्ग में वड़ी २ निधियां लगा दी और अव भी लगाई जा रही हैं। फिर यह संत-साहित्य और इसकी रक्षा है ही कितनी सी वात? एक अच्छी खासी रकम स्थायी-निधि (रिजर्व फंड) की रख दी जाय, जिसका व्याज आता रहे। और एक छोटी सी रकम व्यवहार कार्य के निमित्त (वर्किङ्ग केपिटल) रखी जाय जिससे सुविधा के साथ ग्रन्थादि की छपाई, लिखाई, संपादन आदि क काम चलते रहैं और उपरोक्त निधि के व्याज से भी उसमें सहायता ली जाय। मुद्रित ग्रन्थों का स्वल्प-मूल्य रक्खा जाय। कुछ ग्रन्थ साधु-संत वा असमर्थजनों को विना मूल्य धर्मार्थ भी दिये जांय। कोश की रक्षा और कार्य्य के संचालन के लिए ट्रस्टीजन और एक कमेटी (समिति) वना दी जाय। उत्साही व्यवसायी प्रेमी कार्यकर्त्ता कार्य में अग्रसर होकर तत्परता दिखावैं और यों ग्रन्थ प्रकाशन से संत-साहित्य की रक्षा और अध्यात्मविद्या का प्रचार सहज सुगम रीति से करते रहैं। उभय लोक का कल्याण, देशके साहित्य के एक प्रधान और परमोत्तमाङ्ग की सुन्दुरीत्या रक्षा, और भगवत्कृपा की सहसा प्राप्ति तथा अटल कीर्ति का लाभ इत्यादि वातें मारवाड़ी समाज सहज में सम्पन्न कर सकता है। समाज में का एक सच्चेमन का श्रेष्ट धनाढ्य चाहे तो वड़ी के चौथे वांटे में तुरंत ही कर दे। यदि कई सज्जन मिल कर करना चाहैं तो भी कर लैं। एवमस्तु।

॥ ॐ तत्सत् ॥

स्वामी श्री सुन्दरदासजी का जीवनचरित्र

कुल और जन्मः— स्वामी सुन्दरदासजी का जन्म, जयपुरराज्यान्तर्गत द्यौसा नगरी में "बूसर" गोत के खंडेलवाल वैश्य कुल में, विक्रमी संवत् १६५३ के चैत्र शुक्ला नवमी को हुआ था। इनके पिता का नाम "चोखा" अपर नाम "परमानन्द" था। माता का नाम "सती" था, जो आंबेर के "सोंकिया" गोत के खंडेलवाल वैश्य की पुत्री थी।

द्यौसाः— द्यौसा जयपुर राज्य की प्रथम पुरानी राजधानी है, जिसको महाराजा सोढ़देवजी के वीर पुत्र दूल्हरायजी ने संवत् वि० १०२३ के लगभग विजय किया था ※। पहाड़ी पर किला बना है। क़स्बा पुराना है। रेल का स्टेशन, निज़ामत, तहसील और थाना है। जयपुर शहर से पूर्व दिशा में १६ कोश के करीब दूर है। बूसर गोत के खंडेलवालों के वंश के इतिहास में यह बात प्रसिद्ध है कि ये लोग महाराज के साथ नरवर ग्वालियर की तरफ से आये थे। और प्रधान कारोबारी तथा फौज में मोदीखाना और विश्वस्त कर्मचारियों का काम करते थे।

※ बारहठ रामनाथजी रत्नू रचित "इतिहास राजस्थान" में जयपुर का इतिहास पृ० ८७-८८। और जरनल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल जिल्द ३१ में वज्रदामा का लेख है उसमें कछवाहों का ग्वालियर छोड़ना सं० ९४४ का लिखा है। अन्यत्र द्यौसा विजय ९२३ का संवत् भी लिखा है।

इन लोगों को विजित इलाके के गाँवों का पटवारा भी मिलता था। जिस घर में सुन्दरदासजी जन्मे उसके खंडहर द्यौसा में अद्यावधि वर्त्तमान हैं। वहां व्यासों के घेर में महल्ला गूदानीचा में ही "बूसरोंवाली जायगां" विख्यात है। हमने स्वयम् इस जगह को दो बार देखा है। पुराने-पुराने लोगों ने (भट्ट गंगाशङ्करजी आदिक ने) यही बात कही। द्यौसा में सुन्दरदासजी के वंश के बूसर-गोती वैश्य अब कोई नहीं रहते। यहां से बहुत समय पहिले ही उठकर बाँसखोह में जा बसे, जो झर्र के स्टेशन के पास है। जयपुर में बूसर गोत के वैश्यों के कई घर हैं, जिनमें अत्यधिक प्रतिष्ठित स्व० रामनारायणजी तहवीलदार का घर है। तहवील-दार राज्य के ख़ज़ाने के रोकड़ जमा के फ़ोतेदार बड़े ओहदेवाले हैं। राम-नारायणजी के रामगोपालजी और उनके हरिनारायणजी (जो दीवान भी रह चुके हैं) और श्यामलालजी तहवीलदार * आदि चार पुत्र हैं। रामनारायणजी के भाई छोटे नान्हूलालजी थे जो भी स्व० महाराजा राम-सिंहजी के उतने ही कृपापात्र थे जितने रामनारायणजी थे। इनही की पूर्वाभिमुखी बड़ी हवेली में स्व० महाराजा माधवसिंहजी का प्रसिद्ध विवाह बीकानेर के तँवरजी साहिबा से हुआ था। तहवीलदारों के नाम ही से "तहवीलदारों का रास्ता" विख्यात है, जिसमें इन पंक्तियों के लेखक का भी घर "स्यामियों के कूँवे" के पास ही है। यह रास्ता नाहरगढ़ की सड़क के सामने है। हमने द्यौसा के नाज़िम स्व० मु० अब्दुर्रहमानजी, डाक्टर ब्रजमोहनजी, एम०, बी०, बी० एस०, असिस्टेंट सर्जन, पंडित राम-चन्द्रजी अध्यापक ("परमानंद सागर" ग्रन्थ के रचयिता) आदिकों से भी सुन्दरदासजी के स्थानादिके सम्बन्ध में निश्चय किया और थांभे के महंत स्व० श्री गंगारामजी तथा अन्य अनुभवी साधुओं से भी जिज्ञासा की, तो उपरोक्त बात ही प्रमाणित हुई।

---

* शोक की बात है कि श्यामलालजी का भी देहावसान हो गया।

जन्म तिथि:— सुंदरदासजी की जन्म तिथि हमको उक्त महंत गंगारामजी से ही प्राप्त हुई थी। परन्तु महात्मा माधवदासजी रचित श्री दादूजन्मलीला-उपनाम "संतगुण सागर सिद्धांत" * के १६ वें तरङ्ग में जन्म तिथि कार्तिक शुक्ला अष्टमी दी हुई है। संभव है कि थांभे के महंतजी की दी हुई तिथि ही ठीक हो और माधवदासजी ने सुनी-सुनाई लिखी हो। जैसा कि हम आगे अवतरण देकर बतावेंगे। जन्म का संवत् तो स्वामीजी की कही साखी से निश्चित होता है :—

"सात वरस सौ में घटै इतने दिन की देह।
सुन्दर न्यारौ आतमा देह खेह की खेह॥"

अर्थात् स्वामीजी ९३ वर्ष के होकर परमपदगामी हुए थे। और मरण का संवत् १७४६ भी निश्चित है जैसा कि आगे चलकर कहेंगे। तो १७४६ में से ९३ खो देने से १६५३ निकलते हैं। यही जन्म संवत् दृढ़ता से निश्चित है और जन्मतिथि हम उक्त महंतजी की निर्धारित ही ग्रहण करेंगे। इससे मि० चैत्र सुदि ९ सं० १६५३ स्वामी सुन्दरदासजी का जन्मदिवस (मास और वर्ष सहित) प्रमाणित है। और महंत गंगारामजी के लिखित नोट के अनुसार जन्म समय "दोपहरां" (मध्याह्न) था।

खंडेलवाल:— उत्तर भारतवर्ष में वैश्यों के जातिभेदों में अग्रवाल और खंडेलवाल दो अति प्रसिद्ध और अधिक संख्या के हैं। राजपूताने में खंडेलवाल वैश्य बहुत ही प्रख्यात हैं। "खंडेलवाल" शब्द "खंडेला-वाले" का संक्षिप्त रूप है। इनका निकास वा सम्बन्ध खंडेला

---

* यह ग्रन्थ हस्तलिखित हमारे पास संग्रह में है। और तपस्वी गिरधारीदासजी की कृपा से, स्वामी मंगलदासजी "दादू महाविद्यालय" जयपुर के द्वारा प्राप्त हुई प्रति की प्रतिलिपि कराई गई। ग्रन्थ संवत् १६६१ का रचित और सं० १९६७ का लिखा हुआ है, जिसकी नक़ल सं० १९९१ में हमने कराई। यह ग्रन्थ अनेक छंदों में, बड़ा है।

नगर से है, जो प्राचीनकाल में एक बहुत बड़ा नगर था और अनेक परिवर्तनों के फटकारों में आकर नष्ट हो गया, परन्तु नाम "खंडेला"- बना रहा और अब भी उसके खंडहरों के पास सापेक्षतया एक छोटा कस्बा बसा हुआ है, जो प्रसिद्ध शेखावत वीर सामंत "रायसलजी" के समय में अधिक नाम पा चुका था। "खंड में खंडेला एक ही है"—यह ख्याति लोकप्रसिद्ध है। वैश्य खंडेलवालों की दो तड़ें है—(१) एक वैष्णव और (२) दूसरे जैनी। वैष्णव खण्डेलवाल ही संख्या में अधिक और गौरवप्राप्त हैं। इनके अनेक गोत वा बैङ्क वा अल्ल हैं। ८४ गोत भी प्रसिद्ध हैं। इन ही में से "बूसर" गोत भी है। जयपुर राज्य और अलवर आदि में अनेक गोतों के अनेक खण्डेलवाल नामी हो गये हैं। हलदियों में दौलतरामजी आदिक। नाटाणियों में हरगोविन्दजी, लूणकरणजी आदिक। ऐसे ही रावतों, खूंठेठों, डंगायचों, आदिकों में बहुत प्रतिष्ठित पुरुष हुए और अब भी हैं। और ऐसा भी ग्रन्थों में लिखा है कि कोई दो हजार वर्ष पूर्व जिनसेनाचार्य जैन यति ने खण्डेले में जैनधर्म फैलाया। तब उससे बचे वैष्णव वैश्य, वे खण्डेलवाल रह गये। परन्तु ये लोग बहुसंख्यक और प्रतापी सदा से होते आये हैं।※

बूसरः— इन खंडेलवालों में यह बूसर गोत जो है उसकी व्युत्पत्ति कोई तो 'भूसुर' शब्द से बताते हैं जिसका अर्थ ब्राह्मण है और भूसुर कहने का कारण यह बताया जाता है कि प्राचीन काल में वे वैश्य धर्माचार और विद्या में इतने उन्नत और निपुण थे कि वे ब्राह्मणों के

※ "जातिभास्कर" "खण्डेलवाल वैश्य" आदिक ग्रन्थ तथा "खण्डेलवाल-हितैषी" पत्र आदिकों से। तथा "जाति अन्वेषण" से भी। इसमें "खण्ड" नामक ऋषि से "खण्डेला" नाम प्रख्यात होना लिखा है। खण्डेलवाल ब्राह्मण भी खण्डेले से प्रसिद्ध हुए हैं जो राजस्थान की ब्राह्मणों की गौड़ छह न्यात में हैं। "खण्डेलवाल-हितैषी" पत्र में सन् १९२१ में वर्ष ७ के अङ्क ५-६ में सुन्दरदासजी का थोड़ा सा हाल हमारा भेजा छपा था।

सदृश समझे जाते थे। कोई इस शब्द को "वूसरिया" का संक्षिप्त बताते हैं—कि 'वूसर' एक कस्बे का नाम था, जहाँ के पूर्वकाल के वे रहनेवाले थे—जिससे यह वैङ्क उनका पड़ा। क्योंकि वहुत से गोत वा वैङ्क गाँवों के नामों से भी होते हैं, वैसे ही यह भी हुआ। सम्भवतः इस वूसर शब्द की और भी कोई व्युत्पत्ति† रही हो, परन्तु हमको वह प्राप्त नहीं हुई ।॥

"वूसर" शब्द को अपने जाति-निर्देश में, ग्रन्थकर्त्ता स्वामी ने प्रयोग में लिया है। स्व० म० गंगारामजी ने स्वामीजी की एक प्रख्यात लोकोक्ति-वत् सूक्ति को हमें बताया था और इसके सम्बन्ध में कहा था कि लाहौर में कथा के समय स्वामीजी पर किसी वूसर पण्डित ने आक्षेप किये थे। कथा समाप्ति के अनन्तर उससे स्वामीजी ने शास्त्रार्थ किया, उसमें वह वूसर पराजित हो गया। तब उसको उपदेश करने में कहा कि:—

"वूसर कहै तूं सुन हो वूसर वाद विवाद न करना।
यह दुनियाँ तेरी नहिं मेरी नाहक क्यों अड़ मरना" ॥ १ ॥

और अपने रचित ग्रन्थों में भी "वूसर" शब्द का प्रयोग किया है। और उनके शिष्यादि ने भी उल्लेख किया है। यथा:—

---

† पं० रामजीलाल महोपदेशक भारतधर्म महामण्डल लिखित "खण्डेलवालों की उत्पत्ति" नामक ग्रन्थ में उत्पत्ति यों दी है—"बोहरा—भूसुरा"—"व्यवहारप्रियो-लोके व्यवहरति जनेष्विह। व्यवहारीति विप्रोऽसौ सततं ख्यातिमागतः। (स्कन्द-पुराण। रेवाखण्ड। ४० अ०) उत्पत्ति में महाभारत की ११७ अ० और रेवाखण्ड की २९ वीं अध्याय के अनुसार परशुरामजी ने लोहार्गल में यज्ञ किया। स्वर्ण की वेदी के ५० खण्ड कर विश्वामित्र के पुत्रों को दिया। उससे खण्डल कहाये। इसीसे खण्डेला नाम पड़ा। और खण्डलगिरि चौहाण की कथा दी ही गई है।

॥ स्वामी माधोदासजी ने निज रचित दादू जन्मलीला के ग्रन्थ में 'भूसर' शब्द का ही प्रयोग किया है। जैसा कि आगे उदाहरणों में है।

"बीहाणी पिरागदास डीडवाणे है प्रसिद्ध,
सुन्दरदास बूसर सु फतहपुर गाजही" ॥ ६ ॥ (प्रणाली छन्द चन्द्रदास रचित)
"बूसर सुन्दरदास के सिष्य पांच प्रसिद्ध हैं" (राघवदास कृत भक्तमाल)
तन हरि धार्यो वृद्ध ताके शिष्य दादूदास,
दादू के सुन्दर बूसर परम प्रवीन हैं ।(रा० दा० भक्तमाल टीका छन्द)

इत्यादि स्थलों पर बूसर गोत सुन्दरदासजी का कथित है। इसके नामोल्लेख से यह अभिप्राय है कि उनको बड़े सुन्दरदासजी से पृथक् समझने में सुविधा रहे। और उनके नाम के साथ "बूसर" लगाकर अवसर प्राप्त प्रसंगों में सन्तजन उनके नाम को लेते थे, ऐसा भी प्रतीत हुआ है। निदान खण्डेलवाल वैश्यों का "बूसर" कुल इस सुन्दररूपी सूर्य के प्रताप से जगत् विख्यात हुआ है और यह बूसर-कुल धन्य है जिसमें सुन्दरदासजी जैसे पुरुषरत्न महात्मा अवतरित हुए। सुन्दरदासजी ने विनोद ही से अपने आपका वैश्य वा वनिया होना वा वणिया व्यवहार का संकेत निज रचित ग्रन्थों में लिखा है। यथा—पद राग सोरठ पद ६— "हमारे साह रमैया मोटा। हम ताके आहि बनोटा। यह वनिया सुन्दरदासा"। तथा पद ७—"देपहु साह रमैया ऐसा...यों सुन्दर वनिया गावै ॥—राग सारङ्ग पद १० "पहिली हम होते छोकरा...। तथा पद ११—"पहिले हम होते छोहरा। कौड़ी वेचि पेट निठि भरते...अव हुए वोहरा"। साधु का अंग छन्द ७।—"हाट ही हाट विकावत आहैं"॥ साषी ७७ गुरु का अग १—"सुन्दर सवको कहत हैं, कोड़ा विना न हाट"।

माता-पिता, जन्म कथाः— सुन्दरदासजी के पिता का नाम स्वामी गंगारामजी ने "परमानंद"* बताया था। परन्तु राघवदासजी रचित भक्तमाल में पिता का नाम "चोखा" दिया है। "दिवसा है नग्र चोपा बूसर है साहूकार..." इत्यादि (जो छन्द पूर्ण नीचे दिया जायगा)।

* इससे पूर्व "सुन्दरसार" में, बेलवेडियर प्रेस के छपे हुए "सुन्दरविलास" की

और "दादू चरित चन्द्रिका" ग्रन्थ में भी चोखा नाम ही है तथा माधोदासजी की "दादू जन्मलीला" में भी इससे पिता का नाम "चोखा" वा "चोखाराम" और गोत (वा वैंक) उसका "वूसर" और द्यौसा में अच्छा साहूकार होना प्रगट है । अतः पिता का नाम "चोखा" अपर नाम "परमानन्द" ही सिद्ध होता है । क्योंकि राघवदासजी सुन्दरदासजी के समकालीन थे इस कारण उनका लिखना अधिक प्रामाणिक है । सुन्दरदासजी के अन्य वहिन भाई भी थे ऐसा वहाँ के दो एक पुराणे आदमियों से सुना गया था और उन लोगों ने यह भी वताया था कि उस वूसर कुल में पीछे तक एक अत्यन्त वृद्धा (डोकरी) वर्त्तमान थी । इस डोकरी को जिन लोगों ने देखा था उनसे सुन्नेवालों ने हमको यह वात वताई थी । सुन्दरदासजी का ननिहाल "सोंकिया" गोत (वैंक) के खण्डेलवालों के यहाँ आंवेर में था । उनकी माता (सती नाम की) वहुत साधुभक्त और सुशीला तथा सुलक्षिणी थी । ऐसा सोंकिया वैश्यों से जाना गया था । ये सोंकिया खण्डेलवाल सदा से (अर्थात् दादूजी के आंवेर में विराजने के समय से) दादूजी के शिष्य, अनुयायी, सेवक और भक्त रहते चले आये हैं । वहुत से इस सोंकिया-कुल के वैश्य आंवेर से जयपुर में आ वसे हैं । जिन दादू-भक्त सोंकिया वैश्यों से हमको हालात ज्ञात हुए हैं उनके मकानात अजमेरी दरवाज़ा वाजार में निकलते सोंकियों के रास्ते में (चौकड़ी तोपखाना देश दुसाधों के मकानों के पिछवाड़ में) वने हुए हैं । उनमें के वाळूलाल

भूमिका में स्वामीजी के जीवन-चरित्र में, तथा "खण्डेलवाल-हितैषी" सन् १९२१ के (वर्ष ७—अङ्क ५, ६) में, हमने पिता का नाम "परमानन्द" ही, उक्त आधार पर लिखा है । और उस ही की नकल कई अन्य लेखकों ने की है । परन्तु महात्माओं से यह निश्चित हुआ कि पिता का असली नाम "चोखा" या "चोखाराम" ही था जो भक्तमाल में दिया है और परमानन्द अन्य अपर नाम विख्यात हुआ होगा, जिसको गंगारामजी ने वताया था ।

और भैरुलाल दोनों भाई हमारे चिरकाल से पूर्ण परिचित हैं। ये व्यापारी हैं और श्री सीतारामजी के शिखर-बंध बड़े मन्दिर (प्रसिद्ध लूणकर्णजी नाटाणी के विनिर्मित) के नीचे इनकी दूकान है। इनके बड़े पुरुषा सुख-लालजी, साहिबरामजी आदिक, महाराजा श्री सवाई जयसिंहजी की आज्ञा और कृपा से, आंबेर से आकर शहर जयपुर में आबाद हुए थे। और मकानात बनाये थे। उनही के नाम से "सोंकियों का रास्ता" विख्यात हुआ था ※। इनके यहाँ दादू सम्प्रदाय के अनेक ग्रन्थ हैं। ये लोग दादूवाणी पढ़ते हैं, दादूजी ही को सब शुभ और अशुभ कार्यों (विवाह, जन्म, जडूला, जात, बोलारी, गीत, मंगल आदिक) में मानते और स्मरण करते हैं। अन्य किसी देवी-देवता को नहीं मानते हैं। इनके घर में श्री दादूदयालजी के चरण कमल केसर-चन्दन के उघाड़े हुए एक वस्त्र पर सुरक्षित हैं। अर्थात् आंबेर में दादूजी जब इनके स्थान पर पधारे और वहाँ महोच्छव हुआ, तब केसर चन्दन उनके चरणों में लगा कर इस वस्त्र पर स्वामीजी को खड़े रहने की प्रार्थना की थी। तब चरण उबड़ आये थे। इनको सेवा स्मरण के निमित्त चित्रित करा लिया था। जैसे गयाजी के स्थान में गदाधर भगवान के मंदिर में विष्णुचरणचित्र कपड़े पर केसर चदन से उबड़े पंडे पुजारी भक्त यात्रियों को देते हैं। उसही प्रकार की यह भक्ति भावना इन दादू-भक्तों ने अपने गुरु के चरणचित्र लेकर की है। इन चरणचित्रों के दर्शनों से हमारे चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा था ⁂।

※ इनके कुल में अन्य पुरुष लालचंद, बदरीनारायण, वल्लभराम, नाथूलाल, पुत्र पौत्रों सहित हैं।

⁂ जब हम इन चरणों के दर्शणों और ग्रन्थों के (संवत् वि० १९७८-७९ होगा) अवलोकनार्थ, प्रसिद्ध साधुवर (दादू महाविद्यालय के संस्थापकों और प्रचारकों में प्रधान और उद्योगकर "रज्जबवाणी" को प्रकाशित करानेवाले) स्वामी सेवादासजी आदिक महात्माओं के साथ वहां गये थे तो वहाँ चरणोंके दर्शण करते ही

और हम इन गुरुभक्तों को धन्य कहते हैं। ऐसे गुरुभक्त सोंकिया गोत के कुल में स्वामी सुन्दरदासजी की माता का जन्म हुआ था। इससे समझ लेना चाहिए कि ऐसी माता का पुत्र भी कैसा होना चाहिए। उधर पिता भी वूसर सत्कुल के थे और दादूजी और साधुओं के भक्त थे। ऐसे माता-पिताओं के सुपुत्र स्वामी सुन्दरदासजी थे। परन्तु सुन्दरदासजी के जन्म के सम्बन्धी एक विचित्र और प्रभावशाली कथा प्रसिद्ध है। और इसका कुछ वर्णन राघवदासजी ने भी अपनी "भक्तमाल" में किया है जैसा कि आगे अवतरण देकर बताया जायगा। वह कथा इस प्रकार है कि जिन दिनों स्वामी दादूदयालजी ※ आंवेर विराजते थे, उनके शिष्य भिक्षा के निमित्त आंवेर में सेवकों वा भक्तों के घर जाते थे। दादूजी के साथ अनेक शिष्य थे। उनमें के एक प्रिय शिष्य जग्गाजी नाम का—दादूजी के सेवक भक्त सोंकियों के घरों में भिक्षा के अर्थ गये थे। और यह फकीरी वड़ (वड़वड़ाहट) हांकते थे – "दे माई सूत, ले माई पूत"— सोंकियों के घर में एक कन्या सूत कात रही थी उसने यह वड़ सुन कर उक्त साधु को भक्ति पूर्वक सूतकी कूकड़ियां दे दीं और कहा लो बावाजी सूत। तो साधु जग्गा ने कूकड़ियां लेकर कह दिया कि "हो माई तेरे पूत"। जब यथेच्छ भिक्षा लेकर (आटा व सूत) जग्गाजी अस्थल को लौट आये तो दादूजी ने समाधि ज्ञान में अपने शिष्य की इस बात को जान लिया। समाधि खुलने पर अपने प्यारे शिष्य से कहा "भाई तुम तो ठगा आये"। अर्थात् जिस कन्या के भाग्य में पुत्र नहीं था उसको पुत्र का वरदान दे

उक्त सेवादासजी विरह-विभोर होकर गहरा रुदन करने लग गये और प्रेम विह्वल होकर चल दिये। अहा! इसे कहते हैं सच्ची साधुता और गुरुभक्ति !!

※ स्वामी दादूदयालजी सांभर में वि० सं० १६२५ में आये और १६३६ तक रहे थे। और सांभर से आंवेर सं० १६३६ में आये थे और वहां १६५० तक रहे थे।

आये। अब वचन सत्य करने को तुमको जाना पड़ेगा। अर्थात् तुमको विवाह उसका हो जाने पर उसके गर्भ से जन्म लेना पड़ेगा। मेरे शिष्य का वचन मिथ्या नहीं होना चाहिए। गुरु की इस आज्ञा को सुन कर जग्गा के तो होश उड़ गये। क्योंकि उसने जान लिया कि कि वचन सत्य करने को मुझे मरकर, उस लड़की के विवाहित होने पर, उचित समय पर उसके पुत्र होकर जन्म लेना अनिवार्य होगा। गुरु के सामने सिर झुका कर कहा "जो आज्ञा"। परन्तु साथ ही में यह भी कहा कि "चाहे मैं मर कर उस वैश्य कन्या का पुत्र भले ही हो जाऊँ परन्तु चरणों ही में आया रहूं"। तो दादूजी ने कहा ऐसा ही होगा। और आज्ञा दी कि जाओ उस लड़की के घरवालों को कह आओ कि जहां उसका विवाह हो वहां कह दें कि ईश्वर की कृपा से उसके एक पुत्र होगा जो ज्ञानी और पंडित होगा, परंतु वह बालपन ही में वैरागी हो जायगा। जग्गा ने ऐसा ही किया। लड़की का विवाह द्यौसा के बूसरगोती खंडेलवाल "चोपा" नामक युवक के साथ हुआ। इस चोपा वैश्य को दादूजी ने स्वयम् भी वरदान दे दिया था जब वे प्रथम बार द्यौसा आये थे। और वरदान देते समय वही बात कह दी थी जो जग्गा के द्वारा आंबेर में सोंकियों के घर कहलाई थी। अर्थात् पुत्र होगा परंतु विरक्त हो जायगा। फलतः घरवालों के पास नहीं रहेगा। इसके सम्बन्ध में जन गोपालजी दादू जन्मलीला-परची * में यों (द्योसा में आने का हाल) लिखते हैं:—

"आगे गये टहटरा मांही। सेवग रामां सनमुप आहीं॥
गांगा सांगा अरु भगवानां। रामदास ऊधौ केसौ जानां॥ २७॥

* महात्मा जनगोपाल रचित "दादूजन्मलीला परची" के अनुसार दादूजी अकबर बादशाह के पास फतहपुर सीकरी सं० वि० १६४२ में गये थे, तब दौसा में भी ठहरे थे। यह उनका दौसा में प्रथम गमन है। उस समय चोखा साहूकार को वरदान दिया होगा। और सं० वि० १६५९ से पूर्व रामत करते हुये

पुनि द्यौसा महिं कियौ प्रवेसू । पेमदास अरु साधौ जैसू ॥
वालक 'सुंदर" सेवग छाजू । मथुरावाई हरिसौं काजू ॥ २८ ॥
अरु वोहरौ नराइन नीकौ । अधिक उदार सूरवां जीकौ ॥
भगवानदास अरु माधौ पंडा । भाव भगति की रोप्यौ झंडा ॥ २९ ॥
जगजीवन के आये स्वामी । नीकैं रिझाये अंतरजामीं ॥
लीला करी महोच्छौ भारी । रहे डूंगरी पहरे चारी ॥ ३० ॥

टहटडा गांव से दादूजी जब द्यौसा आये थे तब, वालक सुन्दरदासजी ने दादूजी के दर्शण पाये थे । इनके माता-पिता ने चरणों में रख कर अर्पण किया था । तब सिर पर हाथ धर कर इनको वड़े प्रेम और कृपा से शिष्य किया था । और द्यौसा के पासही "टहलड़ी" नामक ❋ पहाड़ी पर, जो द्यौसा के पहाड़ का छिटकाव वा नाका है अर्थात् अन्त है, जगजीवनजी (दादूशिष्य) के स्थान वने हुये हैं, जिनको इन पंक्तियों के लेखक ने अच्छी तरह देखा है । इनही जगजीवनजी से सुन्दरदासजी का वहुत संवंध रहा है । इस ही द्यौसा में वहुत से अन्य स्त्री-पुरुष भी दादूजी के शिष्य पहिले से थे अथवा इस समय हुये थे । इनही में सुन्दरदासजी भी थे। सुन्दरदासजी ने स्वयम् लिखा है: —

'दादूजी जब द्यौसा आये । वालपने महँ दर्शन पाये । (ग्रन्थ गुरु सम्प्रदाय)
"तिन ही दीया आपुतें सुन्दर के सिर हाथ" । (आद्यक्षरी । फुटकर काव्य)

सांभर से नरायणे, भैराणे, वचूंण, पून्याणें, रतनपुर, आंवेर, किरांजल्यां, सांगानेर, कालोते, वसई, टहटड़ा, होकर द्यौसा आये । यह द्यौसा में पुनः (दूसरा) आगमन है । 'पुनि द्यौसा में कियो प्रवेसू" । (उक्त परची) "पुनि" शब्द से दोवारा द्यौसा आना कहा गया ।

❋ जगजीवनजी ने अपनी वांणी (निहकर्मी का अंग साखी ७० अंतकी) में कहा है:—भगति अपंडित टहलड़ी, साध करैं निज ठाम । कहि जगजीवन सेवा पूजा, ते सब मानैं राम" ॥ ७० ॥

इस प्रकार यह अलौकिक जन्मकथा प्रसिद्ध है। जिन जग्गाजी का ऊपर वर्णन हुआ है ये "प्रणाली" के अनुसार "भडौंच" (Broach) में नर्वदा नदी के किनारे विख्यात हुये हैं। वहां इनके स्थान बने हुए हैं। और वहां जग्गाजी की एक लाख प्रमाण वांणी (रचना ग्रन्थ) का होना भी कहा जाता है। गुजरात की रीति के अनुसार वहां दादूजी की प्रतिमा भी है, जिसकी पूजन होती है। स्थान का महंत भी है और पांच सात साधु वहां रहते हैं। मेला भी होता है और शालिग्राम शिला भी पूजन में रहती है। प्रातः और संध्या समयों में आरती होती है, भोगराग होते हैं। परन्तु यह वाणी पुस्तक कहीं भी देखने में नहीं आयी। है अवश्य। और इतने बड़े रचना-बाहुल्य से जग्गाजी * का महात्मा और पंडित होना स्पष्ट है। जब पूर्वजन्म में सुंदरदासजी इतने बड़े पंडित, लेखक और महात्मा थे, तो इस जन्म में ईश्वर और गुरु की कृपासे क्यों न इतने विख्यात आचार्य और कवि हों। परन्तु राघवदासजी की भक्तमाल में इस प्रकार लिखा है:—

"द्विवसा है नग्र "चोपो" वुसर है साहूकार,
सुन्दर जनम लीयौ ताही घर आइ कैं।

---

* "जग्गा" यह नाम "जगदीश" का संक्षेप है। यह जग्गाजी उन आठ शिष्यों में से हैं जो स्वामी दादूजी के साथ फतहपुर सीकरी अकबर बादशाह के पास गये थे। और ये दादूजी के प्रधान बावन शिष्यों में से थे। यथा (१) चत्र-दास कृत दादूशिष्य थाँभा प्रणाली छन्द में "जग्गाजी भडौंच मधि" दिया है। और (२) राघवदासजी की भक्तमाल में ५२ दीर्घ महंतों के नामों की छप्पै ३६२ (मूल) में आया है—"चत्रदास द्वै, चरण, प्राग, द्वै, चैन प्रहलादा। वपनों जग्गो, लाल, मापू, टीला अरु चांदा"। (३६२)। और आगे (उक्त माल में छप्पै ४१५ में (मूल) और ४१६ में (मनहर छन्द में) दक्षिण में जाना स्पष्ट लिखा है—"राघो धाये दक्षिण दिसि भक्ति वधाई ईसकी"। तो दक्षिण में शरीर त्याग कर द्यौसा में "चोपा" के घर जग्गाजी जन्मे थे।

पुत्र की है चाहि पति दई है जनाइ,
त्रिया कह्यौ समझाइ स्वांमी कहौ सुषदाइ कैं ॥
स्वांमी मुष कही सुत जनमैगो सही,
पै वैराग लेगौ वही घर रहै नहिं माइ कैं।
एकादस वरष में त्यागौ घर माल सब,
वेदान्त पुराण सुने वांनारसी जाइ कैं" ॥ ४२१ ॥

इसमें यद्यपि जग्गाजी का जन्म लेना और उस विचित्र घटना का उल्लेख नहीं है। तथापि "जनम लियो ताही घर आइके" इस वाक्य के आकर जन्म लेने से जग्गाजी का अवतरित होना ध्वनि से लिया जा सकता है। और दादूजी का वरदान देना तो स्पष्ट ही है। इससे बढ़कर "माधवदास" कृत जन्मलीला ("संतगुणसागर सिद्धान्त") में यों आया है:--

मनहर

"घोसा में भूसर एक ताके घर तात नाहीं, सेवैं जगजीवन कों सुतहित मेठ ही।
संत कहै स्वामी पास जाइये कल्याणपुर, वात सुनि आइ पुर चर्णों में लेट ही ॥
अन्तर की वात लखि स्वांमी उनैं देत माल, नवें मास होत बाल सब दुष मेट ही।
द्वादश वरष घर पीछे कुल त्यागि करि, साधन में आइ भल मोर पंथ भेट ही" ॥२॥
(उक्त जन्मलीला। १६ तरंग।)

इंदव

"लै वरदान चल्यो पुर भूसर, नारिहि कूं निज माल दई है।
नवेंहि मास हुते सुत सुंदर वाण ५ तहां गुण ३ साल थई है ॥ (१६५३)
कातिक मास हुते सुध पष्पहि अष्टमी को अवतार लई है।
दे उपदेश इकीस तरंगहि स्वामीजी मंत्र उचार कई है" ॥ ३ ॥
(उक्त। १६ तरंग)

"घोसा में इक भूसर सेवग तासुत सुंदर नाम कहाई।
ता जननी सुत आइ गुरू ढिग पादसरोजहि देष लुभाई ॥

सुंदर के सिर हाथ धर्‌यो गुरु कानहि में निज मंत्र सुनाई।
बालपने उपदेश दियो गुरु मात पिता घर तात रहाई ॥ २० ॥
(उक्त । २१ तरंग)।

उक्त छन्दों से नीचे लिखी बातें विशेप ज्ञात होती हैं:-(१) सुंदरदासजी के पिता ने (टहलडीवाले) जगजीवनजी ※ महात्मा से पुत्र मिलने की वांछा प्रगट की थी। (२) जगजीवनजी के उपदेश से वह (चोपा) भूसर स्वामी दादूदयालजी के पास कल्याणपुर गया। वहां से दादूजी का वरदान, एक मालारूप में, पाकर घर लौटा। (३) सुंदरदासजी का जन्म नवें महीने में, वरदान पाने के पश्चात् हुआ। (४) वाण ५ और गुण ३ =५३ (१६५३) की साल का जन्म हुआ। परन्तु (५) तिथि लिखी है- कार्त्तिक शुक्ला ८। इस छंद में अपने ग्रन्थ की २१ वीं तरंग का हवाला दिया। तो २१ वीं तरंग के २० वें छन्द में (६) एक भूसर (बूसर) सेवक (दादू शिष्य वा भक्त) के सुन्दर नाम का पुत्र हुआ। (७) वह सुन्दर नामक बालक माता-पिता के साथ आकर दादूजी के भेंट हुआ। दादूजी ने सुन्दर नाम के बालक के सिर पर हाथ धर कर मन्त्र की दीक्षा दी। (८) बालपने में उपदेश दिया और (कुछ दिन तक) माता-पिता के घर रहा (?) वर्णन है। यहाँ सन्देह है कि वे घर रहे या नहीं। स्यात् थोड़े दिन रहे हों उसही का वर्णन हो।

स्वामी माधोदासजी की जन्मलीला, भक्तमाल राघवदासजी की से पूर्व की, और जनगोपालजी की "दादू-जन्मलीला" से पीछे की बनी हुई हमें प्रतीत होती है। क्योंकि जनगोपालजी की सारी कृति इसमें खूब झलक रही है। परन्तु भक्तमाल की विशेप और प्रामाणिक बातें इसमें

※ उपरोक्त जगजीवनजी महात्मा जग्गाजी से भिन्न हैं। जगजीवनजी काशी के पण्डित थे दादूजी के शिष्य हुए और दौसा की टहलड़ी पहाड़ी में जा बसे और तप किया। इनकी "वाणी" बहुत बड़ी है और सम्पूर्ण हमारे संग्रह में हैं।

नहीं मिलती हैं। वासुदेव कवि रचित "दादू चरित चन्द्रिका" में ७ वें उल्लास में आया है: "द्यौसा को पंडेलवाल वूसर जु साह चोपा, ताकी घरनी कैं रह्यौ गरभ सुहानौ है। स्वामी श्री दयालुजी के चरन प्रनाम करि, पूछी साह सन्तति की पुरुष प्रमानौ है॥ स्वामी ने कृपा के मुप वचन उचारौ शुभ, व्है है पुत्र तेरैं पै विराग उर आनौ है। कामिनी कनक तजि ग्रह में रहैगौ नांहि, कुल कौ उधार सुत "सुन्दर" वपानौ है॥ ग्यारह वरप वैस रहिकै पिता कै पास लेइकै विराग जाय कासी वास काज भौ। तहां पढि विद्या सवै आगम निगम वारी वासुदेव धारी वुद्धि कविजन राज भौ॥ ग्यान औ विराग भक्ति मारग प्रवीन व्हैकै, गही गुरु सरन दयाल कैं समाज भौ। दादू श्री दयालजू की परम कृपा के फल सुन्दर जहान वीच गुन को जहाज भौ॥*

शिष्यत्व और नाम:— इस वात को कहना न होगा कि स्वामी सुन्दरदासजी श्री दादूदयालजी के, समयक्रम से, सबसे पिछले शिष्यों में से थे और ज्ञान, कविता, ग्रन्थ निर्माण और लोक में ख्याति आदिक वातों में वे सव शिष्यों से प्रथम थे। द्यौसा के स्थान में, संवत् वि० १६५८ (या १६५६) की ग्रीष्म ऋतु में दीक्षा पाई थी, जव वे केवल छह या सात वर्ष ही के निरे वालक थे। स्वामी दादूदयाल ने उनको वहां आते ही देख कर मानों पहिचान कर ही कहा कि "सुन्दर तू आ गया"। अर्थात् जग्गाजी को जो जन्म लेकर आपकी शरण में इस जन्म में आने की आज्ञा मिली थी वही पूर्ण हुई। शिष्य होने के समय से लगा कर गुरु के परमपद तक वह वहुत थोड़ा समय है जो सुन्दरदासजी को निज गुरु से ज्ञान की प्राप्ति के लिए मिला था। परन्तु वह थोड़ा समय ही उनके लिए वहुत था। जैसे जव अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न और पूर्व

* यह वासुदेव भट्ट कवि प्रसिद्ध कृष्ण महाकवि के वंशज और मण्डन भट्ट के छोटे पुत्र थे। महन्त उदयराम के समय में सं० १९२२ में यह ग्रन्थ वनाया था।

संस्कारनिधि-प्राप्त महान् आत्माओं का प्रादुर्भाव होता है तो ऐसी ही विलक्षण, विचित्र, साधारण कोटि के मनुष्यों से बहुत ऊँची चढ़ी हुई, उनकी स्थिति और गति होती है। वैसे ही सुन्दरदासजी, उनके गुरु दादूजी, गुरुभाई रज्जबजी आदिकों, जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य, ध्रुव, प्रह्लाद, शुकदेव, वामदेव आदिक बालकों की "दैवी गुणमयी" बुद्धि, क्रिया और ज्ञान-गरिमा समझना चाहिये। भगवान ने गीता में आज्ञा की है—"क्षिप्रम् भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति" इत्यादि। और रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, नानक, कबीर, रैदास, सहजोबाई, मीराँबाई, आदि बाल्यावस्था से ही भगवान के रंग में रंगे हुये थे। पूर्व संस्कारों का मसाला जहां जन्म लेते ही अनुकूल किसी हेतु, सहायता, गुरु वा मसाले (वा कल) से मिला नहीं कि लोहा पारस से, लोह चम्बुक से, बारूद आग से, अन्य वृक्ष हरिचन्दन से, धातु रसायन से मिला कि तुरन्त रूपान्तर हो जाता है। स्पर्श, संकेत, शब्द, इशारा, चरणस्पर्श गुरु वचन, अलम् होता है। मशीन वा एञ्जिन की मुख्य कल चली वा पहिया घूमा कि सब कलें चलने लग जाती हैं। ऐसी अलौकिक आत्माओं के लिए ऊँचे चढ़ने को बहुत काल और माथा-पच्ची की आवश्यकता नहीं होती है। वहाँ क्षणमात्र में ही कुछ का कुछ हो जाता है। यही गति-सुगति-सुकर अवस्था-सुन्दरदासजी की अपने गुरु श्री दादूजी के अल्पकालिक सत्सङ्ग, शिक्षा, दीक्षा, रहस्य के इशारे के लिए अलम् थी। स्वयम् सुन्दरदासजी ने कहा है:—

"सुन्दर सतगुरु आप तें किया अनुग्रह आइ।
मोह निशा में सोवते हमकों लिया जगाइ॥
परमातम से आतमा जुदे रहे बहुकाल।
सुन्दर मेला करि दिया सतगुरु मिले दलाल॥ ४६॥
सुन्दर सतगुरु आपतें अति ही भये प्रसन्न।
दूरि किया सन्देह सब जीव ब्रह्म नहिं भिन्न॥
सुन्दर सतगुरु हैं सही सुन्दर शिक्षा दीन्ह।
सुन्दर वचन सुनाइ कें सुन्दर सुन्दर कीन्ह॥ १०२॥ "साखी"

"वचन बान लायौ जाकैं उर थकित भयौ सुनि सोई रे। (१३ वां अंतरा। पद ५ राग सिंध)
गोरषनाथ भरथरी रसिया सोई कबीर अभ्यासारे।
गुरु दादू परसाद कछूइक पायौ सुन्दरदासारे॥ ४॥ १९ (पद)
"सोई भक्ति भक्त पुनि सोई सो भगवन्त अनूपं।
सो गुरु जिनि उपदेश बतायौ सुन्दर तुरिय स्वरूपं॥ २॥ २७ (पद)
"फीटौ तिमिर भान तब ऊग्यौ अंतर भयो प्रकासारे।
युग युग राज दियौ अविनाशी गावै सुन्दरदासारे॥ (पद ३-राग सिंध-अन्तरा १०)
"सुन्दर और न ह्वै गयौ भ्रमतें जान्यौ आन।
अब सुन्दर सुन्दर भयौ सुन्दर उपज्यौ ज्ञान॥ ४॥ ३९ (पद)
"सद्गुरु यह उपदेश करि, किये वस्तुमय सोई॥ ५५॥ (अद्भुत उपदेश ग्रन्थ)
"सुन्दर जब सद्गुरु मिले, जो होते सो कौन॥ ५६॥ (उक्त)
"प्रथमहिं कहौं आपनी बाता। मोहि मिलायौ प्रेरि विधाता॥
दादूजी जब द्यौसा आये। बालपनैं हम दरसन पाये॥ ६॥
तिनके चरननि नायौ माथा। उनि दीयौ मेरे सिर हाथा॥
"सुन्दरदास गुरु मुख जाना। खिरै नहीं तासौं मनमाना॥ ५७॥ (बावनी ग्रन्थ)

सुन्दरदासजी दादूजी के शिष्य थे, इसके प्रमाणों की अपेक्षा रखनेवाले मेरे विचार में, सुन्दरदासजी को न जानेवालों में से गिनने के योग्य ही हैं। सुन्दरदासजी परमभक्त गुरु के थे। उन्होंने अपने गुरु की वन्दना, महिमा, प्रशंसा बहुत ही भक्तिभाव, प्रेम और हर्ष से की है। शतशः स्थलों, प्रकरणों तथा ग्रन्थों और छन्दों में अपने आपको दादूजी महाराज का शिष्य होना और उनका स्तवन बड़े चाव-भाव से वर्णन किया है। उनकी पुनरावृत्ति करना मानों पिष्टपेषण मात्र है। तथापि कुछ उदाहरण देते हैं:—

(१) स्वामी दादू गुरु है मेरौ।
सुन्दरदास शिष्य तिनकेरौ॥ ७॥ (गुरुसम्प्रदाय)
(२) दादू का चेला चेतनि भेला सुन्दर मारग बूझेला। (गुरुदया षट्पदी)
(३) दादूका चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा व्है खेला। (भ्रमविध्वंस अ०)

(४) दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रणाम है। (गुरु उपदेश अ०)
(५) नमो देव दादू नमो देव दादू ॥ (गुरुदेव महिमास्तोत्र अष्टक)
(६) गुरु दादू सहजं आनन्दा ॥ (सहजानन्द ग्रन्थ)
(७) दादू दयालको हूँ नित चेरो ॥ १ ॥ (सवैया, गुरुदेव को अंग)
(८) दादू सद्गुरु वन्दिये सो मेरे सिरमोर। १। (साषी)
(९) गुरु दादू परसाद कछू इक पायो सुन्दरदासारे। १९ (पद) इत्यादिक।

नामः—"सुन्दर" वा "सुन्दरदास" यह नाम हमारे स्वामीजी का माता-पिता का दिया हुआ था, अथवा अपने गुरु का दिया हुआ था इस सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध है कि, जैसा कि ऊपर कहा गया, जब सुन्दर बालक दादूजी के सामने लाया गया तब दादूजी ने उन्हें "सुन्दर" नाम से ही पुकारा। इससे अधिकतर यही प्रतीत होता है कि उनकी शारीरिक और मानसिक सुन्दरता के कारण ही "सुन्दरदास" वा "सुन्दर" यह नाम गुरु ने दिया था। इससे "सुन्दर" यह नाम गुरु का दिया हुआ ही है। हो सकता है कि घर में भी "सुन्दर" ऐसा नाम बालक के सौन्दर्य के कारण वा लाड़प्यार के कारण पड़ गया हो। जो भी हो, हमारे चरित्र-नायक का सुन्दर 'सुन्दर" नाम, उनके अपने मतानुसार, गुरु का दिया हुआ ही समझा गया है। यह नाम "सुन्दर" वा "सुन्दरदास" स्वामीजी को अति प्रिय था। प्रायः प्रत्येक छन्द, साखी वा पद इत्यादि में यह नाम दिया है। कहीं सुन्दर, कहीं सुन्दरदास, कहीं जनसुन्दर लिखा है। और इसको आध्यात्मिक अर्थ में भी कई प्रकार से प्रयोग किया है। कुछेक उदाहरण देते हैं:—

(१) स्वामी दादू गुरु है मेरो, सुन्दरदास शिष्य तिनकेरो।
(२) जो कहै सुन्दर, सुनै सुन्दर उही सुन्दर होइ ॥
(३) वह सुन्दर सुन्दर सुन्दर है, कोई सुन्दर होइ सो पावता है।
(४) सुन्दर सुन्दर व्यापि रह्यौ सब सुन्दर ही महिं सुन्दर सोहै।

(५) सुन्दर सद्गुरु हैं सही, सुन्दर शिक्षा दीन्ह ।
सुन्दर वचन सुनाइकैं, सुन्दर सुन्दर कीन्ह ॥
(६) है सो सुन्दर है सदा, नहीं सो सुन्दर नाँहिं ।
नहीं सो परगट देपिये, है सो लहिये माँहिं ॥
(७) द्वैतभाव तजि निर्भय होई । तब सुन्दर सुन्दर है सोई ॥
(८) नाम सुन्दर धर्‌यो जब ही, भयो तब ही भेद ।
(९) सुन्दर तुरियातीत में सुन्दर ठहराई हो ।
(१०) सुन्दर सुभाव नहिं, सुन्दर है तस में ।
(११) सुन्दर आदि अंत मधि सुन्दर, सुन्दर ही ठहरान्यौ ।
(१२) सुन्दर सोधत सोधतैं, सुन्दर ठहराना ।
(१३) सुन्दर आरति, सुन्दर देवा ।
सुन्दरदास करैं तहां सेवा॥ ॥

इस प्रकार गुरुदत्त नाम का, बड़े प्रेम, चाव, गर्व, अध्यात्म अर्थ, श्लेषार्थ आदि से, स्वामी सुन्दरदासजी (अपने नाम "सुन्दरदास" वा "सुन्दर" का भाँति-भाँति से) प्रयोग करते हैं । जो अति ललित और मनोहर प्रतीत होता है । नाम की सुन्दरता गुरुप्रेमभाव के कारण तथा अर्थ की गम्भीरता से और भी उत्तम जान पड़ती है । वस्तुतः यह शब्द ही उत्तमता से समूल भरा हुआ है । इसकी व्युत्पत्ति को देखते और अर्थ पर्यायादि की दृष्टि से भी मनोरंजनकारी है । सुन्दर का अर्थ (१) मनोहर । (२) रुचिर । (३) कान्त । (४) मनोरम । (५) रुचिकर वा रुच्य । (६) मनोज्ञ । (७) मंजु वा मंजुल । (८) अथवा सौम्य । (९) भद्रक । (१०)

॥ कहीं-कहीं "सयानादास" वा "सयाना" नाम भी आया है । यह कोई नाम होगा वा बोलने में बोली के ढङ्ग पर होगा अथवा उपदेश वा समझाने में भी ऐसा कह कर सम्बोधन करते हैं । जैसे हे स्यांणा ! अरे सियांणा ! इत्यादि ।

रमणीय। (११) अभिराम। (१२) आनन्दकारी। (१३) स्वरूप। (१४) अभिरूपवान्। (१५) दिव्य।※ इत्यादि अर्थों में।

सुन्दरदास इस नाम के स्वामी दादूदयालजी के दो शिष्य थे। बड़े तो "बड़े सुन्दरदासजी" जो नागा जमाअत के आदि प्रवर्त्तक हुए। और दूसरे ये सुन्दरदासजी जो "छोटे सुन्दरदासजी" कहाते हैं। और ज्ञान, योग, पांडित्य, काव्यशक्ति और काव्य रचना आदि कारणों से सर्वप्रथम हैं।

इस नाम के प्रकरण ही में "सुन्दर" नाम के अन्य ज्ञात कवियों का भी उल्लेख कर देना उचित है। जिससे इनके विषय में जो भ्रम हुए हैं वा हो सकैं वे निवृत्त हो जांय।

(१) सुन्दर महाकविराय। ग्वालियर के नागर ब्राह्मण। शाहजहाँ बादशाह के दरबारी कवि थे। "सुन्दर शृङ्गार" "सिंहासनबत्तीसी" और "बारहमास" आदि के रचयिता। सं० वि० १६८८ में "सुन्दर शृङ्गार" बनाया। इनके सम्बन्धी भ्रमात्मक वर्णन पर अन्यत्र लिखेंगे॥।

(२) सुन्दर कवि—असनी जिला फतहपुर के रहनेवाले भाट। वि० स० १९३० में विद्यमान थे। "रसप्रबोध" ग्रन्थ बनाया था।†

(३) सुन्दरदास—बनारस के। कविताकाल वि० सं० १८५७ से १८६९ तक। "सुन्दरश्याम विलास" "विनयसार" और "सुन्दरशत-शृङ्गार" ये ग्रन्थ "विनोद" में दिये हैं।+ सं० २ और ३ बहुत पीछे के कवि हैं। सुन्दरदासजी के समकालीन केवल सं० १ वाले सुन्दर कवि हैं। अतः अब किसी प्रकार भ्रम के लिए स्थान नहीं रहता है।

※ व्युत्पत्ति=सु-सुष्ठु+ उनत्ति-आर्द्रीकरोति चित्तम्। वा सु+उन्द क्लेदने+अरः। शकन्ध्वादित्वात् साधुः। (शब्दकल्पद्रुमकोश)। (अमरकोश। अमरटीका। शब्द-रत्नावली। जटाधर।)

॥ "मिश्रबन्धुविनोद" पृ० ४५४-५५। और मदनकोश पृ० ३१५।

† "मदनकोश" पृ० ३१५।

+ "विनोद" पृ० ९३९ सं० (११४७)।

सुन्दरदासजी ने अपने गुरु दादूजी की प्रशंसा में अपने गहरे भक्तिभाव कहे हैं वे परम आदरणीय और परम श्लाघ्य हैं। इस पर भूमिका आदि में विशेषतया लिखा गया है। वर्तमान काल गुरुभक्ति की मात्रा से बहुत कुछ हटता जा रहा है। और यही दुःख की बात है। नई रोशनी उस पुरानी रोशनी से अपने अन्धकारमय अज्ञान और हीन चेष्टा को मिटावै तो अच्छी बात है।

गुरुभक्तिः—

दादूदयालजी के शिष्य हो जाने पर सुन्दरदासजी जगजीवनजी की संभाल और देख-रेख में दादूजी के साथ-साथ रहे। दादूजी के अन्य शिष्य प्रागदासजी, सन्तदासजी आदि भी इन पर पूर्ण प्रेम-वात्सल्यभाव रखते थे क्योंकि एक तो गुरुजी ने प्रथम ही से इन पर पूर्ण मेहर दरसाई थी, फिर ये सुन्दररूप के बालक थे, परन्तु सबसे अधिक इनके होनहार लक्षणों और उदीयमान प्रतिभा की किरणों ने सबको मोहित, आकर्पित और प्रभावित कर दिया था। दादूजी धौसा से चलकर जगजीवनजी के आश्रम में टहलड़ो डूँगरी की तलेटी में पधारे। वहाँ से कल्याण पाटण आये जहाँ लापा नरहर आदिक भक्तों और सेवकों और शिष्यों ने बहुत भक्तिभाव से सेवा और उत्सव किये। फिर गांव आँधी और थौलाई में आये। यहाँ से राहोरी गये। आगे रतनपुर आये। यहाँ से साँभर जाते हुए मार्ग में तीन दिन अन्य स्थानों में रहें। फिर साँभर जा पहुँचे। कुछ दिन साँभर में रहे। साँभर से करड्याले गाँव में जाकर ठहरे। यहाँ करड्याले में बहुत दिन सेवकों ने रक्खे। फिर यहाँ से मोरडे गांव में भक्तों ने पधरावनी कराई। यहाँ से नरायण*दासजी खंगारोत नरायणे के स्वामी (शासक) ने दादूजी को अपने यहाँ बुलाया। और बहुत भक्ति और चावभाव से

शिष्य होने के पीछेः—

---

* नरायणदासजी ही ने नरायणा बसाया। बड़े ही तेजस्वी यशस्वी वीर थे। बादशाह से रुतबा पाया था। सं० वि० १६५९ में दादूजी को नरायणे में लाये थे।

सेवा की। दादूजी की इच्छा भी ऐसी ही थी कि भैराणे के पास नरायणे में बस कर वहीं अपने अन्त समय को बिता कर शरीर त्यागें। संवत् वि० १६५९ में दादूजी नरायणे में अपने शिष्यों सहित आये जिनमें सुन्दरदासजी भी थे। अन्त समय के निकट आने की सूचना स्वामी दादूदयालजी ने प्रथम ही शिष्यों को दे दी थी। इस पर टीला, गरीबदास आदिकों ने दादूजी से जिज्ञासाएं की थीं। उनके उत्तरों में एक वचन का कहा जाना माधोदासजी ने अपने ग्रन्थ में लिखा है सो ही यहाँ देते हैं:—

"वर्ष पिचेतर यूं कर साधन परवत में इकठे मिल रहिये।
वर्ष चौबीस तपे गिरि कंदर परंपरा हरि को पद लहिये॥
बात सुनों सिष और इकावन सुन्दर नाम लघू नहिं अइये।
सुन्दर नाम कहै कुल भूसर दौसा में उपदेस जु दइये" ॥ २६ ॥
मात-पिता उन पाइ हरीपद पीछेते आइ मिले तुम मांईं।
ज्ञान विज्ञान प्रवीन हुते अति सांख्य वेदान्त उचार कराईं॥
टेक गहै गुरु पंथ की सुन्दर साधुन मांहिं छिपे कित नांईं।
बावन सिष्य रचो निज पंथहि दे उपदेश सबै तम जांईं" ॥२८॥ तरंग२२

इनमें सुन्दरदासजी का दादूजी के परमपदगामी होने के समय वर्तमान (वहां मौजूद) रहना, तथा उनके लिए वरदान वा भविष्यवाणी का होना पाया जाता है। यद्यपि यह बात जनगोपाल कृत दादू-जन्मलीला में बिलकुल नहीं है और न सुन्दरदासजी का नाम उन १०० सौ सन्तों में है जिनका भैराणे में तप करना २४ वीं तरंग में लिखा है। उस तरंग में इन सौ सन्तों में बड़े सुन्दरदासजी का नाम भी नहीं है। उनके लिए ऐसा कहा जाता है कि वे तो दादूजी के सामने ही हिमालय में तप करने को चले गये थे। इस ही प्रकार बालक समझ कर छोटे सुन्दरदासजी को तप के लिए भैराणे नहीं ले गये होंगे। परन्तु ५२ दीर्घ महन्तों के नाम भी, जिनमें दोनों सुन्दरदासों के नाम हैं, इन सौ १०० सन्तों में नहीं हैं। इससे पाया

जाता है कि ये ५२ तप के लिए नहीं गये। क्योंकि ये तो पहिले ही सिद्ध हो चुके थे।

दादूजी के परमात्मलीन होने पर उनके शरीर को देवप्रेषित पालकी में रख कर भैराणां नामक डूंगर की खोल में रख आये थे, जिसके लिए दादूजी की अन्तिम आज्ञा थी। गरीबदासजी ने उनका महोच्छव वा मेला (तुकता) बड़े समारोह से किया था जिसमें सहस्रों साधु, शिष्य, सेवक और भक्त एकत्रित हुए थे। सबका बहुत सत्कार किया गया था। भोजन और वस्त्र बांटे गये थे। गरीबदासजी ने चादर ओढ़ी थी। इसही प्रसंग में सुन्दरदासजी के सम्बन्ध में एक चमत्कारी कथा कहते हैं, जिसमें सुन्दरदासजी की प्रतिभा का पूर्ण परिचय होता है। कहते हैं कि एक भरी सभा में दादूजी के सब ही शिष्य गरीबदासजी के सामने बैठे थे उनमें ये छोटे से सुन्दरदासजी भी थे। किसी प्रसंग में गरीबदासजी ने सुन्दरदासजी को निरा अबोध बालक समझ कर उनका उपहास किया। ओजस्वी तेजपुञ्ज-बाल-ब्रह्मचारी इस सभागत अपमान को नहीं सह सका और सिंहशिशु के समान छोटे से मुख से ललकार उठे। और इस प्रतिभाशाली बाल-कवि ने अपमानकर्त्ता गुरुभाई के दर्प को नीचे लिखी कविता से तोड़ दिया:—

"क्या दुनिया असतूत करैगी क्या दुनिया के रूसे से।
साहिब सेती रहो सुरषरू आतम बखसे ऊसे से॥
क्या किरपन मूंजी की माया नाँव न होय नपूंसे से।
कूड़ा वचन जिन्होंने भाष्या बिल्ली मरै न मूंसे से॥
जन सुन्दर अलमस्त दिवाना सब्द सुनाया धूंसे से।
मांनू तो मरजाद रहैगी नहिं मानूं तो घूंसे से"॥

इस धड़ल्ले से और निर्भीकता के साथ कहे हुए छन्द को, एक बालक के मुंह से इस ढंग पर उच्चारित वचन को, सुन कर सारी सभा में सन्नाटा छा गया। जो गरीबदासजी के "जी हुजूरी" खुशामदी टट्टू थे उन्होंने द्वेष से भावना की, परन्तु निष्पक्ष न्याय बुद्धि के स्वतन्त्र संतजन जो थे उन्होंने

वात्सल्य प्रेम और सद्भाव से इसे अच्छा कहा। और सुन्दरदासजी के लिए "वाह-वाह" के शब्द निकले। गरीबदासजी मन में सुकड़ाये और अपने किये पर पछताये। बालक भले ही थे, गुरु के शिष्य होने से आखिर थे वे गुरु भाई। इस ओजस्वी स्वतन्त्र भरे वचन को सुन कर क्या गरीबदासजी और क्या उनके पृष्टपोषक सब इस बालकवि का लोहा मान गये। किसी की मजाल चूँ करने तक की नहीं हुई। सुन्दरदासजी इस वचन को सुना कर रज्जबजी और जगजीवणजी आदिकों के साथ-साथ सभा से उठ कर बाहर चले आये। गरीबदासजी ने रज्जबजी आदि को भी क्षोभित कर दिया था। इससे ये लोग भी वहाँ ठहरना अप्रिय समझ कर सुन्दरदासजी को साथ लेकर चल दिये। परन्तु गरीबदासजी ने इन्हें सन्मानपूर्वक वापस बुलाया। मानों, अपने दोष की क्षमा माँगी। सुन्दरदासजी ने कहीं पर भी गरीबदासजी या अन्य किसी गुरुभाई की अपने ग्रन्थों में प्रशंसा नहीं की* है जैसे उन लोगों ने की है। सिवाय ईश्वर या गुरु के किसी की नहीं।

इस उक्त कविता का होना निश्चित है। परन्तु यह उस समय की घटना प्रतीत होती है जब सब लोग वार्षिक मेले पर फाल्गुन में आये और जब सुन्दरदासजी ११ वर्ष के करीब हो गये थे। और इस घटना के उपरान्त ही वे जगजीवणजी, रज्जबजी, आदिक सन्तों के साथ काशी पढ़ने को चले गये थे। होनहार सुन्दरदासजी काशी जाने से पूर्व प्रायः जगजीवणजी के पास "टहलड़ी" में वाणी आदि पढते रहे। थोड़े ही दिन में दादूवाणी कण्ठ हो गई थी। जगजीवणजी आप पण्डित थे, ऐसे मेधावान शिक्षार्थी को पाकर बड़े चाव के साथ विद्या सिखाते रहे कविता का चसका तब ही से गहरा लग गया था। कविता कहने और करने लगे थे।

* सुन्दरदासजी की स्वभाविक सुमधुर, शिष्टतापूर्ण, और निर्मल स्फीत कविता को देखने और विचारने से यह उद्दण्ड और अशिष्टता की कविता उनके योग्य नहीं जचती है।

कभी-कभी इनके माता-पिता आ जाते, कभी सुन्दरदासजी जगजीवणजी के साथ घर भी हो आते। कुछ दिन ये डीडवाणे भी गये थे ऐसा देशाटन के सवैयों से प्रतीत होता है। परन्तु यह बात स्यात् कुछ पीछे की है। जबतक अपने गुरु श्री दादूदयालजी नरायणे में वर्तमान रहे, सुन्दरदासजी निरन्तर उनके मुख से ज्ञान की शिक्षा पाते रहे। इस गुरु द्वारा ज्ञान की प्राप्ति को, सच्चे सद्भाव सम्पन्न शिष्य सुन्दरदासजी ने, अपने ग्रन्थों में, अनेक स्थलों में अनेक भाँति से, वर्णन किया है—

(२१) "सद्गुरु महिमा नीसानी" ग्रन्थ सारा का सारा, इसका उत्तम उदाहरण है।

"संघ शिष्य पलटै सो सद्गुरु कहिये"।

"गुरु उचरिया सो करिया"

"दादू का चेला भरम-पछेला सुन्दर न्यारा व्है खेला"।

"सुन्दरदास गुरु मुखि जाना। खिरै नहीं तासो मन माना"।

"दादू का चेला चेतन भेला सुन्दर मारग बूझेला"।

"प्रथमहि गुरुदेव मुखतें उच्चार कीयो, वेई तो वचन आइ लगे निज हिये हैं"।

इत्यादि, इत्यादि। गुरु के ब्रह्मलीन हो जाने के उपरान्त उक्त सन्तों के साथ रह कर विद्या और ज्ञान की प्राप्ति निरन्तर होती रही।

काशी गमन एवं शिक्षा, शास्त्रज्ञानः—

संवत् १६६३ या १६६४ में, ग्यारह वर्ष की अवस्था में† सुन्दरदासजी जगजीवणी, रज्जवजी और अन्य गुरु भाइयों के साथ काशी गये। वहाँ रह कर व्याकरण, साहित्य, सांख्य, वेदान्त, योग और षट्दर्शन के ग्रन्थ पढ़े। वेदान्त में ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य सहित तथा उपनिषद और योगवाशिष्ट आदि पढ़े। अकेले "ज्ञानसमुद्र" ग्रन्थ के देखने से तथा

† माधोदासजी ने "द्वादश वर्ष" में काशी जाने (वा शिष्य होने ?) का उल्लेख किया है। ऊपर छन्द देखें।

"सवैया" ग्रन्थ के "सांख्यज्ञान को अङ्ग" "अद्वैतज्ञान को अङ्ग" "ब्रह्मनिःकलंक को अङ्ग" "ज्ञानी को अङ्ग" "आत्मानुभव को अङ्ग" इत्यादि के समझने से, तथा "सर्वाङ्गयोग ग्रन्थ" "पंचेन्द्रिय चरित्र ग्रन्थ" राजयोग हठयोग के प्रकरणों, "त्रिविध अंतःकरणभेद ग्रन्थ" आदिकों के पढ़ने से तथा अन्य ग्रन्थों के शास्त्रीय प्रकरणों के ध्यानपूर्वक पढ़ने से, स्पष्ट प्रगट होगा कि स्वामीजी ने कितना शास्त्र पढ़ा होगा और कितना सत्संग महात्माओं और योगियों का किया होगा ? शास्त्रों के श्रवण, मनन के साथ-साथ दादूवाणी के मार्मिक अर्थों को समझने में इनका समय वहुत जाता था। तथा भाषा-साहित्य में इनकी अत्यन्त अभिरुचि थी। भाषा-काव्य के समस्त अङ्ग विधिपूर्वक पढ़े थे। महाकवियों के रीति ग्रन्थ इनके भली-भाँति अवलोकन किये हुये थे। छन्द, अलंकार, रस और सर्वप्रकार की काव्य-चातुरी में ये, काशी में तथा पीछे अन्य स्थानों में, वहुत अभ्यस्त हो गये थे। ये प्रागदासजी वीहाणी के पास डीडवाणे और फतहपुर में भी रह कर उनका सत्सङ्ग (इन्होंने) किया था। यह वात सं० १६६३ के पहिले की और इनके काशी से लौट आने के पीछे की है। प्रागदासजी तो इनके साथ काशी नहीं गये थे। वे १६६३ में डीडवाणे से फतहपुर आये। जैसा कि उनके और सुन्दरदासजी के सम्वन्धी पत्रों से विदित होता है*।

---

* स्वामी गङ्गारामजी महन्त ने पुराणे पत्रों की नकल हमको दी थी। जो सुन्दरदासजी की शिष्य परम्परा में (राघवदासजी की भक्तमाल पर टीका करनेवाले) "चन्द्रदासजी" थे उनके हाथ के लिखे हुए थे। उनसे साधु रामभक्त ने जो नकल की वही गङ्गारामजी ने हमको दी थी और असल पत्रे भी हमको दिखलाये थे मु० झुंझणूं संवत् वि० १९५९ में। तदनुसार यहां लिखते वा नकल देते हैं, जिससे प्रागदासजी और उनके शिष्यों के संवत् आदि ज्ञात होंगे और सुन्दरदासजी का और उनका तथा सन्तदासजी, घड़सीदासजी, हरिदासजी आदिका भी कुछ वृत्त जाना जा सकेगा।—"श्री स्वामी दादूदयालजी संवत् १६३४ में "कांडोली" पधारया तव

प्रागदासजी विहाणी सिष हुवा। अर सं० १६६२ प्रागदासजी फतेपुर पधार्या मि० आसाढ़ वदि ७। तत्पुत्र मथरादास गुफा चिणाइ दई उत्तर साम्हीं रुपैया ९०) लागा संवत् १६६५ मिती मंगसर सुदि १२। पीछे सर्व सेवगां पोद्दार १, केजड़ीवाल २, मोर ३, चमड़िया ४, बुधिया ५ मिलि महल भँवरा समेत वणवाय दयो अर चौक पेड़ी बँणवाया रुपैया ३४९) लागा। संवत् १६८१ मिती चैत वदि ३ संपूरण हुवो। ता पीछैं श्रीस्वामी दादूदयालजी का सिष सन्तदासजी चमड़िया अगरवाला महाजन समाधि दोई गुमज जाली सहेत अर अठखंभो नीचै तिवारो उगूंणै साम्हीं गुफा दक्षिण साम्ही अरु चौक महल तांई जहमैं रुपैया ८२॥ लागा। संवत १६९४ संपूरण हुआ मिती जेठ सुदि १५।—श्रीस्वामी दादूदयालजी का सिष प्रागदासजी विहाणी तिनकी भी समाधि फतेपुर में छै संवत् १६८८ मिती कात्तिक वदि ६ रामसरणि हुवा।—तिनका सिष रामदासजी जिनकी भी समाधि फतेपुर मैं छै संवत् १६९५ रामसरणि हुआ मिती पोप सुदि ६। तिनसूं छोटा केसोदासजी सम्वत् १६९७ मितो आसोज वदि ८ रामसरणि हुवा। तिनसूं छोटा प्रमाणदासजी सम्वत् १६९९ मिती फागण वदि ७ नैं रामसरणि हुवा। तिन दोन्यां का चौंतरा डीडवाणै गाढाकूवा सूं आंथूंण उतराध की कूंट मैं चिणाया सम्वत् १६९९ मिती चैत सुदि १५ नैं पूरा हुवा रुपैया २३) लागा। तिनसूं छोटा वोहिथदासजी सम्वत् १७२९ मिती वैसाष सुदि ३ नैं पूरा हुवा केसोदासजी का चौंतरा सूं उतराध माहूं छै।—तिनसूं छोटा माधोदासजी तिनकी छत्री चौषंभी केसोदासजी का चौंतरासूं ऊगूंणी कानी लगती चिणाई छैं सम्वत् १७३३ का रुपैया ११७) लागा प्रमाणदासजी का चौंतरा सूं दक्षिणाध कानी छत्री छैं। अर उत्तर दिस सिष पूरणदासजी जिनकौ चौंतरो सं० १७४१ मि० पोह वदि १ पूरौ हुवौ।—माधोदासजी का सिष वृन्दावनदासजी लिछमीदासजी ज्यांका चौंतरा छत्री रु समाधि कै बीच भेड़ा मैं छै सं० १७६८ मि० कातिक सुदी ६। और पेमदासजी का चौंतरा वोहिंथदासजी का चौंतरा सूं लगतो उतराध कानी छै सं० १७८६ मि० वैसाप वदि ७ नैं पूरो हुवो।—श्री दादूदयालजी का सिष "घड़सीदासजी" तिनका सिष गोविन्ददासजी सम्वत् १६९६

मि० सावण सुदि ४ नैं रामसरणि हुवा। तिनकी समाधि गाढा कूवासूं पछिम उत्तर की कूंट मैं वणाई पांवडा पचासेक अरु झेवरां की जमी सूं ऊगूणी कानी सं० १६९६ का मंगसिर सुदि ३ ने पूरी हुई रुपैया ३५) लाग्या। सिष हरिरामदासजी को चौंतरो समाधि कै पाछै लगतो ही वणायो रुपैया ९) लाग्या सं० १७२५ का मि० जेठ वदि १।—श्रीस्वामी प्रागदासजी का सिष हरिदासजी निरञ्जनी सम्वत् १६७० के मि० फागण सुदि ६ रामसरणि हुवा सो उनकी समाधि गोविन्ददासजी प्रमाणदासजी की समाधि सूं ऊगूंणी कानी तीर वो छै अर येक चेला की छैं राघोदासजी की। अरु प्रागदासजी नैं हरिदासजी सम्वत् १६५६ का जेठ में गुरु धार्‌या" ॥ ("जोर्ण कागदां की नकल उतारी है चत्रदास" ।)

इतना विभाग पत्रों का प्रागदासजी आदिकों के समय सम्बन्धी दिया गया। इनही में सुन्दरदासजी के सम्बन्ध में लेख है। उस लेख को आगे प्रसंग से देंगे।

और फतहपुर में प्रागदासजी का शिलालेख मकान के दरवाजे पर लगा है उसकी नकलः—"श्रीरामराम। संवत् १६८८ सोलासह अट्ठासिये कातिग मास विचार। असित पष्टमी तिथि हुती वार कहत बुधवार। १। दादू कौ सिष सन्तजन ताकी पटतर कौंन। प्रागदास जगजोतिकैं कियौ परमपद गौन। २। दीलीपति जहांगीर सुत राजति शाह जिहांन। दौलति षां नृप फतेपुरि तानन्दन ताहरषांन। ३। सन्तदास सब विधि सरस सकल मण्डली सन्त। राम साल बहुविधि रची जहां हरि सन्त वसन्त। ४।"

और सन्तदासजी का शिलालेख अठखंभे की छत्री में लगा है उसकी नकलः— "संवत् १६९६ दिवस माघ वदि पंचमी पंच घडी परमाण। सन्तदास समरथ सुतन पायौ पद निरवान। १। अग्रवंशनो ऊपनो चहुँ दिस अधिक सुवास। फतेपुर में आइ कर कियौ सुगंधे पास। २। सुत मदसूदन हरि भगति सन्तन आगे दीन। प्रीतगदाधर अति भली मिलि के कथा जु कीन। ३। माघ वदि ५ पंचमी पक्ष कृष्ण सुकरवार सुजान। १।"

फतहपुर के नव्वाबों का हाल आगे चलकर देंगे॥ सन्तदासजी दादूजी के प्रसिद्ध शिष्यों में थे। बड़े योगी थे। जीवित समाधि ली थी। उनही की यह यादगार

यहीं उनका स्थान बना और यहीं वे (प्रागदासजी) परमपद प्राप्त हुए, सं० वि० १६८८ में। प्रागदासजी की मृत्यु तिथि का स्मारक उस मकान पर लगा हुआ शिलालेख है जिसमें मिती कार्त्तिक बदि ८ सं० वि० १६८८ लिखा है। यह छंद (शिलालेख का) संतदासजी का बनाया हुआ है कि छंद में नाम संतदासजी का है। संतदासजी भी बड़े योगी थे उन्होंने जीवित समाधि ली थी। उनकी यादगार अठखंभे की छत्री हैं, जिसमें शिलालेख खुदा हुआ है। इसमें मि० माघ बदि पञ्चमी ५ शुक्रवार सं० वि० १६९६ परमपद गति का समय दिया है।

काशी में वासः—

काशी में विद्याध्ययन और ज्ञान-प्राप्ति के निमित्त सुन्दरदासजी सं० १६६३ या १६६४ से १६८२ तक रहे। मानों वहाँ पर एक बीसी-पूर्ण समय व्यतीत किया। अनेक पण्डितों से पढ़ा, महात्माओं का सत्सङ्ग किया। योग-विद्या में पारंगत हो गये। भाषा-काव्य में बड़ी योग्यता प्राप्त की। स्मरण-शक्ति (धारणा) और स्फूर्त्ति (उपजत) इनकी बड़ी प्रबल थी। जो कुछ पढ़ते, सुनते, देख लेते उसको कभी नहीं भूलते। और समय पर, अवसर पर अवधारित पदार्थ को तुरन्त कह देते। इससे इनके गुरुजन इनसे बहुत प्रसन्न थे।

काशी में स्थानः—

काशी में असीघाट पर गंगातट पर रहा करते। और भिक्षा से वा सदावर्त्त से निर्वाह करते ऐसा जाना गया है। कोई निर्णीत स्थान उस समय नहीं था। जहाँ अन्य शिष्य लोग वा साधु विद्यार्थी रहते, वहीं ये भी रहते। स्वामीजी के थांभे के महन्त स्व० गंगारामजी तथा वर्त्तमान ख्यालीरामजी से जाना गया कि स्वामी सुन्दरदासजी के वंश परम्परा में महन्त लच्छीरामजी तथा खेमदासजी ने काशी निवास किया था। तब उनके सेवक "सूरेके" अग्रवाल महाजनों -

है। इनके शिष्यों में महात्मा भीपजन हुए, जिनकी रचित "भीषबावनी" सन्त-साहित्य में एक रत्न है इनकी करामातें भी विख्यात हैं।

हरदयाल विशनदयाल ने—जो रामगढ़ फतहपुर के रहनेवाले और कलकत्ते में व्यापार करते हैं—और "पार-वाले" कहलाते हैं—उन स्वामियों के लिए स्थान बनवा दिये थे। जो काशी असीघाट पर अद्यावधि विद्यमान हैं और वे स्थान "दादूमठ" के नाम से बोले जाते हैं। इनमें साधु लोग रहते हैं जिनके अन्न-वस्त्र का प्रबन्ध है। और ट्रस्टी भी नियत हैं।—इस सम्बन्ध में हमने अपने सजाति और मित्र श्रीयुत जोशी महोदय वेंकट-लालजी से, ठठेरी बाजार के प्रतिष्ठित धनाढ्य व्यापारी से इसका हाल पूछा तो उन्होंने अपने उत्तर ता० ७ जून—सन् १९३६ में जो लिखा उसका सार देते हैं:—

"अस्सीघाट पर "दादूमठ" का नक़शा (सूरत-रूप) इस तरह है कि चौड़ी जमीन के चारों तरफ चहार दीवारी पक्की बेमरम्मत जीर्ण दशा में है उसके दो दरवाजे पुराणे लगे हैं, चोखटें टूटी हुई हैं। भीतर एक शिवाला है जिसमें शिवलिंग, दुर्गा, गणेश, हनुमान की मूर्त्तियाँ हैं। बाहर नींब का पेड़ है, शिवालय से पाँच हाथ की दूरी पर। सहन चौड़ा है २०-२५ मनुष्य रह सकते हैं। इस समय ९ साधु रह रहे हैं। साधु आते-जाते रहते हैं। दो साधु पुराने हैं एक ५५ वर्ष का दूसरा ६२ वर्ष का। साधु सब मारवाड़ के हैं जो कोटड़ियों में रहते हैं। कोटड़ियाँ खंभियाँदार हैं संख्या में ११ हैं। एक पुजारी है जो भीख मांग कर निर्वाह करता है। मठ की आर्थिक अवस्था बड़ी खराब है। साधुओं को खाने को कुछ नहीं मिलता, इधर-उधर से मांग-तांग कर निर्वाह करते हैं। इस स्थान का एक महन्त है जिसका नाम मोहनदास है वह कलकत्ते में वैद्यक करते हैं, साल छह मास में कभी आते हैं। सफ़ाई करा देते हैं। परन्तु ये भी आर्थिक दशा में ठीक नहीं हैं। ये कलकत्ते के एक सेठ ठाकुरदास से—जो सिलकिया बाजार में रहते हैं और देश में सूरेका अग्रवाले प्रसिद्ध हैं—५) पाँच रु० मासिक पूजन खर्च का पाते हैं। जिसमें ।।) मासिक फूलमाली को, २) रु० मा० नैवेद्य का, ।।।) मा० दिया-बत्ती का और ।।।) मा० पुजारी को, और १) म्युनि-

सिपल टैक्स में खर्च हो जाता है। म्युनिसिपल का सालाना १) लगता है इससे पाया जाता है कि १२) रु० उक्त महन्त ले लेता है। मैंने महन्त मोहनदास से भी हालात पूछने को पत्र दिया है और सेठ ठाकुरदास को भी खत दिया है। और खत सिटी मजिस्ट्रेट के द्वारा भिजाये हैं"।

इस ही सम्बन्ध में "राजस्थान" पत्र के सहकारी सम्पादक और "राजस्थान रिसर्च सुसाइटी" के प्रमुख कार्यकर्त्ता बा० भगवतीप्रसाद सिंह बीसेन ने कृपया अनुसन्धान करके ता० ६ जून के पत्र में लिखा है उसका सार भी नीचे देते हैं:—

"स्वामी सुन्दरदासजी के सम्बन्ध में जानकारी रखनेवाला कोई भी दादूपंथी इस समय काशी में नहीं है। अन्यान्य व्यक्तियों से ज्ञात हुआ कि स्वामीजी अस्सीघाट पर ही कहीं गुफा में रह कर भजन किया करते और साथ ही अच्छे-अच्छे विद्वानों की संगति भी। उनके स्थान का ठीक-ठीक पता लगाना असम्भव है। उनके समय में अस्सी पर एकाध मन्दिर के सिवा कुछ नहीं था। उस समय अस्सी पर गंगा का करार ऊँचा रहने के कारण अनेकों सन्त-महात्मा गुफाएँ बना कर वहाँ रहा करते थे।— "दादूमठ" गंगातट से ५०० गज़ की दूसरी पर है। हो सकता है कि उस समय यह गंगा का ही करार हो। आज से ६०-७० वर्ष पूर्व किसी दादूपन्थी सन्त की प्रेरणा से कलकत्ता के सूरेकों ने यह मठ बनवा दिया था। मठ बनने से अबतक इसके ५ महन्त हो चुके हैं। अन्तिम महन्त बाबा गणेशदासजी को—जो एक विद्वान् और सुयोग्य महात्मा थे—किसी दुष्ट ने मार कर पाखाने में डाल दिया था जिसे फाँसी पर लटकना पड़ा। मठ बनने के कई वर्षों तक तो अन्न-वस्त्र का प्रबन्ध रहा परन्तु अब नहीं है। मठ अब गुण्डों का अखाड़ा-सा हो रहा है। क्या ही अच्छा होता कि कोई सुयोग्य व्यक्ति इसके सञ्चालन का भार लेकर जीर्णोद्धार भी कराता। यह स्थान बड़ा ही उत्तम है। यहाँ पाठशाला आदि की संस्थापना से अच्छा हो सकता है...। इसमें एक सुन्दर पुस्तकालय भी था जिसमें अनेकों

प्राचीन ग्रन्थ संगृहीत थे। परन्तु जब इसे सम्भालनेवाला नहीं रहा, तब पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी ने—जो ट्रस्टियों में से थे—इसे नरायणे (दादूपन्थियों के प्रधान स्थान) में भिजवा दिया॥। मठ में घुसते ही बायें हाथ को एक प्राचीन कारीगरी का चित्र लटक रहा है दादूजी बैठे हैं पीछे को सुन्दरदासजी चँवर लिये खड़े हैं, सामने बादशाह अकबर और महाराज टीकाजी बैठे हैं। चित्र १५० वर्ष का पुराना होगा॥।......इसके सिवाय "चेतगंज" में एक दादूमठ और भी है। वहाँ पर भी एक महन्त रहते हैं। परन्तु वे कुछ वाकिफ़ नहीं"॥

बा० भगवतीप्रसाद सिंह काशी की तरफ के रहनेवाले हैं और काशी से बहुत परिचय रखते हैं। इनका अनुसन्धान भी बहुत प्रामाणिक है। उक्त जोशी वेंकटलालजी तो काशी के बहुत दीर्घयुग से वासी हैं। अतः इन दोनों के अन्वेषण फतहपुर के महन्तजी के कथन की पुष्टि करने में प्रमाण हैं।

॥ नरायणा (राज्य जयपुर की तहसील सांभर में—जयपुर अजमेर लाइन पर) दादूजी का परमपद स्थान है। यहां के भंडारे में सहस्रों हस्तलिखित पुस्तकें हैं। प्राचीन पुस्तकों के बहुत से रत्न इसमें से प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु पूरी देख-रेख इसकी भी नहीं है।

॥ इस चित्र की बहुत सुन्दर सच्ची नकल फतहपुर में सुन्दरदासजी के अस्थल में है। उसका फोटो हमने लिवाया था; स्व० मुन्शी माधोसिंहजी नाज़िम तोरावाटी ने संवत् १९५९ में लिया था। परन्तु इसमें सुदरदरदासजी का होना जो कहा जाता है सो असंगत है। सुन्दरदासजी तो अकबर की मुलाकात के बहुत पीछे सं० १६५८ में शिष्य हुए थे। चँवर लिए कोई और ही शिष्य है। सामने राजा भगवन्तदासजी का होना अधिक संगत है। और टीलाजी प्रधान शिष्य भी साथ थे। टीकाजी कोई नहीं था, टीलाजी थे। बतानेवाले ने गलत बताया है। सुन्दरदासजी से असंबद्ध होने के कारण ही हमने इसको जीवन-चरित्र में उपयोगी नहीं समझा और नहीं लगाया। इसका सम्बन्ध दादू-चरित्र से ही है।

हमारे विचार में सुन्दरदासजी इस ही मठ के पास किसी गुफा या कुटिया में रहते होंगे। और विद्योपार्जन और ज्ञान-ध्यान में मग्न रहते होंगे। उनका असीघाट पर रह कर काशी में विद्याध्ययन और तपश्चर्या करना सप्रमाण सिद्ध है।

स्वामीजी के पुराणे सेवक विशेषतया सूरेके महाजन ही रहते चले आये हैं। उनका स्थान बना देना उनकी सच्ची भक्ति और सेवा का चिरस्थायी प्रमाण है और वे और उनके पूर्वज पुण्यात्मा और धन्य हैं जिनसे ऐसे महात्माओं की ऐसी सेवा बन आई। उस फतहपुरवाले पुराणे पत्रे में भी इन सूरेके महाजनों की सेवा लिखी है। और हमारे विचार में ये वैश्यजन प्रधान सेवक रहे हैं और अब भी हैं।

बा० रघुनाथप्रसादजी सिंहानिया विद्याभूषण, सहकारी सम्पादक "राजस्थान" और "सुन्दर ग्रन्थावली" के प्रकाशन-प्रधान ने स्वयम् कलकत्ते में सूरेकों से मिल कर जो हाल हमको अपने पत्र ता० ४ जुलाई सन् १९३६ में लिखा उसका सार देते हैं जिससे उनके सम्बन्ध की और स्थान की बातें स्पष्ट ही प्रमाणित हो गईः—

"बिसुनदयाल हरदयाल फार्म के सेठ हरदयालजी सूरेका ने स्वामी नारायणदासजी के कहने से इस (स्थान) को ६०-७० वर्ष पहिले ४-५ हजार की लागत से बनाया था। दादूजी के नाम पर ही नाम रक्खा गया। पहिले महन्त नारायणदासजी ही थे। ट्रस्ट हुआ था परन्तु कितने का हुआ था उसका पता नहीं चला। ट्रस्ट का धन बहुत-सा इस स्थान को नीलाम से बचाने में लग गया था, क्योंकि (स्यात् महन्त के कर्जे वा करतूत से) एक दफे इसकी नीलाम की बोली बुल गई थी। इस समय नीचे लिखे ट्रस्टी हैंः—(१) ठाकुरदासजी सूरेका। (२) रामप्रसादजी सूरेका। (३) स्वामी दयालदासजी नरायणाके महन्त। (४) स्वामी गोपालदासजी कनखलवाले। (५) मोटीरामजी, राणीला (रोहतक)। (६) जगन्नाथजी भगत। (७) केशोरामजी पोद्दार। (८) गौरीशंकरजी पोद्दार।

(६) विजयानन्दजी त्रिपाठी। नीलाम से बचाने में द्वारिकादास केदारबकस भगत के फार्म के मालिकों ने केशोरामजी पोद्दार आदि से मिल कर चन्दा इकट्ठा कर बड़ा काम किया था और तब ही से ठाकुरजी के नाम में कर दिया गया। वर्त्तमान महन्त मोहनदासजी हैं। वे पढ़ाते-लिखाते भी हैं। मठ में १०-१२ साधु रहते हैं। मठ के सामने के मकानात का ६) वा ७) रु० मासिक भाड़ा आता है ५) मासिक खर्च के लिए फ़र्मवालों द्वारा भेजा जाता है। मठ का २५) मासिक का खर्च है। १२) १३) तो उपरोक्त तरह से, और शेष एक दादूपन्थी साधु इधर-उधर से संग्रह कर भेज देते हैं। वर्तमान सूरेका सेठ का नाम है "श्री ठाकुरदासजी"। उनके कई कारबार हैं।"

काशी में दादूमठ होने का उल्लेख अन्यत्र भी देखा गया था। परन्तु सुन्दरदासजी के सम्बन्ध वा नाम से नहीं मिला था। इस समय कई तरफ़ से पूछताछ और अन्वेषण से सुन्दरदासजी के स्थान का पता लग गया। यह आनन्द की बात है कि हमारे चरित्र-नायक का काशी में रहने का स्थान इस प्रामाणिकता से जान लिया गया। अन्वेषक सज्जन धन्यवादार्ह हैं। इस स्थान को बने हुए बहुत समय हो चुका। इसकी जीर्णावस्था शोचनीय है। थांभे के महन्त इसकी भी सुधि यदि लें और उद्योग करें तो सेवक लोग अवश्य सहायता करके जीर्णोद्धार करा दें। परन्तु पूर्ण उद्योग की आवश्यकता है। जैसे प्रसिद्ध साधु ठण्डीरामजी ने आंबेर और सांभर आदिक स्थानों में दादूदयाल के रहने के मठों का उत्तमरीत्या जीर्णोद्धार करा दिया। जीर्णोद्धार ही नहीं, उन स्थानों को देखने और सुख से बरतने योग्य बनवा दिया। इस ही प्रकार स्वामी सुन्दरदासजी के स्थानों का जीर्णोद्धार कराया जाय तो कोई कठिन बात नहीं है। प्राचीन स्थानों की रक्षा का किया जाना बहुत पुण्यकर्म है। इससे उभय पक्ष का यश चिरस्थायी होता है। आशा है कि इधर सज्जन ध्यान देंगे।

काशी से बीच-बीच में सुन्दरदासजी अन्य स्थानों में भी—प्रयाग, विहार, देहली आदि में चले जाते थे। कहते हैं कि बीच में देश में भी लौट आये थे और फिर चले गये थे। परन्तु ये बातें कुछ निश्चित नहीं हैं।

काशी से आना एवं फतहपुर वासः—

काशी से सुन्दरदासजी सं० वि० १६८२ में मित्रों और गुरुभाइयों के साथ-साथ आये। वे उक्त संवत् की मिती कातिक वदि १४ को फतहपुर (शेखावाटी) में आये। जैसा कि महन्त गंगारामजी के दिये पुराणे पत्रों से विदित होता है। यहाँ बहुत वर्षों तक निवास किया और सेवकों ने स्थान, गुफा, चौवारा, कूँवा आदिक बनवा दिये। यहाँ का आना प्रधानतया प्रागदासजी बीहाणी के प्रेम और सत्सङ्ग से ही विदित होता है। गुफा में योगाभ्यास और ध्यानादि किया करते थे। ये सब मिल कर सात योगी साधु इस गुफा में योगाचार करते रहते। त्याग यहाँ तक था कि एक ही कोपीन को आवश्यकतानुसार धारण कर, लोकलाज निवारणार्थ (उसे पहिने) शौचादि शारीरिक कामों के लिए बाहर आते। शिष्य लोग भिक्षा करके लाते उसको पा लेते। यों १२ बारह वर्ष पर्यन्त यहां तप किया। (१) प्रागदासजी। (२) सन्तदासजी। (३) घड़सीदासजी। (४) जगजीवणजी। (५) नारायणदासजी। (६) भीषजन सहित सात बताये गये हैं। कोई बषनाजी को (नारायणदास के स्थान में) बताते हैं। और दादू वाणी वा अन्य ग्रन्थों की कथा वा छन्द रचना आदि भी करते थे। यहां स्वामी सुन्दरदासजी की प्रसिद्धि बहुत बढ़ गई थी। विद्याबल, योगबल, तपोबल, बुद्धिबल आदिक और योग के "परचे" आप ही होते थे। इनके और प्रागदासजी, सन्तदासजी आदिक के बहुत से शिष्य और सेवक भी हो गये थे। जैसे प्रागदासजी के लिए स्थान सेवकों ने बनवा दिये, वैसे ही सुन्दरदासजी के लिए बनवा दिये थे। यहाँ उक्त पुराणे पत्र की नकल देते हैं जिससे समय का निश्चय और स्थानादि का निर्माण ज्ञात हो जायः—

"श्रीस्वामी सुन्दरदासजी (फतेहपुर) पधारया संवत् १६८२ कै काती वदि १४ नैं। अरु स्वामी सुन्दरदासजी कै विराजणैं कूं अस्तल करायो सूरैकै किसोरदास महाजन अग्रवाल तत्पुत्र छबीलदास हरिरामदास हरिनाथदास संवत् १६६५ मिती असाढ़ वदि १३ नैं संपूरण हुवौ रुपैया ३३५) लागा। रामजी कै सांधां निमित्त। अरु किशोरदास कहावै अस्तल की अस्तल का साधां की टहल नां करै सो रामजी सूँ बिमुप है। अरु वावाजी श्री सुन्दरदासजी की आज्ञा सूं सर्व सेवगां कूवो करवायो अस्तल को पोदार १ केजड़ीवाल २ सूरैका ३ चमड़िया ४ मोर ५ बुधिया ६ रुपैया १०१) सैं इकोतरै सूँ छहूँ तिड़का रुपैया दीया ६११) लागा संवत् १६६८ मिति माह वदि ५ संपूरण हूवो"। "जीरण कागदां सूँ नकल उतारी चत्रदास"। नकल सूँ नकल उतारी साधु रामभक्त*।

सुन्दरदासजी अधिकतर इस फतहपुर ही में रहा करते थे। १६८२ से १७०० तक तो पता उक्त पुराणे पत्रों से चल ही रहा है। अपने ग्रन्थ को संपूर्ण भी यहीं लिखवाया था जिसका संवत् १७४२ मिती सहित दिया ही है। बीच-बीच में बहुत समय तक पर्यटन के निमित्त अनेक स्थानों में चले जाते थे।

नवाबों के साथ संपर्कः—

इनकी योग्यता और ज्ञान तथा करामात को सुन कर फतहपुर में बहुत लोग इनके भक्त हो गये थे। फतहपुर के नवाबों को भी इनके दर्शन और सत्संग का चाव हुआ। सुन्दरदासजी फतहपुर में नवाब अलफखाँ के समय में आ गये थे। सम्भव है कि उस वीर और कवि नवाब से इनका मिलना हुआ हो, क्योंकि यह नवाब संवत् विक्रमी १६६३ में (सन् हिज्री १०५३—रमज़ान की २८ तारीख को) "तलवाड़े के" युद्ध में बड़ी वीरता से वीरगति को

* इन पुराणे पत्रों की एक नकल तो झूंझणूं में सन् ई० १९०१ में मिली थी और दूसरी सन् १९०४ में स० रामगढ़ (नीम के थाणे) में मिली थी।

प्राप्त हुआ था। ये महामहिम नवाव अलफ़खां प्रायः शाही ख़िदमत में रहा करता था और वड़ी-वड़ी मुहिम्मों और युद्धों में भेजा जाता था। प्रायः सदा विजयी रहा करता। परन्तु शूर-वीर होकर भी कहते हैं कि यह एक अच्छा कवि भी था और हिन्दी-काव्य में कई ग्रन्थ बनाये हैं जो प्रायः शेखावाटी के अन्दर प्रसिद्ध हैं*। अलफ़खां के सामने ही उसका पुत्र दौलतखाँ भी शूरवीरता और योग्यता में वादशाह का प्रिय हो गया था और कई एक लड़ाइयों और परगनों के विजय करने में नाम पा गया था। अपने पिता अलफ़खाँ के शरीरान्त पर दौलतखाँ (दूसरा) नवाव हुआ और इसने अच्छा राज्य किया। दौलतखाँ का पुत्र ताहरखाँ भी वड़ा भारी पराक्रमी और वुद्धिमान था। प्रसिद्ध अमरसिंह राठोड़, सलावतखाँ का घातक, जव आप भी मारा गया था तो वादशाह ने कुपित होकर उसका नागोर का परगना इस दौलतखाँ और इसके पुत्र ताहरखाँ के नाम कर दिया था। ताहरखाँ ने पहुँच कर नागोर राठोड़ों से छीन ली थी और गढ़ के पास एक वड़ी मसजिद वनाई थी जिसके शिलालेख में शाहजहाँ वादशाह और इस ताहरखाँ के नाम और सन् हिज्री १०५६ खुदे हुए हैं। यह सं० वि० १७०७ की वात है। इससे सात वर्ष पीछे ताहरखाँ अपने वाप के सामने ही वलख की मुहिम में, शाहज़ादा मुराद-वख्श के हुजूरियों में यद्यपि रहा करता था परन्तु रोगग्रस्त होकर वहाँ मर गया। कुछ दिन पीछे ही दौलतखाँ इसका पिता भी वहीं पुत्रशोक और रोगाक्रमण से मृत्यु को प्राप्त हो गया। संवत् वि० १७१४ (हिज्री सन् १०६३) की यह घटना है। प्रथम ताहरखाँ का शव सन्दूक के अन्दर वन्द होकर फतहपुर लाया जाकर दफनाया गया। थोड़े समय पीछे ही वृद्ध पिता का शव उसही प्रकार सन्दूक में वन्द किया जाकर जन्मभूमि

---

* अलफ़ खाँ काव्योर नाम "जान" कवि के वनाए चार ग्रन्थ—१ रतनावली। २ सतवन्तीसत। ३ मदनविनोद। ४ कविवल्लभ हैं। जो हमारे संग्रह में भी हैं।

फतहपुर में भूमि में प्रवेश किया गया। दौलतखाँ ने किला फतहपुर को नवीन ढंग से बहुत लागत से बनवाया था। दोनों बाप-बेटों के शाही खिदमात में यों मर जाने पर ताहरखाँ के बेटे सरदारखाँ को बादशाह ने फतहपुर का नवाब बनाया और बड़ी सहानुभूति और कृपा दिखाई। हमारे विचार से सुन्दरदासजी का समागम अधिकतर दौलतखाँ नवाब के साथ रहा होगा क्योंकि उस ही का समय ठीक पड़ता है। और तबेले के गिरने और किले का जीर्णोद्धार ये बातें इस ही नवाब वा इसके पुत्र ताहरखाँ को दिखाई होंगी। प्रसंग की संगति इस ही समय से मेल खाती है। राघवदासजी की "भक्तमाल" और उसकी टीका में आया है:—

आयौ है नवाब फतेपुर में लयौ है पाइ, अजमति देहु तुम गुसइयाँ रिझायौ है।
पलौ जौं दुलीचाकौ उठाइ करि देष्यौ तब, फतेपुर बसै नीचै प्रगट दिपायौ है॥
येक नीचैं सर येक नीचै लसकर बड येक नीचै गैर बन देपि भय आयौ है।
राघो घारे गापि लाये रवत नवावकर सुन्दर ग्यानी कौ कोई पार नहीं पायौ है"॥

इस घटनाओं और चमत्कारों के लिए ऐसा कहते हैं कि नवाब स्वयम् सुन्दरदासजी से मिलने को उनके अस्थल पर कभी-कभी आ जाते थे। और कभी-कभी सुन्दरदासजी नवाब के यहाँ चले जाते थे। और नवाब उनके उपदेशों से लाभ प्राप्त करते थे। एक समय करामात दिखाने की प्रार्थना की तो सुन्दरदासजी ने नवाब से कहा कि ईश्वर समर्थ है संसार सारा ही करामात है। नवाब ने बहुत नम्रता से आग्रह और हठ किया तो सुन्दरदासजी ने उस गालीचके कनारों को, जिस पर दोनों बैठे थे, उठा कर देखने को नवाब को कहा तो एक कूँट के नीचे फतहपुर नगर बसता हुआ दिखाई दिया। दूसरे के नीचे फतहपुर का सर (जोहड़ा, तालाब) दिखाई दिया। तीसरे के नीचे नवाब की फौज और रिसाले तोपखाने आदि सारी सेना दिखाई पड़ी। और चौथे के नीचे फतहपुर का बड़ा भारी बीड (बीहड़, जंगल) दिखाई दिया। यह अज़मत (करामात) देख कर नवाब को मन में यह भय हुआ कि कहीं यह फकीर मेरे आग्रह से रुष्ट तो

नहीं हो गये हैं और यह भी कि ये वड़े करामाती साधु हैं इनसे डरता ही रहना चाहिये और इनकी सदा सेवा और भक्ति करके इनको रिझाना और प्रसन्न रखना चाहिए। एक और समय की बात है कि स्वामी सुन्दरदासजी फतहपुर के गढ़ में नवाव के पास बैठे थे। बातों ही बातों में स्वामीजी ने तुरन्त फुर्त्ती से नवाव को सावधान किया कि तवेले में से सव घोड़े फौरन् वाहर निकलवाओ, यह तवेला थोड़े समय में ही गिर जायगा। नवाव को तो स्वामीजी के वचन में पूर्ण आस्था थी ही। हुक्म दिया कि तमाम घोड़ों और असवाव को फोरन तवेले में से वाहर निकाल कर गढ़ से वाहर ले जाओ। हुक्म होते ही वहाँ देर क्या थी। सैंकड़ों सईस और सवार और सिपाही लग गये। घोड़ों और सामान का वाहर निकलना था कि तवेला "धरर" धर्राट करके गिर गया। यों स्वामीजी ने नवाव के घोड़ों की रक्षा की। नवाव ने स्वामीजी के कदम पकड़ लिये और वहुत भक्ति की। इस प्रकार कई चमत्कार अनेक समयों में दिखाये थे।

निदान स्वामी सुन्दरदासजी से नवावों ने सत्संग और उनकी करामातों से लाभ उठाया था। वास्तव में नवाव थे भी तो क्षत्री। क्षत्री का रक्त उनकी नसों में अभी दौड़ रहा था। धर्म, रिवाज, जातिप्रेम की कई वातें उनमें प्रसार कर रही थीं। अपनी वस्ती में ऐसे विद्वान महात्मा का होना उनके लिए एक वड़ी निधि थी और नवावों को इस वात का अभिमान ही नहीं, वल भी था*।

---

* फतहपुर (तथा झूंझणूं,) नरहड़, इसलामपुर, वगड़ आदि की भूमि काइमखानी वा पठान मुसल्मानों के अधिकार में आ गई थी। ये कायमखानी लोग चौहान क्षत्रिय थे। प्रथम मोटाराजा चौहान का वेटा करणसिंह फ़ीरोजशाह तुगलक वादशाह के समय में सं० वि० १४४१ में मुसलमान हुआ उसे ही कायमखां कहते हैं। वह हिसार फीरोजे का सूवेदार रहा था। और कुछ समय उस पादशाह का वज़ीर भी रहा था। उसके ताजखां और ताजखां के फतहखां हुआ। १ फतहखां ने फतहपुर वसाया और क़िला वनाया। आगे पीढ़ियां इस तरह हैं:—

स्वामी सुन्दरदासजी ने अपना फतेहपुर में बसना "देशाटन के सवैयों" में स्वयम् कहा है:—

'पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन देस विदेस फिरे सब जानैं।
केतक द्यौस फतहपुर मांहि जु केतक द्यौस रहे डिडवानैं" ॥

'फूहर नारि फतेपुर माँहीं"

"सुच्चि अचार कछू न विचारत मास छटैं कबहूक सन्हांहीं।
मूंड पुजावत बार गिरैं गिरते सब आटे में ओसन जांहीं ॥
बेटि रु बेटन की मल धोवत वैसे ही हाथन सौं अँन पांहीं।
सुन्दरदास उदास भयो मन फूहर नारि फतेपुर मांही ॥ ९ ॥

पलंग एवं जाजमः— कहते हैं कि एक समय स्वामीजी के अस्थल में चोर आये और सामान चुरा कर चम्पत हुए। परन्तु थोड़ी देर में चोरों का आना और सामान का चोरी जाना जाना गया। तो चोरों की यह गति हो गई कि वे अन्धे हो गये उनको मार्ग ही

---

२ जलालखां। ३ दड़े दौलतखां। ४ नाहरखां। ५ फदनखां। ६ ताजखां। ७ अलफखां (ताजखां के भाई मोहम्मदखां का बेटा)। ८ दौलतखां दूसरा। ९ सरदारखां। १० दीनदारखां। ११ सरदारखां दूसरा। १२ कामयाबखां (भाई का बेटा)। सं० ३ दड़े दौलतखां बड़ा बहादुर और करामाती फ़क़ीर भी था। और सं० ७ अलफ़खां फ़तहपुर के नवाबों में अत्यंत अधिक नामी वीर और कवि हुआ। यही "जान" कवि था जिसने कई ग्रन्थ रचे थे उनमें ४ ग्रन्थ हमारे संग्रह में भी विद्यमान हैं। इसके छोटे बेटे "नेइमतखां" ने "काइमरासा" बनाया। इनही के अनुसार नजमुद्दीनजी पीरजादे झूंझणूं व फ़तेपुर ने "शजरतुल् मुसलमीन' फारसी में तवारीख लिखी जिसकी नकल झूंझणूं में हमने करवाई थी परन्तु वह मांग कर कोई ले गया सो अबतक लौटाई नहीं। इसी के आधार पर "तारीख खांजहानी' हैदराबाद दक्षिण में बनी है। नवाब सं० १२ कामयाबखां के समय में, शेखावत वीर शिवसिंहजी ने, सं० वि० १७८८ में फतहपुर को तलवार के जोर

नहीं सूझा। उनका पीछा लोगोंने किया, पकड़े गये। बीकानेर के चूरू कस्बे के पास हाथ आये। स्वामीजी ने दया कर उनको कुछ न कहा। उस वक्त से "सेवगों" का चढ़ाया हुआ स्वामीजी का निवार का पलंग और जाजम चूरू में है और वहाँ उसकी पूजन होती है, लोग उसकी बोलारी बोलते हैं। कहते हैं कि इन चमत्कारों से उसका वार्षिक मेला भी होता है। चूरू में स्वामीजी के थांभे के साधु भी रहते हैं। उन चोरों ने तबसे चोरी करना छोड़ दिया और उनके खानदान में अब कोई यह काम नहीं करता है। इस पलंग और जाजम का फोटो भी लिया गया जो इसके साथ दिया गया है।

लाहोर में दूसरी बार गये तब सेवगों ने अच्छी सेवा की थी।

अन्य वस्तुएँ:—

और उस समय की भेंट की कई चीजें स्वामीजी के स्थान में थी जो उनके अवसान के अनन्तर शिष्यों में बट गईं। उनमें से दो एक वस्तुएँ अब भी हैं। एक रेशमी चादर पर छन्द बड़ी कारीगरी का छपा हुआ है। इस ही प्रकार एक चादरा भी कढ़ा हुआ है। ऐसे देशाटन में कई वस्तुएँ संग्रह भी हुई जिनमें से इच्छा हुई सो रख ली, शेषको शिष्यों वा सेवकों को बाँट दी गईं। रुई भरा हुआ पारचे का बड़ा टोपा जो प्रधान बड़े महन्त सन्तों का-सा है—फतहपुर में सुरक्षित है जिसका फोटो लिया गया है। सीकर में उनके बैठने की गद्दी और मसनद हमने देखी है परन्तु उनका चित्र नहीं ले सके। सीकर और फतहपुर में से कई चीजें, कागज-पत्र आदिक नष्ट-भ्रष्ट हो गये। और कई चीजें वहां हैं वा अन्यत्र भी हैं परन्तु साधु लोग सहज ही दिखाते नहीं हैं।

से छीन लिया। तब से शेखावतों के अधिकार में है। ("वाक़िआत क़ौम क़ाइमखानी" और "फ़ख़ुत्तवारीख़"। तथा "शिखरवंशोत्पत्ति पीढ़ी वार्तिक "एवम्' सीकर का इतिहास"।)

देशाटन:— स्वामी सुन्दरदासजी को देशाटन का वहुत प्रेम था। एक स्थान में वे विना विशेप कारण के वहुत समय तक नहीं ठहरा करते थे। उन्होंने प्रायः सव उन स्थानों को देखा था जिनमें दादूजी विराजे थे और उनको भी जिनमें दादूजी के शिष्यों (अपने गुरु-भाइयों) ने स्थान वांध लिये थे। उन्होंने पूर्व में विहार, वंगाल, उड़ीसा तक, पश्चिम में पंजाव के लाहोर आदिक शहरों और दादूपन्थियों के (जो उतराधे साधु कहाते हैं) स्थानों को देखा था और वहाँ रहे थे, दक्षिण में गुजरात, मध्यदेश, मालवा और आगे द्वारका तक गये थे, उत्तर में वद्रिकाश्रम और हिमालय के ऐसे स्थानों में गये थे जहाँ सिद्धयोगी महात्माओं का समागम हुआ। वे दिल्ली, आगरा मथुरा, वृन्दावन, वरसाना, फिर वनारस, प्रयाग, पटना, आदिकों में गये और रहे थे। राजपूताने में जोधपुर, वीकानेर, वून्दी हाडौती, गंगापचा, नागरचाल, खराड़, टोडा, टोंक आदिकों में गये और रहे थे। वे और उनके शिष्य विशेपतः फतहपुर के अतिरिक्त रामगढ़, चूरू, डीडवाणां, नारनोल, मारोठ, मेड़ता, जोधपुर, वीकानेर, कटराथल, नागोर, साँभर, नरायना, भैराणाँ, आँवेर, द्योसा, मोर (टोडा के पास), कुरसांणा (मारवाड़ में पीपाड़ के पास), नाडसर, सीकर, विसाहू, लछमनगढ़, रतननगर, झूँझणूँ, दिहाणी, नुवां, सांगानेर, चाकसू, इत्यादि में भी गये और रहे थे और इनमें से वहुतसों में उनके स्थान मकान हैं। जिनका कुछ विवरण आगे चल कर दिया जायगा। कुछ हाल उनके भ्रमण का उनके वनाए "देशाटन के सवैयों"※ से भी जाना जा सकता है। अन्य स्थानों का हाल हमको महन्त गंगारामजी से ज्ञात हुआ था तथा कई जगह हमने स्वयम् भी जाकर देखा था।

※ इनका नाम "दसोंदिसा के दोहे" भी लिखा देखा। परन्तु यह नाम नितांत असंगत और अशुद्ध है।—"देशाटन के सवैये" यह नाम सार्थक, संगत और शुद्ध है। ये पृष्ट १००४ में छपे हुए हैं।

लाहोर में पहिली वार गये जब प्रसन्न नहीं हुए थे और सत्संगी पुरुष नहीं मिले थे। उस समय की यह कहावत सुन्दरदासोतों में प्रसिद्ध है:—

"आये थे कछु और को होय गई कछु और। कपड़े फाड़ गांठ के देख चले लाहौर"

तथा फिर वहां दूध वहुत आता था। तब किसी ने कहा महाराज इतना दूध कहां से आ जाता है। तब मन्दहास्य से आपने कहा:—

"सुन्दर के दो उन्दरं दूधैं तीजी दूध कोल।
चौथा सुन्दर आप दूधैं दूधां की धमरोल ॥ १ ॥

इस कथन का अध्यात्म में गूढ़ अर्थ है। सो विज्ञ पाठक आप ही समझ लेंगे। महन्त गगारामजी ने लिखाया था।

इन 'देशाटन के सवैयों' में पूर्वदेशों, दक्षिणदेशों, पश्चिमदेशों, गुजरात, मारवाड़, तथा अपने निज निवासस्थान फतहपुर की अच्छे शब्दों में प्रशंसा नहीं की है। बातें जो कही हैं वे उस समय में बिलकुल कही वैसी ही थीं। परन्तु कहा गया सब केवल विनोद ही से। स्वामीजी के वचन चोज, मन्दहास्य और मधुर-मंजुल चुटकी लिए हुए हुआ करते थे। भ्रमण-सम्बन्धी ये सवैये तुरंत ही चलते-फिरते में कहे हुए प्रतीत होते हैं। जिन देशों में न जाने का वा केवल सुनने का ही वर्णन है वह भी केवल विनोद ही मात्र से है। ऐसा नहीं कि वहां न गये हों। अपितु वहां गये और रहे-सहे थे और वहां सन्त-महात्मा और कविजनों से सत्सङ्ग और समागम किया था। नहीं तो वहां की भाषाओं में सुन्दर कविता कैसे बनती। और लाहोर तथा पंजाब में तो उतराधे साधुओं में वा उनके साथ तीन वार गये। प्रथम वार अधिक नहीं ठहर सके और उस समय अच्छे लोगों से सम्पर्क नहीं हुआ। तब भी प्रथम गमन के समय हो स्वामीजी के उत्तम उपदेश और कविता का अनेक लोगों पर प्रभाव पड़ा था। यथा उनमें से एक फकीर तो वचनामृत पान कर इतना मस्त हुआ कि लाहोर से चल कर फतहपुर आया। और यहां स्वामीजी को ढूँढा। जब उसको स्वामीजी कथा करते हुए स्त्री-पुरुषों भक्तों सेवकों के बीच बैठे मिले तो उसका भाव

पलटा और वह दो ओंजले धूल के फेंक कर चल दिया। तो स्वामीजी ने समझा यह कोई ज्ञान-विद्ध विरहीजन है। तो उसको लौटाने को उसके पीछे चल पड़े और कुछ दूर जाकर उसके चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत की। तब उस फकीर का भ्रम दूर हुआ और स्वामीजी के आर्जव और निष्कपट भाव को जान कर वह पहिले से भी अधिक मुग्ध हो गया और ज्ञानोपदेश पाकर पंजाब चला गया। इस के अनन्तर सुन्दरदासजी लाहोर फिर गये और उनकी योग्यता का लोगों को ज्ञान हुआ तब तो इनको घेर लिया और बहुत भारी भक्ति इनकी की। अबकी बार वे "छज्जूभक्त के चौबारे" में ठहराये गये। यह प्रसिद्ध स्थान लाहौर में है और यहां अनेक साधु-महात्मा ठहरा करते हैं। इस समय का ही लाहोर का वर्णन स्वामीजी ने किया है ("हिक लहोरदा नीर भी उत्तम..." इत्यादि छन्द)

मारवाड़ में भी स्वामीजी बहुत समय तक भ्रमण करते रहे थे और महाराजा बड़े जसवन्तसिंहजी से समादृत हुए थे। स्वामी महन्त गंगारामजी ने हमें कहा था कि घड़सीदासजी के शिष्य नारायणदासजी इनके साथ थे। महाराज ने प्रसन्न होकर इनको "तोलासर" गाँव निकालना चाहा तो सुन्दरदासजी ने निषेध किया। फिर महाराज के आग्रह से नारायणदासजी को गाँव का पट्टा कर देना स्वीकार किया। इसका हाल "सुन्दरदासजी और नारायणदासजी" शीर्षक में आगे दिया गया है।

मालवे और उत्तरदेश (हिमालय) की सबसे अधिक प्रशंसा की गई है। और है भी बात यथार्थ ही। इन देशों में किन-किन स्थानों में विशेषतः स्वामीजी रहे इसका हमको पता नहीं चला।

गाँव कुरसानाः—

स्वामीजी को कुरसाना अधिक प्रिय था। इसके कारण वहाँ का एकान्त-वास और उत्तम जलवायु ही है। साथ में वहाँ सत्संग भी अच्छा रहा था। और यहाँ "सवैया" के बहुत से अंगों के छन्दों की रचना हुई थी, जैसा कि महन्त गंगारामजी से ज्ञात हुआ था। यह कुरसाना गाँव मारवाड़ में पीपाड़ और

खाँगटा के स्टेशनों से अनुमान २-३ कोस पर है। पीपाड़ के ठाकुर के इलाके में कोई १००—१२५ घरों की वसती का है। इसमें एक रामद्वारा भी है। दादूपन्थियों का अस्थल भी है, जो सुन्दरदासजी के किसी साधु की प्रेरणा से वनाया गया था। परन्तु अव इसमें जमाअत के नागे दादूपन्थी रहते हैं। खाँगटे गाँव में भी, जो इस स्टेशन से थोड़ी दूर पर ही है, दो राम द्वारे और एक मन्दिर हैं। स्टेशन से गाँव तक ऊँट की सवारी मिलती है। जलवायु यहाँ की उत्तम है। इत्यादि हाल साधु करमानन्दजी दादूपन्थी सुन्दरदासोत ने हमको कहा था जो सं० १९६९ वि० में कुरसाने गये थे और तीन दिन वहाँ अस्थल में रहे थे। तथा मारवाड़ के रहनेवाले ठाकुर फतहसिंहजी कामदार ने भी ऐसा ही हाल कहा था (जो तीसरे माजी साहिवा श्री राठोड़जी के कामदार जयपुर में रहे हैं)। यद्यपि हमारा इरादा कुरसाणे की यात्रा का कभी पूरा नहीं हुआ। अन्य साधुओं और महन्त गंगारामजी से भी ऐसा ही हाल ज्ञात हुआ था। कुरसाने किस सम्वत् में आये, कहाँ से आये और कवतक रहे इत्यादि वातें ज्ञात नहीं हैं। तथापि सवैया के शब्दों से कुरसाने वड़ी अवस्था में, अनेक अन्य स्थानों में रह कर आना स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। "ताहितें आन रहे कुरसानैं" से यही ज्ञात होता है कि वहुत स्थानों, नगरों, देशों गाँवों में भ्रमण करके यहां आये। हमारे खयाल में मारवाड़ देश में भ्रमण करते हुए पीपाड़ में जव आये तो वहां के ठाकुर वा उसके कोई सम्वन्धी वा कार्यकर्त्ता की भक्ति से, जो कुरसाने का निवासी था, कुरसाने स्वामीजी आये। अन्य साधु विद्वान जैसे नारायणदास या और कोई भी साथ थे। स्थान पसंद आ गया। पानी और हवा और शांति का वातावरण अनुकूल पड़े तो यहीं ठहर गये। और यहां उपदेश, शास्त्रविचार और ग्रन्थ निर्माण करते रहे। "रहे" शब्द में तथा "ताहितें" शब्द में वहुत कुछ आशय है। स्वतंत्र प्रकृति के ब्रह्मविचारवाले योगी के लिये इतनी अनुकूल वातों का उपस्थित होना वड़ी निधि है।

यदि स्वामीजी अपने भ्रमण और देशाटन का वृत्तांत विस्तार से लिख जाते जैसे उन्होंने अन्य ग्रन्थ लिखे हैं, तो वह एक बड़े ही महत्व की चीज़ हो जाती। परन्तु उस ज़माने के आदमियों को आत्मश्लाघा और अपने आप के सम्बन्ध में लिखना वा कहना कुछ पसन्द नहीं आता था। यह भी गनीमत है कि इतना सा ब्योरा "देशाटन के सवैयों" में लिख गये। उन्होंने ऐसी और भी कवितायें की होंगी। परन्तु उनको वे गौण समझते थे। उनका प्रधान विषय तो वही था जो उनके निर्मित ग्रन्थों से संसार को मिला।

परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि कुरसाने को उन्होंने कोई अपना स्थान प्रधानता से बना लिया हो। बहुत रहे हों तो साल दो साल। फिर वे अपने फ़तहपुर में आ गये होंगे। चाहे यहां की नारियां भले ही "फूहड़" रही हों। परन्तु सबसे अधिक प्रिय तो फ़तहपुर ही था जहां, रामत करके, फिरफिराके, वे वापस आ जाया करते थे। और पर्यटन में जो कविता होती सो तो होती ही, शेष को फतहपुर में ही लिखते वा शुद्ध लिखाते और क्रम में लगाते थे।

ज्ञानसमुद्र की रचना:—

"ज्ञानसमुद्र" के लिये यह बात सुन्दरदासजी के शिष्यादि में विख्यात है कि इसकी रचना काशी में हुई थी। वह प्रसंग महन्त गंगारामजी ने इस प्रकार बताया था कि—एक पटुशाली और प्रखर पंडित काशी में कथा किया करता था। उसकी कथा में स्वामी सुंदरदासजी भी जाया करते थे और बहुत ध्यान और मननपूर्वक कथा को सुना करते थे और पंडित से कथा हो चुकने पर बड़ी नम्रता से शंकाओं को पूछा भी करते थे। "पंडित को पंडित पहिचानें"। कथा-वाचक ने समझ लिया कि शास्त्र का सच्चा ज्ञाता और समझनेवाला यही महात्मा है। एक दिन ऐसा हुआ कि कारणवश सुन्दरदासजी कथा में देर से पहुंचे। वे न आये तब तक उस पंडित ने कथा का प्रारम्भ नहीं किया। जब श्रोताओं ने पंडितजी

से कहा कि आप कथा का प्रारम्भ क्यों नहीं करते ? तब उस पंडित ने कहा कि अभी श्रोता नहीं आये। थोड़ी सी देर में गुदड़ी ओढ़े सुन्दरस्वामी आ चुके तब पण्डितजी ने कथा आरम्भ कर दी। इस ही प्रकार फिर एक दिन सुन्दरदासजी को अबेर हो गई. तो उनके लिए पंडितजी ने कथा को रोकी रक्खी। जब अन्य श्रोताओं ने पंडितजी से कहा कि कथा का समय जा रहा है आप कथा प्रारम्भ कीजे। तब पण्डितजी ने कहा कि अभी श्रोता नहीं आये। इतने में वही गुदड़ी वाला साधु (सुन्दरदासजी) आया और एक ओर बैठ गया। तब पण्डितजी ने कथा को कहना प्रारंभ कर दिया। श्रोताओं ने पहिले तो यह समझा था कि कोई राजा बाबू या पण्डित या बड़ा पुरुष आनेवाला होगा जिसके अर्थ कथा रोकी गई। परन्तु दो बार जब इस गुदड़ी वाले साधु के आने पर कथा होने लगी तब तो श्रोताओं से रहा नहीं गया। पंडितजी से कहा कि आपने कथा को किस श्रोता के लिए रोकी थी। कोई बड़ा आदमी तो आया नहीं। तब पंडितजी ने कहा कि बड़ा और सच्चा श्रोता नहीं आया था इस कारण कथा नहीं कही थी। जब वह आ गये तब कथा प्रारम्भ की गई। ये गुदड़ी वाले महात्मा ही बड़े श्रोता हैं जिनके लिए हमको ठहरना पड़ा। इस पर श्रोताओं ने आवेश में आकर कहा कि ये तो बड़े श्रोता हैं और हम तो वैसे ही आ गये। इस पर पंडितजीने कहा कि आप भी सब ही श्रोता हैं इसमें संदेह नहीं परन्तु आपके सुनने में और इनके सुनने में भेद है। तब पंडितजी को श्रोताओं ने बड़े जोर से कहा कि क्या भेद है ऐसी विशेष बात इस गुदड़ी वाले में क्या है ? उस पर पंडितजी ने कहा कि आप ठीक कहते हैं। परन्तु जो कथा कही गई है उसका अनुवाद आप करके सुनाओ अधिक नहीं तो आज की कथा का ही अनुवाद कर दो। यह बात सुनकर सब श्रोता चुप हो रहे। तब पण्डितजी ने कहा कि अब क्या कहते हो। तब श्रोता बोले कि खैर हम तो न कर सके आप अपने बड़े श्रोताजी से ही अनुवाद करा लीजे। तब पंडितजी ने सुन्दरदासजी की ओर देखा। तो

सुन्दरदासजी ने हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता से कहा कि आज की कथा का ही नहीं में तो प्रारम्भ ही से सारी कथा का अनुवाद करके लाऊंगा। फिर स्वामी सुन्दरदासजी ने अपनी कुटी पर गंगातट पर जाकर कथा का अनुवाद छंदों में किया और इस ही को "ज्ञान समुद्र" नाम दिया और थोड़े ही समय (वा दिनों) में लाकर कथा हो जाने पर सब को सुनाया। तो सब श्रोता मुग्ध हो गये और स्वामीजी की बड़ी प्रशसा करने लगे। यह आख्यायिका हमने विस्तार से महंत गंगारामजी से बड़े आनंद से सुनी थी। और इसका नोट भी उन्होंने हमको लिख कर दिया था जो हमारे संग्रह में प्रस्तुत है इस पर पीछे से जो विचार किया गया तो ज्ञात हुआ कि यह बात संगति नहीं रखती। क्योंकि स्वयम् ग्रन्थकर्त्ता स्वामी सुन्दर-दासजी ने इस "ज्ञानसमुद्र" ग्रन्थ की रचना का करना सं० वि० १७१० में लिखा है। यथाः—

"संवत सत्रह सै गये, वर्ष दशोतर और। (१७१०)
भाद्रव सुदि एकादशी, गुरु वासर सिरमौर ॥ ६५ ॥
ता दिन संपूरण भयौ, ज्ञानसमुद्र सु ग्रन्थ।
सुन्दर औगाहन करैं, लहै मुक्ति कौ पन्थ" ॥६६॥ (ज्ञान समुद्र। ५म उल्लास)।

और जैसा कि ऊपर कहा गया स्वामी सुन्दरदासजी काशी से चल कर फतहपुर में सं० वि० १६९२ में आये और यहाँ रहे और यहाँ उनके लिए स्थान आदिक बने। काशी से आ जाने के १८ वर्ष पीछे का बना हुआ "ज्ञान समुद्र" उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है। "ज्ञान समुद्र" की रचना भी प्रौढ़ावस्था की और पाण्डित्य से भरी हुई है*। पांचों उल्लासों में अनेक शास्त्रों का सार है जो विना भली-भाँति शास्त्रों के पढ़े सुने के कदापि एकत्र नहीं हो सकता। गुरुमहिमा, भक्तिविज्ञान, हठयोग की विशद

---

* ज्ञानसमुद्र की रचना हो चुकी तब स्वामीजी ५७ वर्ष के थे। जन्म १६५३ का था। पूर्ण ज्ञान और अनुभव की अवस्था थी।



स्वामी सुन्दरदासजी की समाधि, सांगानेर

न्यु राजस्थान प्रेस, कलकत्ता।

व्याख्या, राजयोग का विवेचन, सांख्य शास्त्र का विस्तृत सार, सेश्वरसांख्य का वेदान्त से मेल करने की चतुराई, पंचीकरण का प्रसंग, अद्वैत ब्रह्मविद्या, चार प्रकार अभावों का उत्तम वर्णन और उन द्वारा ब्रह्म का विवेचन, उपनिषदों का सार, महावाक्यों की झलक और मोक्ष का स्वरूप और उसकी प्राप्ति इत्यादि विषय और प्रकरण बड़ी योग्यता से सुमधुर सरस सुहावनी छन्द रचना में वर्णन किये गये हैं। इससे यह बात तो निर्विवाद है कि रचना इसकी काशी ही में हुई जहाँ ग्रन्थों और पण्डितों का प्रचुरता से प्राप्त करने और विचार करने का सुअवसर था। परन्तु यह बात स्वामीजी के दूसरी बार काशी विराजने से अधिक सम्भव होती है। उनको तो काशी से बहुत प्रेम था और वहाँ के अपने विद्यागुरुओं और अन्य पण्डितों और विज्ञ-महात्माओं से उनका पूर्ण अनुराग था ही। अतः वे अवश्य फिर काशी गये और वहीं यह "ज्ञान समुद्र" ग्रन्थ रचा गया। और वे कथा करनेवाले पण्डितजी भी कोई स्वामीजी के विद्या-गुरुओं में से ही रहे होंगे। नहीं तो कथारम्भ के लिए यों प्रतीक्षा बिना गहरे पूर्व परिचय के नहीं की जाया करती है, सो भी कथा प्रसंग में कि जहाँ अनेक अधिकारीजन बैठे होते हैं। और गुदड़ी के पहनने की बात कुछ यों ही है। स्वामीजी स्वच्छ सुन्दर कोपीन चादर बिना नहीं रहते थे। उनको उज्ज्वलता, शुचि और स्वच्छता का बड़ा प्रेम था। वे गुदड़ी उदड़ी कभी नहीं धारण करते थे। ज्ञान-समुद्र ग्रन्थ से पूर्व और भी ग्रन्थों और छन्दों की रचना का होना प्रतीत होता है। क्योंकि एकाएक एक इस ही ग्रन्थ को पहिले बनाया हो ऐसा मानने के लिए कोई प्रमाण भी नहीं है और न बुद्धि और काव्योत्कर्षता के लिए अवस्था ही इस बात को अंगीकार कर सकती है। कोई कवि कैसा भी प्रतिभा सम्पन्न हो, उसको अभ्यास और अनुभव की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। कालिदासादि ने वाल्मीकि और व्यासादि की रचनाओं को घोल कर पी लिया था और भास आदिक पूर्ववर्त्ती महाकवियों की युक्तियों और उक्तियों का आश्रय

लिया था। यही बात तुलसीदास और सूरदासादिक महामहिम काव्याचार्यों की है। फिर हमारे स्वामीजी भी तो उस शैली को बड़े चावभाव और तत्परता से निवाहने में अग्रसर रहे होंगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं। शास्त्र, मनुष्य और संसार तथा प्रकृति का अनुभव तथा योग और ज्ञान का पूर्व अभ्यास करनेवाले महात्मा ही के महान् अन्तःकरण से ऐसा उच्चकोटि का ज्ञानामृत निकल सकता है। काशी में अनेक शास्त्रों को, अनेक तत्परायण विज्ञ-पण्डितों और महात्माओं से, अवगाहन करके बड़े परिश्रम और योग्यता से वहां इस ग्रन्थरत्न की रचना हुई होगी। अपने देशाटन में स्वामीजी ने इस रीति-ग्रन्थ को बना कर संसार को एक अनुपम रत्न दे दिया है। और उसकी सुचारु रचना से वे ज्ञान-प्रकरण के ही आचार्य नहीं, वे तो रीति-काव्य के भी आचार्य बन गये हैं। क्योंकि "ज्ञान समुद्र" के जोड़ का भाषा-साहित्य में दूसरा ग्रन्थ, इसकी अनुपम गुणावली के कारण, नहीं है। यह बात हम बहुत खोज-खाज, अनुसन्धान और जांच के अनन्तर, प्रतिज्ञा के साथ, लिखने का साहस करते हैं। पाठक विचार करेंगे तो सहमत होंगे। यद्यपि यह ग्रन्थ अन्य ग्रन्थों से पीछे बना है, और "सवैया" ग्रन्थ भी इससे किसी प्रकार कमती नहीं कहा जा सकता है, तथापि स्वयम् स्वामीजी, ग्रन्थकर्त्ता, ही ने ग्रन्थों के क्रम में इस "ज्ञानसमुद्र" को सबसे प्रथम रक्खा है। इससे भी ज्ञान-समुद्र ग्रन्थ का गौरव और माहात्म्य अधिक है। रोचकता और चटकीलेपन में "सवैया" ग्रन्थ ने "सुन्दरविलास" नाम, किसी हेतु से वा किसी काव्य-रसिक के प्रेम से, पाकर पहिले ही ख्याति अधिक पा ली। और प्रायः सुन्दरविलास के रचनाकार सुन्दरदासजी इस ग्रन्थ के द्वारा ही पर्याप्त प्रसिद्धि को पा चुके थे। अर्थात् ज्ञान-समुद्र ग्रन्थ, अच्छा होने पर भी, सवैया (सुन्दरविलास) से अधिक विख्यात नहीं हो सका था। इसका एक कारण यह भी है कि सुन्दरविलास ही को लोगोंने पहिले छपाया था।

देशाटन-सम्बन्धी तथा काशी से फतहपुर आगमन पर इतना-सा

लिख कर हम शेखावाटी के दो तीन विद्वान लेखकों के ग्रन्थों से स्वामी सुन्दरदासजी के चरित्र-सम्बन्ध में लेख उद्धृत करके उन पर अपने विचार प्रगट कर देते हैं:—

(१) बावू रामप्रतापजी भुवालका संगृहीत व रचित "नया शिक्षा दर्पण" के पृष्ट ७१ पर लिखा है कि—"इसी अरसे में (अर्थात् नवाव अलफखां के समय में) दादूजी महाराज के शिष्य सुन्दरदासजी वड़े महात्मा और कवि हो गये हैं। हिन्दुस्थान में इनकी कविता मशहूर है। इनका देहान्त सम्वत् १७४६ कार्त्तिक सुदि ८ बुधवार (?) के दिन साँगानेर में हुआ है उमर करीव ९३ वरस की थी—फतहपुर में जिस स्थान में महाराजजी विराजते थे वह मकान अवतक मोजूद है"। सुन्दर-दासजी के सम्वन्ध में इस पुस्तक में इतना ही लिखा है। परन्तु इसमें जो "इसी अरसे में" यह शब्द है यह नवाव अलफ़ खां के समय को प्रगट करता है। क्योंकि इस उद्धृतांश से पूर्व यह लिखा है—"फद्न खां के वाद नवाव ताज खां सानी हुआ और इनके वाद नवाव महमद खां गद्दी पर वैठा, इसके पीछे आलिफ खां गद्दीनशीन हुआ। इस नवाव की तारीफ ख्वाजा हाजी नजमुद्दीन चिशती ने अपनी किताव में खूव लिखी है। नवाव आलिफ खां कोटकांगड़े में वफात प्राप्त हुआ और लाश फतेपुर में लाके रक्खी और उसके ऊपर एक मकवरा खूव वलन्द गुम्मजदार वनवाया गया था, अवतक शहर के पूर्व तरफ मोजूद है"। और उपरोक्त अवतरण के आगे उक्त पुस्तक में यह लिखा है—"इन (अलफ खां) के वाद संवत् १७१४ में दौलत खां हुए। सन् १०१४ हिज्री में किले की मरम्मत इन्होंने करवाई थी, आखिर क़न्दहार में वफ़ात पाई। इनके वाद ताहरखाँ, सरदार खाँ, दीनदार खाँ और रसीद खाँ नवाव हुए..."।

परन्तु जैसा कि हमने पूर्व में प्रमाणित किया है कि सुन्दरदासजी फतहपुर में सं० वि० १६८२ में आये थे। और नवाव अलफ़ खां सं० वि० १६८३ (सन् हिज्री १०५३) में तलवाड़े के युद्ध में वड़ी वीरता से वीरगति

को प्राप्त हुआ था। सम्भव है कि सुन्दरदासजी इस वीर और कवि नवाब (अलफ़ खां) से मिले हों। परन्तु स्वामीजी का अधिक मिलना-जुलना उसके पुत्र दौलत खां दूसरे और पोते ताहर खां से होना अधिक सम्भव प्रतीत होता है। और यह किम्वदन्ती कि सुन्ददासजी नवाब दड़े दौलत खां के समय में फतहपुर थे बिलकुल गलत है, क्योंकि नवाब दड़े दौलत खां तो फतहपुर के बसानेवाले नवाब फतह खां का पोता था जो अलफ खां से पांच-चार पीढ़ी पहिले ही हो चुका था। जो सन् हिज्री ६१३ में मरा था। और नाहर खां इसके बेटे ने संवत् वि० १५५३ में फतहपुर में महल बनाया था। बड़ा अन्तर समय का है। क्योंकि उक्त "नया शिक्षा दर्पण" ही में पृ० ७० पर यह लिखा है कि 'दड़े दौलत खां के बाद नाहर खां संवत् १५६३ में गद्दी पर बैठा। उसके बाद नवाब फदन खां हुआ"। तो सुन्दरदासजीके समय से दड़े दौलत खां का समय ६० वर्ष पहिले का है, फिर सुन्दरदासजी उस नवाब दड़े दौलतखां के समय में कहां से होते, स्वयम् उनके गुरु दादूदयालजी ही सं० वि० १६०१ से १६६० तक थे अर्थात् दादूजी भी दड़े दौलत खां के समय में नहीं थे फिर सुन्दरदासजी (जो दादूजी के शिष्य सं० वि० १६५६ में हुए थे) तो उसके समय में कदापि नहीं हो सकते थे। यह भूल केवल नाम की समानता से पाई जाती है। दड़े दौलत खां अव्वल वह दौलत खां था जिसका बेटा नाहर खां था, और यह दौलत खां सानी दूसरा था जिसका बेटा सरदार खाँ था। दूसरी भूल उक्त लेख में वार की है। शिलालेख में स्पष्ट बृहस्पतिवार खुदा हुआ है और महन्त गंगारामजी ने भी जो दोहा लिख कर दिया उसमें बृहस्पतिवार ही दिया है। इसलिए बुधवार लिखना ठीक नहीं॥।

॥ हमने जिन किताबों के आधार पर ये संवत् और सन् और नाम नवाबों के लिखे हैं उनके नाम अपने नोट में ऊपर दे दिये हैं। और स्वामीजी के अन्तावस्था की तिथि के साथ वार जो दिया है इसके सम्बन्ध में हमको म० म० पं० गौरी-

(२) "फ़रहत्तवारीख"‡ उर्दू मोलवी मुहम्मद रमज़ानजी चिश्ती झूंझणूं-वालों की रची हुई पुस्तक में पृ० २४ पर सुन्दरदासजी का वृत्तान्त यों लिखा है:—"सुन्दरदासजी का एक रहने का मकान वस्ते शहर में वाक़े है, जो दरीनगी और फ़क़ीराना मकान होने की शहादत अपनी वज़े क़तऽ और तर्ज़ तामीर से वज़याने हाल ख़ुद ही दे रहा है। उसके पास एक मन्दिर है जो उस ही ज़माने का है मगर अपने वक्त की अच्छी इमारात में दाख़िल होने का उसको फ़ख़् हासिल है, यानी वलिहाज़ इस्तेहकाम और नक्शोनिगार राइजुल्वक्त के एक वेनज़ीर मकाम है।—सुन्दरदासजी दादू-पन्थी श्यामी थे और ख़ास दादूजी के चेले थे, मुकाम नरायना से उठ कर सम्वत् १६८३ विक्रमी में फ़तहपुर आये और संवत् १६६३ में यह मन्दिर और मकान वनाया। और उस ही ज़माने के क़रीव उनका इन्तेक़ाल क़स्वे साँगानेर में हुआ। सुन्दरदासजी अच्छे मुवहिद (अद्वैतवादी) गुज़रे हैं। उनके कवित्त और सवैया और वनावटें पूरा यक़ीन दिलानेवाले उनके मुवहिद होने के हैं"।

हमारे ऊपर लिखे हुए सप्रमाण वृत्तान्त से पाठकों को विदित होगा कि इन्होंने स्वामीजी के फ़तहपुर आने और मकान वनने के सम्वत् ग़लत दिये हैं। जो मन्दिर की वात इसमें लिखी है वह चौवारे की प्रतीत होती है। यदि श्री लक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर की वात यह हो तो संगति नहीं वैठती। ग्रन्थकर्त्ता अव संसार में नहीं रहे। लेख का निश्चय भी हमने उनकी

शंकरजो ओझाजी से जो निर्णय प्राप्त हुआ है सो आगे स्वामीजी के परमपद के वृत्तान्त में लिखा जायगा।

"नया शिक्षादर्पण" भारतमित्र प्रेस कलकत्ते का सन १८८५ का छपा है जिससे अवतरण दिया।

‡ यह उर्दू तवारीख "मुश्ताक प्रेस" देहली में सन् १९१४ की छपी है। हमारे झूंझणूं से आ जाने के वहुत पीछे की है। ग्रन्थकर्त्ता हमारे निज़ामत के समय वहां वकील थे : वहुत योग्य और हमारे मित्र थे।

जीवनावस्था में किया था सो नीचे देते हैं। परन्तु इस छोटी-सी किताव में नवाबों की तवारीख़ अच्छी दी है और हमको इससे सहायता मिली है। ग्रन्थकर्त्ता उन ही ओलिया नज्मुद्दीन फ़तेहपुरी के पुत्र थे. जिन्होंने "क़ायमरासे" के आधार पर "शज्रतुल् मुसलमीन" फ़ारसी तवारीख़ काइमखानियों की लिखी थी जिसका थोड़ा-सा वर्णन ऊपर हम दे चुके हैं। उन (मोल्वी मुहम्मद रमज़ानजी पीरज़ादे) से पत्र द्वारा हमने पूछा था। उसका उत्तर उन्होंने जो अपने पत्र ता० १६ फरवरी सन् १९१९ ई० में दिया था उसीका सार देते हैं:—

(क) "मैंने "फख़रुत्तवारीख़" में जो नवाबों के अह्वाल लिखे हैं वे "तारीख़ "फरिश्ता" शजरतुल् मुसलमीन" और "तुजुके जहांगीरी" से लिये हैं। "शजरतुल् मुसलमीन" की नक़ल आपको करवा दी थी। असल मुन्शी माधोसिंहजी नाज़िम को दी थी सो उन्होंने खो दी। इसके रचयिता मेरे स्व० पूज्य पिताजी—ख्वाजा हाजी मु० नज्मुद्दीनजी थे। "क़ायमरासा" जो हिन्दी दोहरों और सवैयों में रचा हुआ नेऽमतखां नवाब अलफखां के पुत्र का रचा था, वह सम्वत् १६९१ में बना था। उसीसे फारसी में मेरे पिता ने उक्त ग्रन्थ बनाया था।

(ख) "स्वामी सुन्दरदासजी का हाल मैंने किसी किताब से नहीं लिया। फ़तहपुर में एक साधू रामानन्दजी से जो नव्वे वर्ष की उम्र के थे, कुछ पुराणे पत्रों के आधार से लिखा था। और उन ही पत्रों में भीपजन का भी हाल था। अब पांच-छह वर्ष हुए कि वह रामानन्दजी मर गये।

(ग) "नया शिक्षा दर्पण" सेठ रामप्रतापजी भुवालका ने ३५ वर्ष पूर्व बनाया था। वह फ़तेहपुर का था। कलकत्ते रहा करता था। मेरे पिता का भक्त और मेरे भाई साहिब का शागिर्द था। उसने भी "शजरतुल् मुसलमीन" ही से हाल लिखा था। मैंने फ़तहपुर के नवाबों के जन्म के सम्वतों की तहक़ीक़ नहीं की। (आगे नवाबों के सन् सम्वत् अपनी बनाई तवारीख के अनुसार लिखे हैं)। "क़ायमरासा" अब मिलता नहीं। यह

छपा भी नहीं है। जिस असल काइमरासे से हिन्दी का तरजमा पिताजी ने किया था वह अब्दुल्लाखांजी कुचामणवालों के पास था, उनसे जोधपुर के एक सरदार ने माँग कर लिया था, उनसे फिर वापस नहीं आया। और कई सन् हिजरी को विक्रमी वा ईसाई सनों से मिलाने का काम परिवर्त्तन-साधनाभाव से नहीं कर सका हूं"।

यही बातें साररूप में उक्त पत्र में हैं, जो बड़े काम की हैं। इनका संबन्ध जीवन-चरित्र से था इससे यहाँ लिखी गईं और इनमें की त्रुटियों को भी दिखला दिया गया।

(३) फतहपुर के स्व० भक्तवर पण्डित रामदयालुजी सेठ ने जो बातें लिखी हैं वे आगे स्वामीजी के स्थान और चित्र चिह्नादि के सम्बन्ध में लिखेंगे।

समकालीन पुरुष, कविकोविद और सन्तजन।

समकालीन जनः—

स्वामी सुन्दरदासजी बड़े सज्जन, मित्रभाववाले, मिलनसार और पण्डित-प्रेमी थे। देशाटन, यात्रा और मिलने-जुलने में सबसे प्रीति और सद्भाव रखते थे। इस कारण उनके सब ही मित्र और प्रेमी थे। ऊपर हम कह चुके हैं कि वे अपने सब वर्त्तमान गुरुभाइयों से मिले और उनके स्थानों पर गये। दादूजी के शिष्यों में १ रज्जबजी, २ जगजीवनजी, ३ प्रागदासजी, ४ सन्तदासजी, ५ घड़सीजी, ६ गरीबदासजी आदि का ऊपर उल्लेख आ ही गया है। और ७ टीलाजी ८ मिसकीनदासजी और धानाबाई आदि के दर्शण नरायणे में किये। और नरायणे में ही ९ चपनाजी १० जैसाजी और ११ शंकरजी से मिले। आगे १२ मोहनजी दफतरी और १३ मोहनजी मेवाड़ा से मिले। फिरते-फिरते १४ जगन्नाथजी से आंबेर में, १५ गोपालजी से झोटवाड़े और जनगोपालजी से राहोरी में। १६ जैमलजी से साँभर में। १७ कपिलमुनी से गोंदेर में, १८ चतरदासजी से काले डहरे, १९ चरणदासजी से स०

माधोपुर में। २० प्रल्हाददासजी से घाटड़े और छींण में, २१ नरायणदासजी से डांग में, २२ झांझू बांझू से झोटवाड़े में, २३ टीकूदासजी से नांगल में, २४, २५ लापा नरहर से अल्हदा में, २६ कौंजल्यां में रामदासजी से, २७, २८ पूर्णदास ताराचन्द से आंधी थोलाई में मिले। जब उतराध में गये तो बाबा बनवारीदासजी और हरिदासजी के दर्शन किये जो बड़े ज्ञानी-ध्यानी थे और वाणी निर्माता भी थे। २९ श्यामदासजी से झालाणे में और ३० गूलर (मारवाड़ में) माधवदासजी से मिले जिन्होंने दूसरी "दादूजन्मलीला परची" बनाई थी। इस ही प्रकार अन्य गुरुभाइयों से और अन्य साधु-सन्तों और महात्माओं के दर्शणों से लाभ उठाया तथा अपने ज्ञान और विद्या और कथा-कीर्त्तन से उनको प्रसन्न किया।

गुरु भाइयों के अतिरिक्त गुरु भाइयों के कई शिष्यों से भी बड़ा प्रेम था। यथा रज्जबजी के शिष्य मोहनदासजी आदिकों से। २ सन्तदासजी के शिष्य, भीपजन से। ३ घड़सीदासजी के शिष्य, नारायणदास से। इत्यादि जिनका कुछ वृत्त आगे देंगे। भक्तमाल के प्रसिद्ध रचयिता राघोदासजी भी समसामयिक ही थे। विख्यात दादूजी के अन्यतम मुसलमान शिष्य वाजीदजी भी मिलनेवाले प्रेमी थे।

अपनी सम्प्रदाय के साधु-संतों के अतिरिक्त आगरे में कवि बनारसीदासजी जैन, काशी में महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी, महाकवि केशवदासजी, महाकविराय सुन्दरजी, पंजाबके कविश्रेष्ठ सिक्ख कवि भाई गुरुदासजी आदिक समकालीन थ और कई इनके मित्र और प्रशंसक भी थे। सूफ़ियों और ओलिया फ़कीरों से भी प्रीति थी। गो० तुलसीदासजी, म० केशवदासजी, सुन्दर कविराय, बनारसीदासजी आदि का थोड़ा हाल साथ में देंगे।

इनमें से जिनका कुछ वृत्तान्त प्राप्त हुआ वह आगे देते हैं। हमको यह बात भासती है कि सुन्दरदासजी के सैंकड़ों अन्य कविकोविद मित्र और अनुयायी होंगे। परन्तु अफ़सोस, उनका कुछ हाल मिला नहीं। अतः जो कुछ मिला वही निवेदन करते हैं, सोभी संक्षेप ही से।

(१) सुन्दरदासजी और रज्जवजी ।

रज्जवजी दादूदयालजी के शिष्य आँवेर में सं० १६४४ वि० में हुए थे। उस समय ये विवाह करने को जन्मस्थान सांगानेर से आँवेर गये थे। अवस्था उस समय २० वर्ष की थी। अर्थात् इनका जन्म १६२४ के लगभग का पठान के घर का था। ये दादूजी के अत्यन्त प्यारे, समादृत ज्ञानी शिष्योंमें से थे। गुरु की सेवा और भक्ति इनके लिए ईश्वर सेवा और भक्ति के तुल्य थी। दादूजी का परमपद सं० १६६० में नरायणा में हुआ, तव रज्जवजी साथ थे और सुन्दरदासजी जो थोड़े समय पहिले शिष्य हुए थे सो भी जगजीवणजी की सम्हाल में साथ ही थे। यहां सुन्दरदासजी ने रज्जवजी का वहुत समय तक दर्शन और सत्संग किया था और इनकी ज्ञानकोटि की उच्चता और उत्तम कथा के भीतर के दृष्टान्तों और कथाओं से सुन्दरदासजी वहुत प्रसन्न रहते थे। संवत् १६६३ में सुन्दरदासजी, रज्जवजी, जगजीवणजी, घड़सीदासजी और उनके शिष्य नारायणदासजी और कई रज्जवजी के शिष्यों के साथ काशी चले गये। वहां भी इनका सत्संग रहा। तव ही से रज्जवजी से प्रेम था और उनमें गुरु समान भक्ति थी। सुन्दरदासजी काशी से पढ़कर उक्त नारायणदासजी आदि सहित संवत् १६८२ में (स्यात् नरायणे गुरु द्वारा होकर) आये और फिर फतहपुर शेखावाटी में वस गये। परन्तु वीच २ में ये रज्जवजी के सत्संग के लिए सांगानेर चले जाते थे और वहां स्थान भी था। वाणी अपने गुरुकी के अर्थ, आशय और मर्म को सुन्दरदासजी ने अधिकतर रज्जवजी से और जगजीवणजी से समझा था। १६६० में (दादूजी के देहावसान संवत् में) रज्जवजी अनुमान से ३६ वर्ष के थे और सुन्दरदासजी अनुमान ८ वर्ष ही के वालक थे। परन्तु दोनों ही प्रखर वुद्धि के प्रतिभाशाली पुरुष थे। रज्जवजी की वह शुद्ध

निर्मल बुद्धि थी कि दादूजी के एक वचन में, एक शब्द में, एक सैन में, ज्ञानी हो गये थे। वह शब्द थाः—

"कीया था कुछ काज को सेवा सुमरण साज।
दादू भूल्या बंदगी सर्यो न एको काज॥ १॥"

राघवदासजी ने यही बात भक्तमाल में कही हैः—

रज्जब अज्जब राजथांन आंवेरि आये,
गुरु के सबद त्रिया व्याह संग त्यागौ है।
पायो नरदेह प्रभु सेवा काज साज येह,
ताको भूलि गयौ सठ विषै रस लाग्यौ है॥
मौड पोलि डार्यौ तन मन धन वार्यो।
सतसील व्रत धार्यो मन मार्यो काम भाग्यौ है।
भक्ति मौज दीनी गुरु दादू दया कीन्ही,
उर लाइ प्रीति लीनी मांथै वड़ो भाग जाग्यौ है" ॥ ३८० ॥

इसीको महात्मा "रामचरणदासजी" ने कैसा उत्तम कहा हैः—

"दादू जैसा गुरु मिलै सिष रज्जब सा जांण।
एक शब्द में ऊधरना रही न खैंचातांण॥ १॥
रज्जब को दादू दिया एक शब्द में ज्ञान।
रामचरण सब छांड़ि कै होगया गुरु समान"॥ २॥

["ब्रह्म समान" पाठान्तर भी है।]

और सुन्दरदासजी तो ७ वर्ष ही के अपने गुरु दादू के उपदेश से ज्ञानी हो गये थे। फिर ऐसी आत्माओं की कैसी उत्तम गोष्ठी और आत्मैक्यता रह सकती है इसको पारदर्शी ज्ञानी जन समझ सकते हैं। इनकी अन्त तक खूब निभी। सुन्दरदासजी रज्जबजी के दर्शनार्थ सांगानेर सं० १७४६ में गये, तब वहीं यह जाना कि अब रज्जबजी संसार छोड़कर परमगति को सिधार गये। तो उनके कोमल चित्त पर इस वियोग से ऐसा आघात पड़ा कि वे वहीं सांगानेर में शरीरत्यागी हो गये।

इसको कहते हैं सच्चा प्रेम, सच्ची भक्ति और आत्मस्नेह! ऐसे होते हैं महात्मा! और रज्जवजी की गुरुभक्ति देखिए कि दादूजी के परमतत्व लीन होजाने पर उन्होंने अपने नेत्र वंद ही रक्खे, कि उनकी समझ और अगाध गुरुभक्ति के कारण अब कोई संसार में देखने योग्य नहीं रहा, जिसको आंख उघाड़ कर देखते। उन्होंने कहा है:—

"गुरु दीरघ गोविंद सूं सारे सिपहु सुकाज।
ज्यों रज्जव मक्का वड़ा परि पहुँचै वैठि जहाज" ॥ १ ॥
"माया पानी दूध मन मिले सु मुहकम वांधि।
जन रज्जव वलि हंस गुरु सोधि लही सो सांधि" ॥ २ ॥
"सतगुरु सूंन्य समान है सिप आभे तिन मांहिं।
अकल अंव तिनमें अमित रज्जव टोटा नांहिं" ॥ ३ ॥
"गुरु दादू र कवीर की काया भई कपूर।
रज्जव रीझ्या देखि करि सरगुण निरगुण नूर" ॥ ४ ॥

इसही प्रकार सुन्दरदासजी ने गुरु महिमा वहुत गाई है कि जिसके समान साहित्य में वहुत थोड़ी सदुक्तियां होंगी।

सुन्दरदासजी ने रज्जवजी से वहुत ज्ञान लाभ किया था और उनकी उक्तियों और विचारों और कविताओं में रज्जवजी की झलक पड़ती है।* रज्जवजी ने भी सुन्दरदासजी के शास्त्रीय ज्ञान और योगाभ्यास से अवश्य लाभ किया होगा। रज्जवजी ने दो ग्रन्थ रचे थे। "वाणी" और "सर्वंगी" जिनका वर्णन हमारे उक्त लेख में है वहां देखैं।

रज्जवजी की भाषा राजस्थानी भाषा की भूमि पर रची हुई है। परन्तु उसमें अनुभव कूट-कूट कर भरा है जिसका समझना सहज नहीं। सुन्दरदासजी की भाषा व्रजभाषा और खड़ी वोली की भूमि पर राजस्थानी का

* "राजस्थान" त्रैमासिक पत्र कलकत्ता में वर्ष १ के अङ्क ३-४ में "महात्मा रज्जवजी" पर हमारा विस्तृत लेख देखने से अधिक हाल ज्ञात होगा।

कुछ सम्पर्क लिए है और मधुरता, सहजता और सरलता परन्तु अर्थ की गम्भीरता लिए है। छन्द वाहुल्य रज्जवजी की कृति में भी है परन्तु उससे अधिक सुन्दरदासजी की रचना में हैं। काव्यता सुन्दरदासजी की रचना में अधिक चातुर्य से है। "सवैया" की अनुहार रज्जवजी से कुछ समझी जा सकती है। रज्जवजी ने सापियों का ढेर कहा है। सुन्दरदासजी ने सापी मानों विवश होकर कही हैं, प्राधान्य नहीं दिया है। प्राधान्य तो सवैया, मनहर आदि को ही है। रज्जवजी के त्रिभंगी छन्द वहुत रंगीले और मस्ती भरे हैं, सुन्दरदासज़ी के भी कम नहीं हैं। रज्जवजी ने ग्रन्थ वनाये, वैसे ही सुन्दरदासजी ने भी वनाये। वावनी दोनों के ग्रन्थ रचनाओं में है। रज्जवजी के केवल १३ छोटे ग्रन्थ हैं, परन्तु सुन्दरदासजी के छोटे ग्रन्थ ३७ हैं। छप्पय भी दोनों ने ही लिखी हैं। १५ तिथि, ७ वार का वर्णन दोनों ने किया है। रज्जवजी ने अरिल अधिक और विशेपता से कही हैं। पद दोनों के गम्भीर और सरस हैं, परन्तु अनेक पद रज्जवजी के वहुत वढ़े-चढ़े हैं। न तो सुन्दरदासजी ने रज्जवजी की नकल की है और न रज्जवजी ने सुन्दरदासजी की। स्वतन्त्र रचयिता हैं। अपने-अपने ढंग से उक्ति और विचारों को कहा है। वेदान्त और सांख्य तथा भक्ति की वारीकियाँ सुन्दरदासजी की सी रज्जवजी में कम हैं। रज्जवजी की उक्तियाँ मस्ताना और सूफ़ियों के ढङ्ग की-सी हैं, परन्तु दादूजी के सिद्धान्तों का समर्थन करती हैं। रज्जवजी को दादूजी से सीपने और समझने का अवसर वहुत मिला अर्थात् १६४४ से १६६० तक। और सुन्दरदासजी को केवल वर्प भर ही। परन्तु इस ही कारण सुन्दरदासजी को अपने इन महान गुरुभाइयों के प्रवचन और कथाओं से गुरु के सिद्धान्तों को भली-भाँति समझने का अवसर मिला था। जगजीवणजी, रज्जवजी और प्रागदासजी के सत्संग से दादूवाणी की ज्ञानशैली को समझने का सुन्दरदासजी को वहुत सन्मार्ग मिला था। परन्तु यह सदा याद रखने की वात है कि शास्त्रज्ञता और पाण्डित्य न

इन तीनों के अन्दर इतना मिलता है, न अन्य किसी भी दादू-शिष्य में जितना कि सुन्दरदासजी में। सुन्दरदासजी ने वेद और शास्त्र की अवहेलना कहीं नहीं की उन्हें तो प्रमाण माने हैं। तब ही वे "दूसरे शंकराचार्य" कहे गये।

(२) सुन्दरदासजी और मोहनदासजी।

रज्जबजी के अनेक शिष्य थे। १२ से भी अधिक पाये जाते हैं। उन सबही से सुन्दरदासजी का प्रेम था। परन्तु मोहनदासजी के साथ उनकी ज्ञान-गोष्ठी अधिक रहा करती थी। मोहनदासजी ने सुन्दरदासजी से काव्य और अध्यात्म भी सीखा था और गुरु तुल्य मानते थे। हमको महंत गंगारामजी से इनके परस्पर के पत्राचार के पाने मिले हैं। उनको अविकल यहाँ उद्धृत करते हैं, क्योंकि इनके पढ़ने से दोनों साधु-कवियों के परस्पर के व्यवहार, प्रेम और विचार जाने जांयगे, और मोहनदासजी की काव्य-रचना का भी ज्ञान होगा। मोहनदासजी ने अपने गुरु रज्जबजी की महिमा में उत्तम छन्द और गीत कहे हैं जो मुद्रित "रज्जब-वाणी" में सम्मिलित हैं। उनमें से एक छन्द यहाँ देते हैं:—

"रज्जब के चरणन कूँ छुवे को प्रताप ऐसो,
पाप के पहार मानों फाटे हैं पराकि दे।
युग युग जीव जमद्वारे बँदिवान हो तो,
संकल के सन्धिसाल खूटे हैं खराकि दे॥
गौतम की तरुनी के करुनी ज्यौं कृपाल भये,
साँचे हे सराय तूटे तांति ज्यों तराकि दे।
ज्ञान के गयन्द चढि चलै है मोहन मन,
ऊँचे असमान जाय बैठे हैं फराकि दे"॥ ८॥

और अन्य छन्द और गीत की प्रतीकें देते हैं:—

"दरस सकल दुप हरन......।" (छन्द छप्पय)

"तुरकां सिरताज पतसाह दिल्ली तणूं......। (गीत)

अब उक्त पत्रों को सम्पूर्ण यहां देते हैं:—

"श्री परमात्मने नमः"।

चौपाई

"सिद्धि श्री सरवोपमां लाइक। गो ब्राह्मण सन्तनि सुखदाइक॥
सभा सिंगार सकल कुल मंडण। धरम सथापक पाप विहंडण॥ १॥
परम पूज्य श्री सुन्दरदासं। माया काया जगत उदासं॥
दृढ वै रा ग्या य ष्टा ङ्ग योगं। हे यो पा दे यं जित भोगं॥ २॥
तिनहि जोग्य यह कागर सोहन। प्रीति सहित लिपतं भृति मोहन॥

षट्पद

ज्ञान चातुरी अति विवेक गुरु गमि गरवाई।
क्षमा शील सत्यता सुहृद सन्तनि सुखदाई॥
गाहा गीत कवित्त छन्द पिंगल परवानैं।
सुन्दर स्यौं सब सुगम काव्य कोई कला न छानैं॥
विद्या हि चतुरदस नाद निधि, भक्तिवन्त भगवन्तरत।
संयम जु सुमरगुणगण अमर, राजरिद्धि नवनिद्धियुत॥ १॥

मनहर

तब कृत गीत छन्द कवित सवैया बन्ध,
दोहा चौपई सोरठा श्लोक बन्ध गायो है।
अैसी तब बानी सब सन्तनि मैं जानीं मन,
अन्तर प्रबानी बाँचि बाँचि सुख पायो है॥
तानैं वह पोथी सब ग्रन्थनि की जोथी अब,
लिपिबे कैं काजैं मेरो मन हुलसायो है।
विग्यपति ये है देव! भृति भयौ भापै भेव,
सुन्दर सुधासमुद्र ग्रन्थ मोहि भायो है॥ १॥

(१) प्रत्युत्तर (सुन्दरदासजी का)।

दोहा

सिद्धि श्री सरबोपमां योग्य सु मोहनदास।
पत्री सांगानेर तें लिपतं सुन्दरदास॥ १॥
केनि राम ही राम है इहां उहाँ आनन्द।
कुशलक्षेम तुम्हरें सदा चहिये परमानन्द॥ २॥
अपर विगति अैसी जु यह पत्री याही हाथ।
समाचार जानें सवैं सुनौं इहां की गाथ॥ ३॥
प्रीति सन्देसनि क्यौं वनें दूरि नहीं वह ठौर।
ऊपर रापत औरसी मन मैं रापत और॥ ४॥
हमसौं कवहूँ नां मिले दिन के आवहु जाहु।
छिपे छिपे ही नीकसौ कै तुम चौर कि सांहु॥ ५॥

इन्दव

मौहनजू मनमोहन हौ तुम्ह पौंहन वैसि पधारतु गामैं।
भौंहन सौं न मिले कवहौं पुनि सौंहन सौं कहिये कछुम्हामैं॥
टौंहन कौं पतियां लिपि भेजतु थौंहन कौं सव ही धनधामैं।
गौंहन छाडि दयौ कवको अव दौंहन कौं सुरही कत पामैं॥ १॥

(२) (मोहनदासजी का) प्रत्युत्तर।

चौपई

इन्दव छन्द रु दोहा पांच। तामैं शिप्या अैचा पांच॥
कृपा करी भाषे तुम देव!। ताकौ यह उत्तर सुनि लेव॥ १॥

इन्दव

ज्यो हमकौं लिपि कैं पठयौं समझ्यौ सवही जु वृतन्त तुम्हारौ।
प्रीति की रीति सन्देसन होत अन्देस रहै हिय मांहि विचारौ॥
मौंहन जू मनमोहन हो तुम वोहन नेह रह्यौ इकसारौ।
सुन्दर सौं मिलिहौ जवही करि हैं तवही सवको निरवारौ॥ १*॥

---

* यह छन्द सुन्दरदासजी का है। पत्र में उलट पलट लिखा गया।

सांच कही तुम सुन्दरदास उदास वचन्न यथारथ जांनीं।
प्रीति की रीति सन्देसन होत यौं पाइ गये पतियां पहिचांनीं॥
मोहन कौं नहिं दौहन कौ सब ही उरहीतैं गई जुगवानीं।
मोर मरोर ये जोर निचोर सु लेयौं वकौ समुझैं सुनि वांनीं॥ २॥

मनहर

सूधि में असूधि दरसाई मेरे मन्द भाग,
बोलिबे को ठौर न तौ जाइबे कौ जाइगै।
पौंहन वषांनें धनवान मुष आनें सुतौ,
साहिब के साहिबौ के पगारौ न पाइगै॥
कहत कह्यो न जाइ रहत रह्यो न जाइ,
तुम गुरु पाय शिष्या यातें अधिकाइगै।
घरकौ गुलाम मुष लायौ भापै आम जांम,
सुन्दर कै दुन्दर न यातैं कहनाइगै॥ ३॥

(२) (सुन्दरदासजी का) प्रत्युत्तर।

दोहा

तर्क वचन तुम सौं कहे प्रीति वढावन काज।
नातरु यौं कैसैं कहैं कहते आवै लाज॥ १॥
प्रीति घटै नहिं सन्त की नीति इहै निरधार।
रीति सकल जानत तुम्हें भीति कहा संसार॥२॥

(३) (मोहनदासजी का) प्रत्युत्तर।

दोहा

भय मेटग मेटण जु भव सुन्दर शिष्या वैंन।
स्वामी रज्जबजी अंजे ज्ञान सलाके नैंन॥ १॥
काया काठ सकै उठै गोष्टि मथति तैं आगि।
+ + + + ॥२॥

+ + + दू शिप्पि।
तनौ अन्यथा पातु ऱहे भापि गये हैं ऋष्पि❊ ॥ ३ ॥

(३) (सुन्दरदासजी का) प्रत्युत्तर।

दोहा

पिंगल तुम कैसो पढ़े सुद्ध न किये कवित्त।
कै अैसैं ही लिपि गये कै थिर भयौ न चित्त ॥ १ ॥

(४) (मोहनदासजी का) प्रत्युत्तर।

दोहा

पिंगल तो हम हैं पढ़े ता महिं फेर न सार।
(पं) सुन्दर सुधासमुद्र मैं पुस्तक गल्यौ हमार ॥ १ ॥

मनहर

येक नाम लेत ही अनेक अघ जारैं जाके,
ताके गुण मांहि पोट सुन्यौं न सुनाये तैं।
अगनि न कीरो लागै हेम सुद्ध काटौ नांहिं,
वाटौ न सुलाक सहै पारस के पाये तैं ॥
कीरति करतारहूकी कहै ताकौ दिव्य देह,
तीरथ आनन होत सन्तक्रिति लाये तैं।
रगण सगण आदि दुराहे कौ दोप नांहीं,
दग्ध न अक्षर परै दिव्य देव गाये तैं ॥ २ ॥

श्लोक

ग्रन्थकर्त्ता स्वयं व्यासो लेखकस्तु विनायकः।
तयोरपि चले चित्ते मनुष्याणां च का कथा❊ ॥ ३ ॥

❊ ये पंक्तियां मूल पत्र में खाली हैं।

❊ मूल पत्र में श्लोक अशुद्ध पाठ यों था—"ग्रन्थकर्त्ता स्वयं रमरा लेखकोत्तर विनायकः। तपां रपि चले चित्तं मनुष्याणां च का कथा"। जिसका शुद्धपाठ हमने बना दिया है।

(४) (सुन्दरदासजी का) प्रत्युत्तर।

दोहा

नई पुरानी एक है कृत सब वाही मांहिं।
पोथी होती दूसरी तौ हम रापत नांहिं॥
ग्रन्थ एक अद्भुत भयौ जा महिं वचन विलास।
कबहूं कै तुम आइकरि सुनियौ मोहनदास॥ २॥

मोहनदास विज्ञप्ति।

मनहर

जौपें जल-प्यासेन की प्यास जल मेटै नांहिं,
जौपें अन्न भूपेनि की भूप न मिटाहिंगे।
जौपें दाता दीननि कौं दुपी देपि द्रवै नांहिं,
जौपें राजा रैतिनि की रक्षा न कराहिंगे॥
जौपें सांई साध अपराध अपराधिन के,
मोहन न माफ करैं मन मैं घवराहिंगे।
तौ पें प्यासे भूपे दीन दुपी पापी पिंड प्रभु!,
कहौ कौन उद्यम कैं वल ठहराहिंगे॥ ३॥
जौपें वर असें कहै मोपै न धारो पांव,
तौ वे पांवधारी और ठौर कहां जांहिगे।
जौपें कहै निहंग विहंग मति उडौ मोमें,
तौवे खग खं विना धौं कहां कौ उडाहिंगे॥
तरु छांह वपुवांह मोहन क्यौंहूं हिं जूये,
हालहूल ऊँचे नीचे ठौर ठहराहिंगे।
आलंब न और जग दीसै कहौ जाजे कहां,
आगि कै तो दाधे अन्ति आगि ही सिराहिंगे॥ ४॥

दोहा

जब लगि जीवत जगति महिं मरिहौं मोसर पाइ।
तब कृत सुनिबे सीपिबे फिरि उपजोगी आइ॥ ५॥

प्रीति प्रांण कौं लै गई काल काय लै जाइ।
जन रज्जब गति आगिली अब ही देषी आइ ॥६॥

जहां सुरति तहां जाइ जिय भंग भये अस्थूल।
जन रज्जब दिष्टान्त कौं कली कटै ज्यूं फूल ॥ ७ ॥

चौपई

परम पूज्य तुम ! अरज जु मान। विप्र वैश्य कौ जहां कहान।
तातैं पोथी रहने दीजै। लहौं सवईया इतनी कीजै ॥ ८ ॥
मंगितु जबैं मांगने आवै। ज्यौं त्यौं दाता कौ सुकचावै।
सो तुमतैं सब विधि नहिं छानैं। मैं सकुचाये सब कोई जानैं ॥ ९ ॥
संस्कृत्त हम पढ़े पढाये। तुम्हरी थिरा गिरा मन भाये।
परम पूज्य श्री स्वामी दादू। जिनि वानी कबूल की (वी) आदू ॥१०॥
सो अवगाहि परम सुख पायौ। पुन्य पियूष रजबजी पायौ।
दे दृष्टान्त पुष्ट करी भाषा। तिनिहुँ चख्यौ डार अरु साषा ॥११॥
फल पाये बहु विधि मन भाये। अब तुम भूरि भाग्य मैं पाये।
मैं मरजीवा तुम सुखसागर। लिषत पढत हुँहि (हूं) ढिंग नागर ॥१२॥
सो सब अरज हमारी सुनियो। दुरबल देषि साप सब भरियो।
श्री सुन्दरदास जोग्य यह कागर। रीझै कहा आहि गुन-आगर ॥१३॥
सर्वग्य रीझ अज्ञ कौ मानी। कै आपण तैं अधिको जानी।
तुम तैं अधिकैं नांहिं न कोई। अग्य परि रीझँण जुक्त हि होई ॥१४॥
तुम्हरो भृत्ति न तुम तैं दुवौ। दैव योग्य यह यूँही हुवो।
थोरी भूल भये दुखदाई। कहितैं मैं लगै औरसी काई ॥१५॥
तज सहाय कहुं हाय न कीया। किया नियारा लैकै जीया ॥
× × × × । × × × ॥१६॥

दोहा

श्री रामदास रस मिलन मैं अमिलणि मैं रस जाय।
मिल्यौ न मारै सिंघ हूं अमिली मारै गाय ॥ १७ ॥

"यह मन बहु बकवाद सूँ, वाय × × ×।
दादू बहुत न बोलिये, सहजैं रहै समाइ" ॥१८॥

करी आप किरपा सदा रामदासजी मूलि।
सो अब अधिकी अधिक है कदे न जांहीं भूलि ॥ १९ ॥

सन्त जिते हैं पन्थ महिं लघु दीरघ सब कोइ।
मेरी सबकूं धोक है सदा सर्वदा सोइ ॥२०॥

॥ इति श्री पत्री सम्पूर्ण ॥

इन पत्रों के उत्तर-प्रत्युत्तरों में बहुत-सी काम की बातें भरी हैं। जो बातें समझ में आई उनको लिखते हैं:—

(१) सुन्दरदासजी सांगानेर में भी बहुत रहते थे और वहां उनके रहने का पृथक् स्थान था। यह बात स्पष्ट ही इन पत्रों से प्रमाणित होती है। यहां रहने के दो कारण प्रतीत होते हैं। एक तो यहाँ का सुन्दर निवास, नदी, बागात, अच्छी बस्ती, सत्संगति, रज्जबजी आदि के शिष्य और फिर रज्जबजी से प्रेम, उनकी सत्संगति और ज्ञानप्राप्ति। हमको न तो महन्त गंगारामजी ने न उनके किसी थांभाइत ने उस स्थान का पता दिया। सुन्दरदासजी के शिष्य नारायणदासजी भी यहीं सांगानेर में मरे थे और स्वयम् सुन्दरदासजी ने भी यहीं शरीर को त्यागा था। यह बातें बिना अस्थल के कदापि नहीं हो सकती हैं। रहना-सहना ही नहीं यहां ही सुन्दरदासजी ने ग्रन्थों की भी रचना की है। हमारे खयाल में वे अपनी कृतियों को रज्जबजी को अवश्य सुनाते थे। और वे सही कर देते थे तब अन्य साधुओं को भी सुनाते थे। सुन्दरदासजी के ग्रन्थों का उनके जीवनकाल ही में बहुत प्रचार हो चुका था। इस बात का प्रमाण भी इन पत्रों से भली-भांति हाथ लगता है।

(२) "ज्ञान समुद्र", "सवैया" और "अद्भुत उपदेश" का नामोल्लेख तो इन कागजों में स्पष्ट है ही। सुन्दरसुधासमुद्र कहने से "ज्ञान समुद्र" ही अभिप्रेत है। "सवईया" की नकल करने की प्रार्थना मोहनदास ने

सुंदरदासजी को की ही है। और "अद्भुत उपदेश ग्रन्थ की रचना की सूचना स्वयम् सुंदरदासजी ने मोहनदास को की है।

(३) ये पत्र सं० वि० १७१० से बहुत पीछे के लिखे हुए हैं। उस समय—चाहे १७२० हो या १७४०—सुंदरदासजी सांगानेर में रहते थे। और उस "सवैया" ग्रन्थ (या उसके कई अंग) बन चुके थे क्योंकि ज्ञान-समुद्र स्पष्ट ही सं० १७१० में बना था। जैसा कि उसके अंत में संवत् दिया है।

(४) मोहनदासजी के कागज़ में जो रामदास का नाम है यह रज्जबजी के शिष्यों में से है जिनके बनाये छंद रज्जबजी की स्तुति में, "रज्जब वाणी" में छपे हैं। हमने हमारे छपाये लेख—"महात्मा रज्जबजी"—में इन रामदासजी का एक छंद—"भानसो ज्ञान प्रकास महामुनि···"इत्यादि—दिया है। कागज़ के आशय से रामदास मोहनदास से बड़ा था। मोहनदास आदरसूचक शब्दों में रामदास का वर्णन करता है। तथा रामदास ने अपनी वाणी भी रची थी ऐसा प्रतीत होता है कि उस कागज़ में उसकी वाणी एक दो दी है—"रामदासरस मिलन में···"इत्यादि। और रामदास के ऊपर सुंदरदासजी की अधिक कृपा थी और उसको स्वामीजी ने अपने ग्रन्थ दे दिये थे। और मोहनदास संकोच से स्वामी के पास नहीं आता था, इस कारण उसको सब ग्रन्थ नक़ल करने वा देखने को नहीं मिलते थे। इस ही से मोहनदास को स्वामी सुंदरदासजी की बहुत विनती और खुशामद करनी पड़ती थी। यह बातें पत्रों के पढ़ने से समझ में आ जाती हैं। मोहनदास स्वामीजी की वाणी का बहुत प्रेमी था।

(५) मोहनदास की रचना से उसका एक होनहार कवि होना स्पष्ट है। उसकी कई छंद रचनाएँ तो बहुत सराहना के योग्य हैं। ऐसे बुद्धिमान कवि ने सुन्दरदासजी की कितनी बढ़कर और दीनता से प्रार्थना की है। इससे सुन्दरदासजी के काव्य-गौरव प्राप्त महात्मा और उच्च कोटि के नामी कवि, उस ज़माने में होने का एक पार्श्व-प्रमाण मिलता

है। मोहनदास बहुत ही चाहता था कि स्वामीजी की सब रचनाएँ उसको मिलें। वह यहां तक कहता है कि इस जीवन-काल में सब ग्रन्थ आप के न मिलेंगे तो मेरे पीछे तो मुझे मिलेंगे—"जब लगि जीवन जगत मंहि मरिहों मौसर पाइ। तब कृत सुनिबे सीषिबे फिरि उपजौंगो आइ" ॥ ५ ॥ मोहनदास ने अपने आप को "भृत्य" और "घर को गुलाम" तक कह डाला है, और "मैं मरजीवा तुम सुखसागर", "सो सब अरज़ हमारी सुनियो। दुरबल देपि सापि सब भरियो" इत्यादि अति नम्रता और दीनता से ग्रन्थों के मिलने की भिक्षा की है। इस पर स्वामीजी ने कृपा करके उसको ग्रन्थ दिये ही होंगे। मोहनदास पिंगल अवश्य पढा हुआ था। संस्कृत भी कुछ जानता था ग्रन्थ भी बनाये थे ऐसा प्रतीत होता है। परंतु अल्पज्ञान के कारण पहिले उसे अपनी विद्या का घमंड था। वह घमंड स्वामीजी की महिमा जानने से नष्ट हो जाने पर उसने स्वामीजी के महत्व को जाना, तब आंख खुली और फिर तो दीन होकर ग्रन्थों की याचना करने लगा।

(६) अफ़सोस है कि इन पुराणे पत्रों में संवत् नहीं है। यदि संवत् होता तो ये बड़े ही काम की बात उत्पन्न कर देते। अर्थात् उस संवत से (वा उन संवतों से) ग्रन्थों के निर्माणकाल, वा उस समय का वहां सांगानेर में सुन्दरदासजी का रहना सहना भली-भांति जाना जाता। अर्थात् अमुक समय में सांगानेर में निवास करते थे, यह स्पष्ट सप्रमाण ज्ञात होता। परन्तु इनमें संवत नहीं है। स्यात् नक़ल करने में संवत् छूट गये। दूसरी प्रति भी इन कागज़ों की नहीं मिली।

(७) इन पत्रों से सुन्दरदासजी की वास्तविक महिमा और योग्यता का पता स्वतन्त्ररूप से हमें मिलता है। प्रशंसक उनका कोई शिष्य नहीं है, वह तो रज्जबजी का शिष्य है और है भी एक स्वतंत्र और अभिमानी प्रकृति का युवक जो अपने आप को कुछ लगाता और समझता है, जिसको अपने कवि और पंडित होने का गर्व है और जो सुंदरदासजी

की कविता को देखना और उसकी नक़ल करना चाहता है। वह जवान कवि जैसे २ इस महामहिम महात्मा-कवि की उच्चता प्रदेश में प्रवेश करता है उसकी आंखें खुलती जाती हैं और वह स्वामीजी के गौरव को कुछ देख कर अपनी अज्ञानता और हीनता को देख कर मानों लज्जित होता है और भर्तृहरि की उक्ति के अनुसार, उसका अविद्या जनित मिथ्यामद ज्वर की न्याईं उतर जाता है और वह स्वामी की अलौकिक प्रतिभा का दर्शन अंशांश में पाता है। मोहनदास कवि ने सुंदरदासजी के गुणगान में जो कुछ कहा है वह गुणगान, एक अपने समसामयिक स्पर्द्धा करनेवाले पंडित कवि की लेखनी से सुंदरदासजी की महिमा को निष्पक्ष सत्यरूप से स्पष्ट सप्रमाण सिद्ध करता है। अतः पाठक गण यहीं से समझ रक्खें कि अपने ही समय में, जब कि सर्व ग्रन्थ निर्माण भी नहीं हो चुके थे, स्वामी सुंदरदासजी की सत्ख्याति और गुण-गरिमा समझदार और विद्याभिमानी लोगों पर भी कितनी प्रसरित और प्रभावोत्पादिनी हो चुकी थी वा होने लग गई थी। यह सत्य निष्कर्ष है और बड़े काम का है।

(३) सुन्दरदासजी घड़सीदासजी और नारायणदासजी

फ़तहपुर में श्री दादूदयालजी के एक शिष्य घड़सीजी वा घड़सीदासजी भी थे। ये उन संतों में से थे जो फ़तहपुर की गुफ़ा (भहरा वा तहखाना) में सुंदरदासजी के साथ तप किया करते थे, और जो अन्य साधुओं के साथ और अपने शिष्य नारायणदास को और सुंदरदासजी को लेकर काशी गये थे। यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है। चतुरदासजी रचित थांभा-पद्धति में आया है:—

"सांगानेर रज्जब सु देवल दयालदास,
घड़सी कड़ेल वसि धर्म ही की पाज ही ॥"

और राघवदास कृत" "भक्तमाल" में भी आया है यथा:—

"जगजीवन जगनाथ तीन गोपाल वपानूं।

गरीब जन दूजन घड़सी जैंमल द्वै जानूं" ॥ ३६१ ॥

स्व० मुंशी देवीप्रसादजी जोधपुर निवासी, प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता, हमारे मित्र थे। उनसे इन गुरु चेलों और सुंदरदासजी के मारवाड़ राज्य से गांव मिलने आदि के बारे में हमने सन् १९०४ में, जब हम शेखावटी में नाज़िम के पद पर नियत थे, पूछताछ की थी। उन पत्रों के अवतरण हम आगे देकर अपना निश्चय लिखेंगे। उक्त मुंशीजी के पत्र से विदित हुआ कि बड़सीदासजी मारवाड़ के "चांपासर" गांव के जाट थे जो भाग्योदय से श्री दादूदयालजी के शिष्य हो गये थे। और गांव कड़ेल, इ० मारवाड़ में, बस कर थांभा बना लिया था। शिष्यों में नारायणदास प्रधान था जो काशी से विद्योपार्जन कर सुंदरदासजी के साथ आ गया था और अध्यात्म तथा योग शिक्षा भी उसने पाई थी। सुंदरदासजी से इस नारायणदास का इतना प्रेम था कि जोधपुर के महाराज जसवंतसिंहजी बड़ों ने, जब सुंदरदासजी को उनकी करामातों और ज्ञानगरिमा तथा पांडित्य के आदर में गांव में भूमि प्रदान करनी चाही, तो सुंदरदासजी ने निस्पृहता से अपने ग्रहण न करके नारायणदास ही को भूमि दिला दी। यह बात हमको स्व० महंत गंगारामजी से सन् १९०२ (सं० १९५९) में भूंभणूं में ज्ञात हुई थी। यह बात मारवाड़ के गांव प्राप्ति के सम्बन्ध में होने से हमने उक्त स्व० मुंशीजी से पूछी थी। मुंशीजी ने कृपा करके बड़े परिश्रम से खोज की। उनके पत्रों से यहां अवतरण देते हैं:—(ता० २५ मई सन् १९०४ का पत्र)—"जिन लोगों से बात पूछनी थी वे दूर रहते हैं। चार पांच दिन तक लगातार रामबख्शजी और उनका पता बताने से चेतन्यदासजी के पास गया। ये दोनों साधु गरीबदास के थांभे के हैं। और खोजना करके चांपासर के महंत घड़सीदासोत देवादासजी का भी पता लगाया और उनसे भी मिला। सबसे अपने मतलब की बातें पूछीं

और लिखीं जिनका सारांश यह है कि--चांपासर गांव तो नहीं, चांपासर में पहलवां जमीन महाराज जसवंतसिंहजी ने (सं० १६९१-१७३५) नारायणदासजी को दी थी। नारायणदासजी चांपासर के ही जाट थे और घड़सीजी के चेले थे। काशीजी में विद्या पढ़े। वहां से आकर महाराज को कई परचे दिखाये। तो महाराज ने यह ज़मीन दी। सनद यहां देवादास के पास नहीं है गांव से मंगा देने को कहा है। महाराज जसवंतसिंहजी ने संवत् १६९१ से १७३५ तक राज किया है, वही समय सुन्दरदासजी का भी था। सुन्दरदासजी मारवाड़ में आये ज़रूर थे। यह बात उनके और नारायणदासजी के दोहों से भी जानी जाती है और दसोंदिसा के जो सवैये सुन्दरदासजी के हैं उनमें भी मारवाड़ का वर्णन है और उस (मारवाड़) की निंदा हैं। और फिर डीडवाणे में रहना भी वर्णन किया है। इस से उनके यहां आने में तो संदेह नहीं है। पर, नारायणदास के साथ महाराज जसवन्तसिंहजी के पास गये थे या नहीं गये थे इसका पता कुछ नहीं लगता, और देवादास आदि भी कबूल नहीं करते कि—सुन्दरदासजी ने नारायणदासजी को ज़मीन चांपासर की दिलाई थी और सनद में भी उनका नाम नहीं होना बताते। सनद मैंने नहीं देखी है, उसका पता लगा रहा हूँ। मेरी समझ में भी सनद में नारायणदास का ही नाम है, यदि सुन्दरदास का होता तो राजवाले ही नारायणदास के चेलों को नहीं खाने देते। मैंने सुना है कि महकमे बन्दोबस्त में माफ़ी जमीनों की तहकीकात हुई है और वहां चांपासरवालों की भी सनद दाखिल हुई है। यह देवादास ने भी कहा है। तो वहां से भी नक़ल मंगाऊँगा। मिल गई तो आपको भेजूँगा।—(२) रामबख्शजी के पास सुन्दरदासजी के बनाये इतने (नीचे लिखे) ग्रन्थ हैं। और वे भी कहते है कि "सुन्दर विलास" नाम छापेवालों ने धरा है, लिखी हुई प्रतियों में सुन्दरदासजी के "सवैया" ऐसा लिखा है।—(१) सवैया ३४ अङ्ग—५९५ सवैये। (२) ज्ञानसमुद्र ५ उल्लास। (३) ज्ञानविलास २० अङ्ग। (४) सुन्दर अष्टक १३।

(५) सर्वाङ्गयोग ४ उपदेश। (६) सुन्दरदासजी के पद २६ रागों में। (७) तर्क चिन्तामणी। (८) हरबोल चिन्तामणी। (९) सुन्दरदासजी की साखी। (१०) दसोंदिसा के सवैये।—ये ग्रन्थ संवत् १८२२ और सम्वत १८६० के लिखे हुये हैं।......"।

महन्त स्व० गंगारामजी से हमें ज्ञात हुआ था कि नारायणदासजी जब मारवाड़ में रहने लगे तो सुन्दरदासजी ने उनको पत्र लिखा और बुलाया। पत्र में अन्य समाचारों के साथ ही यह दोहा था:--

"पढ़े थे वाराणसी कियो विराहे वास।
भूँच देस में रम रहे भले नरायणदास"॥ १॥

इसका उत्तर नारायणदासजी ने भेजा उसमें अन्य समाचारों के साथ नीचे लिखा था:—

"दूध दही घृत सालणाँ थली भला है थोक (ग)।
ओढण ऊना कप्पड़ा लक्खण लावा लोग"॥ १॥

इस प्रकार दोनों मित्रों में प्रेमपत्रों का चार होता था। नारायणदासजी ने सुन्दरदासजी से पढ़ा भी था। और सुन्दरदासजी को गुरु समान मानते थे। गंगारामजी का तो यही कहना है कि जमीन वा गाँव की सनद महाराज जसवन्तसिंहजी ने दी थी उसमें सुन्दरदासजी का नाम है। और उनही के कहने से भूमि मिली थी। नारायणदासजी भी तपस्वी और परचाधारी महात्मा थे। राघवदासजी की भक्तमाल में उनके परचे और महाराज जसवन्तसिंह से समागम होने का वृत्तान्त संक्षेप में यों लिखा है:--

"नारायंन दूधाधारी घड़सी गुरु पाय भारी,
राजा जसवन्त असवारी भेजी आइये।
वैलनि लिये चुराइ भैल कैसे चलै पाइ,
चढ़ि करि कह्यौ जु निरञ्जन चलाइये॥
भैल चलि आवै अचरजि सब पावै,
राजा सनमुप धायौ हुलसायौ मन भाइये।

अद्‌भुत कीन्हौ नृप चीन्हौ द्रिष्टि आपनी सुँ,
परचौ प्रतक्ष यह सन्तन सुनाइये" ॥
(भक्तमाल। छन्द ५१६ । पाना १४८)

इससे भी, नारायणदासजी का महाराजा जसवन्तसिंहजी को परचा (करामात का) पाना पाया जाता है। सुन्दरदासजी ने भी महाराज को कई वार परचे दिये थे। परन्तु उनका कहीं वर्णन मिला नहीं। नारायण-दासजी सुन्दरदासजी के साथ थे। जव गाँव देने लगे तो इनकार किया और नारायणदासजी को ग्रहण करने को सुन्दरदासजी ने कह दिया तव नारायणदासजी के नाम पट्टा हो गया। उसमें सुन्दरदासजी नाम होना कोई असम्भव वात नहीं है।

हमने इस विपय में मुन्शी देवीप्रसादजी को फिर लिखा था। तो उन्होंने खोज करके फिर हमको उत्तर भेजा जो ता० १५ अगस्त सन १६०४ का हमारे संग्रह में मौजूद है। उसही से अवतरण देते हैं:—

"......गाँव चांपासर※ की डोली के वावत जो हाल महकमे वंदोवस्त से मिला उसकी नकल आपकी सेवा में भेजता हूँ, इससे जाना जाता है कि सनद डोली की कातिक वदि ४ सम्वत् १७२४ को नारायणदास के नाम की महाराजा श्री जसवन्तसिंहजी के राज में हुई। सनद में सुन्दर-दासजी का नाम नहीं है। अवतक जितनी सनदें हुईं सव उसमें लिखीं हैं। नारायणदासजी इसी गाँव—चांपासर—के जाट कल्याण का वेटा था जो घड़सीजी का चेला हुआ। इसके वड़े भाई कचरा की औलाद में अव ११ घर हैं और नारायणदास के चेले भी इन्हीं घरों में से होते रहे हैं। और (अन्य) जाति का चेला हो तो उसको डोली में से वँट नहीं मिलता। अव इस डोली के तीन हिस्सेदार हैं—(१) देवादास (२) रामदयाल

※ मुन्शी देवीप्रसादजी ने २१ मई सन् १९०४ के पत्र में लिखा है कि चांपासर गांव जोधपुर से ३२ कोस पच्छिम-उत्तर के कोने में है।

और (३) हेमदास।—नारायणदासजी को जो दोहा सुन्दरदासजी ने लिखा था, जब वे चांपासर में नहीं, विरावे गांव में थे, क्योंकि उस दोहे में विरावे का नाम है, विरावा शायद परगने सांचोर में है। आपकी आज्ञा में से यही एक बात गांव की सनद की रही थी सो अब इसकी तामील भी सन्तोपपूर्वक हो गई। आगे जो आप और आज्ञा करेंगे उसका पालन भी इसी भांति सविनय किया जायगा। आप तो लोक-उपकार के लिये इतना परिश्रम कर रहे है। फिर जो एक छोटी-सी बात उसमें की मेरे हिस्से में आई तो मैंने भी अहोभाग्य जान कर यथाशक्ति उसके पते लगाने में यह आपकी सेवा की है, सो स्वीकार हो तो मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझूँगा।......मेरे पास भी सुन्दरदासजी के सवैये मेरे नाना के हाथ के लिखे ६० वर्ष पहिले के (सं० वि० १९०० के लिखे) हैं। उन्होंने भी आदि अन्त में "सवैया" ही लिखा हैं। मेरे नाना जयपुर के रहनेवाले थे चौकीनवीसों के ख़ानदान में थे। उनको दादूपन्थी साधों से बहुत सत्संग रहता था। दरीवे में जो रस्ता आमेर को जाता है उस गली में १ दादूपन्थी साधु बहुत सिद्ध थे, रूपां वडारण उनकी चेली थी।...इससे यह तात्पर्य कि ६० वर्ष पहिले (सं० १९००) तक जैपुर के दादूपन्थी साधों में भी सुन्दरविलास नाम इन "सवैयों" का नहीं था"। जोधपुर के महाफ़िज़खाने से दफ्तर की रूसे परचा सनदों का मिला उसकी नक़ल यों है:—

"गांव चांपासर में १३४१ बीघे रकबेकी एक डोली दादूपंथी साधों की है। इस गांव में एक खानदान कोम जाट भगत दादूपंथी है। इस खानदान में से नारायणदास साधु हो गया। संवत् १७२४ कातिक वदि ४ को यह डोली महाराजा श्री जसवन्तसिंहजी साहिब ने नारायणदास को दी। (२) दूसरी सनद सं० १७२८ भादों सुदि २ मय पीव १ पहर पानी कुवे के उन्हीं महाराज साहिब के हजूर से हुई। (३) तीसरी सनद महाराजा श्री अजीतसिंहजी ने जोगीदास के चेले हरीदास और किशनदास के चेले बलीराम को कर दी सं० १७६५ असाढ़ वदि १४।—(४)

चौथी सनद सं० १८०६ पौष सुदि २ भगवानदास के नाम हुई।—(५) पांचवी सनद महाराजा श्री विजयसिंहजी ने संवत् १८४० में वैसाष सुदि १४ को मनीराम के नाम कर दी।—(६) छठी सनद संवत् १८९२ में महाराजा श्री मानसिंहजी के राज में हुई।"

इन दोनों चिट्ठियों से जो, उक्त विद्वान मुंशी देवीप्रसादजी ने तहक़ीक़ात करके भेजी थी, चांपासर गांव की भूमि नारायणदासजी को मिली उसकी सनद में सुन्दरदासजी का नाम नहीं होना प्रगट होता है। परन्तु मुन्शीजी ने एक पत्र इन दोनों से पूर्व ता० २१ मई सन् १९०४ का लिखा हमको भेजा था, उसमें उन्होंने लिखा था कि महाराजा अभयसिंहजी के समय का दफ़तर नहीं है उनके पीछे का संवत् १८०८ से है। "महाराजा अभयसिंहजी ने सं० १७८१ से १८०५ तक राज किया था। सुन्दरदासजो १७१० तक (में) विद्यमान थे। मारवाड़ में उनका आना······पाया जाता है।" इत्यादि। जब कि दफ़तर ही असल नहीं है तो उस सनद का लेख सम्पूर्ण भी कहां से मिलेगा। जो याददाश्त दफ़तर से मुन्शीजी ने पाई वह केवल नोट या टिप्पणी के तौर पर है। सनद की सारी नक़ल मिल जाती तो इस बात का स्पष्ट निर्णय हो जाता कि उसमें सुन्दरदासजी के नाम का भी हवाला है या नहीं। हमारे ख़याल में यदि असल सनद में सुन्दरदासजी नाम रहा होगा तो इतना ही कि सुन्दरदास के कहने से नारायणदास को भूमि डोली दी गई। कुछ सुन्दरदासजी के नाम का पट्टा थोड़ा ही किया गया था। महंत गंगारामजी का तो इतना ही कहना था कि सुन्दरदासजी परम त्यागी थे, उन्होंने गांव या भूमि नहीं ली थी। यदि सनद में सुन्दरदासजी का किसी भी प्रकार से नामोल्लेख नहीं होता तो गंगारामजी को उस बात के कथन की आवश्यकता होती ही क्यों। उनको भूमि से कुछ दावा तो था ही नहीं, शिष्य परम्परा से सुनते आये सो ही बात उन्होंने हमको कह दी। हम जब तक सनद की पूरी नक़ल न देख लें तब तक मुन्शीजी की तहक़ीक़ात को, सुन्दरदासजी के नाम के उसमें

न होने की बात को, सर्वांश में मान लेने को तैयार नहीं हैं, और इस ही लिए महन्त गंगारामजी की कही बात को असत्य भी नहीं बता सकते।※ अस्तु। मुन्शीजी के उत्तरों से सुन्दरदासजी की जीवनी की एक घटना पर प्रकाश पड़ता है, और "सवैया" ग्रन्थ का यही नाम था, "सुन्दर-विलास" नाम छापेवालों ने रख दिया होगा, इत्यादि बातें बड़े काम की मिल जाती हैं। हमारा यह प्रकरण तीनों महात्माओं का समकालीन होने का था सो स्पष्ट वर्णित हो गया। जिस तरह नारायणदासजी को विद्या और ज्ञान का लाभ सुन्दरदासजी से हुआ, वैसे अन्य अनेक साधुओं और गृहस्थियों को हुआ था और वे कदरदान महाराज, जो स्वयम् बड़े कवि और ज्ञानी भक्त थे, अवश्य ही सुन्दरदासजी के अध्यात्म ज्ञान, उच्चकाव्य और योग सिद्धियों प्रसन्न और कृतकृत्य हुये होंगे। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

(४) सुन्दरदासजी और प्रागदासजी।

प्रागदासजी और सुन्दरदासजी के सम्बन्धी कुछ इतिवृत्त ऊपर दे चुके हैं। सुन्दरदासजी को तीन महात्माओं से गहरा सम्बन्ध, प्रीति और भक्ति थी (१) जगजीवणजी टहलड़ीवाले—(२) प्रागदासजी डीडवाणे-वाले और—(३) रज्जबजी सांगानेरवाले। इन तीनों को गुरु समान वे मानते थे। इस ही लिए थोड़ा हाल इनका हम देते हैं। रज्जबजी को लिख चुके। अब प्रागदासजी को थोड़ा सा लिखते हैं। फिर जगजी-वणजी को लिखेंगे।

※ गंगारामजी ने यह आख्यायिका सुन्दरदासोत साधु गैबीराम से सुनी थी जो पुराणी बातों का बहुत जानकार था। उसने अपने गुरु कुशलदास से सुनी थी जो मारवाड़ में घड़सीदासोतों के पास बहुत रहा था और मारवाड़ से फतहपुर आ गया था। ऐसा गंगारामजी से ज्ञात हुआ था।

प्रागदासजी (प्रयागदासजी) किरड़ोली ग्राम के रहने वाले थे जाति के अग्रवाल वैश्य वीहांणीं गोत के और धनाढ्य महाजन के पुत्र थे। ये पहिले ही से साधु संगति और ईश्वर भक्ति परायण थे। सं० १६३४ में जब श्री दादूदयालजी रामत करते हुए किरड़ोली पधारे तब ये दादूजी के शिष्य हो गये थे। गांव घाटवे से शाहपुरे होकर स्वामीजी किरडोली गांव आये थे। जनगोपाल कृत "जन्मलीलापरची" से ऐसा पाया जाता है कि प्रागदासजी पहिले ही से शिष्य थे। यथाः—

"पीछे प्रागदास लै चले। जाति महाजन सिप सो भले ॥ १७ ॥
किरडोली कौं कियौ पयानौं। बीच साहपुरि भयौ मिलानौं ॥ १८ ॥

\+ + + +

स्वामी तब किरड़ोली आये। प्रागदास सेवग सुप भाये ॥ ३७ ॥

और माधोदासकृत जन्मलीला में (तरंग १६ वीं में) घाटवे से दादूजी को, प्रागदासजी का डीडवाणे ले जाना, लिखा है, सो जनगोपाल की "जन्मलीला" से विरुद्ध है। प्रागदासजी ने डीडवाणे में अस्थल अवश्य बांधा था। चतुरदासजी के प्रणाली छन्द में आया हैः—

'बीहांणीं पिरागदास डीडवाणें है प्रसिद्ध।"

और राघवदासजी की भक्तमाल में ऐसे वर्णन आये हैं, यथाः—

"कुल कलि कस्यो विख्यात डींडपुर कियौ उजागर।
शिप उपजे सिरदार सील सुमरण के आगर॥
सांभर सर जल अधर चले पद अंबुज नांई।
नाव लॅग की माल रही उर देह जरांई॥
परमारथ हित भजन पन राघव जीते प्रांन मन।
दादू दीनदयाल के शिष्य बिहांणीं प्रागजन" ॥ ४०१ ॥

मनहर

"दादूजी के पंथ में अतीत अरि इन्द्रीजीत,
बीहैंन बिहांणीं प्रागदास परमारथी।

सांगोपांग संत सूर वीर धीर धारे तेग,
रामजी के वैठो रथ ग्यान जाकै सारथी ॥
काम क्रोध लोभ मोह मारिया वजाइ लोह,
भरम करम जीते भीम जेम भारथी ।
राघो कहै राम काम सारे जिन आठौं जाम,
भजन की माला रही दगध कीयां रथी" ॥४०२॥

हम ऊपर फतहपुर के पुराने पत्रों की नक़ल में वता आये हैं कि प्रागदासजी डीडवाणे से फतहपुर सं० १६५३ में आये और मथुरादासादि उनके ४ पुत्र थे। फ़तहपुर में उनके सेवकों ने उनके लिए स्थान वना दिये थे। उन ही की प्रीति से सुन्दरदासजी भी फतहपुर आकर वसे थे और इनके लिए भी सेवकों ने फतहपुर में स्थानादि वना दिये थे और ये दोनों अन्य सन्तों के साथ वड़े प्रेम से मिल कर यहां रहते थे।

प्रागदासजी वहुत वड़े परचाधारी संयमी व्रती जती संत हुये हैं। इनकी एक छोटी सी "वांणी" भी है जो हमारे संग्रह में नक़ल की हुई प्रस्तुत है। इनके दश शिष्यों का होना राघवदासजी की "भक्तमाल" से विदित है। टीकायती माधोदास तो डीडवाणे में रहे। और दूसरे शिष्य रामदास फतहपुर में रहे। और ८ शिष्य—केसोदास, नारायणदास, वोहिथदास, हरिदास, हरदास, परमानंददास, टीकूदास और धर्मदास स्वामी प्रागदासजी के साथ रहे जिनमें कुछ मर गये कुछ अन्य स्थानों में उक्त दोनों स्थानधारी शिष्यों के पास रहे। इस समय जो डीडवाणे में महंत हैं उन्होंने फतहपुर के प्रागदासजी के स्थान के अगाड़ी वा पासकी भूमि किसी महाजन को वेच कर वे अपयश के भागी हो गये। और इनही के कारण से वहां सुन्दरदासजी के स्थान के अगाड़ी की भूमिका वड़ा-भारी झगड़ा, इस भूमि-विक्री के कारण, पड़ गया जिसका संक्षिप्त वृत्तांत परिशिष्ट में आगे हम देंगे।

कहते हैं कि हरिदासजी निरंजनी ने भी प्रागदासजी से ही प्रथम ज्ञान प्राप्त किया था जैसे कि दादूजी से पहिले उन्होंने दीक्षा पाई थी। यद्यपि निरंजनी साधु इस वात को मानने को तैयार नहीं हैं।

ऐसा प्रसिद्ध है कि प्रागदासजी योग-वल से सांभर के सर (वड़ा-तालाव—"लेक") पर चले थे और जो सर में वँणजारे की छत्री वनी हुई है वहां जा पहुंचे थे। इस छत्री में जाकर वहां उसको भक्ति पूर्वक दण्डवत की, क्योंकि इसमें इनके गुरु दादूजी तपे थे जव वे सांभर में विराजते थे और वे भी छत्री में से सर पर होकर भिक्षा और शंकादि निवारणार्थ इसी प्रकार आ जाते और फिर चले जाते थे। दूसरी एक चमत्कारी वात इनकी यह प्रसिद्ध है कि इनका शरीरांत हो जाने पर इनका शव चिता में दग्ध हो गया परन्तु इनकी सुमिरिणी (काठ की माला) ज्यों की त्यों (अदग्ध) वनी रही, जो इनके अस्थल डीडवाणे में अव तक विद्यमान है जिसकी पूजा होती है और लोग दर्शण करते हैं। इसही डीडवाणे के स्थान में इनकी पगड़ी आदि अन्य वस्त्र वा चिह्न विद्यमान हैं। इनकी परमगति मि० कातिक वदि ८ वुधवार को संवत् १६६८ में फतहपुर में (या डीड-वाणे में) हुई थी जैसा कि फतहपुर के इनके स्थान के द्वार पर शिलालेख में लिखा है जिसकी नक़ल ऊपर दी जा चुकी है और शिलालेख का चित्र भी साथ ही अन्यत्र छपा है। फ़तहपुर के मकानों का लेखा ऊपर दिया ही है॥

(६) सुन्दरदासजी और जगजीवनजी।

सुन्दरदासजी जगजीवणजी के साथ और उनकी शिक्षा और सम्हाल में रहे थे और उनही की प्रेरणा और प्रोत्साहन से काशी पढ़ने को गये थे। इस सम्बन्ध में थोड़ा सा ऊपर लिखा जा चुका है। जगजीवणजी सुन्दरदासजी के गुरु समान थे और सुन्दरदासजी इनका सव से अधिक आदर करते थे। दादूवाणी का सिखाना और कविता में प्रवेश कराना इन ही से सुन्दरदासजी के लिए हुआ था।

जगजीवणजी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। और काशी के पढ़े पंडित थे। देशाटन करते थे। इधर ढूंढाहड़ में चले आये। वैष्णव होने से साधुओं

से स्वाभाविक शत्रुता वा ईर्षा थी। आंवेर में दादूदयालजी की महिमा सुन कर क्षोभ में आकर शास्त्रार्थ करने को आये। शास्त्रार्थ करते रहे। दादूजी ने अपने सरल निर्मल स्वभाव से अति मिष्ट वाणी में वचन कहे। तो जगजीवणजी का भाव बदला। साधु की महिमा सामने खड़ी हो गई। दादूजी ने उत्तम उपदेश किया। तो शीघ्र ही पंडित की मति ने पलटा खाया। और दादूजी के चरणों में गिर कर क्षमा मांगी। दादूजी ने ज्ञान-विभूति और उदारता से उन्हें अपना लिया। जगजीवणजी का दर्प शांत हो गया। वे दादूजी के शिष्य हो गये। और पुस्तकों को, जो बैलों पर लादी चलती थीं, माहवटे तालाव में (जो दादू द्वारे के पास ही है) डुबो-दिया। यह उस समय की वात है जव दादूजी आंवेर में विराजते थे। आंवेर में दादूजी १४ वर्ष रहे थे। शिष्य होने के ठीक संवत् ज्ञात नहीं। परन्तु हमारे चरित्र नायक (छोटे) सुन्दरदासजी जव द्योसा में शिष्य हुए उसके पीछे (द्योसा से उठ कर) टहलड़ी के स्थान में जगजीवणजी के यहां दादूजी पधारे थे। जनगोपालजी कृत जन्मलीला में आया है:—

"जगजीवन के आये स्वांमी। नीकै रिझाये अंतरजांमीं।
लीला करी महोच्छो भारी। रहे डूंगरी पहरे चारी ॥३०॥ (विश्राम १४)

"भक्तमाल" में राघवदासजी ने जगजीवनजी का अच्छा वर्णन किया है। यथा:—

"महा पण्डित परवीन ग्यांन गुन कहत न आवै।
वांणी वहु विस्तरी सापि दृष्टान्त सुहावै ॥
सवद कवित में रांमरांम हरि हरि यौं करणां।
गुरु गोविंद जस गाइ मिटायौ जामंण मरणां ॥
दिवसा में दिल लाइ प्रभु वर्णाश्रमं कुल वल तज्यौ।
दादू कौ सिप सरल चित जगजीवन जन हरि भज्यौ' ॥ ३६१ ॥

और राघवदासजी ने आगे छन्द ३६३ में यह आख्यायिका कही है कि आंवेर के महाराजा मानसिंहजी जगजीवणजी के पास आये और कांसा

जिमाने लगे तो राजसी अन्न होने से ग्रहण नहीं किया। और किसी सेवक की लाई हुई रोटी तरकारी ही खाई। जब मानसिंहजी ने पूछा कि मेरा लाया भोजन नहीं किया जिसमें नाना प्रकार के उत्तम पदार्थ थे? तो जगजीवनजी ने कहा कि राजसी अन्न से रजोगुण आ जाता है। और इस बात को सिद्ध करने को कांसे में से एक मुट्ठी भरकर दिखाई तो उसमें से रुधिर की धार बहने लगी। और सेवक के सात्विकी अन्न में की एक मुट्ठी में से दूध की धार बह चली। तो महाराज का समाधान हो गया।

इनकी और इनके शिष्य की करामात पर महाराणाजी उदयपुर ने इनको चँवर पालकी और गांव उदक में निकाल दिये थे। और बादशाह की तरफ़ से भी इनको चँवर पालकी पीछे मिली थीं। चँवर पालकी नरायणे वार्षिकी मेले में गये जब भेंट कर आये थे। इनका इतना रुतबा देख कर नरायणे के महंतों ने इनकी बड़ी प्रतिष्ठा की और कांकड पर साम्हेला किया। इन्होंने तब ही चँवर पालकी गुरुद्वारे के गद्दीनशीन को अर्पण कर दिये। तब ही से नरायणे के महंत सदा टहलड़ी के महंतों का कांकड पर सामेला करते हैं, अर्थात् पेशवाई करते हैं, और जब तक वहां रहते हैं रसोई भी देते हैं।

टहलड़ी में इनके पक्के मकानात बने हुए हैं जो अब जीर्णोद्धार चाहते हैं। जगजीवणजी की वाणी बहुत बड़ा ग्रन्थ है और वर्त्तमान महंतजी की कृपा से उसकी नकल और एक गुटका हमारे संग्रह में भी विराजते हैं।

इतने बड़े जगजीवणदासजी का सत्संग सुन्दरदासजी के साथ रहा था। और इनके पांडित्य और साधुत्व का इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा था।

जगजीवनजी के कई शिष्य थे उनमें मुख्य टीकाई दामोदरदास और फिर ध्यानदास, कान्हड़दास इत्यादि थे। ये सब पंडित और ग्रन्थकार थे। कान्हड़दास भारी पण्डित और कवि हुआ है। ※

※ राघनोथ "भक्तमाल" छंद पाना १४७ ४८ (ह० लि०)।

जगजीवणजी सुन्दरदासजी के साथ काशी में वहुत वर्षों तक रहे थे और वहां सुन्दरदासजी उनसे पढ़ा करते थे और फिर काशी में अन्य पंडितों से पढ़ कर आते थे उसे स्थान पर आकर जगजीवणजी के सकाश से तयार कर लेते थे अथवा उनसे शुद्धाशुद्ध में सहायता ले लिया करते थे। इस शिक्षा और पालन के कारण ही इनका सम्मान गुरु समान ही सुन्दरदासजी सदा करते रहे।

(७) सुन्दरदासजी, संतदासजी भीषजन और चतरदास

हम ऊपर फतहपुर के प्रकरण में संतदासजी का थोड़ा सा कथन कर आये हैं। फतहपुर में इनका स्थान, समाधि का चवूतरा और अठखंभों की छत्री और उसमें शिलालेख हैं। ये महात्मा उन नौ संतों में से थे, जो सुन्दरदासजी के साथ फतहपुर के भहरे (गुफा) में १२ वर्ष तक तप (योग साधन) में रहे थे। संतदासजी दादूजी के वावन प्रधान शिष्यों में से थे। "थांभापद्धति" में आया है:—"वाराहजारी सन्तदास चांवडे लुभानियो"। और भक्तमाल में आया है:—"झांझूवांझू सन्तदास टीकू श्यामहिवर"॥ जाति के अग्रवाल महाजन चमड़िया गोत के थे। जो यहां वसते थे, और सेवक साधुओं के थे। और सन्तदासजी वड़े सिद्ध योगी थे। सुन्दरदासजी से इनका प्रेम रहता था। प्रागदासजी का शिलालेख इनही की रचना है। उसमें इनका नाम भी है। सन्तदासजी ने वड़ी वाणी रची थी, जो १२ हजार अनुष्टुप छन्द संख्या की वताई जाती है इसी से वे "वाराहजारी" कहाते थे। इन्होंने जीवित समाधि ली थी सं० १६९६ में नवाव अलफ खां के बेटे दौलत खां दूसरे के समय में (जिसका छत्री में शिलालेख है)।—अर्थात् समाधि चढ़ा कर, अन्तावस्था निकट आती देख भूमि में गढ़ा खुदवाकर उसमें विराज गये थे और ऊपर से पाट दिये गये थे। जिसका वड़ा ही मेला हुआ था और नवाव तक देखने को आये थे। ऐसा कहते हैं। इनकी समाधि के चवूतरे को भी अव पुण्यात्मा (?) महाजनों ने भूमि मोल लेकर नष्ट कर दिया। एक समय तो ऐसा था कि वैश्य

लोग सन्तों की सेवा करते थे और उनके लिए स्थानादि निर्माण कराते थे और आज घोर कलिकाल ऐसा आया कि मरे हुओं के स्मारकों तक को नहीं रहने देते। परमेश्वर इन ऐसे कर्म करने वालों का कैसे भला करेगा! इसका पृथक् विवरण हम परिशिष्ट में देंगे। वहां पढने से इन महा-महा (?) जनों की करतूत ज्ञात होगी!

(क) भीपजन सन्तदासजी का शिष्य था। यह फ़तहपुर का महा-ब्राह्मण (तारक वा आचारज) था। परन्तु सत्संगी और गुणी था। साधु संग और भगवद्भक्ति परायण था। अपने भजन और अनन्य भक्ति के प्रताप से भगवान का वहुत प्यारा हो गया था। फतहपुर में लक्ष्मी-नारायणजी का मन्दिर प्रसिद्ध है। यह पहिले छोटा सा ही था। वहां दर्शणों को भीपजन भी गया था। पुजारियों ने इसे हीन ब्राह्मण होने से अन्दर नहीं घुसने दिया। तव भीपजन उदास होकर मन्दिर के पिछोकड़े जाकर वैठ गया और वहां से भगवान की स्तुति करता हुआ ध्यान करने लगा। भक्तवत्सल भगवान ने अपना मुख उधर फेर लिया। सुवह पुजारियों ने देखा तो वड़ा विस्मय और होहल्ला हुआ। अन्त में निश्चय हुआ कि यह करतूत भीपजन की भक्ति की महिमा की है। सव लोग भीपजन से क्षमा मांगने गये और फिर उसको नहीं रोका। कहते हैं कि यह विशाल मूर्त्ति भीपजन की लाई हुई है और पीछे भगवान की महिमा वढ़ने पर संवत् १८०८ में यह विशाल मन्दिर वहां के पंच महाजनों ने मिल कर वड़ी लागत से वनाया था और फतहपुर की नामी इमारतों में से है। इसका फोटो स्व० सेठ रामदयालजी नेवटिया का भेजा हुआ हमें प्राप्त हुआ था। जिसका चित्र यहां मुद्रित हुआ है। इस मन्दिर में शिलालेख लगा है उसमें इसका हाल खुदा हुआ है। भीपजन ने "भीपवावनी" ५३ छप्पय छन्दों में रची है। और यह अपने ढङ्ग पर नीति का एक अमूल्य छोटा-सा काव्य है। इसकी रचना सम्वत् १६८३ में हुई थी। जैसा कि वावनी के छन्द से प्रगट है:—

"सम्वत सोला सह वरप जब हुतो तियासी।
पोप मास पप सेत हेत दिन पूरनमासी॥ (१६८३)
सुभ निपत्र गुन कर्‍यौअपिर जो धर्‍यो ज़ुआरज।
कथ्यौ भीपजन ज्ञान जाति द्विजकुल आचारज॥
सब सन्तन सौं विनती करै औगुन मोहि निवारियौ।
मिलते सूँ मिलता रहहु अनमिल आंक संवारियौ"॥ ५३॥

राघवदासजी की "भक्तमाल" में आया है—"भीप वावनी प्रसिद्धि सुनौ सारे जग होई"। और "सन्तदास गुरु धारिकै राघो हरि में मिलि गये"॥ यह वावनी है तो छोटा-सा ही ग्रन्थ परन्तु अर्थ, बनावट और भाव में बहुत उच्चकोटि का है। कई स्थल टीका, अर्थ और व्याख्या से ही लगते हैं। यह भी दादू सम्प्रदाय के साहित्य भण्डार का एक रत्न ही है।✻

सुन्दरदासजी का भीपजन से फतहपुर में अच्छा समागम रहा था। भीपजन ने इनसे सीखा भी था।

(ख) इनही सन्तदासजी का शिष्य चतुरदास था जिसने भागवत का भापा छन्दों में उत्तम अनुवाद किया था। जिसमें केवल "एकादशस्कन्ध" मिलता है (जो हमारे संग्रह में भी है और छप भी गया है)। शेप सारा ग्रन्थ ब्राह्मणों ने द्वेप से जल निमग्न कर दिया बताया, ऐसा साधु कहते हैं। सांच-झूठ भगवान जानें॥ यह "एकादशस्कन्ध भापा" सं० वि० १६९२ की रचना है। सम्भवतः यह रचना फतहपुर में ही हुई हो। परन्तु निश्चय ज्ञात नहीं है। परन्तु यह चतुरदास अवश्य ही सुन्दरदासजी का समकालीन ही नहीं था अपितु शिष्य और मित्र भी था ऐसा प्रतीत होता है।✻✻

✻"फक्कतवारीख" में भीपजन को सन्तदासजी का गुरुभाई लिखा सो गलत है। भीपजन सन्तदासजी का चेला था।

✻✻ सन्तदासजी का एक शिष्य वालकराम था जो कवि और ज्ञानी था। सन्तदासजी के मरने के पीछे इसने सुन्दरदासजी से विद्या और ज्ञान प्राप्त किया, इस

(८) सुन्दरदासजी और वषनाजी।

वपनाजी दादूदयालजी के प्रधान शिष्यों में से थे। कहा जाता है कि ये भी उन नौ सन्तों में से थे जो सुन्दरदासजी के साथ फतहपुर में सुन्दरदासजी की गुफ़ा में तप करते थे। वपानाजी का भी सुन्दरदासजी से वहुत प्रेम था। वपनाजी सुन्दरदासजी से वहुत पहिले शिष्य हो गये थे। दादूजी जब पहिले नरायणे गये थे तब ये शिष्य हुये थे। जाति के मीरासी थे। गाने के वड़े उस्ताद और आवाज-वहादुर थे। इनकी वाणी वहुत सरस है। सापी जैसे सारभरी हैं वैसे ही पद भी विरह भरे हैं। इनकी रचना राजस्थानी या ढूंढाहड़ी भाषा में प्रायः है। इनकी वाणी का इतना महत्व रहा है कि महात्मा रज्जवजी ने भी सर्वङ्गी में इनकी सापी और पदों को लिया है और अन्य सन्तों ने भी इनके वचनों को प्रमाणवत् दिया है। सुन्दरदासजी भी इनके वचनों को प्रमाण में लेते थे।

वपनाजी के साथ सुन्दरदासजी वड़े प्रेममग्न होकर पद गाया करते थे और अपने वनाये पदों को भी सुनाते जिनकी रागों की यथार्थता में वपनाजी सम्मति देते। सुन्दरदासजी भी गायन में वड़े प्रवीण थे। फिर क्या था दोनों की अच्छी जुट जाती थी। जनगोपालजी की "जन्मलीला" में आया है:—

"तोसी नैं स्वांमी व्है आये। द्वारै सेवग तिन सुष पाये।
अरु जब वीते समये दोइ। ढुंढाहर की विनती होइ॥ २१॥
स्वामी गये सवनि सुप पाये। रमते नग्र नराणैं आये।
वपनौं होरी गावत देप्यौ। गुरु दादू अपनौं करि पेप्यौ॥ २२॥
कृपा करी तब ऐसी स्वांमी। वचन वोलिया अंतरजामी।
"ऐसी देह रची रे भाई। रांम निरंजन गावौ आई॥ २३॥

कारण सुन्दरदासजी को भी गुरु मानता था। इसकी रचनाएँ वहुत हैं भक्तमाल में वर्णन है। स्वामी ख्यालीरामजी ने भी ऐसा ही प्रगट किया था।

अैसा वचन सुन्या है जब ही। वपनौं दृष्या लीन्हीं तवही ॥ २४ ॥

इस प्रकार वपनाजी दादूदयालजी के शिष्य हुए थे। और राघवदासजी की "भक्तमाल" में ६२ महन्तों में इनका नाम यों आया है:—

"चत्रदास द्वै चरण प्राग द्वै चैंन प्रह्लादा।
वपनो जग्गौ लाल मापू टीला अरु चान्दा" ॥३६२॥ तथा:—
"गुर भक्ता जनदास सील सुठ सुमरन सारौ।
विरहै लपेटे सवद लगत तिन करत सुमारौ ॥
हरिरस मद पिय मत्त रैंनि दिन रहै घुमारी।
परचै वांणी विसद सुनत प्रभु वहुत पियारी ॥
माया ममता मांन मद रावौ मन तन मारि छड़।
दादू दीन दयाल कै है वपनौं वानैत वड़" ॥ ४१२ ॥ इत्यादि।

गाने में "गन्धर्व ज्यूं गावै" "ढरि नैंन नीर आवै"—यहाँ तक ऊँचे दर्जे के थे। और बादशाह को भी परचा दिया था।—(छन्द ४१३, ४१४)। इससे जान लेना चाहिए कि सुन्दरदासजी के कैसे-कैसे मित्र और सत्संगी सन्तजन थे।

(६) सुन्दरदासजी और राघोदासजी।

"भक्तमाल" के प्रसिद्ध रचयिता राघोदासजी भी सुन्दरदासजी के समकालीन थे। राघोदासजी प्रल्हाददासजी के चेले और बड़े सुन्दरदासजी के पोता चेले थे। अपने गुरु की आज्ञा से "भक्तमाल" बनाई जो सम्वत् १७७० में पूर्ण हुई। यथा:—

"संवत सत्रहसै सत्रहोतरा, सुकल पक्ष सनिवार।
तिथि त्रितिया आषाढ की, राघौ कियौ विचार ॥ १६ ॥

ये जाति के क्षत्रिय थे—"पीपावंसी चांगलगोत" के पहिले वैष्णव थे, फिर ये दादू सम्प्रदाय में हो गये। ये दीर्घायु होकर मरे थे। यद्यपि सुन्दरदासजी १७४६ ही में पारगामी हो चुके थे। परन्तु सुन्दरदासजी

को इन्होंने भली-भांति देखा था और उनके ग्रन्थों और सत्संग से लाभ उठाया था। तब ही आँखों देखी बातैं लिखी हैं और कहा है कि:—

"संकाचारज दूसरो दादू के सुन्दर भयौ।" इत्यादि।

और सुन्दरदासजी के कुल और जन्म आदि की तवही बातैं कही हैं। "भक्तमाल" में सुन्दरदासजी के शिष्यों तक का वर्णन किया है। सुन्दरदासजी का परमपद इनकी जीवनावस्था में ही हुआ, तब राघोदासजी जवान ही थे। सुन्दरदासजी के एक शिष्य मारवाड़ में भी रहते थे उनका भी कथन किया है--"थली थावरै निध्धि है"। सुन्दरदासजी के वर्णन में राघोदासजी ने जितना कहा है वह समग्र आगे चल कर लिखैंगे। यहाँ केवल समकालीनता दिखा दी है।

(१०) सुन्दरदासजी और जनगोपालजी।

"दादूजन्मलीला परची" आदि ग्रन्थों से जनगोपालजी का भी सुन्दरदासजी के साथ समकालीन होना प्रतीत होता है। दादूजी के शिष्यों में जनगोपालजी भी बड़े भारी ग्रन्थकार और महात्मा हो गये हैं। इनके ग्रन्थ और पद और छन्द बहुत प्रसिद्ध हैं। जाति के वैश्य, फतहपुरसीकरी के रहनेवाले थे, और वहीं शिष्य हुए थे। इनके रचे इतने ग्रन्थ हमारे संग्रह में हैं:—(१) दादूजन्मलीला परची। (२) ध्रुवचरित्र। (३) प्रल्हादचरित्र। (४) भरत चरित्र। (५) मोहविवेक। (६) चौबीस गुरों की लीला। (७) शुकसम्वाद। (८) अनन्तलीला। (९) बारहमासिया। (१०) भेट के सवैये कवित्त। (११) जखड़ी—कायाप्राणसम्वाद। (१२) साखी पद (वाणी)। इत्यादि। इनके पद बड़े ही जोरदार हैं। रज्जबजी ने भी अपनी "सर्वङ्गी" में पद इनके को प्रमाणों में दिया है। अन्य संग्रहों में भी इनके पद मिलते हैं। राघवदासजी ने "भक्तमाल" में अच्छा वर्णन किया है। इन ग्रन्थों में से नाम भी वहाँ दिये हैं।

(११) सुन्दरदासजी और वाजीदजी

दादूजी के अन्यतम शिष्यों में वाजीदजी भी एक बहुत नामी सन्त हुए हैं। इनकी अरिलें बहुत विख्यात हैं। उनमें "हां वाजीदा" ऐसा आभोग रहता है। राघवदासजी ने "भक्तमाल" में ऐसा लिखा है:—

"छांडिकैं पठांणकुल राम नांम कीनों पाठ,
भजन प्रताप सौं वाजीद वाजी जीत्यौ है।
हिरणी हतत उर डर भयौ भयकरि,
सीलभाव उपज्यौ दुसीलभाव वीत्यौ है॥
तोरे हैं कुवाण तीर चाणक दियौ सरीर,
दादूजी दयाल गुर अन्तर उदीत्यौ है।
राघो रत रातदिन देह दिल मालिक सूँ,
पालिक सूं पेल्यौ जैसे पेलण की रीत्यौ है" ॥ ४२८ ॥

शिकार खेलते में गर्भिणी हरिणी को मार डाला था, उसके बच्चे को पाकर दया बहुत उपजी, और हिंसात्मक निज दुष्कृत पर ग्लानी उपज कर वैराग्य हो गया। फिर दादूजी के सत्संग से शिष्य होकर वह नाम पाया कि जो प्रधान शिष्यों और थांभाधारियों में से कई एक ने भी कम ही पाया। इनके अनेक ग्रन्थ हमारे संग्रह में हैं। "विनोद" में जो वाजीदजी का नाम वाजीन्द्र लिखा है वे वाजीदजी के ही बिगड़े नामों को जैसे मिले वैसे लिख मारे हैं। सन्तों का अन्वेषण अभी बहुत कुछ होना है। अभी हिन्दी-भाषा के कई अङ्ग अपुष्ट, अपूर्ण और अधूरे हैं। अभी हिन्दी के वीरबाहु लेखकों और कार्यकर्त्ताओं को इस दिखावटी भड़क से मोहित होकर अभिमत्त न होना चाहिए कि "हिन्दी बहुत उन्नत हो गई है"। वाजीदजी के हस्त लिखित ग्रन्थ इतने हमारे संग्रह में हैं:— (१) अरिलें। (२) गुणकठियारानामा। (३) गुण उत्पत्तिनामा। (४) गुण श्रीमुखनामा। (विनोद में भी नाम दिया है)। (५) गुण-

घरियानामा। (६) गुण हरिजननामा। (७) गुण नांवमाला। (८) गुण गञ्जनामा। (९) गुण निरमोहीनामा। (१०) गुणप्रेमकहानी। (११) गुण विरह का अङ्ग। (१२) गुण नीसानी। (१३) गुण छन्द। (१४) गुणहित-उपदेश-ग्रन्थ। (१५) पद। और इनकी वाणी और पद भी हैं जो हमको सब प्राप्त नहीं। "राजकीर्त्तन" (जिसका नाम विनोद में दिया है) स्वर्गीय मुन्शी देवीप्रसादजी के पुस्तकों की मुद्रित सूची में सं० २४२ पर है। यदि हिन्दी रसिक वा "राजस्थान रिसर्च सुसाइटी" आदिक ढूंढेंगे तो अन्य ग्रन्थ और जीवन-चरित्र भी मिल सकेंगे। वाजीदजी की रचनाओं को सुन्दरदासजी ने अवश्य ही देखा था। तब ही उनकी कविता की झलक कहीं-कहीं पड़ी हुई प्रतीत होती है। कुछ हो, थे ये दोनों समकालीन तथा मित्र और सहवर्गी जन।

(१२) सुन्दरदासजी और गरीबदासजी।

ऊपर गरीबदासजी के साथ सुन्दरदासजी का जो वरताव रहा सो थोड़ा लिख आये हैं और "क्या दुनिया असतूत करैगी···" छन्द इनही को सभा में सुनाया था। गरीबदासजी दादूजी के पाटवी (बड़े) पुत्र और प्रधान शिष्य थे। ये पण्डित और अच्छे गायक थे। वीणकारी में अद्वितीय और आवाज़ बहादुर थे। जहांगीर बादशाह ने भी इनके गाने की करामात देखी थी, ऐसा प्रसिद्ध है। और नरायणे में "गरीबसागर" कूप बादशाह के हुक्म से इनके लिए बनाया था और कुछ मकान भी। जैसे रज्जबजी आदिकों ने गरीबदासजी की महिमा गाई है वैसे सुन्दरदासजी ने कहीं भी इनका नाम तक नहीं लिया है। गरीबदासजी अच्छे महात्मा और सुकवि थे। इनकी वाणी और कई ग्रन्थ हैं। हमारे संग्रह में भी हैं, यथाः - साषी, पद, चौबोला, अनभै प्रबोध, अध्यातम बोधिनी इत्यादिक। ये सुन्दरदासजी के समकालीन थे परन्तु इनसे सुन्दरदासजी की पटी नहीं थी। इसही से अपने ग्रन्थों में कहीं जिक्र भी नहीं किया है। "भक्तमाल" में गरीबदासजी

का बहुत अच्छा वर्णन है जो देखने ही योग्य है। रज्जबजी आदि बहुत गुरुभाइयों और सन्तों ने इनकी प्रशंसाएं लिखी हैं। परन्तु सुन्दरदासजी ने कुछ भी नहीं लिखा।

(१३) सुन्दरदासजी और हरिदासजी निरञ्जनी।

हरिदासजी निरञ्जनी भी सुन्दरदासजी के समकालीन थे। यद्यपि निरञ्जनी तो इस बात को नहीं मानते हैं, परन्तु दादू सम्प्रदाय में यह बात प्रसिद्ध है कि ये हरिदासजी प्रथम प्रागदासजी के शिष्य हुए, फिर दादूजी के। फिर कबीर और गोरखपन्थ में हो गये। फिर अपना निराला पन्थ चला दिया। ये बड़े प्रसिद्ध पराक्रमी महात्मा हुए हैं। इनकी वाणी और ग्रन्थ बहुत हैं। राघवदासजी ने "भक्तमाल" में (छप्पय ४२६) में निरंजनियों के नाम गिणाये उनमें हरिदासजी का भी नाम है और—"रापहि भाव कबीर कौ यम येते महन्त निरञ्जनी"। कह कर हरिदासजी को निरञ्जनी ही बताया है। और आगे टीका में—"नृगुण उपासि के निरञ्जनी कहायौ" मनहर छन्द ४३६ में भी निरञ्जनी ही कहा है। इससे राघव-दासजी के समय में भी हरिदासजी निरञ्जनी प्रसिद्ध थे। इनके कई थांभे मारवाड़ में हैं। इनके कई ग्रन्थ मुद्रित भी हो गये बताते हैं और कई अमुद्रित भी हैं। हमारे संग्रह में भी कई एक ग्रन्थ हैं यथा:— भक्तविरदावली, भरथरी सम्वाद, साषी, पद, नाममाला ग्रन्थ, नामनिरूपण ग्रन्थ, ब्याहलो जोग ग्रन्थ, टोडरमलजोग ग्रन्थ--इत्यादि। वचन इनका बहुत ज़ोरदार है और ज्ञान की गहराई भरा है।

(१४) सुन्दरदासजी और जगन्नाथदासजी।

दादूजी के शिष्यों में जगन्नाथदासजी भी प्रसिद्ध हुए। ये जाति के कायस्थ थे और आंबेर में दादूजी के शिष्य हुए। दादूजी की इन पर भी बहुत कृपा थी। यहां तक कि इनको अपनी छड़ी गुदड़ी आदि चिह्न प्रदान किये और ये आंबेर में दादूजी के स्थान में ही रहे और वहीं इनका थांभा

रहा। ये अच्छे कवि थे। इनकी "वाणी" और "गुणगञ्जनामा" ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। वावन महन्तों में इनका नाम "भक्तमाल" में है--"जगजीवन जगन्नाथ"। और—"गुणगञ्जनामो" कीयौ कविता सर्व की तामधि। गीता वसिष्ट्सार ग्रन्थ वहु अवर साथ सिधि। चित्रगुपत कुल में प्रगट···"। (१४१७) और "दादूजी कौं मिले हैं कायस्थ कुल निकसि कैं, जगमग ज्योति जगन्नाथ दंपी गुर की" (४१८)।—इनसे "गीतासार" और "योगवाशिष्ट्सार" ये दो ग्रन्थ इनके और भी होना प्रतीत होता है। इनसे भी सुन्दरदासजी की घुटती थी और परस्पर में प्रेम था।

(१५) सुन्दरदासजी और माधवदासजी।

दादूजी के प्रधान ५२ शिष्यों में माधवदासजी गूलर (मारवाड़) वाले भी थे। ये सुन्दरदासजी के समकालीन थे। "भक्तमाल" में इनका नाम आया है—"माधव सुदास नागर निज़ाम जन राघो वर्णि कहन्त"। इनका थांभा मारवाड़ के गूलर में है। थांभा पद्धति में—"गूलर में माधोदास" ऐसा आया है। इनकी वनाई दादूजन्मलीला है जिसका नाम इन्होंने—"सन्तगुणसागर सिद्धान्त" रक्खा। इस ग्रन्थ में २४ तरंगें हैं। दादूजी का चरित्र अनेक छन्दों में वर्णन किया है। ग्रन्थ सं० १६६१ का रचित होना ग्रन्थ से ही पाया जाता है। परन्तु अध्ययन अच्छे प्रकार करने से कुछ पीछे का निर्मित प्रतीत होता है। फिर भी काम की चीज़ है। यद्यपि जनगोपालजी की "दादू जन्मलीला परची" के समान सरलत सीधा यह ग्रन्थ नहीं है। परन्तु सुन्दरदासजी के विपय में कई विशेप वातें लिखी हैं जिनको हम ऊपर दे चुके हैं। किस कारण इसका प्रचार नहीं हुआ ? था यह वात संदिग्ध है। कवि वासुदेव भट्ट ने "दादूचरित्र चन्द्रिका" में इससे वहुत काम लिया है।

(१६) सुन्दरदासजी और प्रह्लाददासजी

प्रह्लाददासजी वड़े सुन्दरदासजी के शिष्य थे। ये सुन्दरदासजी के

राजपुरोहित थे और उनके साथ ही युद्ध में से दादूजी की शरण में आ गये थे। बड़े सुन्दरदासजी तो उतराध में रम गये और प्रह्लाददासजी ने घाटड़े और छींण आदि स्थानों में निवास करके हरिभजन किया। इनके कई शिष्य थे। उनमें म० मानसिंहजी के भ्राता हापाजी, प्रसिद्ध हरिदासजी, हुए जिनसे दादूपन्थी नागों की "जमात" चली थी और अत्यन्त विख्यात हुई। प्रह्लाददासजी की "वाणी" (साषी और पद) भी है, जिसको जमात-वाले पढ़ते हैं। हमारे चरित्रनायक सुन्दरदासजी दूसर का प्रह्लाददासजी से भी प्रेम था। उस ही का प्रताप और प्रभाव है कि नागे लोग सुन्दर-दासजी के अष्टकादि ग्रन्थों को बड़े प्रेम से पढ़ते और गाते हैं। रा० दा० "भक्तमाल" और मंगलरामजी के "सुन्दरोदय" में इनका विस्तृत वर्णन है।

(१७) सुन्दरदासजी और तुलसीदासजी

महाकवि गोस्वामी श्री तुलसीदासजी का समय वि० सं० १५८९ से १६८० तक का है और इसमें उनका कविताकाल १६२०—१६७० का अनुमान से है। स्वामी सुन्दरदासजी वि० सं० १६५३ में जन्मे और १७४६ में ब्रह्मलीन हुए थे। और उनका कविताकाल १६६३ से १७४३ वा १७४६ तक का है। सुन्दरदासजी काशी में संवत् १६६३ से १६८२ तक रहे ऐसा माना जाता है। इस २० वर्ष के अवसर में उनको गोस्वामीजी के दर्शन और सत्संग का यदा कदा सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा। इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि गोस्वामीजी काशी में बहुत रहे हैं और रामायणादि की रचना अधिकतर यहीं हुई है। सुन्दरदासजी काशी से जब १६८२ में लौटे तो कहना होगा कि वे गोस्वामीजी के परमपद के २-२॥ वर्ष पीछे वहां से आये। अर्थात् उनकी अन्तावस्था तक वे काशी ही में थे। इस समय सुन्दरदासजी कोई २६-२७ वर्ष के युवक-तपस्वी विद्यार्थी थे। कविता के इतने बड़े प्रेमी और ज्ञाता नवशिक्षित साधु ने एक इतने बड़े प्रसिद्ध महात्मा और कवि तुलसीदासजी से लाभ अवश्य उठाया होगा।

चाहे उनके मतों के सिद्धान्त आपस में नहीं भी मिलते हों और चाहे अद्वैतवाद वैष्णवभक्ति से पूरा मेल नहीं भी खाता हो। क्योंकि सुन्दरदासजी की "ब्रह्मसम्प्रदाय" (दादूमत) ज्ञान और भक्ति का बहुत उत्तम मिश्रण है और भक्ति का विरोधी नहीं है। सुन्दर-दासजी की वाणी में सरसता, माधुर्य सरलता यह बताये देती है कि उन्होंने तुलसीदासजी के इन गुणों को हृदयङ्गम किया था। यद्यपि सुन्दर-दासजी की काव्य-प्रणाली कुछ निराली ढङ्ग की अवश्य है। परन्तु काव्य-गौरव उनका यही साक्षी देता है कि महाकवि की मनोरम उक्तियाँ उनकी दृष्टि में वा करण में अवश्य पहुँची थीं। हम सुन्दरदासजी के ग्रन्थों से ऐसे छन्दों वा पदों को उद्धृत करके बता सकते हैं कि तुलसीदासजी के वचनों से उनमें साम्य है। परन्तु स्थानाभाव से यह काम हम सहृदय काव्य-प्रेमी पाठकों पर छोड़ देते हैं। और इस बात का दृढ़ विश्वास रखते हैं कि स्वामी ने गोस्वामी की काव्योत्कृष्टता से आनन्द लाभ किया होगा। उनकी नजर उस महामहिम कवि सम्राट् की अनोखी उक्तियों पर गये बिना नहीं रही होगी। जिनकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से क्या छोटे क्या बड़े सबही कवियों ने भरसक की है। उन प्रशंसाओं का संग्रह तो हम किसी अन्य लेख (वा पुस्तक निर्माण) के लिए छोड़ते हैं। परन्तु यहाँ दो-चार उत्तम उक्तियाँ दे देते हैं:—

'सरि जात संचित, असंचित बिसरि जात,
करिजात भोग भवबन्धन कतरिजात।
तरि जात काम करि बरि जात कोप करि'
कर्म कीलकाल तीन कण्टक भभरि जात॥
भरि जात भागभाल किंकर गुविन्द त्यौं ही,
ज्यौं ही तुलसी की कविताई पै नजरि जात।
जरि जात दम्भ दोष दुःख हू दररि जात,
दुरि जात दारिद दुकाल हू निसरि जात" ॥ १ ॥

कितने कमाल का कविता-स्तवन है जिसमें सिंहावलोकन भरे पड़े हैं। और एक भक्त कवि ने कहा है:—(छन्द)

"भाई अनन्य मनहिं सुकीरति विमल रघुवर राय की।
अति विचित्र चरित्र बानी प्रगट कीनी भाय की॥
कुटिल कलि के जीव तिनपै अति अनुग्रह तुम कस्यो।
त्रिविध ताप सन्ताप तन को दया करि सबको हस्यो॥ १॥
"जै जै श्री तुलसी तरु जंगम राजई।
आनन्द वन के माँहि प्रगट छवि छाजई॥
कविता मञ्जरि सुन्दर साजै।
राम भ्रमर रमि रह्यो तिहिकाजै॥ २॥
"रमि रहे रघुनाथ अलि व्है सरस सोंधो पाइकै।
अति ही अमित महिमा तिहारी कहौं कैसे गाइकै॥
तुलसी सु वृन्दा सखी को निज नाम तें वृन्दा सखी।
दास तुलसी नाम की यह रहसि में मन में लखी॥ ३॥

("अनन्य" कवि। हरिपद संग्रह। "व्रजनिधि ग्रन्थावली" से)

ऐसे महामहिम महाकवि भगवत्किंकर के रचनाचातुर्य का सुचतुर सुन्दरदासजी ने अवश्य ही आस्वादन लिया ही होगा।

जिस कविरूपी चलते-फिरते कल्पवृक्ष की स्वर्गीय सौरभ मकरन्द पर श्री रामजी स्वयम् ही भ्रमर होकर मोहित हो गये हैं, उसके सुरस सौंदर्य को माधुर्यावतार कविता मर्म-रसिक ब्रह्मानन्द-लोलुप स्वामी सुन्दरदासजी ने न पाया हो, इसको मानने को हम सन्नद्ध नहीं होते। अपितु अवश्य ही प्राप्त किया होगा यही बात हमारे मन में बड़े वेग से प्रवेश करती है। सुन्दरदासजी असीघाट पर ही रहा करते थे। "दादूमठ" का वर्णन अन्यत्र लिखा ही है। और गो० तुलसीदासजी बहुत वर्षों असीघाट पर विराजे और अन्तावस्था वहीं बीती। उस समय सुन्दरजी युवक तपस्वी थे और गुसांईजी बहुत वृद्ध थे। अर्थात् सम्वत् वि० १६८० में वहीं

शरीरान्त हुआ, तो सुन्दरदासजी उस समय वही होंगे और इस मृत्यु घटना को देखा और साथ होंगे क्योंकि वे काशी से १६८२ में फतहपुर आये थे। ऐसा गोस्वामीजी के और सुन्दरदासजी के जीवन-चरित्रों से समय-साम्य प्रगट होता है।

(१८) सुन्दरदासजी और केशवदासजी

महाकवि केशवदासजी की "रसिक प्रिया" पर जो बड़े बलभरा समालोचनात्मक आक्षेप, शृङ्गाररस और नारी निन्दा के प्रकरण से सुन्दरदासजी ने किया उसको पूर्व में हम कह आये हैं। केशवदासजी का समय वि० सं० १६०८ से १६७४ तक का है*। और सुन्दरदासजी का १६५३ से १७४६ तक का। इससे प्रगट है कि केशवदासजी के शरीरान्त के समय स्वामीजी २१ वर्ष के करीब थे। संभवतः केशव के उन्होंने दर्शण किये होंगे। केशवदासजी की "रसिकप्रिया" के विषय, शृङ्गाररस, के खंडन करने से हम ऐसा विचार करते हैं कि महाकवि के अन्य ग्रन्थ (रामचन्द्रिका, विज्ञानगीता और कविप्रिया) भी स्वामी के अवलोकन में अवश्य आये होंगे। केशवदासजी और तुलसीदासजी समकालीन थे और केशवजी ने गोस्वामीजी से मोक्षार्थ ज्ञान पाया था‡। तुलसीदासजी को हम स्वामी सु० दा० जी का समकालीन ऊपर कह चुके हैं और समसामयिकता का प्रमाण दिया जा चुका है। अतः केशवदासजी भी सुन्दरदासजी के समकालीन ही थे।

(१९) सुन्दरदासजी और सुन्दर कविराय

सुन्दरलाल ब्राह्मण ग्वालियर के थे। शाहजहां बादशाह ने इनको

---

* केशवदासजी के ये संवत "हिन्दी नवरत्न" के अनुसार दिये हैं, यद्यपि वहां भी अटकल ही से समय दिया है। "मिश्रबन्धु विनोद" में जन्म सं० १६१२ दिया है।

‡ "हिदी नवरत्न" पृ० २७४ (प्रथम संस्करण)।

"कविराय" और फिर "महाकविराय" की पदवी दी थी। ये शृङ्गारी कवि "सुन्दरशृङ्गार" नायिका भेद ग्रन्थ के रचयिता थे, जो संस्कृत "शृङ्गारमंजरी" के अनुसार बना था। इनका कुछ उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इनका जन्म मरण काल कहीं से ज्ञात नहीं होता। परन्तु इनका उपरोक्त ग्रन्थ सं० १६८८ में बना था+। उस समय ये जवान होंगे। और ६० वर्ष और जीये हों तो १७४८ या पहिले मरे होंगे। सुन्दरदासजी ने इनके शृङ्गारी ग्रन्थ पर बड़े जोर का कटाक्ष किया है। संभवतः जब सुन्दरदासजी आगरे गये तो इनसे भी मिले होंगे, जैसे "बनारसीदासजी" से सत्संग किया। अतः ये भी स्वामीजी के समकालीन कवि थे।

(२०) सुन्दरदासजी और बनारसीदासजी।

प्रसिद्ध जैन कवि महात्मा "बनारसीदासजी" के साथ सुन्दरदासजी की जो मैत्री थी उसका थोड़ा-सा हाल ऊपर दे चुके हैं। सुन्दरदासजी देशाटन में जब आगरे गये तब ही बनारसीदासजी आदिकों के साथ संसर्ग हुआ था। बनारसीदासजी सुन्दरदासजी की योग्यता, कविता और यौगिक चमत्कारों से मुग्ध हो गये थे। तब ही उतनी श्लाघा मुक्तकण्ठ से उन्होंने की थी। परन्तु वैसे ही त्यागी और मेधावी बनारसीदासजी भी तो थे। उनके गुणों से सुन्दरदासजी प्रभावित हो गये तब ही वैसी अच्छी प्रशंसा उन्होंने भी की थी। परस्पर दो हिन्दी-भाषा के सुयोग्य कवियों और त्यागियों का यह प्रेम, सत्संग, स्तवन और सद्भाव मन पर कितना गहरा प्रभाव डालनेवाला है। इसको, साधु सत्संगति के स्वाद को जाननेवाले पुरुष सहज ही अवगत कर सकते हैं। अपने समय के बनारसीदासजी भी अद्वितीय कवि और ज्ञानी थे। जन्म इनका सम्वत् १६४३ में हुआ। ज्ञान-प्राप्त होने पर कई ग्रन्थ बनाये। उनमें "नाटक समयसार" १६९३ में आगरे में बना। यह कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थ का भाषान्तर है और हिन्दी जैन

+ "विनोद" पृ० ४५४-५५।

काव्यों में अति विख्यात है। इस ही में "कीच सो कनक जाके···" छन्द है जो सुन्दरदासजी को भेजा था। और सुन्दरदासजी ने उसके उत्तर में दो छंद भेजे—"धूल जैसो धन जाके···" और "कामहीन क्रोध जाके···" (साधु का अंग १५-१६) तथा "प्रीति सी न पाती कोऊ···" (सांख्य ज्ञान का अंग। २२) भी। कोई कहते हैं पहिले सुन्दरदासजी ने पिछला छन्द (प्रीति सी न पाती···) भेजा था। कुछ हो इनका आपस में प्रेम था। और दोनों के काव्य रचना में शब्द, वाक्य और विचारों का साम्य स्पष्ट है। ये दोनों महात्मा आगरे में कब मिले इसका पता नहीं है। हमको महन्त गंगारामजी से तथा झूंझणू के श्रीमाल सेठ अमोलकचन्दजी से यह कथा ज्ञात हुई थी। और अमोलकचंद की कृपा से ही "नाटक समयसार" और "सिंदूरप्रकार" संस्कृत का सोमप्रभाचार्य कृत तथा उसका अनुवाद बनारसीदासजी का किया हुआ "सूक्ति मुक्तावली" मिले थे। यह अनुवाद सं० १६९१ का है। और "ज्ञानबावनी" (वर्णमाला क्रम से) १६८६ ही में बना ली थी। ये ग्रन्थ और अन्य ग्रन्थ "बनारसी विलास" नामक संग्रह ग्रन्थ में सम्मिलित हैं जो हिन्दी के प्रख्यात लेखक नाथूरामजी प्रेमी के परिश्रम और उद्योग से "निर्णयसागर प्रेस" में सन् १९०५ में छपा है*। उसमें "नाममाला" और "अर्ध कथानक" भी (जिसमें कवि का चरित्र है) हैं। जीवन-चरित्र में—जो इस ग्रन्थ (बनारसी विलास) की भूमिका में दिया है—सुन्दरदासजी का नामोल्लेख नहीं है। परन्तु इसका उत्तरार्ध, जो सम्पादक को प्राप्त नहीं हुआ, अभी प्रकाशित होना है। सम्भवतः उसमें सुन्दरदासजी का वर्णन हो। क्योंकि यह आख्यायिका निर्मूल नहीं हो सकती है। दोनों ज्ञानी समकालीन थे, यह स्पष्ट है। "नाटक समयसार" में निर्मात और ह्रस्वाक्षर छन्द, सवैया मात्रिक और वार्णिक

---

* जयपुर के जैन विद्वान मुन्शी फूलचन्दजी कासलीवाल से यह ग्रन्थ, और "दौलत विलास" आदि मिले तथा शास्त्री इन्द्रजी से भी तदर्थ कृतज्ञता।

की चाल-ढाल सुन्दरदासजी से मिलती-जुलती-सी* है। अडिल्ल छन्द और "आतमा ही राम है" वाला छन्द ६० यथाः—

"जैसे बनवारी में कुधातु के मिलाप हेम,
नाना भांति भयो पै तथापि एक नाम है।
कसि कैं कसौटी लीक निरखै सराफ ताहि,
वान के प्रमान करि लेतु देतु दाम है॥
तैसैं ही अनादि पुद्गल सों संयोगी जीव,
नवतत्व रूप में अरूपी महाधाम है।
दीसैं उनमान सों उद्योतवान ठौर ठौर,
दूसरो न और एक आत्मा ही राम है" ॥ ६० ॥

तथा—"वरनादिक रागादि जड़ रूप हमारो नांहि।
एक ब्रह्म नहिं दूसरो, दीसै अनुभव मांहि" ॥६२॥ इत्यादिक।

तथा—"ऐसो सुविवेक जाके हिरदे प्रगट भयो,
ताको भ्रम गयो ज्यौं तिमिर भग्यो भान सौं"॥ (अ० ३।५ में)

और—"जहां शुभ अशुभ करम को गढास तहां,
मोह के विलास में महा अंधेर कूप है।

\+ \+ \+

पानी की तरंग जैसे पानी में गुड़प है" ॥ (अ० ८।४० में)

पुनः—"यह मन चंग तो कठोत मांहि गंग है"। (अ० ८।४९ में)

उत्तम सवैया—उत्तम पुरुष की दशा ज्यौं किसमिस दाख,
वाहिज अभितर विरागी मृदु अंग है।
मध्यम पुरुष नारियर के सी भांति लिये,
वाहिज कठिन हिय कोमल तरंग है॥

---

* "नवरत्न" सं० काव्य की "नवरत्न नीति छप्पै" वनारसीदासजी का ही अनुवाद है जो "वनारसी विलास" में है।

अधम पुरुष वदरी फल समान जाके,
वाहिर सौं दिसै नरमाई दिल तंग है।
अवम सौं अधम पुरुष पूंगीफल सम,
अन्तरंग वाहिर कठोर सर वंग है ॥ (अ० ८।५५)

अन्य—"आगे कों ढुकत धाय पाछे वछरा चराय,
जैसे दृगहीन नर जेवरी वटतु है" ॥ (अ० ८। ६४ में)

पुनश्च—"जैसे कोई सुभट सुभाय ठग मूरी खाय,
चेरा भयो ठगनी के घेरा में रहतु है।" (अ० ८।५७ में)

१४ रत्न देह में—रमा, संख, विष, धनु, सुरा, वेद धेनु हय हेय।
नति रंभा, गज, कल्पतरु, सुवा, सोम आदेय ॥
(अ० १२।४६)। इत्यादि।

वहुत से परस्पर के समान वाले वाक्य वा छन्द मिलते हैं।

(२१) सुन्दरदासजी और गुरुदासजी।

स्वामी सुन्दरदासजी पञ्जाव में और विशेषतः लाहोर आदिक स्थानों में उत्तर पश्चिम में दो या तीन वेर भ्रमणार्थ गये थे जैसा कि "देशाटन के सवैयों" से और लाहोर के वर्णन से प्रतीत होता है। पञ्जावी-भाषा में कविता का किया जाना भी वहीं के निवास और प्रसंग का फल है। उधर साधु-सन्तों, ज्ञानी-पण्डितों, कविकोविदों के साथ सत्संग अच्छा ही रहा था। हमको विख्यात सिक्ख कवि ज्ञानी "भाई गुरुदासजी" का निर्मित "कवित्त सवैया" नाम का ग्रन्थ मिला, तव उसके कुछ कवित्त सवैये डाक्टर सरदार जसवंतसिंहजी के मुख से सुनने वा पढ़ने से हमारे चित्त पर भारी प्रभाव पड़ा। हमें प्रतीत हुआ कि गुरुदासजी की कविता सुन्दरदासजी की कविता से वहुत कुछ मिलती जुलती सी अपितु कहीं-कहीं वढ़ कर भी है। क्या विचार की उच्चता, क्या विषय और काव्य की सुन्दरता और गहनता, वाणी की मिष्टता और सरलता, वनावट की चतुराई इत्यादि गुरु-

दासजी के वैसे ही उत्तम हैं। गुरुभक्ति, गुरुमहिमा, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, नीति, उपदेश, चेतावनी, शिक्षा, शास्त्रीय विचार आदिक वहुत ही खोल कर अनुभव भरे ढंग डोल के साथ, काव्य रचना के चोजों को मिला कर वर्णन किये हैं। जैसे कि सुन्दरदासजी ने किये हैं। गुरुदासजी के ग्रन्थ में यद्यपि सवैया छन्द तो थोड़े ही हैं, परन्तु कवित्त घनाक्षरी आदिक छन्द अधिक हैं। व्रजभाषा मिश्रित परिष्कृत हिन्दी भाषा में एक पंजावी सिक्ख-विद्वान-कवि की ऐसी वढ़िया कविता पंजाव देश ही की नहीं वरन हिन्दी साहित्य के भण्डार की शोभा और गौरव को वढ़ानेवाली है।

सुन्दरदासजी का सत्संग उक्त "भाई गुरुदासजी" के साथ अवश्य रहा है। परस्पर दोनों ज्ञानी कवियों ने एक दूसरे से लाभ लिया है। गुरुदासजी ने सं० १६८६ के पीछे उक्त ग्रन्थ रचा था और ३९ "वारें" पहिले लिखीं थीं*। ये पञ्जावी-भाषा में हैं। गुरुदासजी का जन्म सं० १६०८ में गांव गोयन्दवाल (जि० अमृतसर) में और वहीं ही सं० १६९६ में देहान्त हुआ। ये महाशय गुरु अमरदासजी के भतीजे थे, और "भल्ला" गोत के खत्री थे। ये वालब्रह्मचारी और संयमी ज्ञानी थे, विवाह नहीं किया था। भारी विद्वान और ज्ञानी कवि होने से, क्या तो सिक्खों के गुरुजनों में और क्या सिक्ख जाति में इनका वहुत ही आदर सम्मान रहा है, और इनकी रचनाओं को वड़े चाव से पढ़ते तथा गाते हैं। इनके उक्त ग्रन्थ "कवित्त सवैया‡" से कुछ सवैया छन्द उदाहरणरूप में हमने "छन्द सवैया"

---

* हमको जयपुर के कवि प्यारेलालजी से ज्ञात हुआ था कि उनके पूर्व पुरुष महाकवि कुलपति मिश्रजी ने "शिवा की वार" और "जयसिंह की वार" आदि वारें लिखी थीं। वार किसी विषय का वर्णन ऐसे छन्दों में करना है जो "नीसानी" "गमा" "झड़" आदि की तरह गाने वा वखान में आ सकें।

‡ यह "कवित्त सवैया" ग्रन्थ गुरुमुखी अक्षरों में छपा हुआ हमको सरदार अजीतसिंहजी नायव वन्दोवस्त की कृपा से मिला। वे इसे नागरी अक्षरों में कराके छपायेंगे।

के परिशिष्ट में दिये हैं, जो बहुत सरस और सुरम्य हैं। और यहाँ कुछेक कवित्त भी देते हैं जिनसे उनकी काव्य-चातुरी और विचार-गरिमा जाने जायगे। और उनकी समता सुन्दरदासजी की रचना-प्रणाली से मिलती प्रतीत होगी।

"जैसे जैसे गंग संग मिलत सलिल मिल,
होई तैसो तैसो गंग जगत में जानिए।
चन्दन सुगन्ध मिलि पवन सुगन्ध संग,
मलमूत्र सूत्र निरगन्ध उनमानिए॥
जैसे जैसे पाक साक विंजन मिलत घृत,
तैसो तैसो स्वाद रस रसना के मानिए।
तैसे ही असाध साध संगत सुभाव गति,
मूली औ तम्बोल रस खाय पहिचनिए" ॥ १७४॥

"तनक हि जामन कै दूध दधि होत जैसे,
तनक हि काँजी परै दूध फाटि जात है।
तनक हि बीज बोइ बिरख विथार होइ,
तनक चिनग परै भसम समात है॥
तनक हि खाइ विष होत है विनासकाल,
तनक अँमृत कै अमर हुइ गात है।
संगति असाध साध गनिका विवाहिता ज्यों,
तनक में उपकार औ विकार घात है" ॥१९०॥

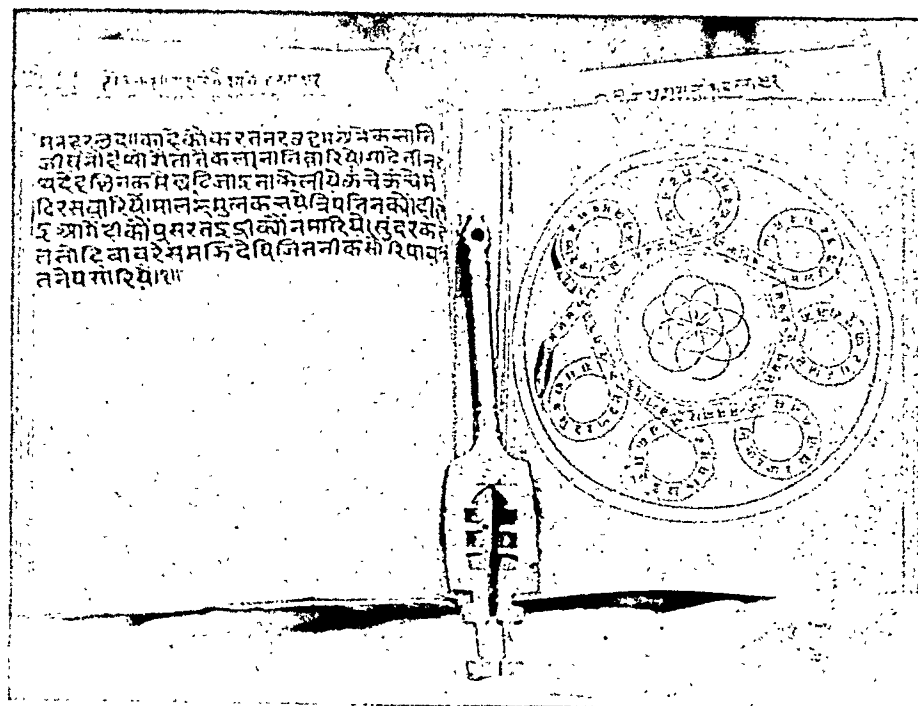
सति विन संजम न पति विन पूजा होइ,
सच विन सोच न जनेऊ जतहीन है।
विन गुर दिष्या ज्ञान विन दरसन ध्यान,
भाव विन भगति न कथनी भँभीन है॥
सान्ति न सन्तोष विन सुख न सहज विन,
सबदि सुरति विन प्रेम न प्रवीन है।

ब्रह्म-विवेक विन हिरदै न एक टेक,
विन साध संगति न रंग लिवलीन है" ॥ २१५ ॥
"पान औ कपूर लोंग चर काग आगे राखै,
विसटा विगन्ध खात अधिक सियान कै।
वार वार स्वान जेऊ गंगा इसनान करै,
टरै न कुटेव देव होत न अज्ञान कै॥
सांप हि पै पांन मिसटांन महा अँमृत कै,
उगलत कालकूट हू मैं अभिमान कै।
तैसे आन सर साध संगत मराल सभा,
आनदेव सेवक तकत वगु ध्यान कै" ॥४६१

नोट—देखिए कितने मिलते-जुलते विचारों की रचना है।

(२२) सुन्दरदासजी और अनाथदासजी।

"विचारमाला" के रचयिता महात्मा "अनाथदासजी" भी सुन्दरस्वाम के समकालीन महात्मा कवि थे। इनकी रची हुई "विचारमाला" प्रसि है। ये महात्मा पण्डित थे कविता भी अच्छी करते थे। यह ग्रन्थ १७२ में रचा गया था। इसमें आठ विश्राम (अध्यायें) हैं। अन्त में—"सत्र सें पछवीस (१७२६), सम्वत् माधव मास शुभ। मोमति जिती हुतीर तेती वरनी प्रगट करि"। ४५। और "गीता भरथर कौ मतौ एकादश व जुक्ति। अष्टावक्र वशिष्ट पुनि कछूक अपनी उक्ति"। ५१२। यह भी वेदान का भाषा-साहित्य में उत्तम ग्रन्थ है। यह छप भी गया है। अनाथदासज का सुन्दरदासजी के साथ अवश्य सत्संग हुआ होगा। दोनों प्रसि महात्मा थे, और अद्वैतज्ञान निष्ठा में पूर्ण भी। विचारमाला के देखने ऐसा भान होता है कि इसके रचयिता पर सुन्दरदासजी के उत्कट ज्ञान व प्रभाव पड़ा था। "विनोद" में इनको दादूपन्थी साधु लिखा है (?)।



स्वामी सुन्दरदासजी तथा उनके सेवक रूपादासजी के हस्ताक्षर

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता।

(२३) सुन्दरदासजी और नवाब अलफ़खां !

नवाब अलफ़खां—उपनाम काव्य में "जान कवि"—इनके बनाये चार ग्रन्थ उपलब्ध हैं—(१) "सतवन्ती सत" (२) "रत्नावती" (३) "मदनविनोद" और (४) "कविवल्लभ"। ये ग्रन्थ सं १६७० से १७०४ पीछे तक के निर्मित हैं। यह समय सुन्दरदासजी के काव्य का भी है। फतहपुर का नवाब इनका भक्त था। उसको वा उसके उत्तराधिकारियों के साथ भी स्वामी का व्यवहार और प्रेम था। यह नवाब बादशाह शाहजहां के समय में हुए और बादशाह के बहुत ही कृपापात्र तथा सम्बन्धी भी थे। इनकी कविता सरल, सरस और मनोहर है। "कविवल्लभ" बड़ा ग्रन्थ है और रीति काव्य है। अफ़सोस तो यही है कि इस सरस कवि की कविता अबतक साहित्य-संसार में नहीं फैल सकी। उक्त चारों ग्रन्थ हमारे संग्रह में विराजते हैं। हम इनका सम्पादन करके इनको प्रकाशित करने की इच्छा रखते हैं।

स्वामीजी के ग्रन्थ

स्थानाभाव और समयाभावसे समकालीन पुरुषोंका अब और अधिक हाल हम लिख नहीं सकते हैं। इसके लिए अकेली किताब चाहिए। परन्तु जो कुछ ऊपर लिखा गया इससे (१) सुन्दरदासजी के जीवन (२) स्वभाव (३) योग्यता (४) मिलनसारी (५) विद्याव्यसन (६) ज्ञान-ध्यान (७) चातुरी आदिक बहुत-सी बातें जानी जाती हैं। इसही से थोड़ा-सा यह भी लिखा गया। "मनुष्य उसके मित्रों से जाना जाता है"। ऐसा जगत् में प्रसिद्ध है। इस इतने से लेख से हमको स्वामीजी की बहुत

सी उत्तम और विशेष बातें ज्ञात हुई हैं। कितने-कितने उच्चकोटि के पण्डित, ज्ञानी, कवि, सज्जन, सिद्ध और महात्माओं से उनका प्रेम था और सत्संग के वे कैसे सच्चे प्रेमी थे।

अब हम थोड़ा विवरण उनकी ग्रन्थ रचना का यहाँ कर देते हैं।

ग्रन्थ रचनाः— उनके काव्य-कलाप और ग्रन्थों का विषय विस्तृतरूप से तो ऊपर भूमिका में आ ही गया। यहाँ अति संक्षेप से तत्सम्बंधी उतनी-सी बात कही जाती है जो जीवन-चरित्र से सम्बन्ध रखती है।

ग्रन्थों के बनाने का चसका, जगजीवणजी के सत्संग, काशी में

रचना के हेतुः— विद्वानों के साथ साहचर्य और अपने गुरु के वाणी और पदों के प्रभाव, तथा देशाटन में अन्य महात्माओं, कवियों और पण्डितों के रचित ग्रन्थों के अवलोकन, श्रवण, मनन तथा प्रोत्साहन आदिकों से, लगा और बढ़ता गया। संसार को सदुपदेश और मित्रों और शिष्यों और श्रोताओं तथा जिज्ञासुओं को शिक्षा, व्याख्यान, प्रवचन और कथा में दृष्टान्तादि के देने, कहने, समझाने आदि की आवश्यकताओं से, तथा प्रसङ्ग, प्रकरण, वाद-विवाद वा शास्त्र-पठन वा श्रवण में उत्तम चमत्कारी पदार्थों के प्राप्त होने पर सुअवसर जान कर, साधारण वा विशेष छन्द वा प्रबन्ध बना दिये। कोई एक ही विशिष्ट कारण काव्य वा ग्रन्थ बनाने का कहा जाय तो केवल परोपकार ही कहा जा सकता है। परन्तु उपरोक्त अन्य कारण भी ग्रन्थों के ध्यानपूर्वक पढ़ने से पाये जाते हैं। यथा "गुरुसम्प्रदाय" की रचना इस आवश्यकता की पूर्त्ति के निमित्त हुई प्रतीत होती है कि किसी ने सम्प्रदाय का प्रश्न किया वा आक्षेप किया जैसे आजकल के समालोचनपरक तर्क प्रधान पुरुष कहते हैं कि दादूजी कबीर सम्प्रदाय में थे, सूफ़ी फ़कीर के शिष्य थे, निरञ्जन सम्प्रदायों में से थे इत्यादि। उसके उत्तर में "सम्प्रदाय परब्रह्म की" इस परम्परा प्राप्त निश्चित बात को सिद्ध करने को इसे बनाना पड़ा। ऐसे ही अष्टकों की

रचना हुई है अपने गुरु की महिमा में उत्तमोत्तम स्तवन, अपनी सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिए परमात्मा के स्तवन, इत्यादि होने के लिए अथवा अन्य गुरुभाइयों के बनाये हुओं से भी चढ़े-चढ़े हों इस अभिलाषा से इनकी रचना हुई है यही ज्ञात होता है। "ग्रन्थों" और "वाणी" (साखी-पद) की रचना का हेतु स्वयम् स्वामीजी ही ने कह दिया है कि "पर उपकार हेत" "रंक जीव जिये हैं" इत्यादि।

ग्रन्थों के नाम एवं क्रम. विभागः—

ग्रन्थों के नामादि और संख्याएँ भूमिका तथा सूचीपत्र में दे ही दिये गये। सब मिला कर ४२ (बियांलीस) ग्रन्थ (छोटे वा बड़े) स्वामी सुन्दरदासजी के रचित हैं, जिनके क्रम और विभाग का वर्णन भूमिका में हो चुका है। इनमें सबसे उत्तम "सवैया" और "ज्ञानसमुद्र" हैं। लघुग्रन्थों में 'सर्वाङ्ग-योग" "पंचेन्द्रियचरित्र" आदिक, तथा "अष्टक" अनेक "पद" अनेक "साषी" वा फुटकर काव्य में कई एक चीजें अमूल्य हैं। चित्रकाव्य भी कई एक गहरी चतुराई और अभिप्राय के हैं। काव्य की अनेक चतुराइयां फुटकर काव्य में हैं। स्वामीजी के छन्द, अलंकार, रस, काव्य-कलाप-चातुर्य पर भूमिका में कह चुके हैं।

निर्माण समयः—

ग्रन्थ-निर्माण का समय सम्वत् १६६४ से १७४२ वा १७४६ (अन्त समय) तक का समझा जायगा। स्वामीजी जैसे बालब्रह्मचारी और बालयोगी थे वैसे ही वे बालकवि भी थे। बाल्यावस्था ही से कविता करने लग गये थे। यों तो अन्तावस्था तक कुछ न कुछ छन्द वा साषी बनते रहे हैं, कि उनकी अन्त समय की कही साषियां प्रसिद्ध ही हैं और यथा-स्थान लिखी गई हैं। कुछ सवैया, कवित्त, कुछ साषियों और कुछ पद भी प्रारम्भिक रचना के प्रतीत होते हैं। अष्टक और छोटे ग्रन्थ समय-समय पर और प्रसंग और मौकों पर बने हैं। शेष अन्य सब छन्द वा ग्रन्थ रचना भी इसी प्रकार प्रसंग और आवश्यकता से बने हैं। सब ग्रन्थों में रचना का सम्वत् नहीं मिलता है, केवल

(१) "पंचेन्द्रियचरित्र" सम्वत् १६६१ में और (२) "ज्ञानसमुद्र" सं० १७१० में बने थे, यह उन ग्रन्थों ही से स्पष्ट ज्ञात होता है। स्वामीजी चाहते तो अन्य लघुग्रन्थों में भी निर्माण-काल दे सकते थे। परन्तु इसकी उनको कुछ भावना ही नहीं थी। सवैया, साषी और पद कुछ एक समय के बने तो हैं ही नहीं जो सम्वत् लिखे जाने के बन्धन की अपेक्षा रख सकते। "ज्ञानसमुद्र" की रचना की बात तथा उसका समय हम ऊपर लिख ही चुके हैं। स्वामीजी की ऐसी चलती कविता जैसी कि "देशाटन के सवैया" वा "क्या दुनिया अस्तूत करैगी···" इत्यादि छन्दों की उनकी मार्मिक, टकसाली और परिष्कृत कविता के समान उत्कृष्ट नहीं है। इससे यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि वे ऐसी कविता करते थे जो साधारण ही प्रतीत होती है। इन कविताओं का उनसे रचित होना भी संदिग्ध ही है। परन्तु स्वयम् उनके थांभे के महन्त और साधुजन ही उनकी बनाई कहैं तो उसके विपक्ष में अधिक कहा जाना उचित नहीं।

विषय एवं भाषाः— ग्रन्थों वा वाणी के विषय उनके अवलोकन, पठन-पाठन, श्रवण मनन से भली-भांति जाने जा सकते हैं। ग्रन्थों का संक्षेप, सार, विषय-निर्णय और समालोचनादि भूमिका में दिये जा चुके हैं। उनकी वा उनके अंश की भी द्विरावृत्ति यहां करना अनावश्यक ही नहीं केवल "पिष्टपेपण" और "पके धान का रांधना" मात्र ही है।

भाषा के सम्बन्ध में भी भूमिका में विवेचन हो गया है। वाणी मिष्ट, सरल, स्पष्ट, मनोमोदकारी, व्रजभाषा-रजवाड़ी-खड़ी बोली मिश्रित है।

ग्रन्थों का प्रचारः— स्वामी सुन्दरदासजी के ग्रन्थों, उनके छन्दों, उनकी भांति-भांति की चमत्कारी रचनाओं का प्रचार तो उनके जीवनकाल में ही होने लग गया था। साधुजन और प्रेमी भक्त, सेवक और शिष्यादि उनके बनाये छन्दों, पदों वा ग्रन्थों की नकल कर लेते थे। और स्वामीजी देशाटन में भी इनको लोगों को सुनाते दिखाते

और नकल करा देते थे। ऊपर रज्जवजी के शिष्य मोहनदासजी के आख्यान से यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है। और कई स्थानों में, कई साधुओं के पास कई ग्रन्थ उसही समय (जीवन समय) के लिखे विद्यमान हैं। यथा महंत श्री गंगादासजी महाराज (उतराधे—गोविन्ददासजी वालों) के यहां उनके "पालक्यांजी" (ग्रन्थमन्दिर) में १७२० और अन्य संवतों के लिखे कई ग्रन्थ विद्यमान हैं। हमारे संग्रह में १७१५ के लिखे कुछ ग्रन्थ सुन्दरदासजी के हैं। और असल पोथी जिसके आधार पर यह सुन्दर-ग्रन्थावली सम्पादित हुई है, जैसा कि भूमिका में लिखा गया है, सं० वि० १७४२ की लिखी हुई है जिसका फोटो लिवाकर चित्र भी इस सम्बन्ध में दिया गया है। राघवदासजी की "भक्तमाल" से स्पष्ट ज्ञात होता है कि सुन्दरदासजी का महात्म्य उनके जीवन काल ही में खूब फैल गया था, ऐसा भली भांति प्रतीत हो रहा है:—

छप्पै

"द्वीतभाव करि दूरि एक अद्वीतहि गायौ।
जगत भगत पट दरस सबनि कैं चौंणिक लायौ॥
अपणों मत मजबूत थप्यौ अरु गुरु पक्ष भारी।
आंन धर्म करि पण्ड अजा घट मैं निरवारी॥
भक्ति ज्ञान हठ सांपि लौं सर्व सास्त्र पारहि गयौ।
संक्राचारय दूसरौ दादू कैं सुन्दर भयौ॥ (४१६)॥

मनहर।

"दादूजी के पन्थ में सुन्दर सुपदाई सन्त
पोजत न आवै अन्त ग्यानी गलतांन है।
चतुर निगम षडपोडस अठार नव
सर्व को विचार सार धास्त्रौ सुनि कांन है॥
सांपि जोग क्रम जोग भगति भजन पन,
प्रप जांनैं सकल अकलि कौ निधांन है।

वैसि कुल जनम विचित्र विग वांणी जाकी,
राघो कहै ग्रन्थन के अर्थन कौ भांन है" ॥ (४२८)

तथा—"दिवसा है नग्र चोपो···" छन्द, और "आयो है नवाव फ़तेपुर में···" छन्द से भी उनके जीवन में उनकी ख्याति का होना स्पष्ट है। ये छन्द ऊपर दे दिये गये हैं। दादूजी की शिष्य परम्परा में, सन्तदासजी के विद्वान शिष्य अथवा सुन्दरदासजी के भी शिष्य बालकरामजी ने सुन्दरदासजी की स्तुति में छप्पय कही है:—

छप्पय

"सतगुर सुन्दरदास जगत में पर उपगारी।
धन्नि धन्नि अवतार धन्नि सब कला तुम्हारी॥
सदा येक रस रहै दुप्प द्वन्दर को नांहीं।
उत्तम गुन सो आहि सकल दीसै तन मांहीं॥
सांपि जोग अरु भक्ति पुनि सवद ब्रह्म संजुक्ति है।
कहि बालकराम ववेकनिधि देपै जीवन मुक्ति है ॥ ४२३ ॥

आगे शिष्य परम्परा में महन्त सन्तोपदासजी के शिष्य चतुरदासजी (चत्रदासजी) ने प्रशंसा में जो छन्द छप्पय आदि कहे हैं सो सब प्रसङ्गवश यहीं दे देते हैं। यह चतुरदासजी राघवदासजी की भक्तमाल पर (मनहर छन्दों वा इन्दव छन्दों में) टीका थोड़ी की है और यह यथा नाम तथा गुण थे। इन्होंने और भी चतुराई की कविताएं और चित्रकाव्य बनाये हैं। और सुन्दरदासजी के प्राप्य दफ़तर की इनही ने रक्षा की थी और कई खोये पत्र वा ग्रन्थ इन्होंने फिर प्राप्त किये थे। वे छन्द ये हैं:—

"जलसुत-प्रीतम जांनि तास सम परम प्रकासा।
अहिरिपु स्वामी मध्य कियौ जिनि निश्चल वासा॥
गिरिजापति ता तिलक तास सम सीतल जांनूं।
हंस भपन निस पिता तेम गंभीर सु मांनूं॥

"उदधि तनय वाहन सुनों ता सम तुल्य वषानिये।
यों सुन्दर सद्‌गुर गुण अकथ तास पार नहिं जांनिये" ॥ ४२४ ॥
बुधि विवेक चातुरी ग्यांन गुर गमि गरवाई।
क्षमा सील सत्यता सुहृद सन्तन सुखदाई ॥
गाहा गीत कवित्त छन्द पिंगल परवांनैं।
सुन्दर सौं सब सुगम काव्य कोई कला न छांनैं ॥
विद्या सुचतुरदस नाद निधि भक्तिवन्त भगवंत रत।
संयम जु सुमर गुणगण अमर राज रिद्धि नवनिद्धि युत" ॥ ४२५ ॥
"देवन में ज्यूं विष्णु कृष्ण अवतारन कहिये।
जंग मांहि शिवपुत्र गंगतीरथ मैं लहिये ॥
रिपिन मांहि नारद हि जपिन कुम्मेर भँडारी।
जती कपी हनुमंत सती हरिचंद विचारी ॥
नागन में श्री सेसजी वांगन सारद मांनियो।
दादूजी के सिषन में (यौं) सुन्दर दूसर जांनियो" ॥ ४२६ ॥
तारन मैं ज्यूं चन्द इन्द देवन मैं सोहै।
नरन मांहि नरपती सती हरिचंद सजो है ॥
भगतन मैं ध्रुवदास तास सम और सुथोरे।
दानिन में वलि वरनि सुरनि सम सिवरन औरे ॥
जगत भगत विख्यात वै "चातुरजन" असैं कही।
सब कवियन सिरताज है दादूसिष सुन्दर मही" ॥ ४२७ ॥

पश्चात् ख्यातिः—

स्वामी सुन्दरदासजी के जीवनकाल में उनके ग्रन्थों का प्रचार जितना हुआ उससे भी बहुत अधिक प्रचार उनके परलोकगामी होने के पीछे हुआ। दादूपंथियों में ही नहीं अन्य सम्प्रदायों और मतों में इनके ग्रन्थ बड़े चाव से लिखे और पढ़े गये। दादू सम्प्रदाय में संग्रह के गुटके वा खुले पत्रों के पुस्तकों में बहुत थोड़े ऐसे होंगे जिनमें सुन्दरदासजी के अनेक वा एक, कोई न कोई ग्रन्थ, न लिखा

हुआ रहा हो। हमने शतशः ऐसे गुटके और ग्रन्थ इस ही दृष्टि से देखे कि इनमें स्वामीजी का भी ग्रन्थ है या नहीं। तो हमको बहुतों में उनके ग्रन्थों में से मिले। किसी में सवैया के कई अंग, किसी में ज्ञानसमुद्र, किसी में अष्टक सारे वा कई, किसी में चितावनियां, किसी में कुछ पद वा साषी वा फुटकर काव्य में से। जिन गुटकों में "पंचवाणी" हैं उनमें (१) कबीर (२) रैदास (३) वा नामदेव (४) हरिदास वा रज्जब और (५) सुन्दरदास की वाणी वा ग्रन्थ अवश्य हैं। जैसे सिक्खों के "ग्रन्थ साहिब" के साथ कबीर, रैदास, मीरांबाई आदि की वाणी और पद लगे मिलते हैं इसही प्रकार "दादू वाणी" (साखी और पद) के साथ (पीछे) ये वाणियां वा ग्रन्थ बहुत से गुटकों वा पुस्तकों में मिलते हैं। स्वामीजी के पद ही नहीं सवैये और अष्टक भी दादू-द्वारों, मंडलियों, समाजों, मेलों और अन्य अवसरों में तथा स्वतन्त्र ही साधुलोग और गवैये गाते हैं। रज्जबजी की "सर्वङ्गी" में जनगोपालजी, बपनाजी आदि के पद, छन्द वा साखियां तो लिखे हैं, परन्तु सुन्दरदासजी के छन्दादि नहीं मिलते हैं, इसका कुछ कारण ज्ञात नहीं हो सका, यद्यपि इन दोनों की परस्पर की बहुत ही प्रीति थी। स्यात् जिस प्रति को हमने देखा उसमें लिखने से रह गई। इसही प्रकार हमें बड़ा आश्चर्य है कि भिवाँणी के विद्वान् साधु हीरादासजी ने निज रचित संस्कृत "दादूरामोदय" में सुन्दरदासजी का वर्णन नहीं दिया। इससे साधु हीरादासजी की पूर्ण असावधानी और स्वविषय की सामग्री की अल्पता तथा अल्पज्ञता ही जानी जाती है। इस ग्रन्थ में और भी व्याकरणादि की अनेक त्रुटियां और दोष हमें दिखाई दिये, परन्तु उनका यहां प्रगट किया जाना अनावश्यक है।

अन्यत्र ख्याति एवं छन्दादि उद्धृतः—

अब यहां इस "ख्याति" के प्रकरण में लगे हाथ कुछ ग्रन्थों के नामोल्लेख करके दिखा देते हैं कि, सुन्दरदासजी के ग्रन्थों, छन्दों आदि को, दादू-सम्प्रदाय से अन्य विद्वानों ने, किस प्रेमभाव और समादर से स्थान दिया और उपयोग में लिया है।

(१) "संगीतरागकल्पद्रुम" परम विख्यात सांगीताचार्य "रागसागर" श्री हरिव्यासदेवजी के रचे वा संकलित और सन् १८४९ की कलकत्ते की छपी पुस्तक में सुन्दरदासजी के अनेक छन्द ही नहीं अपितु समग्र "सवैया" (सुन्दरविलास) ही को अनेक राग रागनियों के साथ लिख दिया है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि सुन्दरदासजी के छन्दादि गाने में बहुत पहिले से आने लग गये थे, कि उनका महत्व जान कर इतने बड़े नामी गायनाचार्य ने भी अपने ग्रन्थ में प्रमाणवत् दिये हैं।

(२) "बृहद्रागरत्नाकर" लाला भक्तरामजी संगृहीत "लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई" के सं० १९६५ के छपे में, पृ० २५६ से २६३ तक, ४१ छन्द "सवैया" ग्रन्थ के, तथा पृ० ५३१ से ५४० तक २४ छन्द और २ पद दिये हैं। गायन के इतने बड़े संग्रह में स्वामीजी के इतने छन्दादि का अवतरण होने से उनके छन्दादि का पूर्ण गायनोपयोगी होना सिद्ध होता है।

(३) "बृहद् भजन रत्नमाला" में भी ८ छन्द और पद दिये हैं। जगदीश्वर छापाखाना बम्बई की छपी।

(४) "गोविन्द लहरी" (भजनादि संग्रह) के दोनों भागों में भी छन्द दिये हैं। काशी "भारतजीवन प्रेस" की छपी है।

(५) "शिवसिंह सरोज" में उदाहरण में दो छन्द दिये हैं। पृ० ३१४ (नवलकिशोर प्रेस का सन १८९९ का छपा)।

(६) "मिश्रबन्धुविनोद" में भी उदाहरण में ३ छन्द और एक साखी दी है। (प्रथम संस्करण पृ० ४१४ पर)।

(७) "भाषाकाव्य संग्रह" पं० महेशदत्त शुक्ल रामनगरवाले का "नवलकिशोर प्रेस" का लिथो का सन ई० १८७९ का छपा है उसके पृ० २४० से २४६ पर १३ छन्द दिये हैं।

(८) "छन्दप्रभाकर" और काव्यप्रभाकर" बा० जगन्नाथप्रसाद "भानु" कवि के रचित तथा संगृहीत अनुपम रीति ग्रन्थों में कई छन्द दिये हैं। (वेंकटेश्वर प्रेस के छपे हुये।)

(९) भक्तमाल पर प्रियादासजी की टीका है उस पर अयोध्या के सुप्रसिद्ध पण्डित कवि महात्मा सीतारामशरण "रामरसरङ्गमणि" जी ने बड़े भाव चाव से "वार्त्तिकप्रकाश" रचा है, उसमें सुन्दरदासजी के अनेक सवैये कवित्त प्रमाण में दिये हैं। इससे स्वामीजी की कितनी महिमा और ख्याति प्रगट होती है सो पाठक स्वयम् समझ सकते हैं।

(१०) "हफ़ीज़ुल्लाखां का हज़ारा" सन् १९०५ का नवलकिशोर प्रेस का छपा है। उसमें ८० से भी अधिक छन्द स्वामी सुन्दरदासजी के "सवैया" (सुन्दरविलास) ग्रन्थ से दिये हैं। कितने लोकप्रिय छन्द स्वामीजी के हैं जो ऐसे उत्तम संग्रहों में विद्वान उद्धृत करते हैं।

(११) "मुद्राकुलीन" ऐतिहासिक उपन्यास पं० किशनलाल द्वारा अनुवादित "प्रबोधरत्नाकर" प्रेस सं० १९४९ के छपे में पृ० १२९ पर दो छन्द आये हैं—(१) "पायो है मनुष्य देह···।" (२) "प्रीति सी न पाती कोऊ···।"

(१२) वल्लभ संग्रह"—पं० हरिवल्लभ जयपुर निवासी सन् १९१३ के छपे में कोई २० छन्द उद्धृत किये हैं। देशान्तरों में स्वामीजी की रचनाओं की ख्याति ऐसे संग्रहादि से प्रगट होती है। यहां तक कि—

(१३) "रामभजनवर्षा" तक क्षुद्र संग्रह में भी १५ से अधिक छन्द दिये हैं। यह पुस्तिका एक सुन्दरलाल फर्रुखाबाद निवासी अग्रवाल वैश्य द्वारा संगृहित है। और मथुरा के "चन्द्रभूषण प्रेस" की सन १९१३ की छपी है। सुन्दरदासजी की वाणी का लोकप्रिय होना इस ही से प्रमाणित है कि ऐसे ऐसे लोग भी उनके कवित्तों को बड़ी पूज्य दृष्टि से देखते हैं और उनके रचे छन्दों को बड़े प्रेम से अपने संग्रहों में लेते हैं।

(१४) "साहित्य-सुषमा"—रामदहिन मिश्र द्वारा संगृहीत सन् १९१८ की छपी में, सुन्दरदासजी के "सवैया" ग्रन्थ के तृष्णा के अंग से ५ छन्द (पृ० ११७ पर) दिये हैं और बड़ी प्रशंसा लिखी है।

(१५) हमने और भी अनेक ग्रन्थों में स्वामी सुन्दरदासजी के छन्द,

पद, साखी आदि को उद्धृत किये देखे हैं। परन्तु स्थानाभाव से उनका उल्लेख हम नहीं कर सकते हैं। यथा (१६) "कविताकौमुदी" प्रथम भाग रामनरेश त्रिपाठी संकलित में भी।

(१७) जयपुर के भक्तवर मथुरेश कवि कृत "प्रेमप्रभाकर" ग्रन्थ में दो चार छन्द सुन्दरदासजी के हैं।

ग्रन्थान्तरों में प्रभावः—

इस प्रकार छन्दादि अवतरण किये जाने से तो स्वामीजी की कीर्त्ति स्पष्ट सिद्ध ही है। परन्तु कई एक विद्वानों की वचन-रचना में स्वामीजी के काव्य की छाया प्रदर्शित होती है। यहाँ कुछेक का उल्लेख किया जाता है। भाई गुरुदासजी का वृत्तान्त ऊपर आ चुका। अतिरिक्तः—

(१) "दौलतविलास"—इसमें दौलतरामजी ने कई जगह—यथा जकड़ी छन्दों में वा अन्यत्र सुन्दरदासजी का अनुकरण किया है।

(२) "भूधर विलास"—इसमें भी कई वचन और विचार स्वामीजी से मिलते हैं।

(३) "अमृतधारा वेदान्त"—साधु भगवानदासजी निरञ्जनी रचित। यह साधु कवि थे और वेदान्त के भी पण्डित थे और मारवाड़ देश में "खेतवाड़" गांव में हुये हैं। सं० वि० १७२८ में इस ग्रन्थ का रचा जाना उसके अन्त में लिखा है—"सत्रहसे अट्ठाइसे सम्वत् संख्या जान।···स्थान मुकाम प्रमान ही क्षेत्रवास शुभ जान"। यह ग्रन्थ हस्तलिखित सम्वत् १८४६ का लिखा हुआ, हमारे संग्रह में है उसमें भी यही छन्द दोहा सम्वत् का दिया हुआ है। और खेमराज श्रीकृष्णदास का छपाया हुआ संवत् १९४५ के में भी यही सम्वत् दिया हुआ है। इससे भगवानदासजी का सुन्दरदासजी का समकालीन होना निश्चित है। यह ग्रन्थ वेदान्त का प्रक्रिया ग्रन्थ छन्दोबद्ध है। इसमें का गुरु-शिष्य सम्वाद सुन्दरदासजी की ज्ञानसमुद्र की-सी शैली का है। भगवानदासजी को अवश्य "ज्ञानसमुद्र" देखने पढ़ने को मिला है। सुन्दरदासजी का अनुकरण झलकता है।

(४) "ऐनानन्द सागर" और "कुण्डलिया"— सिद्ध फ़कीर "ऐन साहिब" रचित। ये ग्वालियर के रहनेवाले थे और जयपुर में श्यामलाल सुन्दरलाल प्रसिद्ध दानवीर युद्धवीर भाइयों के गुरु थे और उनही के पास महल्ला दरीबा में रहे थे। सवाई जयसिंहजी के दूसरे पुत्र माधवसिंहजी और उनके पुत्र पृथ्वीसिंहजी प्रतापसिंहजी के समय में थे। इनकी रचना और विचार भी सुन्दरदासजी के समान ही हैं। बहुत सुन्दर सरस मनोग्राही कविता है।

(५) "रघुवर चित्त विलास"— जयपुर के साधु रघुवरदास का रचा ग्रन्थ सम्वत् १९७४ (सन १९१८) का "बालचन्द्र यन्त्रालय" में छपा हुआ। ये साधु जयपुर ही में रहते थे। पहिले सिपाही थे, रसिक थे। फिर फ़कीरी रंग में लग गये। अच्छे विचार के थे। इनकी रचनाओं में भी कहीं-कहीं सुन्दरदासजी की लटक पाई जाती है।

(६) "अनन्य कवि" ने अपने "अभेद पचासा" वा "एकादशा" में सुन्दरदासजी का अनुकरण किया है।

इस प्रकार और भी अनेक ग्रन्थ देखने में आये, जिनमें सुन्दरदासजी के विचारों और वचनों की छाया स्पष्ट झलकती है। स्थानाभाव व समयाभाव से हम लिखने में असमर्थ हैं।

निदान, स्वामी सुन्दरदासजी की ख्याति, क्या उनके समय में और क्या पीछे से, खूब फैली और उनका अनुकरण बहुतों ने किया और करते हैं।

अन्तावस्था

अब हम इतना सा वर्णन करके उस समय की घटना पर आते हैं जब इस महान् ज्ञानवान विद्वान परोपकारी सत्कवि महात्मा ने अपने नश्वर शरीर को संसार-सागर से पार जाकर त्यागा है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि सुन्दर स्वामी ने अपने समस्त ग्रन्थों को अपने वैश्य शिष्य से फतहपुर में संवत् १७४२ में पूर्ण लिखाये थे। इनके लिखने में वर्ष दो वर्ष का समय अवश्य लगा होगा। इस ग्रन्थ के पूर्ण लिख जाने के पीछे अपने स्थान फतहपुर में स्वामीजी कितने समय तक रहे इसका पता नहीं है। परन्तु उनका परमपद सांगानेर में हुआ था और वह संवत् १७४६ में ही। इससे कहना पड़ता है कि उक्त संवत् १७४२ के पीछे वे किसी समय रामत करते करते रज्जवजी से मिलने को सांगानेर पधारे थे। सांगानेर में स्वामी सुन्दरदासजी के रहने का स्थान तो था ही। उनको रज्जवजी के ब्रह्मपद प्राप्त हो जाने का समाचार संकोचवश इस विचार से लोगों ने कुछ समय तक नहीं कहा कि उनको धक्का पहुंच जायगा। परन्तु यह वात कव छिपी रह सकती थी। अन्ततः वे जान ही गये। इस वियोग के समाचार ने, अपने परम इष्ट मित्र और ज्ञानभण्डार रज्जवजी के शरीरपात से, उनके कोमल हृदय पर कुछ ऐसा आघात पड़ा कि वे तव ही से, विरह विभोर हुए, रुग्न होते चले गये। औपधि तो वे कुछ लेते ही नहीं थे। "वैद्य हमारो रामजी औपधि हू हर नाम" यह उनका प्रण रहा। वे तो भगवद्भजन में रत रहे। अन्त अवस्था निकट आई जान कर वे समाधिस्थ रहने लग गये। वीच-वीच में कुछ चैतन्य होकर वचन उच्चारण कर देते। ऐसे वचन अन्तावस्था (वा अन्त समय) की साषियां कहाती हैं, जिनको नीचे लिखा जाता हैं। स्वामीजी ने अपने पूज्य मित्र रज्जवजी के वनगमन का हाल सुना। वे चाहते थे कि वे भी उधर वनमें जांय। परन्तु पीछे ज्ञात हुआ कि उनके शरीर का कुछ भी पता नहीं चला। अपने गुरु दादूजी की तरह और कवीरजी की तरह "मांटी भखैं जिनावरां सहज महोच्छो होय" के सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने (रज्जवजी ने) यही उचित समझा था कि कहीं निर्जन वन में जाकर शरीर को त्यागैं। वे एक विश्वस्त शिष्य को साथ लेकर चुपचाप वनमें टोंक की तरफ चले गये। फिर उस शिष्य

को भी अपने पास से विदा कर दिया और उनके शव (देह) का क्या हुआ यह किसीको ज्ञात नहीं। इस प्रकार महात्मा रज्जवजी की, सुन्दरदासजी से कुछ मास पूर्व ही, परमगति हो गई थी। (इसका कुछ हाल हमारे लेख में हमने दिया है जो "महात्मा रज्जवजी" शीर्षक से "राजस्थान" त्रैमासिक पत्र कलकत्ते के में छपा था।)

रज्जवजी की मृत्यु से व्यथित होकर सुन्दरदासजी थोड़े ही दिन तक रोगग्रस्त रहे। उनके दर्शणों के लिए सांगानेर और अन्य स्थानों के लोग आने लगे। कभी समाधि लगा लेते और कभी जाग्रत होकर उपदेश देते। यही हाल रहा। अव परमगमन का समय निकट आ गया था। वे परम समाधिस्थ हो गये और मिती कार्त्तिक शुक्ला अष्टमी बृहस्पतिवार को तृतीय प्रहर दिवस के में स्वामी सुन्दरदासजी इस असार संसार को तृणवत् त्याग कर परमधाम परब्रह्म में लीन हो गये! दादू समाज का, हिन्दी साहित्य का, भारतवर्ष के ज्ञानमण्डल का एक कीर्त्तिमान, कांतिमान नक्षत्र अस्त हो गया!!! उनके साथ उनके शिष्य प्रशिष्य वहां आ गये थे। उनकी मृत्यु से सवको वड़ा भारी शोक हुआ। ज्ञानियों की मृत्यु तो उनको अमर करती है। फिर शोक तो संसारी जीवों को होना चाहिये। ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानी महात्मा केवल लोक-यात्रा के निमित्त, वा किसी प्रारव्ध के भोग के अर्थ, शरीर रखते हैं। वे अपने देह की अवधि जाने रहते हैं। जव इस चोले को छोड़ना होता है वे छोड़ देते हैं। सुन्दरदासजी की वैकुण्ठी (चकडोल) वड़े ही सद्भाव से सजाई गई। शतशः मनुष्यों का मेला लग गया। सव वड़े छोटे, साधु सन्त, नगर के नरनारी, सेवक भक्त, सेठ-साहूकार, हिन्दू-मुसलमान, साथ हुए और भजन-कीर्त्तन करते हुए सांगानेर से उत्तर की तरफ नदी किनारे की श्मसान भूमि में स्वामीजी की पवित्र देह का अग्निरूप ब्रह्म में, आहुतिरूप में, दाहकर्म किया। स्वामीजी की महिमा और उनका यश सव मनुष्यों की जिह्वा पर था। हरिकीर्त्तन से दिशाएँ गूञ्ज गई थीं।

जिस स्थान पर दाह हुआ था वहीं पर उनके शिष्य—परमस्नेहास्पद नारायणदासजी का दाह हुआ था। नारायणदासजी का शरीर स्वामीजी से पूर्व ही (सम्वत् १७३८ में) सांगानेर में छूट गया था। ये नारायण-दासजी वड़े पण्डित कवि और योग्य महात्मा थे। परन्तु आयुष्य थोड़ी पाई थी। इसही स्थान पर स्वामीजी के शिष्यों ने एक साधारण चवूतरा वना कर उनके ऊपर स्वामीजी के चरण और उनके शिष्य नारायणदासजी के चरण पधरा कर ऊपर छोटी-सी छत्री (गुमटी) वना दी थी। इसके हमने कई वर्ष पूर्व वहाँ जाकर दर्शण किये थे※। चवूतरा जमीन से ऊँचा करीव ४ हाथ (२ गज़) चौड़ा ऊपर से ६ हाथ वर्गमान से, गुमटी की ऊँचाई २ हाथ ६ उङ्गल और इतनी ही चौड़ाई। अन्दर मकराणे के पत्थर चौकोर पर दो चरण (दो पुरुषों के) वरावर खुदे हुए जिनके चारों तरफ़ कमलपत्री खुदी हुई और चारों कोनों पर चार-पाँच पंखुड़ी के फूल। इस पत्थर की लम्बाई चौड़ाई २४ उङ्गल अर्थात् १ हाथ। इसमें नीचे को तो यह "चौपई" खुदी हुई थीः—

चौपई

"संवत सत्रास छीयाला। कातिग सुदि अष्टमी उजाला।
तीजे पहर भरसपतिवार। सुन्दर मिलिया सुन्दरसार"॥

और ऊपर को यह पंक्ति थीः—"श्री रामजी सत्य श्री स्वामी दादू-दयालजी सहाय श्री सुन्दरदासजी"। और दाहिनी तरफ यह पंक्ति खुदी

※ यह छत्री सांगानेर में भाभाईजी के वाग के पीछे उत्तर की तरफ है। सुन्दरदासजी के समय में यहां यह वाग नहीं था, पीछे वना था। स्यात् कोई और किसी का वाग हो। हम कर्नल "शावरस" (Col. Showers) साहिव, रजीडेंट जयपुर, के हमराह मुकाम सांगानेर सन् १९०८ के शीतकाल में गये थे। तव वह छत्री वहां थी। उसका चित्र और नाप हम लाये थे। परन्तु अव वह छत्री तोड़ दी गई, चरण चिन्ह दुष्टों ने फोड़ कर फैंक दिये एक टुकड़ा पड़ा मिला !!! उसही का पीछे फोटो लिया गया।

हुई थीः—"बाबाजी श्री नरायणदासजी का चरण कवल।" और वांई तरफ यह पंक्ति खुदी हुई थीः—"स्वामीजी श्री सुन्दरदासजी का चरण कवल।" परन्तु अभी सांगानेर में श्री दरबार की तरफ से वायुयान भवन (एयरोड्रोम) उद्घाटनोत्सव हुआ तब वहां जाकर देखा तो न वह छत्री थी और न चरणों का सफेद पत्थर, केवल एक टुकड़ा पड़ा मिला। न जाने फोड़ तोड़ कर दुष्टों ने उसे कहां फेंक दिया !! शोक महाशोक !! ईर्षा-द्वेष की यह हद हो गई ! साधु सन्तों के ऐसे चरित्र होने चाहिए ! परन्तु कलियुग का प्रभाव है। इस चबूतरे से थोड़ी दूर पर बरगद (बड़) का बड़ा वृक्ष है और तीन चार छोटे चबूतरों पर और भी चरण खुदे हुए हैं उनमें ये पंक्तियां खुदी हुई हैंः—"श्रीरामजी सत म्हंतजी श्री चत्रदासजी म्हंतजी श्री रामधनजी का चरण छ जी मिती वैसाक वदि ५ दीतवार समत १८८३ का सांगानेर।" (दूसरे पर) "मिती माह सुदि पांच संवत् १८८१ का। बाबाजी चरण श्री बाबाजी सारंगदासजी का चरण। बाबाजी हरचरणजी का चरण पदराया।" (तीसरे पर) "श्री रामजी। श्री स्वामी दादूदयालजी साहाय। सार सन्त सन्तोष दे नाव भगति विसवास।······सांच दे, मांगे दादूदास। बाबाजी भजनदासजी का चरण पदराया। बाबाजी जेलदासजी का चरण सिष राम भजनजी का चरण। मिती सावण वुदि १ सनीचर सं० १८४६"॥ इससे प्रगट है कि सांगानेर में सुन्दरदासजी के वा रज्जबजी के तथा अन्य दादूपन्थियों के थाँभायत साधु रहा करते थे और अब भी हैं। और स्यात् चत्रदास तो सुन्दरदासोत ही था। अब वहां कोई सुन्दरदासोत नहीं रहता है। रज्जब-द्वारा तो व्यासों के घेर में दक्षिणाभिमुख बना हुआ है जिसकी उक्त सन् १६०८ से पूर्व मरम्मत सफेदी भी हुई थी। परन्तु उसमें रज्जबजी का कोई थाँभायत साधु नहीं था।

सुन्दरदासजी के उक्त शिलालेख के वार वा तदनुसार तारीख और सन् ईस्वी का निश्चय करने को हमने रायबहादुर-महामहोपाध्याय, पंडित

श्री ओझा गौरीशंकरजी को लिखा था। उन्होंने (सहस्र वर्ष के पञ्चांग वा फार्म्यूला आदि से) देख वा शोध कर अपने २४ मार्च सन् १६३६ के पत्र में यह लिखाः–"आपका ता० २१ मार्च का पत्र कल मिला।··· सुन्दरदासजी के स्वर्गगमन का सम्वत् १७४६ काती सुदि ८ बृहस्पतिवार को होना आपके भेजे हुए छन्द में लिखा है। परन्तु उस दिन गुरुवार नहीं, शुक्रवार था। उस सम्वत् के चण्डू के पंचांग को भी देखा तो उसमें भी शुक्रवार ही मिला। अलबत्तह संवत् १७४७ कार्त्तिक सुदि ८ को गुरुवार था। सम्वत् १७४६ कार्त्तिक सुदि ८ को ता० ११ अकटोबर सन् १६८६ था"। इस उत्तर से हमको वार (दिन) वा सम्वत् का बड़ा विचार हुआ कि यह अन्तर कैसा ? तो विचार कर हमने फिर श्री ओझाजी को लिखा कि यह लेख शिलालेख सांगानेर में छत्री में खुदा मिला है और सम्भवतः ढूँढाहड़ के पंचाङ्ग में क्षयतिथि होने से स्यात् यह अन्तर हो। इसके उत्तर में ता० ३० मार्च उक्त सन् को यह उत्तर उन्होंने कृपाकर भेजाः—"आपका ता० २६ मार्च का पत्र मिला।···सुन्दरदासजी के देहावसान के विपय का जो छंद आपने ता० २१ मार्च के पत्र में लिखा है उसके लिए आपने यह भी लिखा कि वह शिलालेख में खुदा है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह शिलालेख उनकी मृत्यु के आसपास ही लगाया गया, अथवा जब स्मारक बनाया तब लगाया गया। यह जानना भी आवश्यक है कि उनका स्मारक कब बना। क्योंकि वार का अन्तर खटकता हुआ है।...मैंने यहां चण्डू पञ्चागों से भी मीलान किया तो आश्विन सुदि १५ और कार्त्तिक कृष्ण १ यह दोनों तिथि उपर्युक्त सम्वत् (१७४६) में शामिल थीं। कार्त्तिक वदि १ के पीछे मार्ग शीर्ष वदि ४ तक कोई तिथि क्षय नहीं हुई। ऐसी स्थिति में वार का अन्तर होना मूल के दोहे में पाठभेद का कारण हो। आप या तो मूल लेख की छाप या भिन्न-भिन्न प्रतियों के पाठों का मिलान कर देखेंगे तो यह उलझन सुलझ जायगी। मैंने चण्डू के पञ्चांग और मेरे यहां की संग्रह की जंतरियों आदि को देख कर ही

यह बात लिखी है। यदि पाठ "छींयाला" के स्थान में "सैंताला" मिल जाय तो वार की कोई आपत्ति नहीं रहती।"

इतना उत्तर-प्रत्युत्तर हुआ। अब हम जो देखते हैं तो अन्य साधन ऐसा कोई मिलता नहीं जिससे इस अन्तर का संशोधन हो सके। गांव मोर (जि० टोडारायसिंह राज्य जयपुर) में जो बारहदरी बनी हुई है उसमें भी यही चौपाई लिखी है। अब हम यहां उक्त मोर गांव के महराबदार बारहदरी और छत्री में जो-जो शिलालेख मिले उनकी नकलें दे देते हैं जिससे वहां का प्राप्त हाल जान लिया जाय।

(स्वामी सुन्दरदासजी का)

॥ श्री रामजी सहाय ॥ श्री स्वामी दादू दयालजी सहाय ॥
"संमत सत्रासै छीयाला काती सुदी अष्टमी उजीयाला ॥
तीजे पहर ब्रसपतवार सुन्दर मिलीया सुन्दरदास" ॥ १ ॥

(सांगानेर के शिलालेख से मिलता है)

(उनके शिष्य नारायणदास का)

"दोवा। संमत संत्रासै अठतीस का पोष वार सनीवार।
नारायण नरहर मीलै करके ब्रह्म विचार" ॥ २ ॥

(उनके शिष्य रामदास का)

"संमत सत्रासे तीहंत्तरे पांचे अरु आदीत।
रामदासजी राम में मिले जाति बड़ प्रीति" ॥ ३ ॥

(उनके शिष्य दयाराम का)

"(संमत) अठारासै चौवीस विचारै। चैत दुदी दसमी बुधवारै।
दयारामजी ब्रह्म समानैं। कथा कीरतन कीया आनैं" ॥ ४ ॥

(उनके शिष्य सदाराम का)

"संमत अठारासै छत्तीसा। सदाराम (जी) मिलिये जगदीसा ॥
भाद्व सुदि तिथि दुतिया जाना। करि हरि ध्यान जु हुया समाना" ॥ ५ ॥

(उनके शिष्य राजाराम का)

"(संमत) अठारासैं इपत्तरे सावण सुदि छट जोई।
राजारामजी हरमिले तन पर हरि इक होइ" ॥ ६ ॥

(उनके शिष्य दासराम का)

"अठारेसो इकानवें जानूं। सावन वुदि छटि दिन सनि मांनूं ॥
दासरामजी ब्रह्म समाये। जहां गये तैं भोरि न आये" ॥ ७ ॥

(उनके शिष्य नूंदराम-नवनिधिराम-का)

"नूंदराम आनन्दनिधि मंगल मंगल खान।
पधराये गुरु पादुका प्रेम प्रीति धर ध्यान ॥
उगणीसै अडतीस के वार जु वुद्ध हि जांन।
जेठ वुदी तिथि पंचमी महुरत सुभ अतिमांन" ॥ ८ ॥

इन दोनों छन्दों के नीचे यह वचनिका भी है। "काती सुदि १४ दीतवार ने वैकुण्ठ पधास्या। चरण वावाजी श्री नोनिधरामजी का पधराया शिष्य मंगलदास मिति मंगश्र वुदि १२ सुक्रवार संवत् १९४१ का"। और यह दादूवाणी की साखियां भी खुदी हुई हैं:—(१) "प्रीतम का पग परसिये मुझ देखन का चाव। तहां लै सीस नवाइये जहां धरते पांव" ॥१॥ और "वाट विरह की सोधि करि पंथ प्रेम का लेहु। लैके मारग लाइये दूसर पावन देहु ॥" (विरह का अंग ३। सा० १५३-१५४)। (इनके आगे इनके शिष्य मंगलदास का) "उन्नीसै इकहत्तरे मिती माव सुदि जान। वावा मंगल दूज दिन हुआ जु अन्तर ध्यान ॥ वावा मंगलदास का रामचन्द्र परमोह। पधराये गुरु पादुका कीये वहुत उछोह ॥ ९ ॥ मिती फालगुण कृष्ण १२ वार गुरु सं० १९७२" ॥

इन उपरोक्त मोर गांव के शिलालेखों में भी उस सांगानेर के शिला लेख ही की नकल वा छाया है। इस कारण इसमें भी वार वही वृहस्पति-वार खुदा है। यहां एक "भरसपत" का "व्रसपत" वनाया है। इससे कोई भेद वा शोध नहीं रहा। अव हम जो विचार करते हैं तो संवत् का तो भेद

नहीं हो सकता है और न वार ही का अन्तर। यदि अन्तर हो तो तिथि का ही हो सकता है। या क्षय या वृद्धि के होने से भी तिथि का भेद मिट सकता है। इस समय हम निर्णय करने में असमर्थ हैं। अतः जो सांगानेर के शिलालेख में दिया है उस ही को स्थिर रख कर जीवन चरित्र में चरित्रनायक का जन्मदिवस ग्राह्य कर लेते हैं। सो भी विवश ऐसा करना ही पड़ता है। संशोधन के लिये ओझाजी के लेखानुसार हमारे पास कुछ भी सामग्री नहीं है।

और जो मोर गांव के अन्य शिलालेख वा छन्द हैं उनसे वहां की शिष्य परम्परा के ज्ञान में प्रमाण प्राप्त होता है सो "शिष्य प्रशिष्य और थांभे" के प्रकरण में आगे दिखायेंगे।

इस प्रकार स्वामी सुन्दरदासजी की मरण तिथि का निर्णय हुआ। तथा उनकी अन्तावस्था का हाल संक्षेप में कहा गया। अन्त समय में वा रुग्नावस्था में जो साखियां स्वामीजी ने अपने मुख से उच्चारण की थीं उनको उनके शिष्यों ने बड़ी सावधानी से स्मरण रख कर रक्षित रक्खी थीं। उनको नीचे देते हैं:—

"निरालम्ब निर्वासना इच्छाचारी येह।
संस्कार पवनहि फिरै शुष्कपर्ण ज्यौं देह ॥ १ ॥
जीवन्मुक्त सदेह तूं लिप्त न कबहू होइ।
ताकौं सोई जानि है तव समान जे कोई ॥ २ ॥
मान लिये अन्तःकरण जे इन्द्रिन के भोग।
सुन्दर न्यारो आतमा लगौ देह कौं रोग ॥ ३ ॥
वैद्य हमारे रामजी औषधहू हरिनाम।
सुन्दर यहै उपाय अब सुमरण आठौं जाम ॥ ४ ॥
सुन्दर संशय कौ नहीं बड़ो महुच्छव येह।
आतम परमातम मिल्यौ रहो कि विनसौ देह ॥ ५ ॥

सात वरस सौ में घटैं इतने दिन कौ देह।
सुन्दर आतम अमर है देह पेह की पेह" ॥ ६ ॥

ये साखियां कुछ एक ही समय की उच्चारित नहीं हैं। रोगग्रस्त होने से अन्त समय तक मुख से प्रसंगवश वा जैसे मोज आई, कह डालीं। इनमें प्रथम और द्वितीय, जो ज्ञानसमुद्र के अन्तिम (पंचम) उल्लास के अन्त में चौथे पांचवें दोहे हैं, (इनको) स्वामीजी ने अपनी याद से उन दिनों कही थी, इस कारण अन्त समय की साखियों में ली गई। शेष साखियों के अतिरिक्त और भी कई साखियां वा छन्द अवश्य ही उच्चारण किये होंगे तथा उपदेश और शिक्षाएं दी होंगी परन्तु उनको किसीने लिख कर रक्षित नहीं रक्खीं, इस कारण अब प्राप्त नहीं हैं। सुन्दरदासजी रोगग्रस्त होकर ही शरीरत्यागी हुए थे यह बात उनके ही वचन— साखी ३ री से स्पष्ट है। उसमें "लगो (लग्या) देह कों रोग" और "वैद्य हमारे रामजी औषधहू हरिनाम" इनमें रोग, वैद्य, औषध शब्द निश्चय के साथ रोगी होने और कुछ दिन रोगग्रस्त रहने को प्रमाणित करते हैं। जीवन्मुक्ति का उनका सिद्धांत बड़ा पक्का था। वे अपने गुरु दादूदयालजी के अनुसार मरने के पीछे मोक्ष जाना अधूरा ज्ञान मानते थे और जीवित अवस्था ही में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति को जीवन्मोक्ष समझते थे। इस ही निश्चय के साथ द्वितीय साखी में "जीवन्मुक्त सदेह तू" स्पष्ट कहा है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय साखियां बहुत गम्भीर अर्थ के साथ गर्भित हैं। इनमें हमारे चरित्रनायक के गहरे आत्मिक सिद्धांत घुसे हुए हैं, जिनको इस ग्रन्थावली के पाठक ध्यान और विचार पूर्वक जान लेंगे। यह प्रश्न हो सकता है कि सुन्दरदासजी अपने गुरु दादूदयालजी, अपने गुरु भाई रज्जब और संतदासजी आदि के शवों का दाहकर्म न देख कर उनका हवादाग या भूमिदाग देख कर भी अपने शव को हवादाग के लिए आज्ञा क्यों नहीं दे गये, और पीछे से उसका दाह (अग्निदग्ध) ही क्यों हुआ ? इसका यह समाधान है कि एक तो स्वामी सुन्दरदासजी

शास्त्र बहुत जानने वाले थे और वेदादि ग्रन्थों में उनकी आस्था थी, दूसरे वे जीवन्मुक्ति के सिद्धांत के पक्के विश्वासी थे और उसके मानने वाले होने से "देह खेह की खेह" और "रहो कि विनसो देह" आदिक वचनों से देह का तो उनको कुछ विचार ही नहीं था—चाहे जलो तो वाह-वाह और गड़ो तो वाह-वाह तथा "मांटी भखै जिनावरां" जंगल वा हवा में रख दी जाय तो वाह-वाह। उनको इसकी कुछ भी परवाह नहीं थी। उनका दृढ़ निश्चय तो यह था कि "आतम परमातम मिल्यौ"—"सुन्दर संशय कौ नहीं, बड़ो महोच्छव येह"। दादूजी ने कबीरजी का अनुसरण किया और रज्जबजी ने दादूजी का अनुसरण किया तथा संतदासजी (परमयोगी होने से) जीवित समाधि ली और भूमि में गड़कर शरीरत्यागी हुए। इत्यादि। परन्तु सुन्दर-दासजी ने इन से भी बढ़ कर अपने गुरु के "जीवन्मुक्ति" के सिद्धांत को उत्तम समझ कर, उस ही में अटल विश्वास रख कर, अपने शरीर को जंगल में रखवाने वा वैसे ही छोड़ देने का आदेश नहीं किया। अतः शास्त्र और लोक मर्यादा के अनुसार शिष्यों ने उस (शव) की अंत्येष्टि अन्त में अग्नि संस्कार से की, कि जिससे उनके सिद्धांतानुसार "खेह की खेह" हो गई। मिट्टी थी सो मिट्टी में मिल गई। अन्य तत्व अन्य तत्वों में जा मिले। क्योंकि कर्मफल के बंधन से "संस्कार" रूपी "पवन" के झोंके वा फटकार से "शुष्क पर्ण" (सूखे पत्ते) की तरह यह देहनिर्मित होकर फिरती है, आत्मा निश्चेष्ट, निराधार, निर्वासना, निरीह—"निरालम्ब निर्वासना इच्छाचारी है"— और "यह" "देह" कर्मों को भोगती है। जीव इसको धारण कर "सदेह" रह कर "जीवन्मुक्ति" रहता है तो "लिप्त न कबहू होइ" ऐसी आत्मा को मृत शरीर से क्या प्रयोजन ? जो "मुक्ति तो धोपे की नीसानी" "सुन्दर कछू ग्रहै नहिं त्यागै वहै मुक्ति पथ कहिये" (राग आसावरी, पद ६ में) इत्यादि मानने वाले पुरुष को पंचतत्वमय निर्जीव जड़देह का कुछ अभिमान नहीं रहता। बस यही इस शंका का समाधान है। पाठकों से अविदित नहीं रह गया है कि स्वामी सुन्दरदासजी का

शास्त्रों में अटल विश्वास था। अपने शव का अग्निसंस्कार हो जाना मानों उनका अभीष्ट था। जो कुछ लोगों का भ्रम है कि दादूपंथी साधुवों के शव (मुर्दा शरीर) न तो जलाये जाते और न गाड़े जाते हैं यह उनका भ्रम केवल दो चार उदाहरणों पर निर्भर है। इन लोगों में आम रिवाज कभी व्यापक रूप से ऐसा नहीं रहा न हुआ। भले ही फ़ारसी किताब "दुबिस्ताने मज़ाहिब" आदिकों में ऐसा लिखा मिलता है। परन्तु उनका लिखना ग़लत है। इससे समझ लेना चाहिए कि ऐसे इतिहासकारों की बातें, जो वे यों ही सुनाई वा कल्पना से लिख देते थे, कहां तक प्रमाण मानी जा सकती हैं। ऐसी निराधार भ्रमात्मक बातें ऐसी किताबों में और भी हैं जिनको प्रसंग पर ही लिखी जांयगी।

निदान स्वामी सुन्दरदासजी का शव वहीं सांगानेर के उत्तरी श्मशान में अग्निदेव की आहुति हुआ था और वहीं उनके शिष्य नारायणदास का शरीर उनसे पूर्व दाहकर्म से भस्मीभूत हुआ था। गुरु और शिष्य पर चबूतरा, छत्री, चरणपादुका और लेख शिष्यों ने बनवाये थे, जिनसे अब तक स्मारक चिन्हि मिलते हैं। इस ही प्रकार उपरोक्त मोर गांव के लेखादि भी जान लेने चाहिए।

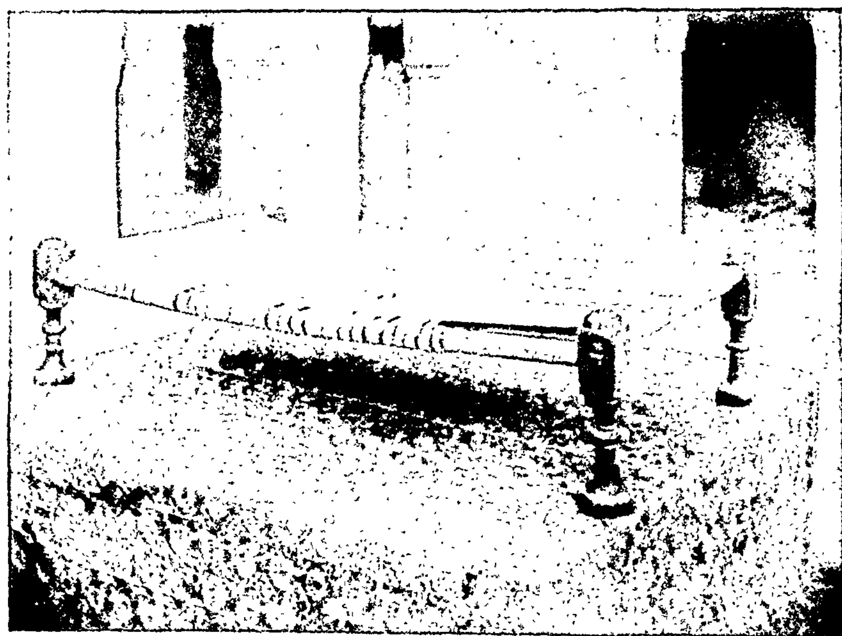
गुरु और सम्प्रदाय !

अब यहां सुन्दरदासजी के शिष्य प्रशिष्यों और थाभों के लिखने से पहिले गुरु और सम्प्रदाय को देते हैं। सुन्दरजी दादूदयालजी के सब से पिछले शिष्यों में से थे। यह बात ऊपर कही जा चुकी है। उस स्थल पर "गुरु" और "सम्प्रदाय" के सम्बन्ध में विशेष हाल लिखने का अवसर संगति नहीं रखता था। गुरु और सम्प्रदाय के विषय में अनेक पाठकों को जिज्ञासा हो सकती है। और हमारे चरित्रनायक के चरित्र के प्रायः पूर्त्ति, अर्थात् उनके शरीरान्त के प्रकरण, के पीछे, इसका लिख दिया जाना आवश्यक और सुसंगत प्रतीत होता है। अतः अति संक्षेप से टिप्पणी दी जाती है।

दादूजी जाति के नागर ब्राह्मण थे। अहमदाबाद में लोदीराम नागर ब्राह्मण के घर दैवी विभूतिरूप से जन्म सं० वि० १६०१ में हुआ था। लोदीराम के पुत्र नहीं था। उसे वांछा थी। नदी में बहता सन्दूक मिला उसमें खेलता हुआ ज्योतिमय बालक मिला। स्त्री को लाकर दिया। ईश्वर का धन्यवाद किया। स्त्री के स्तनों में मायामोह से दुग्ध स्रवने लगा। लाल का लालन-पालन हुआ। परन्तु बाल्यावस्था में श्री कृष्ण ने वृद्धरूप धारण कर इस दैवी सम्पत्ति के पुत्र को, ११ वर्ष की अवस्था में, दिव्य ज्ञान दान किया*। दादूजी विरक्त, भक्त और ज्ञानी हो गये। कुछ वर्ष पीछे सत्सङ्ग में बाहर निकल गये। माता-पिता ने पीछा किया। माता-पिता की आज्ञा से विवाह भी हो गया। परन्तु वहां तो परमात्मा में गहरी लगन थी। उनको संसार कहां भाता था। साधु संगति में रमते-रमाते सांभर में (अब जयपुर राज्यान्तर्गत है तथा जोधपुर का भी हिस्सा इसमें है) आ गये। यहां प्रसिद्धि हो गई। क़ाज़ी से बिगड़ गई। क़ाज़ी ने दण्ड दिया तो क़ाज़ी ने किये का फल पाया और दुःखी होकर मर गया। दादूजी ने अपने आपको छिपाने वा अपने निर्वाह के लिए रुई पींदने का (अर्थात् पिंदारे का) कार्य किया। तब से पिंदारे कहाये। जैसे धनाजाट, रैदास, सैनभक्त, कबीरजी आदि ने ऐसे ही पेशे किये थे। महात्माओं की गति कौन जान सकता है। हमारे ज़माने में महात्मा गान्धी सूत कात कर अपना गुज़र करते हैं। महात्मा सूतलीदास अभी-अभी थे, वे मट्टी खोदते वा पीसा करते थे। शेख़सादी भिश्ती का काम करते थे। और कितने बतावें। औरंगजेब बादशाह किताब लिख कर अपना पेट

गुरुः—

* बाल्यावस्था में दैवीसकाश से दिव्यज्ञान की प्राप्ति के, भारतवर्ष के अध्यात्म-विद्या के इतिहास में, उदाहरण बहुत हैं। भौतिक विज्ञान की स्थूल आंखें इसमें सन्देह करने का साहस न करें। थियासोफी, साइकालाजी आदि वर्त्तमान की विद्याओं और साइंसों से भी यह पक्ष निर्भ्रान्ति समर्थित होता है।



स्वामी सुन्दरदासजी का पलंग और उनकी जाजम, चूरू (बीकानेर)

भरता था। हम दादूजी के जन्म और जाति के विषय में ग्रन्थों से कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं:—

(१) सबसे अधिक प्राचीन और प्रामाणिक महात्मा जनगोपालजी कृत "दादू जन्मलीला परची" ग्रन्थ में आया है कि—

"सम्वत सोलासहै इकोतर। महापुरुष उपज्यौ पहुमी पर।
पच्छिम दिसा अहमदाबादू। तिहंठा साध प्रगट भये दादू" ॥ १२ ॥

पिता का नाम लोदीराम था। ग्यारह वर्ष की अवस्था में भगवान ने, वृद्धरूप धारण कर, उपदेश दिया। (विश्राम १। २४)। इस पीछे सात वर्ष घर में रहे। सत्संग और साधु-सेवा में घर का धन लुटाया। तब पिता ने पृथक् कर दिया। फिर भगवान ने दर्शण दिये। छह वर्ष रास्ते में लगे। फिर सांभर आ गये। (विश्राम १।३०।४३) वहां अध्यात्म में कबीर गोष्टी हुई। तब से सर्व संशय निवृत्त हो गये।

"तब अनभै को भयो बिसासू। जब थैं मिले कबीरादासू"। (विश्राम २।४)

इस ग्रन्थ में सांभर जन्म होना नहीं लिखा। वरन अहमदाबाद में लोदीराम नागर ब्राह्मण के यहां प्रगट होना ही लिखा है। सोभी अद्भुत रीति से। सुन्दरदासजी दादूजी के शिष्य हुए सो वृत्तान्त सुन्दरदासजी के प्रकरण में ऊपर लिख ही आये।

(२) दादूजी के एक शिष्य माधवदासजी ने "सन्तगुणसागर" चरित्र दादूजी का बनाया था दादूजी के पारगामी होने पर वा पहली भी और जन्म कथा दादूजी के मुख से तथा एक छोटे भाई दादूजी के आनन्दराम की कही हुई सुन कर लिखी है। उसमें आया है:—

"वर्ष बतीत भये कलिकालके छैसै चमालीस चार हजारा"।
+ + + + +
दादूजी अवतर अहमदाबाद में हे कुल नागर विप्र उदारा"।
संमत चन्द ऋतू नभ द्वै तिथि अष्टमि चैत्र सुदी गुरुवारा। (१६००)
पुष्य नषत्र उजांतही के रवि दादू दयाल लियो अवतारा" ॥ १५ ॥

इस ग्रन्थ में यहां तक लिखा है कि अहमदाबाद में विनोदीराम नागर के दो पुत्र थे। एक लोधीराम। दूसरा आनन्दराम। दोनों ही के पुत्र नहीं था। आनन्दराम के एक पुत्री थी जिसको विसन नगर में गोविन्दराम के पुत्र नारायण से विवाही थी। साधु के वरदान से लोधीराम को सर में तैरता बकस मिला उसमें पुत्र पाया। वही दादू कहाया। इस ग्रन्थ से विशेष प्रमाण दादूजी के जन्मस्थान और जाति का मिलता है।

(३) दादूजी के प्रशिष्य राघवदासजी कृत "भक्तमाल" में (जो १७७० में पूर्ण हुई थी) ऐसा आया है। यह भी प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है:-

"लोदीराम नाम नागर ब्राह्मण जांम, लछि जाके धाम बहु लैके घर गयो है।"
"धरा गुजरात तहां नदी बही जात...।" (५४८)

और इसमें दादूजी के जन्म की प्रसिद्ध घटनाएं और सम्प्रदाय का विस्तृत वर्णन सब सुन्दर छन्दों में दिया है।

(४) कवि वासुदेव भट्ट रचित "दादू चरित चन्द्रिका" द्वितीय और तृतीय उल्लासों में माधवदास ने जैसे वर्णन किया वैसे ही किया है। नागर ब्राह्मणों की उत्पत्ति, उनके भेद, गोत्रादि देकर "नागर अहमदाबाद नदी सागरवति तीरा। पंचद्रविड़ गुर्जरहि जाति नागर कुल हीरा॥ वडनगरा कश्यप गोत भल ग्रह पूरन संपति परम। तँह परम पुरातन गुन रहित हरि आये आपन धरम"॥ १४॥ और "गत कलियुग चार हजार और छस्सै बरप बतीस पर। संवत सौरै सै एक में प्रगटे लोदीराम घर"॥१७॥ नागर लोदीराम पुन्य पूरब निधि पाई···"इम नगर अहमदाबाद मैं गृह लोदी के पुत्र हुवा"॥ १९॥ फिर वडनगर में विवाह होना। गुरु प्राप्ति। १९ वर्ष में त्याग। इत्यादि सब वृत्तान्त इस ग्रन्थ में दिया है।

(५) साधु मंगलरामजी ने "सुन्दरोदय" आदि ग्रन्थों में यही वर्णन दिये हैं। इस ही प्रकार अन्य कई एक शिष्यों प्रशिष्यों के रचित ग्रन्थों वा छन्दोंमें दादूजी के जन्म और जाति का यही हाल लिखा है। इनका सबका

तथा कवियों का लिखा विस्तार के साथ समावेश दादूजी की कीर्त्ति निरू-पणार्थ जीवनी सांगोपांग लिखी जाय तब ही हो सकता है।

जो कोई लेखक विद्वान इसके विरुद्ध कहते वा लिखते हैं उनका मत उस समय तक ग्राह्य नहीं हो सकता है जब तक कि प्रमाण पुष्ट न मिलें। दादूसम्प्रदाय में जो बात प्रचलित है वह तो यही है जो हमने ऊपर लिखी। दादूजी का मत निरञ्जन निराकार ब्रह्म की सत्ता को मानने का था। वे न तो प्रचलित और दूषित हिन्दूमार्ग की उन बातों को मानते थे जो ढोंगी पुरुषों में देखते थे। मूर्त्तिपूजन, तिलक, तीर्थ, कथा-कीर्त्तन का ढोंग इत्यादि को वे निष्प्रयोजन बताते थे। गुरुमुख और अन्तर्मुख रह कर अन्तर्ज्योति का ध्यान, अभ्यास और स्मरण करना और सहज योग से ईश्वर में अटल लय लगाना यही सर्वोपरि समझते थे। परोपकार, जीव दया, सत्य वचन, अहिंसा, ज्ञान, वैराग्य, दीनता, आर्जव, समता, निरभिमानता इत्यादि शुद्ध भावों के साधन करनेवाले को साधु मानते थे। वे वैराग्य के लिए भेष बनाना, भंगवा करना, मूंड मुंडाना वा केश बढ़ाना विभूति लगाना आदि को भी तथ्यहीन जानते थे। इसका कभी उपदेश नहीं किया। उन्होंने १२ वर्ष तक कठिन तप और योग साधा था। वे निरन्तर लययोग और भक्ति में तत्पर रहते थे। उनका वचन सिद्ध था। करामात को कलंक समझते थे। हजारों मनुष्यों को ज्ञानोपदेश देकर भवसागर तिरने के योग्य बना दिये।

परन्तु कुछ तो उनके सामने ही और कुछ पीछे होते हुवाते उनकी अन्त में सम्प्रदाय बन ही गई। पहिले तो सम्प्रदाय का कोई नाम नहीं था। पीछे शिष्यों ने "ब्रह्मसम्प्रदाय" नाम रक्खा। सुन्दरदासजी ने भी "गुरु-सम्प्रदाय" ग्रन्थ में "सम्प्रदाय परब्रह्म की" ऐसा नाम दिया है। परन्तु लोक में यह नाम कहीं भी प्रचलित नहीं है। "दादू-सम्प्रदाय" या "दादूपंथ" ही लोग बोलते हैं। दादूजी के वैसे तो सैकड़ों शिष्य थे। परन्तु १५२ शिष्य गणना में आते हैं। इनमें ५२ तो सिद्ध हुए जिनके

शिष्य प्रशिष्य हो जाने से और स्थान बांधने से थांभाधारी महंत कहाए। और १०० विरक्त हो गये। दादूजी विवाहित थे। उनके दो पुत्र और दो पुत्रियां थीं। दादूजी का परमपद नरायणे के कस्बे में सं० १६०१ में हुआ। उनके उत्तराधिकारी उनके बड़े पुत्र गरीबदासजी हुए। नरायणा प्रधान स्थान दादूपंथियों का है, जहां मुख्य महंत रहते हैं। वहां बड़े-बड़े स्थान बने हुए हैं। दादूजी का सुन्दर सफेद पत्थर का "दादूद्वार" (मन्दिर) बना हुआ है। सांभर, आंबेर, भेराँणा आदि स्थानों में भी दादूद्वार के मकानात बने हुए हैं और बावन महंथों के स्थानों में भी "अस्थल" हैं। पंजाब और उत्तर के देशों में भी उतराधे दादूसम्प्रदाय के बहुत स्थान और साधु हैं। राज्य जयपुर में एक "नागा जमाअत" बड़ी भारी संख्या में हैं जो दादूजी के शिष्य बड़े सुन्दरदासजी और उनके शिष्य प्रहलाददासजी तथा उनके भी शिष्य हापा-हरिदासजी से चली है। ये नागे साधु बड़े वीर होते हैं। राज्य के थोड़ी तनख़ाह के नौकर हैं परन्तु अनेक लड़ाइयों में बड़ी वीरता से लड़ कर ये संतोषी साधुगण विजयी हुए हैं। बहुत से साधु भंगवां पहनते हैं, वे विरक्त हैं। नागा साधु सफेद वस्त्र पहनते हैं। कई साधु टोपा चादर धारण करते हैं। इस प्रकार इस सम्प्रदाय का बहुत हाल है। दादूपंथी साधु प्रायः हरएक शहर, क़स्बे या अच्छे गांव में मिलेंगे। इनके आचरण प्रायः अच्छे, स्वच्छ और प्रिय होते हैं। अब इनमें विद्वान अधिक नहीं हैं। कई तो वैद्य विद्या भी करते हैं। इनमें आत्मारामजी आदिक नामी वैद्य हुए हैं और अब जयपुर में बाबा लच्छीरामजी मार्त्तण्ड समान बहुत प्रदीप्त, प्रवीण और अनुभवी प्रसिद्ध वैद्यराज हैं, जिनके शिष्य प्रशिष्य अनेक नगरों में फैले हुए हैं। जयपुर में एक पाठशाला है जो इनही के उद्योग से स्थापित हुई है और "दादूमहाविद्यालय" कहाती है। विहाणी और हरिद्वार में भी पाठशालाएं हैं। भारतवर्ष में साधुवर श्री निश्चलदासजी दादूपंथी अद्वितीय, वेदान्तादि शास्त्रों के पारंगत, पण्डित हो गये, जिनके ताड़े का पण्डित साधुओं में

फिर पैदा हुआ सुना नहीं गया। दादूसम्प्रदाय एक प्रतिष्ठित सम्प्रदाय है और इसमें गुणी, ज्ञानी, विद्वान, वीर, साहसी, कलावान पुरुष थोड़े बहुत होते आये हैं और अब भी हैं। परन्तु अल्पसंख्या में ही।

दादूजी दयालुता के कारण "दयालजी" कहाते हैं। उनके ५२ प्रधान शिष्यों में अति प्रसिद्ध ये हैं:—गरीबदासजी, बड़े सुन्दरदासजी, रज्जबजी, मोहनदासजी मेवाड़ा, जगजीवनदासजी, बाबा बनवारीदासजी, चतुर्भुजजी, प्रागदासजी बिहाणी, जैमलजी कछवाहा, जैमलजी चौहांग, जनगोपालजी, चपनाजी, जग्गाजी, जगन्नाथजी कायथ, सुन्दरदास बूसर इत्यादिक। इनमें कविता, शास्त्रज्ञता तथा ग्रन्थ रचना बाहुल्य अथवा मत प्रचार के लेखे हमारे चरित्रनायक सुन्दरदासजी छोटे ("बूसर" प्रसिद्ध) सबसे बढ़ कर निकल गये। किसी साधु कवि ने कहा है:—

"दादू दीनदयाल के चेले दोय पचास।
केई उडगण केई इन्दु हैं दिनकर सुन्दरदास ॥ १ ॥

इस दादूसम्प्रदाय का विस्तृत हाल लिखा जाय तो एक अच्छा खासा बड़ा भारी ग्रन्थ बनें। साधु मंगलरामजी ने "सुन्दरोदय" आदिक बहुत ग्रन्थ इस विषय के लिखे हैं। अन्य साधुओंने भी लिखे हैं।

शिष्य और थाँभा

गुरु और सम्प्रदाय का संक्षेप वृत्त देकर अब हम सुन्दरदासजी के शिष्य प्रशिष्यों और उनके स्थापित थांभों (अस्थल वा स्थानों) का थोड़ा-सा हाल लिखते हैं, जिसका लिखा जाना अत्यन्त आवश्यक है।

स्वामी सुन्दरदासजी के वैसे तो बहुत शिष्य हुए थे। परंतु उनके मुख्य पांच ही गिने जाते हैं। यथा भक्तमाल में राघवदासजी ने कहा है:—"बूसर सुन्दरदास के सिष्य पांच प्रसिद्ध हैं"।

टीके दयालदास बड़ो पण्डित परतापी।
काव्य कोस व्याकरण शास्त्र में बुद्धि अमापी ॥

स्यांम, दमोदरदास, सील सुमरन के सांचे।
निरमल नरायनदास प्रेम सूं प्रभु पै नांचे॥
राघो रांम सुं रामरत थली थावरे निद्धि हैं।
दूसर सुन्दरदास के सिप्प पांच प्रसिद्ध हैं॥ ५२५॥

अर्थात् बड़ा तो (१) दयालदास। फिर (२) श्यामदास, (३) दामोदरदास, (४) निर्मलदास और (५) नारायणदास—यों पांच शिष्य थे। नारायणदासजी थली (मारवाड़) में भी रहे ऐसा इससे पाया जाता है। नारायणदास स्वामीजी के बड़े प्यारे और एक होनहार शिष्य थे। परन्तु स्वामीजी के सामने ही चल बसे थे, जैसा कि ऊपर लिखा गया था। इनके परचे भी विख्यात हैं। दिल्ली में जो अद्भुत घटना दिखाई उसका वर्णन चन्द्रदास ने इस छन्द में किया है:—

'सुन्दर के नराइनदास काहू के न संग पास
रहत हुलास नित्ति ऊंचे चढ़ गाव हीं।
दिल्ली के बजार मांहि डोले में हुरम जांहि
पर कूदि ठांहि नीकी गोष्टी करावहीं॥
साथ केनि सोर कीयौ आप इन चेत लीयौ
कूद गये ज्हां के तहां अचिरज पावहीं।
गगन मगन जन सुप दुप नांही मन
गावत सु रामगुन रत रहै नांव ही" ॥५२३॥
(भक्तमाल रा० दा० जी की)

इन पांचों के पांच स्थानों को बड़े थांभे कहते हैं, जिनमें फतहपुर का मुख्य माना जाता है* क्योंकि सुन्दरदासजी यहीं अधिक विराजे थे।

* गंगारामजी के शिष्य स्वामी ख्यालीरामजी का कहना है कि थांभा तो एक ही है जो फतहपुर का है और शिष्यों के थांभे नहीं हैं। फतहपुर का थांभा नारायणदासजी से चला है। परन्तु हम कहते हैं कि रामगढ़, बिसाऊ, चूरू, मोर आदि में जो शिष्य रहे और स्थान बनाए इनको क्या कहेंगे? यह बात संदिग्ध ही है।

और इसी कारण "फतेपुरिया" भी सम्प्रदाय में कहाते हैं। फतहपुर के महन्तों के नाम और परमधाम गमन के तिथ्यादि नीचे लिखे अनुसार ज्ञात हुए हैं:—

(१) सुन्दरदासजी—सांगानेर में मि० का० सु० ८ बृ०। सं० १७४६ वि०।

(२) नारायणदासजी—सांगानेर में मि० पौष सु० १२ शनि। सं० १७३८ (गुरु के जीवन ही में। इनही से फतहपुर का प्रधान थांभा है।)

(३) रामदासजी—चूरू (बीकानेर) मि० अगहन वदि ५ रवि। सं० १७७३। ये प्रायः चूरू में रहते थे।

(४) दयारामजी—चूरू (बीकानेर) मि० चैत बु० १० बुध। सं० १८२४।

(५) सन्तोषदासजी—फतहपुर में। मि० चैत सु० १४ बृ०। सं० १८३६।

(६) लालदासजी-फतहपुर में। मि० काती सु० १२ शु०। सं० १८५७।

(७) वालकृष्णजी – रामगढ (सीकर) में। मि० का० बु० १३ शनि। सं० १८६०।

(८) लच्छीरामजी – रामगढ़ में। मि० आश्विन बु० ८। सं० १९५३।

(९) खेमदासजी अमरसर (पञ्जाब) में, मि० आश्विन ब० १३। सं० १९३४। ये गंगारामजी के कथनानुसार युवराज पद में ही थे। गुरु के साथ अमरनाथ महादेव की यात्रा को गये थे। वापस आते अमरसर में शरीरान्त हो गया। परन्तु ये महन्त हुए यह बात अन्य साधुओं से ज्ञात हुई है। तब ही महन्तों की गणना में नाम है।

(१०) गंगारामजी—युवराज हुए माह सुदि ५ सं० १९३५ में। शिष्य हुए ४ वर्ष की अवस्था में सं० १९२५ में। इनका जन्म पारीक

ब्राह्मण कुल में, गांव हस्तेड़ा के पास भीड़ों का मंढा नया वास (तहसील सांभर निज़ामत तोरावाटी) में, सं० १९२० में हुआ था। पिता डालूराम गोत बरणाजोशी थे। माता इटावे (नि० जयपुर) के कांथड़िया गोत के पारीक की पुत्री थीं। ये दीर्घकाय, सुन्दर, गौरांग, स्वरूप, बहुत सज्जन, पठित, बहुत जानकार और मिलनसार, सरल स्वभाव के थे। सं० १९७६-७७ में जयपुर होकर बम्बई गये थे। वहां से नागपुर आये। नागपुर में, पीठ में अडीठ का गूमड़ा निकला, जिसको जहरी गूमड़ी कहते हैं। अजमेर आये। डाकटरी चीराफाड़ी का इलाज कराने से इनकार किया। निदान उसही के जहर से अजमेर ही में शरीरान्त, मि० पौष शु० १५ रविवार को, सं० १९७७ में हो गया॥। इन पंक्तियों के लेखक से बड़ा प्रेम था। बम्बई जाते समय मिल कर गये थे। और सुन्दरदासजी का पुराणा गुटका ग्रन्थ (जिसके आधार पर यह सम्पादन है) और अन्य ग्रन्थादि तथा पत्रादि सब हमको यह कह कर प्रदान कर गये कि "आप तो इनको सुरक्षित रक्खेंगे मेरे यहां रक्षा का निश्चय नहीं, आप कदापि भी किसी अन्य पुरुष को यह ग्रन्थ और सामग्री न देवें"। और अपने हाथ से सूची लिख कर दे गये थे। इनही के द्वारा और इनही की कृपा से सुन्दरदासजी

॥ गंगारामजी के प्रधान शिष्यों में ख्यालीरामजी हैं। उनके द्वारा ज्ञात हुआ कि उनके गुरु गंगारामजी का उक्त मिती में, ब्राह्म मुहूर्त्त में, परमपद हुआ था। द्वादशे के दिन, मि० माघ वदि ११ बृहस्पतिवार को, फतहपुर, रामगढ, बिसाऊ में ख्यालीरामजी के प्रबन्ध से छहों न्याति के ब्राह्मणों की ब्रह्मपुरी (ब्रह्मभोज) हुई थी। और सतरहवीं के दिन माह सुदि १ मंगलवार को शेखावाटी मण्डल के साधु-सन्तों का मेला (महोच्छव) हुआ था, जिसमें सब साधुओं को एक-एक चादर और एक-एक रुपया भेंट दिया गया था। इन कामों में कई हज़ार रुपया ख्यालीरामजी के हाथ से लगा था। ख्यालीरामजी का कहना है कि स्वामी गंगारामजी जीते जी उनही को युवराज बना चुके थे। परन्तु ख्यालीरामजी ने शिवानन्दजी को ही अपनी इच्छा से चादर उढ़वाई थी।

का बहुत-सा जीवन-चरित्रादि प्राप्त हुआ। ऐसे उत्तम साधु का फिर दर्शण दुर्लभ है! परमात्मा ने उनको परमगति दी होगी!! अफ़सोस वे सुन्दरदासजी के ग्रन्थों को मुद्रित-रूप में देखने की लालसा साथ ही ले गये। यह अपराध हमसे हमारी दीर्घसूत्रता से ही हुआ समझिये। ये स्वामी गंगारामजी महंत लच्छीरामजी के साथ काशी चले गये थे और युवराज पद हो जाने पर भी उनकी सेवा में तत्पर रहे। हम कह चुके हैं कि हम झूंझणूं (शेखावाटी) में नाज़िम थे तब इनसे समागम हुआ था और वहीं उक्त ग्रन्थादि उनसे (सेठ रामदयालजी द्वारा) प्राप्त हुए थे।

स्व० महंत गंगारामजी के कई शिष्य हुए और अब हैं। उनमें शिवानन्दजी अच्छे पण्डित और वैद्य हैं, सो फतहपुर छोड़ कर रामगढ़ में दादूद्वारे में रहते हैं और ख्यालीरामजी आदिक फतहपुर में रहते हैं। सुन्दरदासजी के फतहपुर के स्थान वा मठ का भारी मुकद्दमा कई वर्षों से सीकर में चला रहे हैं। उसका संक्षिप्त हाल पृथक् परिशिष्ट में दिया गया है। इसमें ख्यालीरामजी ने बहुत परिश्रम और उद्योग किया है।

हम यहां पर अब फ़तहपुर के कुछ महंतों के शिष्य परम्परा का कुछ हाल देते हैं।

नारायणदासजी के, रामदासजी और उनके दयारामजी हुए।

(३) दयारामजी:— दयारामजी के शिष्यों में (१) बालकरामजी हुये जो पण्डित थे, उनके बनाये स्तुति आदि के छन्द हैं। उनही के शिष्यों में रामदास। रामदास के दयाराम। दयाराम के सदाराम। सदाराम के राजाराम। राजाराम के दासराम। दासराम के नवनिधिराम। नवनिधिराम (नून्दराम) के मंगलदास। मंगलदास के रामचन्द हुआ। जिनके संवतादि ऊपर मोर गांव के लेखों में दिये हैं। यह थांभा मोर का है। वहां हवेली (पक्का घर) और किंचित वैभव है। दयारामजी के शिष्यों में (२) उदैराम, नरहरिदास, ज्ञान-

दास, बलरामदास, चैनराम, लछमणदास और हनुमानदास तक नाम मिले। यह थांभा रामगढ़ (सीकर) में रहा।

(४) सन्तोषदासजी:— दयारामजी के (४) सन्तोषदासजी। सन्तोषदासजी के बहुत शिष्य प्रशिष्य थे। उनमें अति प्रसिद्ध विद्वान कवि चत्रदास हुए। राघवदासजी की 'भक्तमाल" पर इनकी टीका है। दादूसम्प्रदाय की "प्रणाली" इनकी बनाई हुई है और कई कविताएं और चित्रकाव्य इनके हाथ के हमारे संग्रह में हैं। इन्होंने "भ० मा०" की टीका में अपने तथा अपने गुरु आदिकों के सम्बन्ध में लिखा है, सो ही यहां देते हैं:—

"गुर गनेस जन सारदा हरि कवि सब हित पूजि।
भक्तमाल टीका करूँ मेंटहु दिल की दूजि॥ १॥

इंदव। "पैलि निरंजन देव प्रणांमहि दूसर दादुदयाल मनाऊँ।
सुन्दर कों सिर ऊपरि धरि रु नेह निरायणदास लगाऊँ॥
राम दया करि हैं सुप सम्पति में सुसन्तोषजु को सिष्प कहाऊँ।
राघवदास दया गुर आइसु इन्दव छन्द सटीक बनाऊँ॥ १॥

फिर आगे कई छन्द टीका और उपोद्घात स्वरूप दिये हैं और अपने दादा गुरु सुन्दरदासजी के वर्णन में जो छन्द चत्रदासजीने दिये सो ऊपर लिख आये और ग्रन्थों के नामादि के छन्द भूमिका में दे आये हैं—और ग्रन्थ के अन्त में जो छन्द चत्रदासजी ने दिये हैं उनमें से:—

"प्रथमहि कीन्हीं भक्तमाल सु निरांनदास,
परचा सरूप सन्त नांम ग्राम गाइया।
सोई देपि सुनि राघोदास आप कृत मधि,
मेल्हिया विवेक करि साधन सुनाइया॥
नृगुन भगत और आंनियां बसेप यह,
उनहूं का नांव गांव गुन समझाइया।

प्रियादास टीका कीन्ही मनहर छन्द करि,
ताहि देवि चत्रदास इन्दव वनाइया "॥ ६३७॥

"स्वामी दादू इष्टदेव जाको सर्व जानें भेव,
सुन्दर दूसर सेव जगत विख्यात है।
तिनके निरांनदास भजन हुलास प्यास,
इनहू के रांमदास पण्डित साख्यात है॥
जिनके जु दयारांम कथा कीरतन नांम,
लेत भये सुपरांम और नहिं बात है।
त्रिष्णा अरु लोभ त्याग लयो है सन्तोप भाग,
ऐसे जु सन्तोप गुर चत्रदास तात है"॥६३८॥

+ + + +

संवत एक रु आठ लिपै सुभै पांच रु सातहि फेरि मिलावै। १८५७
भाद्रव की वदि है तिथि चौदसि मंगलवार सुवार सुहावै॥
ता दिन पूरन होत भयौ यह टिप्पण चातुरदास सुनावै।
वांचि विचारि सुनै रु सुनावत सो नर नारि भगत्तिहिं पावै॥६४१॥

इन छन्दों से चत्रदासजी तक यह प्रणाली वनती है। (१) दादूजी। (२) सुन्दरदासजी। (३) नारायणदासजी। (४) रामदासजी। (५) दयारामजी। (६) सन्तोपदासजी। (७) चत्रदासजी। सन्तोपदासजी के अन्य शिष्य-प्रशिष्यों के नाम वंशवृक्ष में ये दिये हैं:—

(वामस्कन्ध में) हीरानन्द। उदैराम। केसोदास। कन्हीराम।
सन्तोपदासजी के अन्य शिष्य:— रामवगस। किसोरदास। केवलदास। परमानन्द। गणेशदास। प्रयागदास।
चिमनदास। गंगाविसन। तथा (दक्षिण तरफ के स्कन्ध में) (चत्रदास) श्रीराम। अमरदास। देवादास। क्षेमदास। प्रभुदास। उत्तमराम। तोताराम। गणेशदास। विजैराम। उत्तमराम। स्योरामदास। रतीराम (जीवित

समाधि ली)। मोतीराम। रमय्याराम। दलेराम। चेतनदास। भूराराम। नानगदास। रामदास। हरिराम। आतमाराम। ये फतेपुर के थांभे के हैं।

लालदासजी:— संतोपदासजी के टीकाई लालदासजी गद्दी बैठे। इनके इतने शिष्य प्रशिष्य वंशवृक्ष में लिखे हैं - बालकृष्ण टीकाई बड़ा। भक्तराम। भावुदास। रामरतन। शम्भुराम। मालिमदास। लायकराम। ख्यालीराम।

बालकृष्णजी:— लालदासजी के बालकृष्णजी टीकाई चेले गद्दी बैठे। इनके शिष्यों के ये नाम दिये हैं:— लच्छीराम टीकाई बड़ा। आसाराम। जैरामदास। मंगलदास। रामलाल। रामकिसन। (कलकत्ते में राणी रासमणी के बगीचे में रहे और वहीं शरीरान्त हुआ।) अमरदास। मलूकदास। केतकीदास। विजैराम।

लच्छीरामजी:— बालकृष्णजी के लच्छीरामजी टीकाई उत्तराधिकारी हुए। ये बड़े प्रतापी, तपस्वी और ज्ञानी हुए। इनके बहुत शिष्य हुए जिनके नामः—१ पेमदास (युवराजपने में यात्रा में मरे बड़े गवैये और लिखारी थे।) २ बड़ा गंगाराम (जो पीछे युवराज व महन्त हुए)। ३ लक्ष्मीदास (ये बड़ेभारी पण्डित हुए। ये काशी में पढ़े थे। कहते हैं कि ये जीवित रहे तबतक ज्योतिःस्वरूपजी और निश्चलदासजी ने गर्ज्जना करने का साहस नहीं किया परन्तु यह केवल अत्युक्ति ही प्रतीत होती है। इनकी संस्कृत रचना में से "दाद्वष्टक" प्रसिद्ध है।) ४ मालिमदास (भाषा का पण्डित, गवैया, गुरुभक्त, ब्रह्मचारी योगी और परमत्यागी हुए।) ५ खूबराम (वैयाकरण पण्डित थे)। ६ स्वरूपदास (वैयाकरण, लिखारी थे एकाक्षी भी थे)। ७ कल्याणदास (लिखारी थे) ८ गुलाबदास (पाक विद्या में चतुर और लिखारी।) ९ बुधराम (गवैया, लिखारी, पाक विद्या में पटु, सीने में चतुर।) १० सेवादास। ११ छोटा लक्ष्मीदास। १२ पुरुषोत्तमदास। १३ हीरादास। १४ प्रीतमदास। १५ उदैराम। १६ जुगतराम। १७ नरोत्तमदास। १८ धनीराम। १९ संपतराम।

२० आसाराम वड़ा। २१ आसाराम छोटा। २२ गंगाराम वड़ा। २३ गंगाराम छोटा। २४ मगनीराम। २५ हरिदीनदास। २६ लिछमणदास।

पेमदासजी:— वंशवृक्ष में खेमदासजी को महन्तों के क्रम में दिया है और उनके शिष्य भी लिखे हैं। शिष्यों के नाम ये हैं:--दयालवगस। हरभजन। रामनारायण। वालावगस। शिवनन्द। ये महन्त हुए भी थे। परन्तु यात्रा में मर गये थे।

गंगारामजी:— लच्छीरामजी ने पेमदासजी के अनन्तर गंगारामजी को युवराज पद दे दिया था। फिर वे काशीवास को चले गये परन्तु गंगारामजी साथ ही रहे। गुरु के परमपद पीछे गंगारामजी महन्त हुए। गंगारामजी के वहुत शिष्य हुए और हैं जिनके नाम वंशवृक्ष के अनुसार:—क्षेमानन्द। लक्ष्मीप्रकास। गरीवराम। वदरीदास। ५ दौलतराम अवधूत। रघुवरदास अवधूत। शिवरामदास अवधूत। महाराम। रतीराम। १० वीनतीदास। हरिप्रकाश। गोपालदास। रामप्रताप। जुगतराम। १५ महानन्द। दौलतराम दूसरा। चेतराम। रामभक्त। ठण्डीराम। २० नरसिंघदास। भोलाराम। निरञ्जनदास। हरिराम। आत्माराम। २५ प्रसोत्तमानन्द। तेजानन्द। वुधराम। रमताराम। केवलराम। ३० लिछमणदास। शिवानन्द और ख्यालीराम भी।

गंगारामजी के देहान्त के अनन्तर शिवानन्दजी ने चादर ओढ़ी। परन्तु वे अव रामगढ़ में ही रहते हैं और फतहपुर में ख्यालीरामजी ही महन्त हैं जैसा कि ऊपर कहा गया। यद्यपि ख्यालीरामजी ने चादर नहीं ओढ़ी थी।

महंत लीलाप्रदीप ग्रन्थ:— उपरोक्त लालदासजी के शिष्य वालकृष्णजी हुए। ये वड़े उत्तम चरित्र, उदार और तपस्वी थे। देशाटन और यात्रा के वड़े प्रेमी थे। जहां गये वहां खूव ही साधु-सन्तों को तृप्त कर महोत्सव किये और नाम पाया। दीन प्रतिपाल

होने से ये "पांगलापाल" कहाते थे। सैंकड़ों साधु शिष्यादि साथ में मण्डली रूप में रखते थे। भेंट चढ़ावा, उनके चमत्कारी गुणों के कारण आता था। सब परमार्थ में लगा दिया करते थे। हरिद्वार, काशी, मथुरा, वृन्दावन, नरायणे, सीकर, रामगढ़, मेडता, अयोध्या. वागडदेश इत्यादि में जहां गये ब्रह्मभोज, साधु जिमनार यथेच्छ करते। दान दक्षिणा, भेंट, कपड़े बांटते। ये बड़ी अवस्था में संवत् १८९० में, मिती कार्तीक वदि १३ शनिवार को, एक पहर दिन चढ़े, रामगढ़ (शेखावाटी) में सुख शान्ति पूर्वक परमगति को प्राप्त हुए। बड़े ठाटबाट, धूमधाम से चलावा हुआ। द्वादशे को ब्रह्मपुरी जिमाई गई और सतरहवें दिन को साधुसन्तों का महोच्छव हुआ। चादर ओढ़ने के दिन सीकर के राव लछमणसिंहजी भी स्वयम् आये थे। ठिकाणे की तरफ़ से दुशाला शिष्य लच्छीरामजी को उढ़ाया गया। सब सन्तों को आठ-आठ आने (अठन्नी) बांटे गये। इनके सेवक रामगढ़ के सेठ पोद्दार थे। उनकी पूरी सहायता रही। इसही का वर्णन "आत्मविहारी" साधु कवि ने किया है और इस कविता का नाम "महन्त लीलाप्रदीपन" रक्खा है। जो हमारे संग्रह में है। कहते हैं कि इसही आत्मविहारी ने एक "दादूचरित्र" भी लिखा है।

यहां तक इतना सा—जो कुछ हमको प्राप्त हुआ वृत्तांत शिष्य प्रशिष्यों का दिया गया। सम्प्रदाय का अधिक वृत्त सम्प्रदायवालों को ही ज्ञात रहता है। उन लोगों से अन्य पुरुषों को मिले और कोई उसको लेख द्वारा प्रगट करे तब ही लोक में विख्यात हो सकता है। इस संप्रदाय सुन्दरदासजी की में अन्य कई योगी, तपस्वी, ज्ञानी, पण्डित, कवि, करामाती, पहुंचवान, कलावान, बलवान, भाग्यवान सन्त महंत वा साधु हुए ही होंगे। परन्तु जब स्वयम् सम्प्रदाय वाले ही न बतावें वा उनमें ही जाननेवालों का अभाव वा न्यूनता हो तो हम या कोई भी अन्य पुरुष क्या लिख सकता है। जितना जाना उतना बखाना ॥

थंभे वा स्थानः यहां सुन्दरदासजी के वा उनके शिष्य-प्रशिष्यों के स्थापित किये हुए अस्थलों वा स्थानों के नाम देते हैं जो हमको, स्वामी गंगारामजी से वा अन्य साधुओं वा प्रसंग से, ज्ञात हुए:—

१—रियासत जयपुर में:—(क) निज़ामत शेखावाटी में:— (१) फतहपुर। (२) रामगढ़। (३) सीकर। (४) लछमनगढ़। (५) बिसाहू। (६) नूंवां। (७) शेखाजी की छत्री*। (८) झूंझणूं। (ख) निज़ामत सवाई जयपुर में:—(९) जयपुर। (१०) आंवेर। (११) सांगानेर।—(ग) निज़ामत मालपुरा में:—(१२) मोर।

२—रियासत जोधपुर में:—(१) जोधपुर। (२) नाडसर। (३) कुरसांणां।

३—रियासत बीकानेर में:—(१) चूरू। (२) डीडवांणां। (३) रतननगर।

४—इलाक़ा इंग्रेजी में:—(१) दिल्ली। (२) आगरा। (३) मथुरा। (४) काशी। (५) विहाणी। (६) लाहोर।

इन स्थानों में स्वामीजी स्वयम् (जयपुर को छोड़ कर जो पीछे बसा था) सर्वत्र गये थे और कई में बहुत-बहुत समय तक रहे भी थे, जैसे सांगानेर, कुरसांणां, डीडवाणां, फतहपुर आदिक। कुछ स्थान (मकान) स्वामीजी की प्रेरणा वा सेवकों के आग्रह से बने थे, शेष में शिष्य-प्रशिष्यों ने स्थान बनाये। आगरे वा एक दो और स्थानों के अस्थलों के पते नहीं लगे। अच्छी तरह खोजने से पत्ता लग सकता है।

---

* शेखाजी शेखावतों के विख्यात पूर्वज हुए हैं। उनही से शेखावत और शेखावाटी नाम पड़े हैं। शेखाजी की छत्री की पूजा वा सम्हाल फतहपुरिया सुन्दरदासोत महन्तों के ही सुपुर्द है।

उपरोक्त स्थानों के अस्थलों के अतिरिक्त और भी गांवों वा शहरों में मकान होंगे। परन्तु हमको कुछ हाल ज्ञात नहीं हो सका। फतहपुर, डीडवाणां, सांगानेर, लाहोर, कुरसांणा आदिक स्वामीजी को बहुत प्रिय थे। इनमें वे रहे भी बहुत-बहुत समय तक। काशी से आये तब कुछ दिन फ़तहपुर में केजड़ीवाल महाजनों के यहां भी रहे थे। कहते हैं कि दो एक बार स्वामीजी घौसा भी गये थे और टहलड़ी में ठहरे थे। परन्तु बहुत दिन नहीं।

सुन्दरदासजी ने अपने माता-पिता की सुध कभी ली थी या नहीं, इसका हाल मालूम नहीं। न यह ज्ञात हुआ कि उनके माता-पिता का देहान्त कब हुआ। हमारे विचार में सम्प्रदायवालों को वा सेवकों को चाहिये कि घौसा में और सांगानेर में उन स्वामीजी की यादगार में अच्छे स्थान बनवाएं, जो हिन्दोस्तान के अति विख्यात साधु तथा भाषा के विशेष गणना और पद के कवि हुए हैं।

स्वामी ख्यालीरामजी (गंगारामजी के शिष्य) कृत भी छन्द हैं। इनसे कई विशेष बातें ज्ञात होती हैं और ख्यालीरामजी द्वारा ही महंत गंगारामजी के महोच्छव आदि का वृत्त ज्ञात हुआ और ख्यालीरामजी से ही ज्ञात हुआ कि बालकराम प्रथम सन्तदासजी का शिष्य था, उनके मरने के पीछे स्वामी सुन्दरदासजी से विद्या और ज्ञान प्राप्त किया था। इससे सुन्दरदासजी को भी गुरु मानता था। इसीसे भक्तमाल में यह छन्द आया है: —

"करैं हंस ज्यूं अंस सार अस्सार निरारै।
आन देव कौं त्यागि येक परब्रह्म सम्हारै॥
किये कवित पटतुकी बहुरि मनहर अरु इन्द्व।
कुंडलिया पुनि साषि भक्ति बिमुषनि को निंदव॥
गायौ गुरुपय मैं निपुन सतगुरु सुन्दर नाम।
दादू दीनदयाल कै नांती बालकराम" ॥ ५२५ ॥

आकृति प्रकृति और स्मारक चिन्ह वा पदार्थ।

ऊपर जो कुछ वृत्त जीवन चरित्र सम्बन्धी दिया गया उसके पढ़ने से तथा स्वामीजी के ग्रन्थों के अवलोकन से स्वामीजी के प्रति जो कुछ भावना वा ध्यान पाठकों का बंधा होगा वह स्वगत और व्यक्तिगत तत्तत् आत्माओं में तो वरतेगा वा वरता ही होगा। परन्तु हम भी स्वामीजी की आकृति और प्रकृति के विपय में पूछताछ, अनुसन्धान, चित्रादि वा अनुमान प्रमाणादि से जान सके हैं उसको देते हैं।

स्वामी सुन्दरदासजी शरीराकृति में भी यथा नामा तथा गुणा थे। आकृति— दीर्घकाय, सुढार अंग, गौर वर्ण, लम्बी-लम्बी भुजाएं, बड़ा शिर, विशाल ललाट, चमकदार कमल सदृश नेत्र, गम्भीर और मधुर मंद मुसक्यान लिए मुखारविन्द, दयामय और प्रीतिपूर्ण दृष्टि, चेष्टा शान्त और ध्यानमग्न, योगीयोग्य विशाल वक्षस्थल, चिकना कोमल चमकीला शरीर, स्वच्छ शुद्ध निर्मल वस्त्र (कोपीन, चादर, टोपा), मस्तक पर थोड़े मुलायम केश (इन्हें कभी रक्खे थे, फिर मुण्डन ही कराते रहते थे), कृपोदर, दीर्घकर्ण, हथेली और पगथली पीन और रक्त पूर्ण सुन्दर कमलपत्र सदृश, दर्शणीय मूर्त्ति, दिव्य भव्य मुखाकृति, दर्शणों से सुख और प्रीति भक्ति उपजै। योगी और तपस्वी होने से योग-वर्णित लक्षण उनके वपु पर वर्त्तते थे।※

सुन्दर स्वामी का स्वभाव भी सुन्दर था। शांत, सरल, निर्मल प्रकृतिः— प्रकृति थी। मधुरभाषी, चुटीली चटकीली मर्म और अर्थ भरी थोड़े शब्दों में वाणी बोलते, सदा मधुरता टपका करती, सबको सुखदायी, प्रेम-स्वभाव, उदारता सम्पन्न, परोपकार परायण, संयमी,

※ काशी के स्थान के प्रकरण में हम दिखा चुके हैं कि काशी के स्थान के चित्र और उसही की प्रतिलिपि फतहपुर में विद्यमानवाली में जो सुन्दरदासजी का दादूजी के साथ अकबर के सामने होना लिखा है सो असंगत है।

मिताहार, मितव्यवहार, युक्त चेष्ट ध्यानमग्न, स्वच्छताप्रेमी, सदाचाराभ्यासी, शांत प्रकृति, बालकों, भक्तों, सेवकों और मित्रों को देख कर बहुत प्रसन्न होते। बालकों से बात करने में प्रसन्न होते, कभी-कभी उनको प्रसन्न करने को चटकीली कविता सुना देते—जैसे "रामहरि रामहरि बोल सूवा" "मूसा इतउत फिरै ताक रही मिनकी" इत्यादि। 'सुन्दर के दो उन्दर दूधें तीजी दूधें कोल" इत्यादि। ध्यान भजन और अध्ययन में निरन्तर रत रहा करते, ज्ञान चर्चा, भगवत् चर्चा, कविता और लिखने पढ़ने में कभी नहीं थकते। जो एक बेर लिख दिया उसे प्रायः काटाकूटी नहीं करते। आशु कवि तो थे ही। सभा में निर्भीक होकर बोलते और उनके प्रवचन को सुन श्रोता वा प्रतिवादी मुग्ध वा स्तब्ध हो जाते। स्वभाव के स्वतन्त्र थे। किसी की कुछ परवाह न करते। तब भी किसी के चित्त को कष्ट पहुंचने की बात वा प्रसंग ही नहीं लाते। सदा प्रसन्न मुख रहते थे। बारीक हंसोकड़ेपन की बात करने का स्वभाव था। कथा बहुत सरस, अर्थ भरी और मार्मिक मनोग्राही होती। भगवत् प्रेम के प्रसंग में नेत्रों से चौधारें चल जाते। गुरुभक्तिपरायण और सन्तों के बड़े भावनाधारी थे। आबालब्रह्मचारी थे। स्त्रीचर्चा से अत्यन्त ग्लानि और क्रोध करते। शास्त्र और गुरुवचन में अटल श्रद्धा रखते थे। अद्वैत विद्या और अध्यात्म शास्त्र से अत्यन्त गहरा प्रेम था। बड़ी तीव्र दार्शनिक बुद्धि से सम्पन्न थे। विद्वानों, कवियों, ज्ञानी सन्तों के उदार-भक्त थे। गायन से भी बड़ा हार्दिक प्रेम था। गाते भी अच्छे थे। पदरचना भी अलौकिक थी। गाते-गाते प्रेमरस में डूब जाते थे। विरह से विह्वल हो जाते थे। भगवन्निष्ठा अगाध थी। इत्यादि स्वामीजी के स्वभाव की अनेक गुणावली है जिसका वर्णन असंभव ही है।

स्वामीजी की कुछ गुणावली उपरोक्त मोहनदासजी के उत्तर पत्र में भी आ गई है।

स्मारक चिन्ह वा पदार्थ।

स्मारक चिन्ह वा पदार्थः— स्वामी सुन्दरदासजी का अमर नाम रखनेवाली उनकी वह पुस्तक है जिसके आधार पर यह संपादन हुआ है। जब तक संसार में हिन्दी भाषा रहेगी स्वामीजी की विद्या, कीर्त्ति और अध्यात्म की जानकारी बनी रहेगी। इससे पूर्व कोई प्रतिलिपि हुई होगी तो वह तथा इसके पीछे पूर्ण वा खण्ड रूप में जितनी भी लिखी वा मुद्रित हैं वे सब ही बनी रहैंगी तब तक उनका स्मरण दिलाती रहैंगी

(२) द्यौसा में उनकी जन्मभूमि और स्थान के खंडहर के अवशिष्ट भी प्रथम स्मृति है जिस पर उनके भक्तों, सेवकों वा अनुयायियों द्वारा उपयुक्त स्मारक बनना चाहिए।

(३) काशी में उनके निवासस्थान पर "दादूद्वारा" वा दादूमठ बना हुआ है।

(४) फतहपुर में उनका चौबारा, गुफा (भहरा) कूप इत्यादिक।

(५) चूरू में उनका पलंग जो पूजा जाता है। और जाजम भी।

(६) फतहपुर में उनके वस्त्र – टोपा रेशमी रुईदार, चादरैं (जिनके चित्र छापे गये हैं) और कुंजी आदि अन्य पदार्थ जो वहाँ विद्यमान और सुरक्षित हैं।

(७) सीकर में उनके थांभेवालों के पास गादी, तकिया आदि (जिनके दर्शन हमने भी बहुत वर्ष पहिले किये थे)।

(८) मोर में उनका चित्र तथा मकानात और बारहदरी में शिलालेखादि। (जिनकी नक़ल ऊपर दी गई। ये स्थान हमने स्वयम् मोर जाकर देखे हैं।)

(९) रामगढ़ आदिक स्थानों में (जिनकी नामावली ऊपर दी जा चुकी है) उनके स्थापित वा शिष्यादि के बनाए हुए अस्थलादि।

(१०) स्वयम् सुन्दरदासजी की सम्प्रदाय के महंत, साधु, पण्डित ज्ञानी शिष्य-प्रशिष्य—जो सदा स्वामी सुन्दरदासजी के कहलाते हैं और कहलाएंगे और उनका भक्तिभाव से निरन्तर स्मरण कीर्त्तन करते हैं और करते रहेंगे। यह स्मारक (यादगार) कोई छोटी चीज़ नहीं है। जबतक सम्प्रदाय के साधु रहेंगे स्वामीजी के स्मारक बने रहेंगे।

(११) इनके अतिरिक्त और भी कोई पदार्थ वा चिन्ह जो कहीं भक्तों वा अनुयायियों के पास रक्षित होंगे, मिलने पर प्रगट होंगे। यथा उनके पत्र मोहनदास के नाम जो ऊपर उद्धृत हो गये। इत्यादि।

(१२) सांगानेर में समाधि—चबूतरे पर छत्री और शिलालेख थे, जो दुष्टों ने ध्वंसित कर दिये परन्तु उनकी नकल हमने रक्षित की इसमें चरणपादुका और मृत्युतिथि आदिक हैं। यह भी बड़ाभारी स्मारक है। इसको पुनः निर्मित कराके स्थापन कराने की तो बड़ी आवश्यकता है। कोई भक्त, सेवक, थांभायत इसका उद्योग अवश्य करैं।



परिशिष्ट (क)

सुन्दरदासजी का अन्य विद्वानों द्वारा वर्णन।

सुन्दरदासजी की जीवनी सम्बन्धी वर्णन अधिकतर (१) जनगोपाल कृत दादूजन्मलीला परिचय। (२) राघवदास कृत भक्तमाल सटीक। (३) माधवदास कृत दादू जीवन चरित्र। (४) चत्रदास कृत प्रणाली छन्द। (५) महंतलीलाप्रदीप। (६) मोहनदास आदि के पत्रादि। (७) शिक्षादर्पण। (८) फतहपुर के पत्रे और लेख। (९) मोर और सांगानेर के शिलालेख। (१०) फख़्रुत्तवारीख़। (११) फतहपुर के इतिहास। (१२) अन्तरंग प्रमाण ग्रन्थों से। वा मौखिक (इनमें) हैं। जिनसे अवतरण यथा स्थान दिये गये ही हैं। उनकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है। इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानों, कवियों आदिकों ने सुन्दरदासजी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उनको देकर उनपर आवश्यक टिप्पण दिया जाना आवश्यक समझते हैं। इस लेख को पृथक् परिशिष्ट रूप में सुविधा निमित्त ही रखते हैं।

(१) मंगलदास चारण कृत "भक्तनाम समरणी" में आया है:—

"केवल, कूबा, रांका वांका, दास धँना, रैदासा।
नामहि पिया कबीर, नामदे सब भई पूरन आसा॥ २३॥
सजन, फरीदा, वपना, सैंना, रज्जब, सुन्दर, दादू।
नानग, जनमल्रूक, कर्मानन्द सबै नाम रस स्वादू" ॥२४॥

यह भक्तनामावली ३२ छन्दों में हमारे संग्रह में, स्व० बारहठ बालाबक्षजी के हाथ की प्रायः शुद्ध सं० १९७२ की लिखी हुई है। इसके

अन्दर भक्तों के नाम भक्तमाल के अतिरिक्त रचयिता के पूर्ण अनुभव से भी लिखे गये हैं। चारणों में जो भक्त (स्त्री वा पुरुष) हुए हैं उनमें के भी नाम हैं। छन्दों की रचना सुडौल और सरस है। प्रायः बारहठ इसे कंठाग्र रखते हैं और नित्य पाठ करते हैं। रचयिता श्रीकृष्ण (विहारी) के भक्त थे और उन्होंने नाम की महिमा ही कही है।

(२) "मिश्रबन्धुविनोद" भाग १ व २ में:—

पृ० १०३ पर उत्कृष्ट कवियों में गणना सुन्दरदासजी की है।

पृ० १२० पर सुन्दरदासजी को दादूजी के अनुयायियों में "सर्वोत्तम" कहा है।

पृ० १२४-२६ पर सुन्दरदास को "सुकवि" और दादूदयाल की संप्रदाय में "सर्वोत्तम" कहा है।

पृ० ४२७ (भाग २ में) "सुन्दरदास (इत्यादि) ने हिन्दी के पूर्वालंकृत भाग को पुनीत किया है।"..."सुन्दरदास ने दादूपंथ को उन्नत किया है।"

पृ० ४३१ पर "भक्तकवियों में सुन्दर (ध्रुवदास, नागरीदास आदि) थे। इनने भाषा को अलंकृत करने में बल लगाया था। भाषा श्रुति-मधुर और सुष्टु होने लगी। ये कवि भाव बिगाड़ कर भाषालालित्य लाने का प्रयत्न नहीं करते थे।"...इत्यादि श्लाघाएं की हैं।

परन्तु—पूर्वप्रचलित भ्रमात्मक वृत्त भी लिख मारा है—सुन्दरदासजी (दूसर की जगह पर) "दूसर बनिया" लिख दिया है! यह बड़े ही आश्चर्य और दुःख की बात है कि इतने विद्वान और भाषा के आचार्यों की सुलेखिनी से ऐसी भारी भूल टपक पड़ी!! इससे बढ़ कर भयानक भूल यह है कि जो निष्कर्ष निकाला गया है कि उन बंधुत्रय ने महात्मा कवि शिरोमणि स्वामी सुन्दरदासजी को और कुछ न बन पड़ा तो "तोप" कवि की श्रेणी ही में ले जाकर बिठाया है! कितने क्लेश विशेष का आघात पतित हुआ है!!

और स्वामीजी के ग्रन्थों के नामों में "रुक्मांगद की कथा" और "एकादशी कथा" तथा "विचार माला" (काशी की ना० प्र० सभा के खोज के अनुसार) ग्रन्थ भी लिख दिये हैं !! महदाश्चर्य है कि विना ही अनुसन्धान के ऐसी भारी भूलें लिखी गई हैं !!!

जो अंश इन उत्कट विद्वानों ने, पं० चन्द्रिकाप्रसादजी की "पंचेन्द्रिय चरित्र" की भूमिका वा वेल्वेडीयर प्रेस के सुन्दर-विलास की भूमिका से (जिसमें हमारे अनुसंधान से चरित्र लिखा गया है) विवरण लिये हैं, वे ठीक और प्रशंसनीय हैं। शेष संशोधनीय हैं।

(३) "शिवसिंह सरोज" में पृ० ४५३ पर लिखा है कि "सुन्दरकवि २ रे, दादूजी के शिष्य मेवाड़ देश के निवासी थे। इनकी कविता शांतरस में कुछ अच्छी है, सुन्दरसांख्य नाम एक इनका वनाया हुआ ग्रन्थ भी सुना जाता है"। इस लेख में तीन भूलें प्रत्यक्ष हैं—(१) मेवाड़ देश के निवासी। सुन्दरदासजी न तो मेवाड़ के न मारवाड़ के निवासी थे, वरन ढूंढाहड़ देश के अवश्य थे। (२) कुछ अच्छी लिखना ऐसे लेखक को सोहता नहीं। "कुछ" की जगह "वहुत" शब्द का प्रयोग सराहनीय होता। (३) सुन्दरसांख्य उनका ग्रन्थ होना सुन कर लिखना भी अयोग्य हुआ। ऐसा कोई ग्रन्थ ही सुन्दरदासजी ने नहीं लिखा। उनके तो उत्तम ग्रन्थों में "ज्ञानसमुद्र" और "सवैया" (प्रगट नाम सुन्दर-विलास) हैं। इनमें सांख्य का वर्णन अवश्य है। "सुना जाता है" लिख कर सुनने का प्रमाण भी न देना लेख को एक प्रकार निर्वल करता है। सिवाय इसके कि दादूजी के शिष्य थे, औद सव वातें सरोज में गोलमटोल और ढिल्लम ढिल्ला ही लिखी गई। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि शिवसिंहजी वा उस प्रान्त में सुन्दरदासजी का हाल जानने की कुछ चेष्टा नहीं की गई थी। यों ही अटकलपच्चू जो मिला या सुना उस समय लिख मारा। जो छन्द उनके दिये हैं उससे ग्रन्थ का पढ़ना प्रतीत होता है।

(४) "भाषाकाव्य-संग्रह" पं० महेशदत्त संगृहीत के देखने से पता

चला कि सरोजकार ने इनही की नकल की है। क्योंकि "सरोज" तो सं० वि० १९३४ का लिखा हुआ है और यह "भाषाकाव्य संग्रह" सं० वि० १९३० का लिखा हुआ है। अर्थात् शिवसिंहजी ने चार वर्ष पीछे "सरोज" बनाया तब महेशदत्तजी की किताब से अपने ढंग पर नकल उतारी और इस ग्रन्थ का कुछ भी हवाला नहीं दिया। "भाषाकाव्य संग्रह" में पृ० २८४ पर यों लिखा है:—"सुन्दर कवि···ये नेवाड़ देश नरैना ग्राम के निवासी दादू बेहना के शिष्य थे। ये वही दादू हैं कि जिनके नाम से दादूपन्थियों का मत हुआ है। ये सुन्दरजी बड़े सिद्ध हुए थे। इन्होंने सुन्दरसांख्य नाम ग्रन्थ बनाया"। और पृ० २४० से २४६ तक (सवैया ग्रन्थ से) सांख्य वर्णन शीर्षक देकर तेरह छन्द दिये हैं। परन्तु "सरोज" कार ने महेशदत्त के दिये हुए उद्धृत छन्दों में से एक भी नहीं लिया। इससे हमारा लिखना ठीक है कि उन्होंने भी ग्रन्थ पढ़ा अवश्य था। नेवाड़ शब्द मेवाड़ की अशुद्ध लिखाई वा छपाई की भूल है। सरोजकार ने नरैना लिखना छोड़ दिया। परन्तु महेशदत्त की तो बहुत भूलें है जिनको पाठकगण स्वयम् विचार लें।

(५) "सूरसागर" की भूमिका में बाबू राधाकृष्णदासजी ने "सरोज" की बिलकुल नकल की है और सुन्दरदासजी को "मेवाड़ देश" के निवासी और "सुन्दरसांख्य" का कर्त्ता आदि उसी तरह लिखा है।

यों ये लोग, (एक से दूसरे ने नकल उड़ा-उड़ा कर) "चूकते चले गये"। इनको खोज करने का परिश्रम कुछ भी नहीं करना पड़ा। एकने दूसरे को प्रमाण मान लिया। इसही से वे भूलें दौड़ती चली आईं। ऐसा करना, इतिहास के सिद्धान्त के विरुद्ध होने से, पदार्थ के लिए बहुत हानि-कारक हो जाता है। परन्तु हम ऐसे-ऐसे विद्वानों की समीक्षा में अधिक क्या लिख सकते हैं ?

(६) "मदनकोश" पृ० २६९ पर—लल्लूलालजी के ग्रन्थों की नामावली में सं० ६ पर लिखा है—"सुन्दरदास के प्राचीन भाषानुवाद से

सिंहासन वत्तीसी का खड़ी हिन्दी बोली में अनुवाद"। परंतु यह नहीं लिखा कि कौनसा सुन्दरदास यह था। हमारे स्वामी सुन्दरदासजी ने कोई भाषानुवाद सिंहासन वत्तीसी का नहीं किया। यह बात पाठकों की जानकारी के लिए ही हम लिखते हैं कि इस कोश में देख कर वे भ्रम में न पड़ जांय। "मिश्रवन्धु विनोद" में लल्लूजी के ग्रन्थों में "सिंहासन वत्तीसी" भी लिखी है, परन्तु उसे सुन्दरदास का अनुवाद नहीं लिखा।

(७) "सुन्दरदासकृत काव्य"— इस नाम से स्वामी सुन्दरदासजी के कई ग्रन्थों को 'तत्वविवेचक प्रेस" वम्बई ने सं० वि० १९४७ (ई० सन् १८९० में छापा है। उसकी भूमिका में सुन्दरदासजी को "यह महात्मा जाति के ब्राह्मण थे" ऐसा लिखा है! सो नितान्त वड़ी भारी भूल की है! स्वामीजी खण्डेलवाल वैश्य बूसर गोत के थे सो जीवन-चरित्र में प्रमाण सहित लिखा गया ही। और इसही भूमिका में जो सुन्दरदासजी का अरबी, फ़ारसी आदि में ग्रन्थों का रचना लिखा है सो भी निर्मूल अनुमान मात्र ही है। क्योंकि उन्होंने कोई ग्रन्थ अन्य भाषाओं में नहीं रचे। और जो अष्टक उनके प्राप्त हैं और इस ग्रन्थावली में आ चुके हैं इनके अतिरिक्त और कोई अष्टक भी नहीं रचे, यद्यपि उक्त भूमिका में अन्य ऐसे अष्टकों का रचना अनुमान से वा सुना सुनाया लिख दिया है। और सुंदरदासजी की कविता के सम्बंध में जो इस भूमिका में लिखा है वह कुछ ठीक है। यथाः—"सुंदरदासजी की कविता और छंद आबालवृद्धों को वहुत प्रिय हैं, क्योंकि इसमें शब्द रचना वहुत उत्तम है, औ वो छोटे और सुलभ शब्दों में वनाये हैं, औ अर्थ भी गम्भीर रखा है। इस ग्रन्थ में भक्ति, ज्ञान औ वैराग्य ये विषय अत्यंत खुलासे से वर्णन किये हैं, औ ज्ञान प्रकरण में सांख्य, योग औ वेदांत इन विषयों का क्रम से ऐसा वयान किया है कि तिसके पढ़ने से मुमुक्षजनों को वहुत सहज रीति से आत्म-ज्ञान प्राप्ति का मार्ग मालूम होवै। जिन पुरुषों को सद्गुरु का अनुग्रह प्राप्त हुआ है उनकूं उपदेश के दृढ़ीकरण के अर्थ यह ग्रन्थ परम उपयोगी है। इसलिये यह

ग्रंथ भाविक, मुमुक्षु, औ ज्ञानी लोकों को अत्यंत उपयुक्त है, औ इसीसे यह संग्रह मतांतरवादी जनों को भी मान्य हुवा है, औ सब लोक इसको अंगीकार करते हैं, औ दुःख की निवृत्ति औ परमानंद की प्राप्ति के अर्थ उसकूं नित्य पढ़ते हैं। इसलिये सर्वजनों को यह प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ का संग्रह अवश्य करके उसका नित्य पठन करें, अपना इस दुनिया में आने का हेतु सफल करें औ परमानंद को प्राप्त होवैं"। (तुकाराम तात्या)

(८) "सुन्दरविलास ज्ञानसमुद्र---सुन्दरकाव्य"— "निर्णयसागर प्रेस" मुंबई में शरीफ स्वालेहमुहम्मद सूफ़ी वेदान्ती का प्रकाशित और ब्रह्मनिष्ठ पं० पीताम्बरजी का सम्पादित सं० वि० १९४७ का (सन् १८९१ का) छापा (पाकेट साइज़ का) है। उसकी प्रस्तावना में ऐसा लिखा है:—"इस ग्रन्थ के कर्त्ता दादूपन्थी साधु श्री सुन्दरदासजी बड़े महात्मा पुरुष और पण्डित भये हैं। तिनका जन्मचरित्र इस पुस्तक में लिखने की हमारी इच्छा थी। परन्तु ताका वृत्तान्त यथास्थित हमकूं मिल्या नहीं। तातें सो लिख्या नहीं है। इस महात्मा पुरुष ने वेदान्त विषय पर बहुत ग्रन्थ किये हैं। ऐसे सुन्या जावै है। परन्तु सो इस देश में अप्रसिद्ध हैं। श्री सुन्दरविलास, ज्ञानसमुद्र, ज्ञानविलास और दश अष्टक (तथा आगे के संस्करणानुसार २६ रागों के १०० पद और दो चित्रकाव्य और कुछ लघु ग्रन्थ तथा कुछ साखी के छन्द – ज्ञानविलास नाम से) दिये गये हैं।" इत्यादि बातें लिखी हैं। और ग्रन्थों की प्रशंसा भी की है। कविता को रसिक(रसभरी) कहा है। सवैया को "कोई भी राग के ध्रुवपद के गायन में उपयोगी होवै है। इसी हेतुतें इस छन्द का चतुर्थ पदांस टेक की न्याई कहूं-कहूं छन्द की आदि में रखने की पद्धति देखी है।" ऐसा लिखा है। इस पर हमारा यह कहना है कि जितने ग्रन्थ इस "सुन्दरग्रन्थावली" (हमारे सम्पादन में) आए हैं इनसे अधिक और कोई ग्रन्थ सुन्दरदासजी ने नहीं रचे थे और सवैया का चतुर्थ पदार्ध छन्द के पूर्व में रखने का हेतु मान्य हो सकता है। और सं० ७ तत्वविवेचक का

संस्करण सं० ८ निर्णयसागर के संस्करण से पहिले का नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि इस (सं० ८ वाले) में उस (सं० ७ वाले) का हवाला दर्ज नहीं हुआ है, उलटा इसका उसमें हवाला है। पं० पीताम्बरजी की विपर्यय अंग की टीका को यथावत हमने लेली है सो ग्रन्थ में देखने से विदित ही होगा। इस संस्करण में जीवनचरित्र कुछ भी नहीं दिया है।

(६) "दादूदयाल की बानी"—इलाहाबाद के प्रसिद्ध वकील पं० बालेश्वरप्रसादजी बी० ए० एल-एल बी० सम्पादित और उन्हीं के "बैलवेडीयर प्रेस" में सं० वि० १९७१ (ई० सन् १९१४) की छपी की भूमिका में "दादूदयाल के जीवनचरित्र" शीर्षक लेख में, पृष्ठ २-३ तथा ७ पर जो अद्भुत और अत्यन्त असत् तथा अशिष्ट बातें लिखी हैं उनको बता देना और उनकी समालोचना कर देना, तथा उनके विषय में विद्वान लेखक के साथ हमारी लिखापढ़ी और उनका क्षमा के साथ संशोधन हुआ, सो सब पाठकों की जानकारी के लिए देते हैं:—

(क) पृ० २-३ पर वहां संपादक (श्रीबालेश्वरप्रसाद) ने लिखा है:—

"दो एक दादूपन्थी ऐसा कहते हैं कि दादूजी रुई का व्यपार रुपया उधार लेकर करते थे और उनके महाजनों के नाम, जिनसे वह रुपया उधार लेते थे, सुन्दरदास व निश्चलदास था!" व्योपार में टोटा पड़ने पर इन दोनों व्यापारियों ने तकाजा किया तब दादूजी ने देने से इनकार किया उस पर महाजनों ने कहा कि रुई में आग लगा दो। दादूजी ने आग लगा दी। तब राख में स्वर्ण का पासा निकला। इस चमत्कार को देख "महात्माजी के चरणों पर गिरे और उन्हें अपना गुरु धारण किया।" "दोनों मुख्य चेलों में गिने जाते हैं और सुन्दरदासजी की कविता जगतप्रसिद्ध है।" धन्य! खूब वे दो एक दादूपन्थी थे जिन्होंने यह निर्मूल और हास्यास्पद घडंत वकीलजी को कही। यदि दादूजी के चरित्र को कुछ पढ़ा होता तो इन अशुद्ध बातों को लिखने की नौबत ही नहीं आती। दादूजी सांभर में अपनी जवानी के वर्षों में (सं० १६२५ से १६३५ तक)

देर थे फिर आंबेर आ गये थे। और सुन्दरदासजी सं० १६५८ या ५६ में द्यौसा में शिष्य हुए थे। जैसा कि ऊपर जीवनचरित्र में वर्णन कर दिया गया। और स्वामी पंडित निश्चलदासजी तो अभी वर्त्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में गये हैं और अति प्रसिद्ध हुए हैं, और "विचारसागर," "वृत्तिप्रभाकर" वेदान्त के अच्छी वा उपयोगी ग्रन्थ भाषा में उनके रचे हुओं को बहुत से दादूपन्थी वा अन्य मतों के पुरुष भी पढ़ते हैं। स्यात् निश्चलदासजी के ग्रन्थों को तो बालेश्वरप्रसादजी ने भी देखा पढ़ा होहीगा। और सुन्दरदासजी के ग्रन्थों और समय को वे भली भांति अवलोकन कर चुके थे। फिर जानबूझ कर ऐसी निर्मूल बात किसी अपढ़ और उजड्ड साधु के कहने से दादूवाणी के प्रस्तावना और दयालजी के चरित्र में (जिनके सम्पादक भक्त थे) लिखना उनके पांडित्य पर बड़ा भारी लांछन लगानेवाला हुआ है। इसके आगे पृ० ७ पर एक और भी निर्मूल ही नहीं अद्भुत, अशिष्ट और क्षोभोत्पादक बात बालेश्वरप्रसादजी ने लिख मारी है जिससे वे पातक के भागी हुए हैं। वह यह है:—

"दादूदयाल की महिमा की एक कथा हँसी की मशहूर है, जो मनोरंजक होने से यहां दी जाती है—कहते हैं कि उनके शिष्य सुंदरदासजी जिनके कवि होने का ज़िकर पहिले आ चुका है, कुछ दिनों तक लगातार रात को सुपना देखते थे कि कोई उनको जूता मार रहा है। अन्त को घबरा कर अपने गुरु से हाल कहा। उन्होंने फ़र्माया कि तू बहुत अण्डबण्ड काव्य किया करता है, मालूम होता है कि किसी काव्य में तेरे आग पड़ गई है, और आज्ञा की कि हाल में जो कविता की हो सब लाकर सुना। जब वे सुनाने लगे तो एक जगह यह निकला—"सुंदर कोप नहीं सुपने"— दादूजी बोल उठे कि यही पद तेरे जूते खाने का कारण है क्योंकि इसमें पदच्छेद से—"सुंदर को पनही सुपने"—ऐसा पाठ निकलता है, इसी से तुझे सुपने में पनहीं अर्थात् जूती लगती है—तू "कोप" की जगह "कोह" बना दे ['कोह' क्रोध का अपभ्रंश है।] सुंदरदासजी ने ऐसा ही किया

तो उस दिन से सुपने में जूते लगना बंद हो गया।"—धन्य तुम्हारी योग्यता, बी० ए० की शिक्षा और कानून का एल-एल बी० होना! और धन्य तुम्हारी साधु-भक्ति! हमें इसको पढ़ कर जो क्रोध आया और ग्लानि उत्पन्न हुई उसको यहां हम वर्णन नहीं कर सकते हैं। परंतु हमने अपने भावों को रोका। यदि यह लेख महंत गंगारामजी देख पाते तो वे वकीलजी पर मानहानि का मुकद्दमा किये विना रहते नहीं। परंतु हमने प्रथम लेखक (वकीलजी) को इस सम्बन्ध में पत्र द्वारा लिख कर संशोधन करा देना ही उचित समझा। हमने विस्तार से प्रमाणों सहित दोनों "सुंदर" नाम के कवियों और इस आख्यायिका का सम्बन्ध आगरे-वाले सुंदर कविराय से होना लिख कर उनको समझाया कि यह अपराध आपने नाहक जानवूझ कर किया है। इस पर बुद्धिमान वकीलजी की आंख उघड आई और वे अपने किये पर पछताये और क्षमा मांगी। तथा नीले रंग के परचों पर अपनी भूल का सुधार छाप कर सब पुस्तकों में चिपका कर प्रायश्चित्त कर दिया। इतना करना काफ़ी था। उस परचे को जो नहीं पा सकते हैं उनके लिये यहां उसकी नकल देते हैं:—

["सुन्दरदासजी के विषय में दो कथाएँ—जिनमें से एक तो दादू-दयाल के जीवन-चरित्र के पृ० २ की अंतिम ३ पंक्तियों से पृष्ट ३ की पहिली १० पंक्तियों तक, और दूसरी पृष्ठ ७ की पाँचवीं पंक्ति से अट्ठारहीं तक छपी हैं, केवल गप निकलीं, क्योंकि सुन्दरदासजी के जीवन-चरित्र से (जिसे पण्डित हरिनारायणजी पुरोहित बी० ए० अकौण्टण्ट जेनरल जय-पुर राज ने बहुत खोज और बड़े प्रामाणिक ग्रन्थों से लिखा है और जिसके सार को हमने सुन्दरविलास ग्रंथ के आदि में छापा है) सिद्ध होता है कि जब सुन्दरदासजी केवल सात बरस के बालक थे तभी दादूदयाल परम-धाम को सिधारे, उनके जीवन समय में सुन्दरदासजी ने कोई ग्रन्थ ही नहीं बनाया। दूसरे "सुन्दरशृङ्गार" ग्रन्थ, जिसमें यह पद है.—"सुन्दर कोप नहीं सुपने"—आगरेवाले सुन्दर कवि का बनाया हुआ है न कि महात्मा

सुन्दरदासजी का और यह भी संवत् १६८८ में अर्थात् दादूजी के शरीर-त्याग करने के २८ बरस पीछे बना। हमने पहिली कथा दो दादूपंथी साधुओं से सुनकर और दूसरी महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीजी की सम्पादित तथा "काशी नागरी प्रचारिणी सभा" की प्रकाशित 'दादू-दयाल का सबद" नामक पुस्तक की भूमिका से ली थी। अब ये दोनों कथाएं रद्द की जाती हैं।]

इस संशोधन से पं० बालेश्वरप्रसादजी के हृदय की स्पष्टता और सत्य-प्रियता का भी परिचय मिलता है। उन्होंने अपनी भूल को शीघ्र ही स्वीकार कर ली जो दूसरों की अल्प ज्ञता वा भ्रम के आधार पर ही लिखी थी।

(१०) "सुन्दरविलास"—उक्त पं० बालेश्वरप्रसादजी ने अपने प्रेस में सन् १९१४ (सं० वि० १९७१) में छपवाया उसके प्रारम्भ में जीवन-चरित्र जो छपा है वह समग्र हमारे भेजे हुए जीवन-चरित्र के आधार पर है। कहीं-कहीं शब्दों की कुछ काटछांट बदल-सदल की है।

(११) "संतबानी संग्रह" भाग १ साखी—में सुन्दरदासजी की ६२ साखियां ९ अंगों में से दी हैं। ये साखियां हमारी भेजी हुई बहुत सी साखियों से छांट कर उक्त वकीलजी ने इस संग्रह में रक्खी है। और जीवन-चरित्र का नोट प्रारम्भ में जो दिया है वह उक्त हमारे लिखे से लिया है। यह सन् १९१५ (वि० सं० १९७२) की छपी है।

(१२) "पंचेन्द्रियचरित्र"—पं० चन्द्रिकाप्रसादजी (राय साहिब तिवाड़ी बी० ए०) ने सम्पादन कर "वेंकटेश्वर प्रेस" बम्बई में सं० वि० १९७० (सन् ई० १९१३) में छपवाया था। यह पुस्तक हमको एप्रिल सन् १९१९ में मिली। यदि हमारे उक्त लिखे जीवन-चरित्र से पूर्व मिलती तो हम इसका हवाला हमारे लेख में अवश्य देते जो इलाहाबाद भेजा था। पण्डितजी ने सुन्दरदासजी का संक्षिप्त-चरित्र अन्य लेखकों की अपेक्षा अच्छा और ठीक प्रमाणों से लिखा है। जो प्रमाण हमको उपलब्ध हुये

हैं उनही में से अनेक उनको भी मिले उनके (सुन्दरदासजी के) सम्प्रदाय के साधुओं से भी उनका सम्पर्क हुआ है तभी यथार्थता लेख में आई है। नहीं तो अन्य लोगों की तरह ऊटपटांग बातें उनकी लेखिनी से भी निकल जातीं। इन्हींने दादूवाणी समग्र का टिप्पणी और भूमिका सहित उत्तम सम्पादन करके पहिले ही छपवा दिया था। जिन बातों से हम सहमत नहीं हो सकते हैं वे नीचे लिखी हुई हैं:—

(क) सुन्दरदासजी को गोस्वामी तुलसीदासजी के बराबर पदवी पाने योग्य बताया गया है। यह बात पण्डितजी की भक्तिभावना के ही कारण हम समझते हैं। अन्यथा ऐसे कोई प्रमाण उन्होंने नहीं दिये हैं कि जिससे यह समानता उस अद्वितीय महाकवि के साथ मानी जा सकै। हम भी सुन्दरदासजी के पुराणे भक्तों में से हैं, तब भी सत्य बात कहने में हम संकोच नहीं कर सकते हैं। हमारे विचार में तुलसीदासजी की बराबरी करने के योग्य, केवल सूरदासजी को छोड़ कर, भारतवर्ष तो क्या संसार भरमें कोई महात्मा-कवि नहीं हुआ है। इस ही विषय पर हमने हमारे लेख "भाषा साहित्य में सुन्दरदासजी का स्थान" * शीर्षक में हमारे विचार प्रमाणों सहित प्रगट करके सुन्दरदासजी का उच्च स्थान प्रतिपादित करने की चेष्टा की है और उक्त समता के मतका निरास किया है।

(ख) सुन्दरदासजी की जन्म तिथि हमने लिखी है जो हमको महंत गंगारामजी से प्राप्त हुई और भूमिका में भी थोड़ा सा यह प्रकरण दिया है।

(ग) पण्डितजी ने राघवदासजी (भक्तमाल कर्त्ता) का हवाला देकर भी सुन्दरदासजी को "ढूसर वैश्य" (पृ० १० और १३ पर) लिख दिया है। यह बड़ी भूल हुई है। राघवदासजी ने ढूसर नहीं लिखा स्पष्ट "बूसर" लिखा है:—

---

* यह लेख जैसा कि अन्यत्र कहा गया है, "राजस्थान" त्रैमासिक पत्र कलकत्ता के में छपा है। इसके पृथक् रिप्रिंट किसी विद्वान को अपेक्षित हो तो हमसे मंगा लें।

"ठोसा है नगू चोपो दूसर है साहूकार" (४२१ छन्द—भक्तमाल)।

(घ) दादूदयालजी के शिष्य होने का समय पांच वर्ष की अवस्था लिखी है। सो ठीक नहीं। सुन्दरदासजी सं० १६५९ में (८ वर्ष की अवस्था में) शिष्य हुए थे। यह बात उसही जनगोपाल रचित "दादूजन्मलीला परची" से सिद्ध होती है जिसका पण्डितजी ने प्रमाण दिया है।

(च) सुन्दरदासजी के रचे हुए सब ग्रन्थ और उन के नाम उनकी लिखाई हुई पुस्तक सं० वि० १७४२ की से बढ़ कर अन्यत्र नहीं है, जिसके आधार पर यह संपादन हुआ है। पंडितजी ने जिस हस्तलिखित पुरानी पुस्तक से ग्रन्थों के नामों की सूची (पृ० ११ पर) दी है वह अपूर्ण ही है।

(छ) पृ० १२-१३ पर सुन्दरदासजी का "बहुत काल तक नाराणे ग्राम में निवास करके पंजाब की तरह चले गये और लाहौर अमृतसर आदि स्थानों विचरण करके शेखावाटी जयपुर राज्य के फतहपुर में आये"। परन्तु काशी से चलकर नरायणे आये होंगे यह बात मान लेने पर भी वहां बहुत काल तक निवास करना किसी प्रमाण या युक्ति से सिद्ध नहीं होता है। प्रथम निवास फतहपुर में ही (सं० वि० १६८२ से) अधिक काल तक हुआ है। नरायणे तथा डीडवाणे (बीकानेर) में भी गये थे परन्तु वहां ठहरे नहीं थे। फतहपुर में केजड़ीवाल वैश्यों के यहां ठहरे और स्थान बन जाने पर स्थान में ठहरे और प्रागदासजी के पास उनके स्थान में उनके साथ भी ठहरे थे (जो फतहपुर में १६६३ ही में आ बसे थे)। यह बात लिखित पुराणे पत्रों और थांभे के महन्तजी आदि से प्रमाणित हुई है। सो ही हमने लिखी है।

(ज) पृ० १३ पर रज्जबजी के शरीर त्यागने के समाचार को सुन कर "वहीं (रास्ते में ही) समाधि लगा कर ब्रह्म में लीन हो गये" यह जो लिखा है ठीक नहीं है। स्वामी सुन्दरदासजी का सांगानेर में रहने का स्थान था। वहीं उनके शिष्य नारायणदासजी परमधामगामी हुए थे। और वहीं सुन्दरदासजी कुछ दिन रुग्न रह कर परमपद प्राप्त हुए थे।

रज्जवजी के मरने के दुःखद समाचारों से उनके कोमल चित्त पर जो चोट आई तव ही से रोगग्रस्त हो गये थे। रास्ते में मरना जो लिखा है निर्मूल है। वे अपने स्थान सांगानेर के अन्दर ही ब्रह्मलीन हुए थे।

(क) पृ० १३ पर जो "देशाटन के सवैया" को "चारि दिशा के सवइयें" नाम दिया है सो ठीक नहीं। इनका किसी ने पहिले "दशों दिशा के दोहे" ऐसा असंगत नाम दिया था। परन्तु "देशाटन के सवैये" यह नाम उपयुक्त है।

(१४)—"सुन्दरविलास तथा अन्य काव्यो"—गुजराती संस्करण—पटेल देशाई नरोत्तम पण्डित ने—मूल देवनागरी—गुजराती टीका-टिप्पणी करके वम्बई के "तत्वविवेचक प्रेस" में सं० वि० १६२७ में द्वितीयवार छपाये। इसकी प्रस्तावना में सुन्दरदासजी का वहुत थोड़ा-सा हाल दिया है। सो भी उक्त सं० (७) तत्वविवेचक की छपी में की भूमिका की छाया से ही। परन्तु हम यहां उसका भाषान्तर दिये देते हैं:—

"इस सुन्दरविलास का मूलकर्त्ता दादूपन्थी महात्मा साधु सुन्दरदासजी थे। रामानन्दी सम्प्रदाय में दादूजी नाम के एक विख्यात महान् पुरुष हो गये। उनके ये सुन्दरदासजी शिष्य थे। इनकी जिन्दगी का वृत्तान्त वहुत जानने में आया नहीं। परन्तु इनका वनाया "ज्ञानसमुद्र" नाम का ग्रन्थ है उसके पीछे के छन्द से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ सम्वत् १७७० के भादवा सुदि ११ गुरुवार के दिन सम्पूर्ण हुआ। इससे इनके अस्तित्वकाल का अनुमान होता है। ऐसा कहा जाता है कि इस सुन्दरविलास की रचना इन्होंने एक ग्रन्थ के आकार में नहीं की थी वरन जुदे-जुदे समय में जुदे-जुदे अंगों के भिन्न-भिन्न विपयों पर कविता लिखी थी। इनको किसी साधु ने जुदे-जुदे अंगों में करके ग्रन्थरूप में वना कर उसका "सुन्दर-विलास" नाम रख दिया। सुन्दरविलास के सिवाय इन महात्मा ने वेदान्त विपय पर दूसरे ग्रन्थ लिखे थे इनमें से जो जाने गये सो तो "ज्ञानसमुद्र" "ज्ञानविलास" "सुन्दराष्टक" ग्रन्थ "सर्वाङ्गयोग" इत्यादि ग्रन्थ हैं। इनके

सिवाय फुटकर काव्य तथा पद भी हैं। पदों में कितनेक गुजराती भाषा में भी हैं। यह सुन्दरविलास बहुत प्रचलित है और गुजरात में भी सब तरह जिज्ञासु लोग इससे लाभ लेते हैं। परंतु इसकी भाषा में कहीं-कहीं ऐसे कठिन शब्द आते हैं कि जिनको साधारण जिज्ञासु पुरुष को समझ पड़ने नहीं"। (इसके आगे अन्य संस्करणों की प्राप्ति और टीका आदि का विवरण है।)

इसको पढ़ कर और हमारे संगृहीत जीवन-चरित्र को पढ़ कर विज्ञ पाठकों पर विदित हो गया होगा कि इन लोगों को स्वामीजी के संबन्ध में कुछ भी अधिक वा ठीक जानकारी नहीं थी। जैसा कि इस ग्रन्थावली के अन्तर्गत ग्रन्थों और उनकी (स्वामीजी के जीवन में उनकी) आज्ञा और सम्हाल से लिखाई सं० १७४२ की प्रति से ज्ञात होता है, यह "सुन्दरविलास" इस नाम से नहीं वरन "सवैया" नाम से विख्यात था और यह किसी साधु का संगृहीत और अनुक्रमित नहीं अपितु स्वयम् ग्रन्थ निर्माता स्वामी सुन्दरदासजी का संगृहीत और उनही के द्वारा तत्तत् अंगों और प्रकरणों वा विषयों में विभाजित वा संकलित हुआ था। सुन्दरदासजी ने, इस ग्रन्थावली के अन्तर्गत ग्रन्थादि के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ नहीं बनाये थे, यह हम ऊपर लिख चुके हैं। क्योंकि और कोई ग्रन्थ होते तो वे छोड़ क्यों दिये जाते। और "ज्ञानविलास" कोई ग्रन्थ स्वामीजी का नहीं। यह नाम बम्बई के छापेखानों में थोड़ी सी साखियों को लिख कर उनका नाम ऐसा रख दिया है। ऐसे असंगत निराधार नाम बना कर रख देना और फिर तत्संबंधी सूचनिका तक न देना सम्पादक को शोभा नहीं देता है। यदि नाम ही दिये थे तो यह लिखना उचित था कि "यह नाम हमने दे दिये हैं। मूल में अमुक नाम था वा कोई नाम नहीं था।" इसही प्रकार "सुन्दरविलास" यह नाम भी किसी ने देकर अपनी करतूत का जिक्र तक नहीं किया और नक़ल पीछे नक़ल होते-होते यह नाम प्रचलित हो गया।

इन उपरोक्त संस्करणों आदि का, अन्य प्रयोजन के साथ, भूमिका में भी उल्लेख हो गया है।

अब इस प्रकरण के अंत में दो एक इंग्रेज़ पादरी साहिबों एवं अन्य विद्वानों की लिखी हुई सम्मति भी देते हैं जिनसे यह ज्ञात होगा कि इंग्रेज़ विद्वानों को भी सुन्दरदासजी ज्ञात हैं। परन्तु जीवन सम्बंधी जो कुछ लिखा है वह स्वल्प है और हमारे और पं० चंद्रिकाप्रसादजी के लिखे मसाले से ही काम लिया है। सो, हो भी ऐसा ही सकता था और लाते कहां से।

(१५) A Sketch of Hindi Literature—हिन्दी साहित्य पर संक्षेप विवरण ग्रन्थ के पृ० ६६ पर जो लिखा है उसका भाषान्तर दिया जाता है:—

"सुन्दरदासजी (१५९६–१६८९ ई०)। सुन्दरदास रियासत जयपुर में जनमे थे। उनके लिये ऐसा कहा जाता है कि वे दादूजी के एक शिष्य के अवतार थे (अर्थात् एक शिष्य ने मर कर जन्म लिया था)। यह प्रसिद्ध है कि वे बहुत सी भाषाएं जानते थे और यह बात उनके संबंध में कही गई है कि वे अपने काव्य को (वृथा के) अलंकारादि से सजाने को हेय ही समझते थे जिसके करने में अन्य कवि प्रायः जुटे रहते हैं।"

—पादरी एडविन ग्रीव्हस साहिब।

(१६) History of Hindi Literature—"हिन्दी साहित्य का इतिहास" नामक पुस्तक के पृ० ६६ पर जो लिखा है उसे हिन्दी में देते हैं:—

"दादू के शिष्यों में सबसे प्रधान कवि सुन्दरदास (छोटा) था जिसे बूसर भी कहते हैं। दादूपंथी उसे हिंदी के सर्वोत्तम कवियों में मानते हैं जो हिंदी-साहित्य में सर्वोच्च नामों में प्रतिष्ठा पाने के योग्य है। वह बड़े-बड़े बहुत से ग्रन्थों का रचयिता था। उसके अत्यंत प्रशंसित ग्रन्थों में उसका "सवैया" (जिसे कभी-कभी "सुन्दरविलास" भी कहते हैं) और 'ज्ञान-समुद्र ग्रंथ हैं"। —पादरी एफ़० ई० किये साहिब एम० ए०। (इसमें जीवन चरित्र का कुछ लेश नहीं दिया।)

(१७) Religious Literature of India (भारतीय धर्म साहित्य) में डाक्टर पादरी फार्किहोर साहिब ने इतना ही लिखा है कि— "सुन्दरदास एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं।"

(१७) बा० क्षितिमोहन सेनजी अध्यापक 'शांतिनिकेतन' अपनी रचित पुस्तक (Medieval Mysticism of India) "भारतवर्ष का मध्यकालीन अध्यात्मवाद वा रहस्यवाद" में पृ० १८६ (परिशिष्ट १—ब्रह्मसम्प्रदाय) में लिखते हैं:—

"It will also be of interest to note, in conclusion, the impression made by Dadu's principles on some of his disciples. Sundardas, who was a Vedantice, bears testimony to the Universality of Dadu's path thus:

"Whilst Hindu & Moslem were engaged in quarrels, Dadu evolved this beautiful Society of Parabrahma. What you believe in as obvious and tangible, I, by the favour of my Guru, have learnt to be a mere dream. The ideal he has held before us, which seems to you but a dream, is for me the only certanity. To the great teacher, now renowned as Dadu-Dayal (the kind Dadu), who looked upon man-made distinctions and institutions as so many empty names, I offer my reverent salutation."

"अंत में यह बात रुचिकर होगी कि दादू के सिद्धांतों का प्रभाव उसके शिष्यों पर कितना पड़ा था। सुन्दरदास ने, जो वेदांती था, दादू के पंथ की सर्वजन प्रशस्त और सर्वप्रिय होने की साक्षी इस प्रकार दी है"।

[जो इंग्रेजी में लेख ऊपर दिया है यह गुरु महिमा की कविताओं का सार है। यह महिमा (१) "सवैया" के प्रारम्भ में गुरुदेव का अंग। (२) "गुरुमहिमा नीसानी ग्रन्थ"। (३) गुरुसम्प्रदाय ग्रन्थ। (४) गुरुदया षट्पदी। (५) गुरु कृपा अष्टक। (६) गुरु उपदेश अष्टक। (७) गुरुदेवमहिमा स्तोत्र अष्टक। (८) "साखी" ग्रन्थ में "गुरुदेव का अङ्ग"। (९) पदों में:—राग आसावरी पद ४। राग सिंधु पद १। इत्यादि में है।]

इस इंग्रेजी लेख का भाषांतर इस प्रकार है:—"जब कि हिंदू और मुसलमान आपस में झगड़ रहे थे, दादू ने अपनी सुन्दर ब्रह्मसम्प्रदाय बनाई। जो संसार तुमको इन्द्रियगोचर स्पृश्य भासता है वही मुझे (सुन्दरदास को), मेरे गुरु की कृपा से, स्वप्न-सा प्रतीत होता है। जो पदार्थ तुमको स्वप्न-सा प्रतीत होता है वही मेरा ध्येय निश्चय से सत्य प्रतीत होता है। उसही दादूदयाल को—जिसने मनुष्यकृत भेदों और मत-मतांतरों को थोथे आडम्बर समझे थे—मेरा प्रणाम बहुत श्रद्धापूर्वक है"।

और इसही ग्रन्थ में पृ० १६१ पर एक भयंकर भूल भी लिखी मिलती है:—

"Untill eventually he (Dadu) was initiated into the religious life by Sadhu, Sundardas"

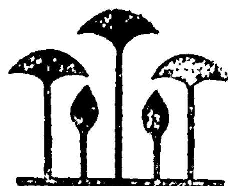
अर्थात् "अंततोगत्वा उसको (दादू को) धार्मिक दीक्षा साधु सुन्दर-दास से मिली!" कितनी बड़ी भारी भूल है। हमने ग्रन्थकर्त्ता से पत्रद्वारा पूछा तो उन्होंने इसको बंगाली से इंग्रेज़ी अनुवाद करनेवाले की भूल बताई, क्योंकि अन्यत्र ग्रन्थ में ऐसा कहीं भी नहीं लिखा गया, बरन सुन्दरदास को दादूजी का शिष्य ही कहा है। तो इसको लेखदोष समझने से दोष निवृत्त हो गया।

(१८) बिड़ला कालेज पिलानी (शेखावाटी) के व्हाइस प्रिंसिपल पुरोहित पण्डित सूर्यकरणजी एम० ए० विशारद ने अपनी पुस्तिका—"राजस्थान की हिंदी सेवा" में पृ० ६ पर लिखा है:—

"सुन्दरदास (१६५३-१७४३ सं०) दादूदयाल के शिष्यों में प्रधान शिष्य हुए हैं। ये जयपुर राज्य के द्यौसा स्थान के रहनेवाले थे और जीवन का अधिक भाग जयपुर राज्य में ही बीता। निर्गुण-पंथी संतों में यही महात्मा ऐसे थे जिनको उच्चकोटि की शिक्षा मिली थी और जो काव्य-कला तथा रीति से पूर्णतः परिचित थे। इनकी रचना साहित्यिक और सरस है। इनकी काव्य-भाषा ब्रजभाषा है। भक्ति, ज्ञानविवेचन,

नीति, देशाचार आदि विपयों पर इन्होंने उत्तम काव्य रचना की है। संत होते हुए भी ये उत्कृष्ट कवि थे। यह इनकी विलक्षणता है जो इन्हें अन्य संत-कवियों की साधारण कोटि से पृथक् करती है। अलंकार, भापा और काव्य सौष्टव का अच्छा चमत्कार इनके काव्य में मिलता है"।

विशारदजी की प्रबल लेखिनी से हमारे राजस्थान के परमोत्कृष्ट संत-कवि और अप्रतिम शांतरस में मनोरम कविता करनेवाले महात्मा के सम्बंध में बहुत थोड़ा लिखा गया। आशा है कि "सुन्दरग्रन्थावली" को समग्र पढ़ने और उसमें की स्वामीजी की जीवनी तथा भूमिका को देखने पर सम्मति उन्नत हो जायगी। और संत-साहित्य पर लेख भी इनका यथावत् नहीं हो सका है।



परिशिष्ट (ख)

स्वामी ख्यालीरामजी द्वारा ज्ञात बातें।

महंत गंगारामजी के प्रधान शिष्यों में ख्यालीरामजी हैं। उन्होंने स्वामी सुन्दरदासजी, उनके थांभायत महंतों, स्थान आदि के सम्बन्ध में कुछ विवरण हमारे पास भेजे। उसे हम परिशिष्ट रूप में दे देते हैं।

स्वा० ख्यालीरामजी ने अपने पत्र मि० भाद्रपद प्रथम शुक्ला १२ शनिवार सं० वि० १९९३ (ता० २९ अगस्त सन् १९३६ ई०) के द्वारा स्वामी श्री सुन्दरदासजी के कथित (आठ) "वाईजी के भेट के सवैये" भेजे और इनके लिये लिखा कि "इनको भी लगा दिये जांय"। अतः यहाँ वे आठों छंद दिये जाते हैं। हमको यही निश्चय था कि सुन्दरदासजी ने अपने ग्रन्थों में (दादूजी के अतिरिक्त) किसी की भी स्तुति नहीं लिखी थी। परंतु अव उनही के थांभायत ऐसे छंद भेज रहे हैं और पीछे से असल गुटका भी भेजा जिनमें दादूजी का दोनों वाईजी की यह स्तुति है, जो गरीवदासजी के पीछे गादी पर विराजे थे। कविता और विषय को देखते हमको ये सुन्दरदासजी के ही प्रणीत होने में संदेह नहीं होता है। यद्यपि ऐसे छंदों का होना कभी पहिले सुना नहीं गया। असंभव तो नहीं है कि स्वामीजी ने ऐसी चलती हुई फुटकर कविताएं की भी हों। परंतु हम किस आधार पर निश्चित होकर कह सकते थे, इस कारण स्वा० ख्यालीरामजी से असल पुस्तक मंगवायी। अव यहाँ उनको अवतरित कर देते हैं। इनमें प्रशंसा के अतिरिक्त उभय वाईजी से सीख (रुख़सत-आयसु) भी स्वामीजी ने जाने को मांगी है और दरसाया है कि आनेजाने में परिश्रम होता है। यह वृद्धावस्था की वात हो सकती है

और सुन्दरदासजी को बाइयों ने किसी अवसर पर (मेले वा उत्सव पर) बुलाया होगा। यदि ये कृतियां स्वामीजी की ही हों तो, जीवन पर प्रकाश डालनेवाली हो सकती हैं। सात छन्द तो दोनों बाईज़ी की स्तुति के हैं और आठवां परमात्मा की स्तुति का है जो "सवैया" ग्रन्थ के अन्तिम अंग के अन्तिम छन्द के पीछे उक्त गुटका (स्वामी ख्यालीरामजी के भेजे हुए) में लिखा है। यह छन्द अत्यन्त नम्रता, दीनता और आर्जव का है कि ऐसा स्वामीजी की कृतियों में बहुत कम मिलता है वा नहीं ही मिलता है। इसको कदाचित् बाईजी के लिये समझें तो आठ छन्द भेट के हो सकते हैं।

"बाईजी की भेंट के सवैये।"

मनहर

"दादूजी के पीछे तो चलाई है गरीबदास,
ताके पीछे बाईजी चलावत है चौगुनी।
जोई आवै भेट भाव कौऊ लेहु कौऊ पाइ,
रापित्रे को नांही चाव देने ही की है सुनी॥
अति ही गंभीर धीर सीतल ज्यों गंगनीर,
पायौ है जु पूरो पीर परम महामुनी।
सुन्दर विराजैं जोर दरबार दोऊ वोर,
सन्त बैठें ठौर-ठौर दर्सन करै दुनी" ॥ १ ॥

"जग मैं प्रसिधि दोऊ दादूजी की नन्दनी।"

"अति ही उदार हीये सीतल सुभाव लीये,
चन्दन के ढिग मांनौं ऊपनी है चन्दनी।
जाकौ जैसौ होइ हेत ताकौ तैसौ सुष देत,
अति ही सोभित है सकल सिर वंदनी॥

जोई आवै संझ प्रात विमुप न कोई जात,
सुन्दर कहत दुप दालिद्र निकंदनी।
सोभित सभा के मधि देत है लुटाई रिधि,
जग में प्रसिधि दोऊ दादूजी की नन्दनी ॥२॥
'दादूजी के दरवार दौलति सदा रहै।"
भगति मुकति भरपूर है भंडार मांहिं,
रिधि अर सिधि कोऊ चाहै सो तहां लहै।
गुंन तौ समूह संग ठौर-ठौर राग रंग,
प्रेम मांहिं भीजै अंग गंग सी गिरा वहै॥
सन्तन को व्यूह सव आगै बैठो देषियत,
सभाजी बिराजमान सुन्दर कहा कहै।
वरप वरष प्रति होइ जात जैजैकार,
दादूजी के दरवार दौलति सदा रहै॥ ३ ॥
देस देस ही तैं दौरे आवत सेवगजन,
दादूजी के दरबार देखन मिलाप जू।
जैसैं कासी कुरुषेत मथुरा पिराग हेत,
जात है जगत सब काटन कौं पाप जू॥
परम पुनीत ठौर ऐसो न तीरथ और,
जहां के आये तैं जांहिं सकल संताप जू।
सुन्दर सोभा अनन्त निसदिन गावै संत,
वाईजी विराजै गुरुगादी आपै आप जू॥ ४ ॥
दादूजी के दरवार रहिये जनम भरि,
तोहू काहू वात की कमीं न दीसै काई जी।
तुमकौं सन्तोपवे कौ विधना संवारी आप,
छाजन भोजन करि सर्व सुपदाई जी॥

२२

हमतौ दरस देपि अति ही निहाल भये,
और अब कहा कहैं मुख सूं बनाई जी।
बार बार कर जोरि वीनती करत राजि,
सुन्दर कौं हंसि करि सीप दीजै बाईजी ॥५॥

इन्दव।

"बाईजी वेगि रजा मोहि दीजै।"

पीछै तुम्हारहि आइ मिलै सब छाजन भोजन जे कछु कीजै।
आदर मांन सबै विधि पाइये नांव तुम्हारौ जहां तहां लीजै॥
बार बारहि बार कहा तुम सौं कहैं सुन्दर की अरदास सुनीजै।
चित्त हमारौ भयौ रमिबे करि बाईजी वेगि रजा मोहि दीजै॥ ६॥

"बाईजी आयस पांऊं तुम्हारौ।"

"जेतक द्यौस रहे दरबार में जानत हैं बड भाग हमारौ।
जैसी तुम्हारी कृपा हम ऊपरि तैसी सदा ही रहौ इकसारौ॥
मारग चालत होत परिश्रम आवत जात अत्यन्त उन्हारौ।
सुन्दरदास कहै करजोरि जू बाईजी आयस पांऊं तुम्हारौ"॥ ७॥

[स्वामी ख्यालीरामजी ने फ़तहपुर से असल ह० लि० गुटका ता० १२ सितम्बर सन १९३६ ई० को हमारे पास रजिस्टर्ड पोस्ट से भेजा। उसी में उपरोक्त सातों छन्द हैं और उसही में इन सातों के पूर्व ही नीचे लिखा छन्द भी है। परन्तु वह "सवैया" ग्रन्थ के अन्तिम १५ वें छन्द के पीछे १६ की संख्या से लिखा हुआ है। सो ही यहां देते हैं। यदि इसको भी बाईजी की भेट का सवैया मानें तो सब आठ छन्द होते हैं। परन्तु इसकी उक्ति परमात्मा की स्तुति में जा रही है, अथवा यह गरीबदासजी के प्रति संबोधित भी समझा जा सकता है। यह गुटका सन्तोषदास शिष्य चतरदास उसका शिष्य नन्दराम उसका सिष्य गोकलदास का लिखा हुआ है जो अनुमान उन्नीससो कई के संवत् का लिखा है।]

मनहर ।

"सेवा करि चोर अरु औगुन अनेक और,*

देह को कस्रप सो तौ कूबरोक कारौ है ।

नांहीं काहू कांम कौ हरांम ही को पांणहार,

अैसो हू कपूत तात मात ही कौ प्यारौ है ॥

एक यहै होत सु तौ दादूजी कौ मांथे हाथ,

देसहू प्रदेस मांहिं प्रगट नगारौ है ।

होइयौ कृपाल प्रभु आपनौं गुलाम जांनि,

मन वच कर्म करि सुन्दर तुम्हारौ है" ॥१॥ (८)

स्वामी ख्यालीरामजी ने अपने पत्रों में जो हमको हमारी जिज्ञासा पर भेजे, लिखा है कि—स्वामी सुन्दरदासजी के शिष्य-प्रशिष्य अनेक स्थानों में जा बसे थे। विसाऊ, चुरू, नाडसर, सीकर आदि तथा शेखाजी की छत्री। इत्यादिक। (शेखाजी की छत्री जीणमाता के पास गांव रलावता के कांकड़ में है। वहां वीर शेखाजी परोपकारार्थ गौड़ राजपूतों से लड़ने गये थे, वहां अपने बड़े बेटे दुर्गाजी सहित सं० १५४५ वि० में काम आये। वहां शेखाजी की बड़ी छत्री और दुर्गाजी की छोटी छत्री बनी हुई है)। इन छत्रियों की सेवा और सम्हाल सुन्दरदासजी के थांभायित साधुओं के अधिकार में है और फतहपुर के महन्त इस छत्री के भी महन्त कहाते हैं। पञ्चपाने के सरदारों की तरफ से साधुओं को कुछ भेट वा सहायता स्वरूप भी मिलता है। शेखावतों की यह पूज्य और पवित्र जगह है। चढ़ावा भी आता है।

और थांभो के सम्बन्ध में यह लिखा है कि "स्वामी सुन्दरदासजी के पांचों ही शिष्य मर चुके थे। नारायणदासजी के शिष्य रामदासजी थे। उनही से यह वैभव और शिष्य परम्परा और स्थानादि हुए हैं। पीछे भी

* और की जगह भरे पाठान्तर है।

महन्त प्रतापी होते आये हैं। अन्य चार शिष्यों के न तो पृथक् थांभे हैं और न स्थान हैं। यह बात (ख्यालीरामजी ने) महन्त लक्ष्मीरामजी (दादागुरू) से सुनी थी। वे चारों ४ शिष्य बहुत करके फतहपुर में ही रहे थे।

स्वामी ख्यालीरामजी का यह भी लिखना है कि ऊपर लिखित आठ छन्दों के अतिरिक्त "सूक्ष्मरूप में" स्वामीजी की और भी वाणी है, परन्तु स्थान के विकट संकट के कारण चित्त एकाग्र और शान्त नहीं रहता है। इस कारण ग्रन्थों की देखभाल नहीं हो सकती है।

और प्रागदासजी के सम्बन्ध में यह लिखा है कि "अन्त समय में सम्बत १६८८ में आकर फतहपुर में शरीर का त्याग किया। शिलालेख का लेख सन्तदासजी का लिखा है। और तत्सम्बन्धी यह छन्द भी भेजा है: –

इन्दव

"सम्बत सोलासै वर्ष अठ्यासी मैं दास प्रयाग फतहपुर आया।
भ्रात कनिष्ट* सु सुन्दर तिष्टत योग की अग्नि से कर्म जराया॥
कार्त्ती (क) कृष्णा तिथि छट्ट वुद्ध सु ढोल दमांमां निसान वजाया।
मोक्ष हुई त्रयताप मिटी झट, जन्म मरण में फेर न आया" ॥ १ ॥

और लिखा – "वैश्य जाति के बाबा रायमलजी बांसलगोती स्वामी सुन्दरदासजी के कृपापात्र सेवक थे। स्वामीजी के वरदान से उनके १३ पुत्र हुए थे। और आगे उत्तरोत्तर १३ पीढी तक तेरह-तेरह पुत्र प्रत्येक के होते चले आये। आजकल पोद्दार वंश से विख्यात हैं। तत्सम्बन्धी छन्दः—

दोहा

"पर्गा पांगलो रायचन्द बांसल गोत मंझार।
सुन्दर गुरु किरपा भई सुत जनमे नव चार" ॥ १ ॥

---

* "कनिष्ट भ्रात" कहने से यह प्रयोजन है कि प्रागदासजी का स्नेह सुन्दरदासजी के साथ ऐसा ही था।

मनहर

"रायचन्द राजवंश परगट्यौ चहुँ दिशि,
गुरु की दया से वहुलक्ष्मी हू कौ वास है ॥
निरंजन देवहू की भक्ति दृढ करी जिन,
और देवी देव की उपासना को हास हौ ॥
रांम रांम आठों जाम रट्यौ जिन निसकाम,
प्रेम में मगन गुरु वाक्य विसवास हौ।
कहत वालक राम अैसा हुआ रायचन्द,
गुरु के चरण विन और कौन दास हौ" ॥ २ ॥

दोहा

"राम रट्यौ अति मगन हो पूजे श्री गुरुदेव।
गृहस्थ योग अष्टांग कौ अन्त मोक्ष को भेव" ॥ ३ ॥

यह रायचन्द पोद्दार सेठ सुन्दरस्वामी का गृहस्थ शिष्य था। पोद्दारों का वड़ाभारी परिवार है और वड़े-वड़े नामी सेठ और विद्वान भक्त और गुणवान पुरुप इनमें हुए हैं और अव भी विद्यमान हैं। यह अधिकतर स्वामी सुन्दरदासजी की सेवा का प्रताप है।

और इसही पत्र में यह हाल फिर खोल कर लिखा कि—"और महाराज के अन्त समय में उनके शिष्यों में कोई नहीं रहा। मेरे खयाल में महाराज के पोता चेला रामदासजी महाराज थे उनके वाद विशेप महाराज के साधुओं की वृद्धि हुई। इतने मकान अव मौजूद हैं:– (१) फतहपुर में जो महाराज (स्वामी सुन्दरदासजी) के वास्तै मकान वना एक वार तो १ पोद्दार, २ केजड़ीवाल, ३ मोर, ४ वुधिया ५ चमड़िया इनने महल तथा गुफा चोक मूंह आगे पैडी वनवाये। जिनमें रुपया ३४९) लगे। अन्दाज सम्वत् १९८१ तथा ८२ में। (२) दूसरे सन्तदासजी चमड़िया (वैश्य) वनवाया—१ अठखम्भों, नीचे गुफा. उगूण चोगती गुफा एक दक्षिण चोगती तिवारी उगूण चोगती समाधि एक प्रागदासजी की समाधि एक

अपने शिष्य चतरदास की। जिनमें रु० ८२५) लागे। सम्वत् १६६४ में अन्दाज। कुवा वनवाया १ पोद्दार, २ केजड़ीवाल ३ मोर, ४ बुधिया, ५ चमड़िया, ६ सूरेका महाराज की आज्ञा से सम्वत् १६६४ में अन्दाज रुपया ६११ लागे। - अब स्थान तीन हैं जिनमें दो पीछे से बने हुये हैं। चूरू में दो स्थान, रामगढ़ में चार स्थान, ढेलासर में, विसाऊ में, तुवां में, मंडावे में, नवलगढ़ में, झाभड़ में, साये में, डीडवाणे में, मूंडवा में, नाडसर में, मोर मे झूंझणूं में, दयाका वास शेखाजी की छत्री दिल्ली में दिल्ली का मकान नारायणदासजी ने बनवाया था, भिवानी में, मथुरा में, हैं। और कई जगह मकान गतरस (नष्टभ्रष्ट) हो गये"।

इन पत्रों के लेखों की सत्यता जीवन-चरित्र में के प्रमाणों से हो रही है। सम्भवतः उनही आधारों से, तथा गुरुमुख श्रवण तथा परम्परागत कथा-प्रवाह से ये बातें स्वामी ख्यालीरामजी को जानी हुई हैं। उनका लिखना मानों वर्त्तमान जीवित प्रमाण है। उनकी कृपा से अनेक शंकाओं का समाधान हो गया है तथा स्वामीजी के आठ नवीन छन्द भी मिले। इन छन्दों की प्राप्ति से यह बात ज्ञात हो गई कि स्वामीजी ने एतत् ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी कविताएं की थीं। परन्तु ग्रन्थों में उनका अप्रासंगिक रहने से, सम्मिलित किया नहीं जा सका। इसही से वे कविताएं पृथक् रह गई। यदि स्वामी ख्यालीरामजी वा अन्य साधु-सन्त संग्रह में ग्रन्थों का अवलोकन करेंगे तो कभी न कभी और कविताएं भी प्राप्त हो जा सकेंगी। यह एक बड़ाभारी ख्याति का काम होगा।



परिशिष्ट (ग)

चित्र परिचय।

जीवन चरित्र तथा भूमिका और ग्रन्थ में कतिपय चित्र दिये गये हैं। उनका किंचित् परिचय करा देने की आवश्यकता है। वही इस परिशिष्ट में दिया जाता है।

(१) स्वामी सुन्दरदासजी का रंगीन चित्र—यह सुन्दरदासजी के स्थान वा थांभा मोर गांव (तहसील टोडा निजामत मालपुरा) से हमारे स्व० मित्र लाला आनन्दीलालजी * दूँणी राजमहलवालों के द्वारा प्राप्त हुआ था। चित्र की नकल एक प्रसिद्ध चित्रकार से जयपुर में करवाई थी। यह चित्र प्राचीन है इसमें कुछ संदेह नहीं। परन्तु कबका बना हुआ है इसका कुछ भी पता नहीं। इसमें भव्य स्वामीजी आसन पर विराजे हैं। सामने महाराजा मानसिंहजी जयपुरवाले बताये जाते हैं। जीवन चरित्र में महाराज से स्वामीजी के मिलने का ज़िक्र कहीं नहीं आ सका है।

---

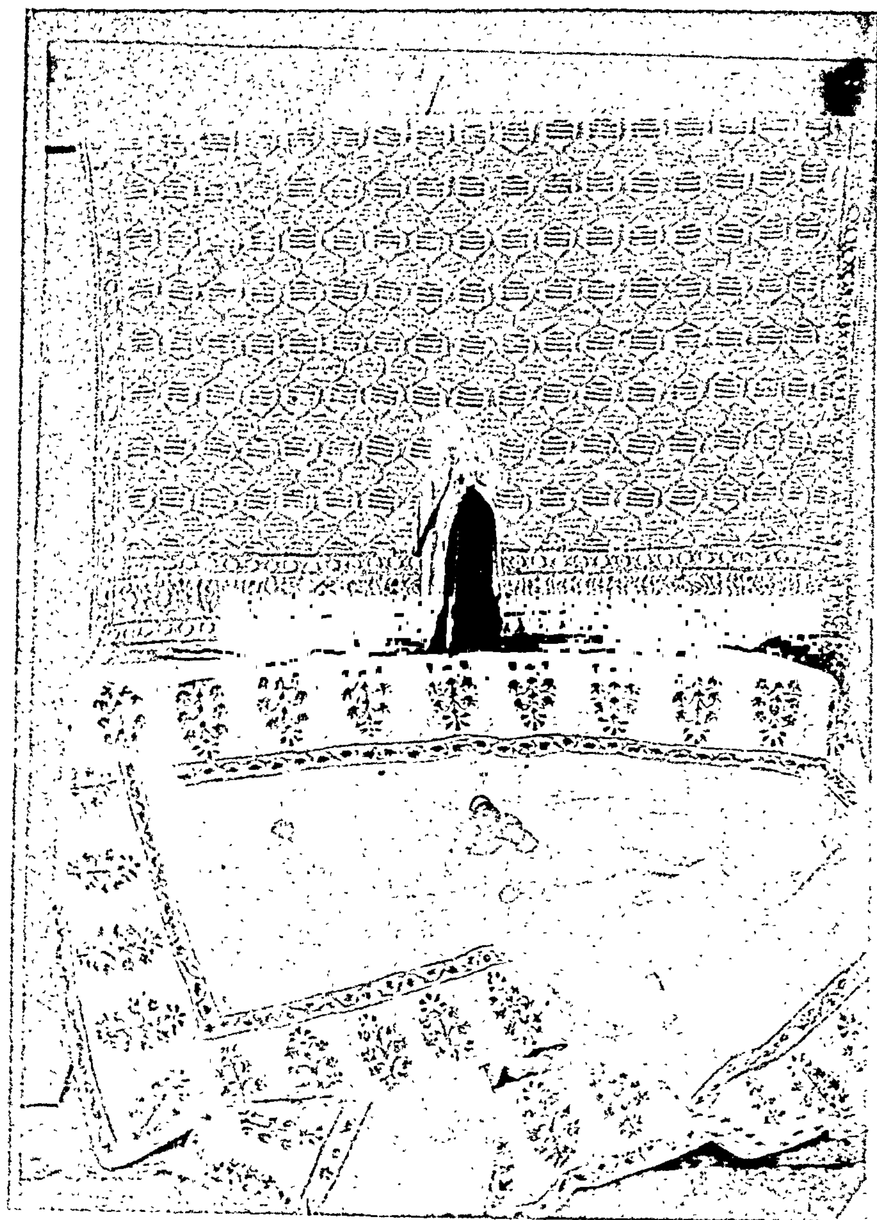
* स्व० लाला आनन्दीलालजी, ठिकाणे दूंणी की तरफ से राजमहल में कामदार थे। इनसे हमारा घनिष्ट परिचय और मैत्रीभाव तब हुआ था जब हम राज्य जयपुर की तरफ से "हाडौती टोंक ऐजेन्सी" में वकील थे। राजमहल एक बहुत प्रसिद्ध बहार का स्थान राज्य जयपुर में है और देवली से ३ कोस क़रीब है। वहां एजेन्ट साहिब और छावनी के साहब लोग सैर-शिकारको जाया करते हैं। हमको जब इस चित्र का पता लगा तो उक्त देवमूर्त्ति लालाजी को लिख कर तसवीर मंगवाई। इस चित्र का एंलार्जमेंट जयपुर के प्रसिद्ध "फोटो आर्टस्टूडियो" में वहां के सुयोग्य मैनेजर मदनकुमारजी से करवाया गया था। उभय सज्जनों के हम कृतज्ञ हैं।

किसी-किसी का मत है कि यह फतहपुर का नवाव है जिसके साथ स्वामीजी का संभाषण होना जीवन चरित्र में आ चुका है। स्वामीजी ने शिर पर केश थोड़े ही वर्ष रक्खे थे फिर मुण्डन ही कराते थे।

(२) स्वामीजी के स्थान पर शिलालेख—सुन्दरदासजी और प्रागदासजी के स्थान मिले हुए हैं। जो शिलालेख नीचेवाले चौवारे के अगाड़ी (लाल पत्थर पर खुदा हुआ) बांई तरफ़ लगा है, यह प्रागदासजी की मरण तिथि का स्मारक है। मिती काती बदि ६ बुधवार संवत् वि० १६८८ के दिन परमपद हुआ था। जहांगीर बादशाह के अहद में फतहपुर के नवाब दौलतखाँ दूसरे के पुत्र नवाब ताहिरखाँ के समय में। छन्द सन्तरामजी के बनाये हुये हैं। यह लेख सुन्दरदासजी के महल का कहाता है। इस स्थान के निर्माण का हाल ऊपर लिखा गया है।

(३) स्वामीजी का फतहपुर का प्राचीन स्थान—ऊपर लिख आये हैं कि यह स्थान स्वामी सुन्दरदासजी के फतहपुर आने के पीछे उनके कई एक सेवक महाजनों ने मिलकर बनवाया था। चौवारा, महल, गुफा और फिर कुवा और अन्य स्थान। तसवीर फोटो उतरते समय कई साधु शिष्य इसकी छत पर चढ़ गये थे। इसकी प्राचीनता इसकी बनावट और सादगी से स्पष्ट है। इसके आगे चोक में चरणपादुका है। इसमें तथा नीचे की गुफा में स्वामी सुन्दरदासजी प्रायः यहां फतहपुर में रहते तब विराजते, ध्यानादि करते वा ग्रन्थों का निर्माण करते, कथा-कीर्त्तन करते थे। यह पूर्वाभिमुख है। उसके अगाड़ी "छात चार हाथ" अनुमान है। छात से उतरने के लिए पैंड़ी (सोपान) उत्तरमुखी हैं। पैड़ी से उत्तर की ओर तिवारी है जिसके बारणे (दरतीन) फोटों में दिखाई देते हैं। तिवारी के पूर्व की ओर जो छत्री है वह "अठखंभे की छत्री" कहाती है और वह सन्तरामजी के ऊपर संवत् १६९६ में बनी थी। जिसमें शिलालेख है सो ऊपर लिख आये हैं।

दो गुम्बजवाली समाधि चौक में है बीच में, संवत् १६८८ कार्त्तिक



स्वामी सुन्दरदासजी के वस्त्र.

वदि ८ की प्रागदासजी की तो पूर्व को और चतरदासजी की पश्चिम में हैं।

स्थान के बाहर भूमि पर जो चबूतरा (चोंतरा) दिखाई देता है (तसवीर में) वह प्रागदासजी के शिष्य रामदास पर है।

और जो कूवा (कूप) दिखाई देता है वह स्वामी सुन्दरदासजी के और स्थानवालों तथा प्रजा के सुख के लिए स्वामीजी ही की आज्ञा से उनके सेवकों ने सम्वत् १६९८ में बनवाया था (जिसका हाल ऊपर दे दिया है) ।

जो फूटासा मकान दिखाई देता है सो महसरी महाजनों का है।

(४) स्वामीजी के स्थान के आगे महन्त गंगारामजी का चित्र।— स्वामीजी के चौबारे के अगाड़ी उनके थांभाधारी उस समय (अकतोबर सन् १९०२ ई में) वर्त्तमान महन्त श्री गंगारामजी आसन पर विराज रहे हैं। उनके सामने चौकी पर वही प्राचीन पुस्तक स्वामी सुन्दरदासजी की सम्वत् १७४२ की लिखी हुई खुली हुई रक्खी है। महन्तजी की बाँई तरफ जो दूसरी चौकी रक्खी हुई है उसके ऊपर स्वामी सुन्दरदासजी का वस्त्र खूँटी पर टंगा हुआ है जिसकी बाँह (आसतीन) नीचे को लटकती है।

(५) महन्त गंगारामजी मण्डली सहित— महंताई के चमर, छड़ी आदि चिन्हों को शिष्य लिये हुए हैं। महन्तजी बीच में विराजे हुए हैं। शेखावाटी में यह एक महन्ताई का बड़ा स्थान है जहां दादू सम्प्रदाय का इतने गौरव का थांभा है। यही महन्तजी शेखाजी की छत्री के भी महन्त हैं। इनके पास मुद्रा मोहर है उसमें शेखाजी की छत्री की महन्ताई का नाम भी खुदा हुआ है और वह आवश्यकता पर पत्रों पर लगाते हैं।

(६) स्वामी सुन्दरदासजी के अन्य वस्त्र—चादरें २—इनका काम लाहौर में हुआ है। एक लाल रेशम से कढ़ी हुई है, दूसरी छपी हुई है जिसमें डाटों (ब्लाकों) में सुन्दरदासजी के छन्द खुदे हुए हैं। छन्द पढ़े नहीं जाते हैं। कारण फोटो बारीक (सूक्ष्म) लिया गया था। दोनों चादरें बहुत ही कारीगरी की सेवकों ने तयार कराके लाहौर में भेंट की थीं।

इनके होने से स्वामीजी की लाहोर में अधिक स्थिति और वहां के सेवकों की भक्ति स्पष्ट प्रगट होती है। तथा स्वामीजी का कला में चातुर्य भी। और स्वामीजी का, शिर पर जाड़ों की ऋतु में धारण करने का, रेशमी पारचे का रुई भरा हुआ टोपा है। इस प्रकार के टोपे स्वामी वा महन्त लोग दादूपन्थियों में पहनते हैं। टोपे की विशालता से स्वामीजी के विशाल मस्तिष्क का अनुमान सहज में हो सकता है। और जिनका ऐसा वड़ा माथा था उनकी शरीराकृति भी कैसी विशाल होगी, यह भी सहज ही समझी जा सकती है। स्वामीजी के स्थान के ताले की पुराणे समय की कुञ्जी भी तसवीर में स्पष्ट दर्शण दे रही है। धन्य वे हैं जिन्होंने इन वहुमूल्य परन्तु दुर्लभ वस्तुओं का संरक्षण कर रक्खा है। ऐसा भी जाना गया है कि वहुतसी अन्य वस्तुएं फतहपुर वा रामगढ़ में सुरक्षित हैं, परन्तु वहुत-सी शिष्य वा सेवक ले गये जो नष्ट प्रायः हो गईं।

(७) पलंग और जाज़म—चूरू (रि० वीकानेर) में एक स्थान में स्वामी सुन्दरदासजी के स्थान से चोरे गये पदार्थों में से उनका पलंग और उनके स्थान की जाज़म (विछाने की दोहरा छपी हुई चादर वा फर्श) रक्षित हैं—जो स्वामीजी के स्थान से उनके समय चोरी गये थे। इसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है।

(८) लाहोर में छज्जू भक्त का चौवारा—स्वामी सुन्दरदासजी दूसरी वार लाहोर गये तव इसही में वहुत समय तक ठहरे थे। यहां सेवकों ने वहुत सेवा की थी और सत्संग से लाभ उठाया था। 'देशाटन के सवैयों' में वहां का ज़िक्र है। पंजावी भाषा अष्टक और पंजावी भाषा के पद संभवतः यहीं की रचनाएं हैं। यह भवन वहुत प्रसिद्ध स्थान है। यहां सुन्दरदासजी के कुछ ग्रन्थ भी थे।

(९) सेवक रूपादास के हस्ताक्षर—स्वामीजी के समस्त हस्तलिखित ग्रन्थों के अन्त में जो पंक्तियां हैं उनका फोटो पहिले पहल लिया गया था। रूपादास महाजन स्वामी सुन्दरदासजी का शिष्य था। उसही से स्वामीजी

ने ये सारे ग्रन्थ अपनी निजकी प्रति से लिखाये थे। यह संवत् विक्रमी १७४२ का लिखा है।

(१०) प्राचीन गुटके के प्रथम पृष्ठ का चित्र—संवत् १७४२ के हस्तलिखित गुटके के प्रथम पृष्ठ का यह चित्र है। रूपादास महाजन के हाथ का लिखा हुआ।

(११) प्राचीन गुटके के अन्तिम पृष्ठ का चित्र—उसही संवत् १७४२ के हस्तलिखित गुटके के अन्तिम पृष्ठ का यह फोटो है। दोनों पृष्ठों के पूरे फोटो जयपुर के प्रसिद्ध "राजस्थान फोटो आर्ट स्टूडियो" में उसके सिद्धहस्त मैनेजर पु० मदनकुमारजी के उतारे हुए हैं जो सन् १९३५ में ही तयार किये गये थे।

(१२) सांगानेर में सुन्दरदासजी की समाधि—यह उस वचे हुए चबूतरे (वा मीनारे) का चित्र है जो छत्री के तोड़ दिये जाने के वहुत समय पीछे कमेरा से "राजस्थान फोटो आर्ट स्टूडियो" के सिद्धहस्त मैनेजर पु० मदनकुमारजी ने अनेक सुप्रतिष्ठित पुरुषों के समक्ष लिया था। इसका वृत्तान्त ऊपर लिखा जा चुका है। सुन्दरदासजी का परमपद गमन सांगानेर में संवत् १७४६ में हुआ था।

(१३) सेठ रामदयालुजी नेवटिया --फ़तहपुर के प्रसिद्ध कृतविद्य, भक्त, ज्ञानी, ध्यानी और धनाढ्य स्व० सेठ रामदयालुजी भारतवर्ष के प्रसिद्ध मारवाड़ी सज्जन विद्वानों में अति प्रशंसित हुए हैं। इनही के सदुद्योग, उत्साह और परिश्रम से तथा स्व० स्वा० महंत गंगारामजी के पूर्ण परिश्रम, भक्ति, चित्तचाव और कृपासे, हमको प्राचीन पुस्तकें, जीवन चरित्रादि की प्रचुर सामग्री, टीका में सहायता, फोटो चित्र और अन्य चित्र, चित्रकाव्य के चित्र, अनेक प्रश्नों के शीघ्र और अन्वेपण पूर्वक उत्तर तथा जानकारी प्राप्त हुई। निदान इन दोनों पुरुपरत्नों ही के सकाश से इस सम्पादन और भूमिका तथा जीवन चरित्रादि का उद्भव, स्वरूपकरण आदि सफलतापूर्वक हो जाना समझना चाहिये। दुःख इसही वात का

है कि आज वे दोनों ही प्रेमी उत्साही सज्जन इस ग्रन्थ को मुद्रित रूप में देखने को नहीं हैं ! यह हविस वे भी ले गये और हसरत हमारे दिल में भी सदा रहेगी ! हरेरिच्छा बलीयसी !!"

सेठ रामदयालुजी संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। अनेक शास्त्र पढ़े और सुने थे और सबसे बड़ी बात उनकी यह थी कि उनके समय के भारतवर्ष के सब ही पंडितों और नामी विद्वानों से उनका साक्षात् हुआ था। यात्रा और देशाटन में वे केवल (जल और भूमिरूपी) तीर्थों को ही नहीं पूजते थे, वरन वे इन "जंगम" तीर्थों को भी पूजते थे और उनसे सत्संगति का लाभ उठाते थे। सेठजी भगवान् कृष्णचन्द्र के अनन्य भक्त थे। निम्नार्क सम्प्रदायी थे। नित्य श्रीमद्भागवत और गीता का पठन किये विना अन्नजल ग्रहण नहीं करते थे। वे कोरे भक्त ही नहीं थे, उनको साक्षात् दर्शन और चमत्कार भी कई बार मिले थे। सेठजी दानी, ज्ञानी और ध्यानी यथार्थतया थे। पुराणी हिन्दी और ब्रज भाषा के ढर्रे पर उन्होंने उत्तम काव्यरचना, पदरचना आदिक भी किये हैं। उनके रचित -( ) प्रेमांकुर (श्रीकृष्णयशगायन) । (२) लक्ष्मणा-मंगल। (३) बलभद्र विजय। तदन्तर्गत (४) श्रीकृष्णात्मक वैभव। (५) श्रीकृष्णदिनचर्या और (६) श्रीकृष्ण मंगल हैं। संस्कृत रचना भी सुन्दर है। काव्योपनाम "कृष्णदास" रखते थे। कविता सरस, सुन्दर, चोजभरी एवं भावभरी है। उनके उत्तराधिकारी सेठ दिलसुखरायजी जयनारायणजी ने संवत् १९८० में छपवाई। पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने सम्पादन किया और जीवन चरित्र भी साथ ही छपवाया। वहीं से मिलती है। सेठ रामदयालुजी नेवटिया का जन्म कार्त्तिक संवत् १८८२ का कस्बा मंडावा (शेखावाटी) का था। मनसारामजी के पुत्र थे। विष्णुदयालजी और हरदयालजी दो भाई थे। सेठजी पूना में भी बहुत रहे हैं। विद्याध्ययन के उत्कट प्रेमी थे। व्यापार के साथ विद्याव्यसन सर्वदा रहा। आश्विन संवत् १९७५ में फतहपुर में स्वर्गवास हुआ।

बड़े सदाचारी, शीलव्रतधारी, शान्तिप्रिय और संयमी थे। तवही ६३ वर्ष की आयु पाई, मानों सुन्दरदासजी जैसे दीर्घायु हुये। अन्त समय तक सव इन्द्रियां यथावत् थीं। आप मारवाड़ी समाज के एक आदर्श पुरुपरत्न थे।

(१४) श्री लक्ष्मीनाथजी का मन्दिर—यह मन्दिर वहुत सुन्दर सफेद पत्थर का वना हुआ है। इसको फतहपुर के धनी-मानियों ने बनाया है। पहिले कुछ छोटा वना हुआ था। उसीको वढ़ा कर यह विशाल निर्माण हुआ है। यह शेखावाटी की नामी इमारतों में से है। प्राचीन मन्दिर में सुन्दरदासजी के समकालीन कवि "भीपजन" भगवद्भक्त दर्शनों के लिए वर्जित किये गये तव पीठ पीछे जा वैठने पर मूर्त्ति ने मुख उनकी तरफ कर लिया था। यह आख्यान लिखा जा चुका है। यह प्राथमिक मन्दिर सुन्दरदासजी के समय का एकस्मारक है।

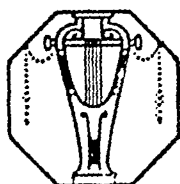
(१५) सुन्दरदासजी, दादूजी, राजा मानसिंहजी—यह प्राचीन चित्र का फोटो है।

(१६) महन्त गंगारामजी की मुहर—यह मुहर महन्त गंगारामजी ने हमें ग्रन्थ में लगाने के लिये दी थी।

(चित्र-काव्यों के चित्र)

१४ चित्रकाव्यों के चित्र प्राचीन गुटका (क) के अनुसार जयपुर में मार्च सन् १९३५ में, रंगीन व सादे वनवाये गये। हमने अपने हाथ से उनमें अक्षर और छन्द और पढ़ने की रीति लिख दी। अतः प्रत्येक से विवरण पाठक जानेंगे। फतहपुर के नवाव अलफ़ खाँ (काव्योपनाम "कवि जान") ने चार ग्रन्थ भाषा-काव्य में वनाये उनमें "कविवल्लभ" में काव्य के वहुत से अङ्ग हैं। उसमें चित्र-काव्य भी हैं। सर्प वन्ध, छत्रवन्ध आदिक। सम्भव है कि स्वामीजी ने वह ग्रन्थ

भी देखा हो। वह ग्रन्थ रीति काव्य है और सम्वत् वि० १७०४ का निर्मित है। अतः स्वामी सुन्दरदासजी के समय का ही बना हुआ है। खास फतहपुर नवाब (जानकवि) का बनाया होने से अवश्य ही स्वामीजी के देखने में आया होगा। इसके अतिरिक्त चित्र-काव्य के अन्य ग्रन्थ भी उनके अवलोकन में आये होंगे। दादूजी के शिष्य और सुन्दरदासजी के रक्षक-शिक्षक स्वामी जगजीवणजी की वाणी में भी चित्रकाव्य हैं। उनका भी और उनकी वाणी का भी सुन्दरदासजी के चित्त पर प्रभाव पड़ा होगा। इसमें सन्देह नहीं। परन्तु स्वतन्त्र प्रकृति और प्रखर प्रतिभावाले स्वामी सुन्दरदासजी की रचनाएं ऐसी हैं जो स्वतन्त्र ही प्रतीत होती हैं, किसीकी नकल नहीं दिखाई देती। इनके चित्रकाव्य ज्ञान-वैराग्य, भक्ति और नीति शिक्षा से परिपूर्ण हैं। इस कारण अधिक मूल्यवान और उपादेय पदार्थ हैं। इनको पाठक यों ही, अन्य चित्रकाव्यों के तद्वत्, कदापि न समझ बैठें इनके विचार से परम लाभ उठावें।



परिशिष्ट (ध)

सुन्दरदासजी के स्थान पर आपत्ति ।

फ़तहपुर (शेखावाटी- राज्य जयपुर) में सुन्दरदासजी का स्थान बहुत प्राचीन है। इसका वर्णन ऊपर जीवन चरित्र में तथा परिशिष्ट "चित्र परिचय" में आ चुका है। अब हम इस स्थान पर दुष्टों की असाधुता और मूर्खता से जो आपत्ति आ गई है उसका संक्षेप में, उन पाठकों की जानकारी के लिये, कर देते हैं जो इस घटना से अनभिज्ञ हैं। अथवा जो इसे जानने को उत्सुक हैं।

डीडवाणा (इ० बीकानेर) में प्रागदासजी (दादूजी के शिष्य) का स्थान है। उनके स्थानका अधिकारी चैनसुखदास (जो वहां का महंत भी कहलाता है) एक स्वल्पपठित साधु है। उसने यह अनधिकार चेष्टा की कि फतहपुर के वैश्य विहारीलाल वज्जाज से गटपट मिला कर सुन्दरदासजी के मकान के अगाड़ी की भूमि उस वज्जाज को वेच दी और सुन्दरदासजी के थांभायितों से इस बात को गुप्त रक्खा। जब उक्त वज्जाज ने सीकर के अधिकारियों के बल से भूमि पर अधिकार करना चाहा और संतदासजी की समाधि के चबूतरे तक को तोड़-फोड़ डाला तब सुन्दरदासजी के थांभायतों को ज्ञात हुआ। तो उन्होंने इसका वर्ज्जन करना चाहा। सीकर में भी पुकारे। जो रुपये वज्जाज ने भूमि के सीकर में मोहराने के जमा कराये सो भी सीकर में देकर विहारीलाल को वापस मिलने की प्रार्थना की। परन्तु वह वैश्य फिर दुष्टों की वहकावट में आकर मुकद्दमे लड़ने लग गया। साधु के मठ की भूमि वा स्थान को उसके अधिकारी

वा अन्य साधु रक्षित रक्खें, उसमें वस कर ध्यान स्मरण करें। परन्तु वेचने का अधिकार नहीं। चैनसुखदास का कोई हक़ ज़मीन बेचने का नहीं था। परन्तु रुपये का लालच साधुओं को भी होता है। यह बड़ा अपराध इस चैनसुखदास ने किया कि मठ की भूमि सामनेवाली बेच दी और केवल तीन हाथ की गली रख दी जिससे सुन्दर स्वामी के मठ का मठ ही मारा गया ऐसी सूरत हो गई। डीडवाने के साधु आकर निवास कर सकते हैं। वेच नहीं सकते हैं। बहुत समय पहिले डीडवाने का एक नरहड़दास साधु फतहपुर में स्वा० लच्छीरामजी महंत के पास वहां से रुष्ट होकर आ गया था। वह महंतजी की आज्ञा से इस स्थान में रहने लगा था। फिर उसका शिष्य नानगदास महन्तजी का रक्खा हुआ रहा किया। नानगदास ने महन्त गंगारामजी को मि० वैशाख वदि ११ सम्वत् १९७६ में एक लिखावट लिख दी थी—कि स्थान में पूजन-धूप ध्यान बड़ा महन्त लच्छीरामजी वा आपकी आज्ञा से मैं करता रहा, अब मैं अशक्त हो गया सो आपका मकान आप सँभालें, मरजी आवै जिस साधु को रक्खैं। मेरा वा डीडवाणे के किसी साधु का कोई हक्क नहीं है। कोई उजर करै तो झूठा। इत्यादि लिख कर दे दी थी। कुछ समय पीछे नानगदास मर गया। इस मकान वा भूमि पर चैनसुखदास का कभी दख़ल नहीं हुआ। वह बहकावे वा लोभ में आकर ऐसा अनिष्ट असाधु कार्य कर बैठा जिससे स्थान पर भारी संकट आ पड़ा। नरहड़दास वा नानगदास की पालना सुन्दरदासजी के महन्तों ने ही की। दोनों के मरने पर अन्त्येष्टी, वा भहराणे भेजने वा साधु जीमण भी उक्त सुन्दरदासजी के महन्तों ने ही किया। इस स्थिति में वे साधु सुन्दरदासजी के ही अतीत रहे थे, डीडवाणे-वालों का उन पर कोई हक्क नहीं था। बज्जाज ने यह चालाकी की है कि चैंनसुखदास को नानगदास का चेला जमीन विचोती की लिखावट में लिखा दिय! घोर कलियुग! तेरी महिमा अपार है! ऐसे-ऐसे जाल-साज आदमी भी दुनिया में बसते हैं। अरे नानगदास का चैनसुखदास कब चेला

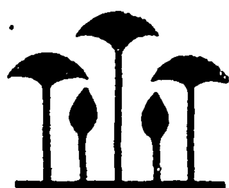
हुआ था ? नरहड़दास को तो डीडवाणे से निकाल दिया था। फिर सुन्दरदासजीवालों ने उसे रक्खा था और नानगदास तो डीडवाणे का था भी नहीं। डीडवांणे की शिष्य परम्परा तो निम्न प्रकार की है:—
(१) प्रागदासजी। (२) माधोदासजी। (३) कल्याणदासजी। (४) तुलसीदासजी। (५) मगनीरामजी। (६) मूणदासजी। (७) भगवानदासजी। (८) नानूरामजी। (९) प्रभुदासजी। (१०) भजनदासजी। (११) दयालवगसजी। (१२) चैनसुषदासजी।--नरहड़दास सं० ९ प्रभुदासजी का शिष्य था। फतहपुर में नानगदास उसका शिष्य सुन्दरदासजी के महंतजी के यहां हुआ और रहा। नरहड़दास निकाल दिया गया और सुन्दरदासोतों का अतीत हो गया तो वह तो डीडवाणेवालों का रहा नहीं। फिर चैनसुखदासजी नानगदास के शिष्य बन कर भी भूमि के बेचने के अधिकारी कैसे बनैंगे ? यही तो चालाकी और अनीति है। परन्तु चैनसुखदासजी का मनमुटाव ख्यालीरामजी से इसलिये हो गया कि चैनसुखदासजी भूमि को बेचना चाहता था और ख्यालीरामजी कहता था कि जाना सहज है आना मुश्किल है साधु का अस्थल है इसको बेचना करना ठीक नहीं होगा। परन्तु इन दोनों के आपस में बहुत खिंच गई। तब बजाज व सिंघाणियों से सटपट मिला कर कलकत्ते जाकर भूमि के बेचने की चंनसुखदासजी ने लिखावट कर दी और संवत् १९३४ में नानगदास ने १०७. हाथ रु० १११) में खरीदी थी वह भी बेचकर सीकर से रुपया ले लिया और फिर बजाज से रुपया ले लिया। बजाज ने ठिकाने की खालसाई जमीन भी खरीदी और साधुओं की भी खरीदी चैनसुखदास की मिलामिली से। यही झगड़े की जड़ उत्पन्न हो गई। सीकर में पुकार कर ख्यालीरामजी ने भूमि के नजराने का रुपया दे दिया। परन्तु बजाज ने (चैनसुखदास के कहने से) नहीं माना और मुकदमा खड़ा कर दिया। बड़ा और अन्याय यह भी किया कि सन्तदासजी की समाधि को बजाज ने तोड़ कर उसके पत्थर बिखेर दिये। इस पर अनेक साधुओं

ने बाहर से आकर इसका विरोध किया। यही मुकद्दमा ठिकाणे सीकर में १३-१४ वर्षों से चल रहा है। सुन्दरदासजीवालों के और भी अनेक स्थान हैं परन्तु वहां साधुओं ने ऐसा अन्याय नहीं किया है। महाजनों ने चैनसुखदास को मिला कर यह भारी अफंड खड़ा कर दिया जिससे सुन्दरदासजी के मठ वा असथल को बहुत भारी नुकसान पहुंचने का दाव व संभावना का रूप हो गया है। भारत के एक अतिविख्यात सन्त कवि का प्रधान स्मारक स्थान इस प्रकार अनीति से बिगाड़ना कितना अन्याय है। इसकी सार्वजनिक अपील समाचार-पत्रों द्वारा भी कई बार की गई थी। जयपुर में और सीकर में भी अर्जियां दी गई थीं। सीकर में अंगरेज़ अफ़सर "वेबसाहब" के पास यह मुकद्दमा पेश हुआ। उन्होंने दोनों तरफ का हाल भली भांति सुनकर समझ कर यही कहा कि "यह स्थान पब्लिक प्रापर्टी (Public Property) है। इस पर किसी का भी हक बेचने का नहीं है।" यह नीतिपरायणता देख कर बजाज घबराया और मुकद्दमेबाज़ लोगों से सलाह कर और रुपया खर्च करके सीकर में अदालती दावा कर दिया, सो ही चल रहा है। इसके लिए डेपुटेशन भी सीकर के सीनियर आफ़िसर साहब के पास गये। विपक्षी ने भी डेपुटेशन की कार्रवाई की। सम्मेलन में भी मन्तव्य इस स्थान के रक्षा आदि के सम्बन्ध में पास हुआ था। इस सन्त-मठ की रक्षा के लिए सैंकड़ों आदमियों ने उद्योग किया और कर रहे हैं। उनमें कुछ नाम उल्लेखनीय हैं:—पं० रामनरेशजी त्रिपाठी, सेठ दिलसुखरायजी जयनारायणजी आदिक नेवटिया, स्व० सेठ नौरंगरायजी खेतान। रामगढ़ आदिक स्थानों के कई सेठ वा पंडित। प्रतिष्ठित साधु। तथा सेठ रामदेवजी चौखानी। सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार। पं० वेणीशंकरजी शर्मा। श्रीनारायणदासजी बाजोरिया, त्रिपाठी रामजीवणजी डाक्टर। पुरोहित हरिनारायण (लेखक) इत्यादि बहुत से पुरुष यही चाहते हैं कि उन महात्माजी का स्थान और तत्सम्बन्धी भूमि सुरक्षित रहें। भूमि तो वहां

और भी बहुत है, कुछ कमी नहीं है। साधु की भूमि लेकर स्थान की शोभा और सुख का बिगाड़ना धर्म-विरुद्ध बात है। इसही बजाज की घोर अनीति का सब लोग प्रतिवाद करते हैं। मुकदमा पं० कृष्णानन्दजीके सुपुर्द है। उनके फैसले की सर्वजनसमुदाय प्रतीक्षामें है। चैनसुखदासजी को १४५१) रुपया देकर गुप्तरीति से कलकत्ते बुला कर उससे बिहारीलाल बजाज ने भूमि मोल ली। परन्तु फिर ख्यालीरामजी, साधुओं और जनता के प्रतिष्ठित विभाग का ज़ोर पड़ा तब सीकर के सीनियर आफिसर अजीजुर्रहमानजी के पास फैसला बाहमी बजाज कर आया, पट्टा जमीन का दे आया और ख्यालीरामजी की तरफ़ से २१६२) रुपया सीकर में जमा भी हो गया। परन्तु फिर इन्द्रलाल देवड़ा आदिक मुकद्दमा-साज दल्लालों ने बजाज को बहकाया। वह फिर पुकारने लग गया। तब ही से मुकद्दमा नवीन हो चला। परन्तु मौके पर सब अफ़सरों ने हालात देख कर यही वचन कहा है कि भूमि बिकने योग्य नहीं है। अस्थल का अंगभंग हो जायगा और पं० कृष्णानन्दजी ने तो समाधि को, सैंकड़ों आदमियों के सामने, खुदवा कर निश्चय कर लिया कि भूमि समाधियों और मठ की है। यह भी कहा जाता है कि नवाब फतहपुर ने अस्थल के लिए ५१ बीघा भूमि छोड़ दी थी। उसही में अस्थल और अहाता है।

आगे जो होगा देखा जायगा। परन्तु संसार में कानूनी अड़ङ्गों वा बहानों से अनीति का मार्ग प्रबल हो रहा है। एक समय था कि इनही वैश्यों के पूर्वपुरुषों ने साधु सन्तों का समादर कर धर्मरक्षा और ज्ञानवृद्धि के नाते स्थान बनाये, मुसलमान नवाबों और सीकर के सरदारों ने उनकी प्रतिष्ठा रक्खी और आज यह समय आ गया कि वैश्यों में ऐसे भी पैदा हो गये कि उन स्थानों को नष्टभ्रष्ट करते हैं और साधुओं पर मुकद्दमे करके उनको हार्दिक पीड़ा पहुंचाते हैं। इन लोगों से देश और धर्म की रक्षा की क्या आशा की जा सकती है?

इसही के साथ एक नज़री (विना सही पैमाइश का) नक़शा (मानचित्र) ज़मीन के मुआमिले की समझ के लिये दिया जाता है। तुरन्त ही देखते के साथ ही कोई भी देखनेवाला यह कहेगा कि यह भूमि वेचने के योग्य नहीं है। इसके रुकने से मठ, समाधि और अस्थल नष्टभ्रष्ट हो जायगा।



॥ स्वामी सुन्दरदासजी के स्थान का नक़शा ॥

दक्षिण

सिंहानियों का नोहरा

श्री सुन्दरदासजी का आश्रम

दबी हुई ज़मीन

समाधी

सन्तदासजी की जीविन, जो भूमि-स्वरूप कर जोड़ दी गई।

राज में किशोरीलाल बजाज की जो ज़मीन दबी गई और पर जिसका झगड़ा मुक़दमा है।

सिंहानियों का बाड़ा आश्रम की ज़मीन में से पहिले का खरीदा हुआ। इस पर भी झगड़ा चल रहा है।

स्थान रास्ता जो ज़मीन दबी है बहुत तंग है।

सिंहानियों का नोहरा जो आश्रम की ज़मीन में से खरीद कर बना लिया

सरकारी रास्ता

यह कूंवा स्वामी सुन्दरदासजी के लिये बनवाया गया था

कूंवा

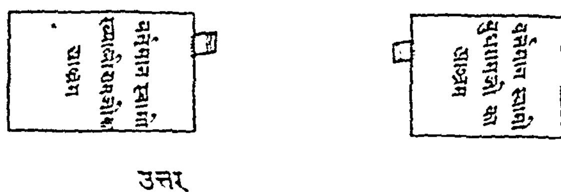
पूर्व

पश्चिम

सिंहानियों की हवेली

सिंहानियों की हवेली

रास्ता जो इसही आश्रम के अंतर्गत है



उत्तर

ज्ञान-समुद्र

❀ ॐ तत्सत् ❀

अथ ज्ञान समुद्र ग्रन्थ

प्रथम उल्लास

मंगलाचरण

छप्पय

प्रथम वन्दि परब्रह्म परम आनन्द स्वरूपं।
दुतिय वन्दि गुरुदेव दियौ जिह ज्ञान अनूपं॥
त्रितिय वन्दि सब संत जोरि कर तिनके आगय।
मन वच काय प्रमाण करत भय भ्रम सब भागय॥
इहि भांति मंगलाचरण करि सुन्दर ग्रन्थ बखानिये।
तह विघ्न न कोऊ उप्पजय यह निश्चय करि मानिये॥ १॥

ज्ञान समुद्र ग्रन्थ की 'सुन्दरानन्दी' टीका लिखी जाती है। छंद (१) इस छप्पय में ग्रन्थकर्त्ता महात्मा स्वामी श्रीसुन्दरदासजी ने मंगलाचरण प्रारंभ में किया है। यह नमस्कारात्मक मंगलाचरण है जिसमें अपने इष्ट, परमात्मा, गुरु और संत-जनोंसे प्रार्थना की है अथवा वंदना से इस फल की प्राप्ति का निश्चय प्रगट किया है कि इस ग्रन्थ की समाप्ति निर्विघ्न हो जायगी। अपने भक्तिमय ज्ञान के अद्वैत सिद्धांत के आनन्द में आगे दूसरे छन्द में तीनों को एक ही बताया है। निज गुरु श्रीदादूजी हैं और संत सब परमात्मा के भक्त वा ब्रह्मस्वरूप हैं। भय भ्रम—संसार का भय और द्वैत का भ्रम जैसे रज्जु में सर्प का, वैसे जीव का ब्रह्म से भेद उपाधि मात्र से है। छप्पय का प्रथम शब्द—'प्रथम' नगण है (।।।) जो शुभ है। नगण का नाग देवता है जो पिंगल शास्त्र का आचार्य हुआ है। और नगण का फल सुख है। लोक इसका स्वर्ग है और जाति ब्राह्मण। ग्रन्थ का प्रारंभ यों शुभ है। छप्पय छन्द रोला और उल्लाला से बनता है। रोला २४ मात्रा का (११+१३ यति का) छन्द और

उदाहरण

दोहा

ब्रह्म प्रणम्य प्रणम्य गुरु पुनि प्रणम्य सब संत।
करत मंगलाचार इम नाशत विघ्न अनन्त ॥ २ ॥
उहै ब्रह्म गुरु संत उह वस्तु विराजत येक।
वचन विलास विभाग त्रय वन्दन भाव विवेक ॥ ३ ॥

अथ ग्रन्थ वर्णन इच्छा

दोहा

वरन्यौ चाहत ग्रन्थ कौं कहा बुद्धि मम क्षुद्र।
अति अगाध मुनि कहत हैं सुन्दर ज्ञानसमुद्र ॥ ४ ॥

उल्लाला २८ मात्रा का (१५+१३ पर यति) छन्द होता है। यह छप्पय ११८ अक्षर की होने से 'पयोधर' नाम के भेद की है छप्पय के ७१ भेदों में से (रणपिंगल) तथा (छन्दःप्रभाकर)। अनूपं में पं० कर्मवाची ही नहीं पदांत सुमिष्टता का हेतु भी है।

(२-३) ग्रन्थकर्त्ता और उनका दादू सम्प्रदाय निर्गुण अद्वैत ब्रह्म के उपासक होने के कारण तीन को नमस्कार करना द्वैत का सूचक हो गया। प्रतिकूलता का परिहार करते हैं कि ब्रह्म गुरु और संत अद्वैत भाव से वा विवेक से एक ही वस्तु हैं। 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरु देव महेश्वरः' तथा 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' (गीता) के अनुसार इन तीनों में भेद नहीं है। अपितु नाम-रूप के भेद मात्र से पृथक् हैं वस्तुतः गुरु और संत-महात्मा सब ब्रह्म स्वरूप हैं। यों एक ब्रह्म ही को प्रणाम है।

(४) कहा बुद्धि मम क्षुद्र—महाकवि कालिदास की उक्ति 'रघुवंश' महाकाव्य के इस वाक्य से स्मरण होती है—'क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्वचाल्पविषया मतिः। तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।' कहां तो सूर्यवंश और कहां मेरी अल्प बुद्धि। मैं इस छोटी सी डोंगी (बुद्धि) से इस (विशाल) समुद्र (सूर्यवंशका वृतांत) को तैरने का इरादा कर रहा हूं। यहां कवि की उक्ति का यह चमत्कार है कि अल्प

चौपई

ज्ञान समुद्र ग्रन्थ अव भाषौं। वहुत भांति मन महिं अभिलाषौं ॥
यथासक्ति हौं वरनि सुनाऊं। जौ सद्गुरु पहिं आज्ञा पाऊं ॥ ५॥

अथ ग्रन्थ वर्णन

सोरठा

है यह अति गम्भीर, उठति लहरि आनन्द की।
मिष्ट सु याको नीर, सकल पदारथ मध्य हैं ॥ ६ ॥

वुद्धि भले ही हूं परंतु इस पर भी ऐसे वृहत्कार्य को करने का साहस करता हूं। ज्ञान ही ब्रह्म है अथवा ब्रह्म की तरह ज्ञान भी अगाध—अनंत है। समुद्र कहने से अति विशालता का लक्ष्य है। मेरी वुद्धि क्या वर्णन करना चाहती है? अगाध (अथाह) ज्ञान-ब्रह्मज्ञान और उसके साधक ज्ञानकाण्ड के अपरिमित विषयों को भावान्तर से मेरे ज्ञान समुद्र को मुनिजन भी अगाध कहते हैं अर्थात् यह ग्रन्थ महात्मा ज्ञानियों के पसन्द और प्रशंसा के योग्य है।

(५) वहुत भांति-इस वाक्य का संवंध 'भाषौं' इस क्रियासे भी हो सकता है। ज्ञान समुद्र ग्रन्थ को अनेक ज्ञान के विषयों और नाना प्रकरणों में वर्णन करने की उत्कट अभिलाषा है। सद्गुरु—परमात्मा वा जिन सच्चे गुरु से शिक्षा शास्त्रों की पाई स्वामीजी ने काशी में तथा अन्यत्र अनेक वड़े पण्डितों से शास्त्रों का अध्ययन किया था। यथा शक्ति-ऐसा कहने से अवांतर भाव से उस आख्यान का संकेत मिलता है जिसमें काशी में ज्ञान समुद्र की गुरु (कथावाचक पण्डित) की प्रेरणा से रचना होने का वर्णन है (देखो भूमिका)।

(६-७) ग्रन्थ के नाम को "रूपकालङ्कार" से सार्थक करते हैं। चमत्कार यह है कि उपमेय उपमा से वढ़ गया है। महात्माओं के अनुभव की तरंगों से स्वयम् सहज निकले अनुपम मोती या रत्नों में (वाक्योंमें) यदि अलङ्कार प्रदर्शित हो; तो भी अन्य रसिक कवियों की वाणी में वलात् लाये हुए अलङ्कारों की जैसे विवेचना करते

इंदव

जाति जिती सब छंदनि की बहु सीप भई इहिं सागर मांहीं।
है तिन मैं मुक्ताफल अर्थ लहैं उनकौं हितसौं अवगाहीं॥
सुन्दर पैठि सकै नहिं जीवत दै डुबकी मरिजीवहि जाहीं।
जे नर ज्ञान कहावत हैं अति गर्व भरे तिनकी गमि नाहीं॥ ७॥

हैं वैसे करना उस उच्च अध्यात्म के गौरव को हीन ही करना है। तथापि भाषाज्ञों को प्रदर्शन कराने के निमित्त यहाँ इस अलङ्कार को खोलकर बता देना भी कुछ अधिक बुरा कुत्रचित् न होगा। "ज्ञान-समुद्र" ग्रन्थ को वा ज्ञान के समुद्र को जल के समुद्र से रूपक अलङ्कार द्वारा भूपित किया है। ज्ञान समुद्र उपमेय में जल समुद्र उपमान का अभेद आरोप है। परन्तु उपमेय (ज्ञान समुद्र) के गुणादि उपमान (जल समुद्र) से बढ़ गये हैं, इस कारण यहां "अधिक-अभेद-रूपक" होता है। परन्तु दोनों के अवयवों (अङ्गों) की भी गणना और तुलना की गई है इससे "सावयव-अधिक-अभेद-रूपक-अलङ्कार" बनता है और समस्त ही अङ्गों की विवेचना है, इससे "समस्त वस्तु-सावयव-अधिक-अभेद-रूपकालंकार" यह ठहरता है। (चन्द्रालोक-कुवलयानन्द। अलंकार प्रकाश और अलंकार प्रबोध)

शब्दार्थः—(१) आगय, भागय=आगै, भागै (ऐ का अय लिखा है) उप्पजय=उपजै, उत्पन्न हो। पकार को द्वित्व पुरानी हिंदी के ढङ्ग से किया है। (२) प्रणम्य (सं०) प्रणाम करके। इम=इस प्रकार। उहै=वह ही, वही (३) विवेक=भिन्नता का ज्ञान जैसे चेतन का जड़ पदार्थ से। नमस्कार करने में तीनों को भिन्न-भिन्न करके कहा इस से विवेक द्वारा फिर ऐक्य दिखाया। (४) क्षुद्र=छोटा। अगाध=गहरा विशाल। ज्ञान समुद्र=ज्ञान समुद्र ग्रन्थ। वा ज्ञानरूपी समुद्र। ज्ञान ब्रह्म का नाम भी है। ब्रह्म अनन्त अपरिमित है। ऐसे ही ज्ञान भी महान् अपरिमित है जिसका ओर छोर नहीं है। (५) अभिलाषौं=अभिलाषा-उत्कट इच्छा करता हूं। आज्ञा पाऊं=गुरु कृपा करके ग्रन्थ रचना की आज्ञा दें तब,

अथ यज्ञास लक्षण

सवइया

जे गुरुभक्त विरक्त जगत सौं है जिनकै संतनि कौ भाव।
वै जिज्ञास उदास रहत हैं गनत न कोऊ रंक न राव॥
वाद विवाद करत नहिं कवहूं वस्तु जानिवे कौ अति चाव।
सुन्दर जिनकी मति है ऐसी ते पैठहिंगे या दरियाव ॥८॥

इसका तात्पर्य्य ऊपर कथन हुआ है। (६) गंभीर=गहरा (समुद्र और ज्ञान का लक्षण)। लहरि=तरंग (समुद्र में जल की और ज्ञान में आनन्द की) मिष्ठ=मीठा (समुद्र का जल खारा और ज्ञान का अमृत समान मीठा) सकल पदारथ=समुद्र मथन से १४ रत्न ही निकले। ज्ञान के समुद्र में अनन्त रत्न हैं। इस कारण सकल कहा। अथवा अर्थान्तर भाव से सकलपद+अर्थ कर के यह अर्थ निकलता है। कला ज्ञान के काण्ड, दर्शन शास्त्रों के अंगप्रत्यङ्गों-सांख्य, योग, भक्ति, वेदान्त, न्याय आदिकके पद वा पाद (विभूति वा खंड वा विभाग) स्थान, प्रस्थान, भूमिका, आदिकों में की हुई व्याख्याएं। मध्य=अन्दर। वहिर्मुख से नहीं किन्तु अन्तर्मुख से अन्तरात्मा के अन्दर ही है।

(७) सव छन्दनि—सव शब्द कहने से 'वहुत' अथवा इस ग्रन्थ के अन्दर के यावत् छन्द। अवगाहीं-१-स्नान करैं-२-समझैं। दै डुवकी मरि=जीना मरना यहां आपा मारने और अहंकार न रखने के अर्थ में है। 'मरिजीवहि' कहने से 'मरजीवा' से प्रयोजन दिखाता है जो गोताखोर समुद्र में से डुवकी लगाने से मोती पाता है। मरजीवा पर रज्जबजी की वाणी में है:—"मरजीवे की मित्रई मोती आवै हाथ। ज्यूं रज्जब गुर की दया मिलै सु अविगत नाथ" ॥ (३।५४) तथा "ज्यूं बहु रतन समंद में त्यूं सतगुरु सबद घनाय। मरजीवा व्है मांहि मिलि जन रज्जब बिन काय"। (३।१२०)। जान कहावत=जो जानते हैं सो अजान (अज्ञानी) हैं जैसे कि कठोपनिषद (२-५) आदि में। गमि=गम्य, गति, पहुंच।

(८)—"जिज्ञासु" को पुराणी पुस्तकों में प्रायः 'यज्ञास' लिखा है सुन्दरदासजी

छप्पय

सुत कलत्र निज देह आपु कौं बन्धन जांनत।
छूटौं कौंन उपाय इहै उर अन्तर आंनत॥
जन्म मरन की शंक रहै निश दिन मन मांहीं।
चतुराशी के दुःख नहीं कछु बरने जांहीं॥
इहिं भांति रहै सोचत सदा, संतनि कौं पूछत फिरै।
को है ऐसो सद्गुरु कहीं, जो मेरौ कारय करै॥ ६॥

अथ गुरुदेव की दुर्लभता

चौपइया

गुरुदेव बिना नहिं मारग सूझय, गुरु बिन भक्ति न जांनै।
गुरुदेव बिना नहिं संशय भागय, गुरु बिन लहै न ज्ञांनै
गुरुदेव बिना नहिं कारय होई, लोक वेद यौं गावै।
गुरुदेव बिना नहिं सदगति कोई, गुरु गोविन्द बतावै॥ १०॥

त्रोटक

गुरुदेव बिना नहिं भाग्य जगै। गुरुदेव बिना नहिं प्रीति लगै।
गुरुदेव बिना नहिं शुद्ध हृदं। गुरुदेव बिना नहिं मोक्ष पदं॥ ११॥

मनहर

गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा कौं ग्रहै,
गुरु के प्रसाद भव दुःख बिसराइये।

ने दोनों रूप दिये हैं। उदास=उदासीन वा समभाव। वस्तु=परमात्म तत्व। जिज्ञासु के लक्ष्य वा ग्रन्थ के लक्ष्य को भी वस्तु कहते हैं। सुत=बेटा। कलत्र=स्त्री। छूटौं= संसार के बंधनों से मुक्ति पाऊं। चतुरासी=चौरासी लाख योनि अर्थात् जन्म-मरण। अंत्य पद में मात्रा अधिक है ऐसा प्रतीत होता है परन्तु अधिक नहीं है।

(११) हृदं-यह 'पदं' के साथ तुकान्त निमित्त है।

गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीति हू अधिक बाढ़ै,
गुरु के प्रसाद राम नाम गुन गाइये ॥
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जानै,
गुरु के प्रसाद शून्य मैं समाधि लाइये ।
सुन्दर कहत गुरुदेव जौ कृपाल हौंहि,
तिनके प्रसाद तत्व ज्ञान पुनि पाइये ॥ १२ ॥*

दोहा

गुरु के सरनै आइहै, तबही उपजै ज्ञान ।
तिमिर कहौ कैसैं रहै, प्रगट होइ जब भान ॥ १३ ॥

अथ गुरु लक्षन

रोडा

चित्त ब्रह्म लय लीन नित्य शीतल हि सुहृद्य ।
क्रोध रहित सब साध साधु पद नाहिं न निर्दय् ।
अहंकार नहिं लेश महान् सबनि सुख दिज्जय् ।
शिष्य् परष्य् विचारि जगत महिं सो गुरु किज्जय् ॥ १४ ॥

---

(१२) प्रसाद=प्रसन्नता । ग्रहैं=पावै । दिशा=गति, स्थान । युगति=युक्ति, क्रिया, कूंची, विधि । शून्य=निर्विकल्प समाधि । योग में ध्यानशक्ति पक जाने पर एक शून्य की अवस्था आती है उसही से प्रयोजन है ।—* इस बारहवें छन्द में बुद्धियोग—शरणागत-भक्तियोग-नामजपयोग-राजयोग वा हठयोग-तथा सर्वोपरि तत्वज्ञान-ये सब दर्साए हैं । जो गुरु कृपा से प्राप्त होते हैं । तत्वज्ञान=शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति ।

(१३) गुरु को सूर्य की उपमा दी है ।

(१४) रोडा=रोला छन्द । हृद्य-पाठांतर हिर्द्य=हृदय=मन । साध=साधन वा कर्म करके । साधुपद=संत का दर्जा (साधकर) । नांहि न निर्दय=कदापि भी दया रहित नहीं, अर्थात् सदा ही दयालु । महान सबनि=सबको अत्यन्त सुख । दिज्जय=देवै । परष्य=परखकर ।

छप्पय

सदा प्रसन्न सुभाव प्रगट सर्वोपरि राजय।
तृप्त ज्ञान विज्ञान अचल कूटस्थ विराजय॥
सुख निधान सर्वज्ञ मान अपमान न जानै।
सारासार विवेक सकल मिथ्या भ्रम भानै॥
पुनि भिद्यन्ते हृदि ग्रन्थि कौं छिद्यन्ते सव संशयं।
कहि सुन्दर सो सद्गुरु सही चिदानंदघनचिन्मयं॥ १५॥

पवंगम

शव्द ब्रह्म परब्रह्म भली विधि जाँनई।
पञ्च तत्व गुन तीन मृषा करि माँनई॥
वुद्धिमन्त सव सन्त कहैं गुरु सोइरे।
और ठौर शिप जाइ भ्रमै जिन कोइरे॥ १६॥

नन्दा

ब्राह्मी भूत अवस्था जा महिं होइ। सुन्दर सोई सद्गुरु जानै कोई॥ १७॥

सोरठा

ऐसे गुरु पहिं आइ, प्रश्न करै कर जोरि कैं।
शिष्य मुक्ति ह्वै जाइ, संशय कोऊ नाँ रहै॥ १८॥

---

(१५) तृप्त ज्ञान विज्ञान="ज्ञान-विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः"-यह समवुद्धि का लक्षण गीता (६।८) में है वही ज्यों का त्यों यहां दिया है। कूटस्थ=अटल। भानै=प्रकाशै अथवा मिटावै। भिद्यन्ते=भेदन करै। छिद्यन्ते=काटै। चिन्मयं=चैतन्यमय-ब्रह्मलीन।

(१६) शव्द ब्रह्म=वेदशास्त्र यथा "शव्द ब्रह्मातिवर्तते"—गीता (६।४४)। मृषा=झूठा। ब्राह्मीभूत="अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्य की सिद्धि जिसको हो गई हो।

अथ गुरु की प्राप्ति

चौपई

पोजत पोजत सद्गुरु पाया। भूरि भाग्य जाग्यौ शिष आया।
देपत दृष्टि भयो आनन्दा। यह तौ कृपा करी गोविंदा॥ १९॥

दोहा

गुरु को दरसन देपतैं, शिष पायौ सन्तोष।
कारय मेरौ अब भयौ, मन महिं मान्यौ मोष॥ २०॥

अथ शिष्य की प्रार्थना

सोरठा

सीस नाइ कर जोरि, शिष्य सु प्रार्थना करी।
हे प्रभु लीजय छोरि, अभय दान गुरु दिज्जिये॥ २१॥

प्रार्थनाष्टक

अर्द्ध भुजंगी

अहो देव स्वांमी, अहं अज्ञ कामी।
कृपा मोहि कीजै, अभै दांन दीजै॥ १॥

---

(१९) भूर=भूरि-बहुत-बड़ा। आया=आया का कर्त्ता शिष्य हो तो यह अर्थ है कि सद्गुरु पाकर शिष्य सफल होकर आया। यदि गुरु कर्त्ता हो तो शिष्य सम्बोधन होगा। गोविन्दा=अनुप्रास के निमित्त "गोव्यंदा" ऐसा पाठ उस समय के कवि लिखते थे।

(२०) कारय=कार्य, काम। (यकार का जकार भी बोलते हैं) मोष=मोक्ष।

(२१) प्रार्थना=इसको 'प्रारथना' उचारना। छोरि=छुड़ा।

अष्टक का—

(१) अहं=मैं। मोहि=मुझ पर। अभै दांन=संसार के दुःखों से निर्भय करना।

वड़े भाग्य मेरे, लहे अंघ्रि तेरे।
तुम्हे देखि जीजै, अभै दान दीजै ॥ २ ॥

प्रभू हौं अनाथा, गहौ मोर हाथा।
दया क्यौं न कीजै, अभै दान दीजै ॥ ३ ॥

दुखी दीन प्राणी, कहौ ब्रह्म बांणी।
हृदौ प्रेम भीजै, अभै दांन दीजै ॥ ४ ॥

यती जैंन देखे, सवै भेप पेपे।
तुम्हैं चित्त धीजै, अभै दांन दीजै ॥ ५ ॥

फिरयौ देश देशा, किये दूरि केशा।
नहीं यौं पतीजै, अभै दांन दीजै ॥ ६ ॥

गयौ आयु सारौ, भयौ सोच भारौ।
वृथा देह छीजै, अभै दांन दीजै ॥ ७ ॥

करौ मौज ऐसी, रहै वुद्धि वैसी।
सुधा नित्य पीजै, अभै दांन दीजै ॥ ८ ॥२६॥

---

(२) अंघ्रि=चरण।

(५) जैंन=जिनमतवाले-ईश्वर नहीं माननेवाले सांख्यमतावलम्वी। चोज यह है कि शिष्य ने नास्तिकों तक के मत टटोले हैं।

(७) सारो=सव। सारी उम्र जाने से यह प्रयोजन है कि शिष्य वालक नहीं वृद्धावस्था का है। ज्ञान समुद्र की रचना के समय सुन्दरदासजी ५७ वर्ष के थे।

(८) मौज=कृपा, लहर—महर। देखो सवैया (११)। वैसो=जैसी आपने ब्रह्मनिष्ट कर दी अथवा अमृत पीने की धुन में लगी हुई। सुधा=अमृत। नित्य सुधा पीना=अमर (मोक्ष-प्राप्त) होना। अथवा गुरु से नित्य सुधा ब्रह्मविद्या प्राप्त करना।

अथ गुरु की प्रसन्नता

सोरठा

मुदित भये गुरुदेव, देषि दीनता शिष्य की।
सर्व बताऊं भेव, जोई जो तूं पूछिहै ॥ ३० ॥

अथ शिष्य का प्रश्न

पद्धरी

कर जोरि उभय शिष करि प्रणाम।
तव प्रश्न करी मन धरि विराम ॥
हों कौंन, कौंन यह जगत-आहि।
पुनि जन्म मरण प्रभु कहहु काहि ॥ ३१ ॥

श्रीगुरुरुवाच

उत्तरबोधक

है चिदानन्द घन ब्रह्म तूं सोई।
देह संयोग जीवत्व भ्रम होई।
जगत हू सकल यह अनछतौ जानौ।
जनम अरु मरण सब स्वप्न करि मानौ ॥ ३२ ॥

---

(३०) मुदित=प्रसन्न। भेव=भेद (ब्रह्मविद्या के)।

(३१) उभय=दोनों। कर=हाथ। प्रश्न-इस शब्द को स्त्रीलिंग माना है। "शिष्य का प्रश्न"—यह आदि पुस्तक में "शिष्य की प्रश्न" लिखा है। विराम=धीरज, शांति। आहि=है। काहि=क्या।

(३२) यह बोधक छन्द १९ मात्रा का, और १०+९ पर यति का, अन्त दो गुरु का होता है (रणपिंगल सं० ६२ मात्रा मेल)

ब्रह्म तूं=यह 'तत्वमसि' (तू वह हैं) इस महावाक्य के आधार पर 'हों कौन' का उत्तर है। ब्रह्म और जीव का अभेद (एकपन) प्रतिपादन किया और जीव के भेद की प्रतीति केवल स्थूल

शिष्य उवाच

गीतक

जौ चिदानंद स्वरूप स्वामी ताहि भ्रम कहि क्यौं भयौ।
तिहिं देह के संयोग है जीवत्व मानिर क्यौं लयौ॥
यह अनछतौ संसार कैसैं जो प्रतक्ष्य प्रमांनियें।
पुनि जन्म मरण प्रवाह कव कौ स्वप्न करि क्यौं जांनियें॥ ३३॥

श्रीगुरुरुवाच

दोहा

भ्रम हीं कौं भ्रम ऊपज्यौ, चिदानंद रस येक।
मृग जल प्रत्यक्ष देपिये, तैसैं जगत विवेक॥ ३४॥

चौपई

निद्रा महिं सूतौ है जौलौं। जन्म मरण कौ अन्त न तौलौं।
जागि परें तें स्वप्न समाना। तव मिटि जाइ सकल अज्ञाना॥३५॥

शिष्य उवाच

सोरठा

स्वामिन् यह सन्देह, जागै सोवै कौंन सौ।
ये तौ जड़ मन देह, भ्रम कौं भ्रम कैसैं भयौ॥ ३६॥

देहके अभ्यास से है, सो वताया। अनछतो=अन+छतो=है पर नहीं है—अर्थात् जो दीखने मात्र है वास्तवमें है नहीं अर्थात् मिथ्या। स्वप्न में जिन पदार्थों की प्रतीति होती है वे जागने पर नहीं होते ऐसे ही जन्म-मरण-मय संसार ब्रह्मदर्शण अर्थात् आत्म-साक्षात्कार पर नहीं होता।

(३३) इस छन्दमें जिज्ञासु शिष्य ने वे वातें पूछी हैं जो प्रायः वेदान्त के प्रतिपक्षी आक्षेप के रूपमें लाते हैं। मांनिर=मान कर।

(३४) मृग जल=मृगतृष्णा—मरीचिका।

(३६) इस छन्द में (३३) वें छन्दवाले प्रश्नों से भी वेढव सवाल है।

श्रीगुरुरुवाच

कुण्डलिया

शिष्य कहां लौं पूछिहे, मैं तौ उत्तर दीन।
तव लग चित्त न आइहै जव लग हृदय मलीन ॥
जव लग हृदय मलीन यथारथ कैसैं जांनै।
भ्रमैं त्रिगुन मय वुद्धि आपु नांहि न पहिचानै ॥
कहिवौ सुनिवौ करौ ज्ञान उपजै न जहां लौं।
मैं तौ उत्तर दियौ शिष्य पूछिहे कहां लौं ॥ ३७ ॥

इति श्री सुन्दरदासेन विरचिते ज्ञानसमुद्रे गुरु शिष्य लक्षण निरूपण नाम प्रथमोल्लासः ॥ १ ॥

---

(३७) चित्त न आइ है=चित्त में वास्तव ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी। अथवा चित्त नहीं लगेगा। आपु=आपको-स्वात्माराम को, अंतर्दृष्टि द्वारा प्रत्यक्ष किए विना। आप जो आत्मा है सो वुद्धि की विपरीतता से तत्वज्ञान का उदय नहीं करै।

—:※:—

अथ द्वितीय उल्लास

शिष्य उवाच

दोहा

स्वामी हृदय मलीन मम, शुद्धि कवन विधि होइ।
सोई कहौ उपाइ अव, संशय रहै न कोइ ॥ १ ॥

श्रीगुरुरुवाच

चौपई

सुनहिं शिष्य ये तीनि उपाई। भक्ति योग हठ योग कराई ॥
पुनि सांख्य सुयोग हि मन लावै। तव तूं शुद्ध स्वरूप हि पावै ॥२॥

शिष्य उवाच

पद्धड़ी

अव भक्ति कहौ गुरु कै प्रकार, हठ योग अंग पाऊं विचार ॥
पुनि सांख्य सुयोग वताव नाथ, भवसागर वूड़त गहहु हाथ ॥३॥

---

(१) शुद्धि=पवित्रता, निर्मलता।

(२) कराई=करो वा करना उचित है। जो तीन उपाय वुद्धि के निर्मल करने और अंतःकरण की शुद्धि के लिखे सो टकसाली वेदान्त के अनुसार तो हैं नहीं, क्योंकि प्रथम भक्ति, दूसरे हठ, तीसरे सांख्य वताए हैं। और इनके साथ 'योग' शब्द का जोड़ना गीता का अनुकरण है। परन्तु गीता में हठ योग की प्रकरणवद्ध कोई क्रिया नहीं है। दादूजीका निश्चय भक्तिमय ब्रह्म ज्ञान है सो ही उनके प्यारे शिष्य सुन्दरदासजी ने यहां साधन में दिखाया है। दादूजी और उनके शिष्यों ने हठ योग और राज योग दोनों साधे थे। सांख्य योग से सुन्दरदासजी ने सांख्य और वेदांत लिए हैं जैसा कि चौथे और पांचवें उल्लासों से ज्ञात होता है। इन सव उल्लासों से सुन्दरदासजी के अगाध पांडित्य और महात्मा होनेका पक्का प्रमाण प्रगट है।

(३)पद्धड़ी=पद्धरी का लक्षण दिया गया है। गहहु=गहो, पकड़ो।

॥श्रीपरमात्मनेनमः॥ प्रथम मंगलाचरण॥ छप्पय छंद॥ ॥
प्रथम बंदि परब्रह्म परम आनंद स्वरूपं॥ द्वितिय बंदि गुरुदेव दिये
जिह ज्ञान अनूपं॥ त्रितिय बंदि सब संत जोरि कर तिनके आगय॥ मन
बच काय प्रणाम करत अयत्रम सब जागय॥ इहिं भांति मंगलाचरण क
रि सुंदर ग्रंथ बषांनियें॥ तहं बिघ्न कोऊ उप्पजय॥ यह निश्चय क
रि मांनियें॥ १॥ उदाहरण॥ दोहा छंद॥ ब्रह्म प्रणम्य प्रणम्य गुरु॥ पुनि
प्रणम्य सब संत॥ करत मंगलाचार इम॥ नाशत बिघ्न अनंत॥ २॥ उहै
ब्रह्म गुरु संत उह॥ बस्तु बिराजत येक॥ बचन बिलास बिभाग त्रय
बंदन भाव बिबेक॥ ३॥ अथ ग्रंथ बर्नन इच्छा॥ बरन्यो चाहत ग्रंथ
कौं॥ कहा बुद्धि मम क्षुद्र॥ अति अगाध मुनि कहत हैं॥ सुंदर ज्ञान
समुद्र॥ ४॥ चौपई छंद॥ ज्ञान समुद्र ग्रंथ अब भाषौं॥ बहुत भांति
मन महिं अभिलाषौं॥ यथा शक्ति हौं बरनि सुनाऊं॥ जौ सद्गु
रु आज्ञा पाऊं॥ ५॥ अथ ग्रंथ बर्नन॥ सोरठा छंद॥ है यह अति
गंभीर॥ उज्जल हरि आनंद की॥ मिष्ट सुधा को नीर॥ सकल पदा
र्थ मध्य हैं॥ ६॥ इंदव छंद॥ जाति जिती सब छंदनि की बहु सीप
भई इहिं सागर माहीं॥ है तिनमैं मुक्ताफल अर्थ लहैं उनकौं हि
त सौं अवगाहीं॥ सुंदर पैठि सकै नहिं जीवत है डुबकी मरजीव
हि जांहीं॥ जे नर जांन कहावत हैं अति गर्व भरे तिनकौं गमि नां
हीं॥ ७॥ अथ पात्र लक्षण॥ सवइया छंद॥ जे गुरु भक्त बिरक्त
जगत सौं है जिनकै संतनि कौ भाव॥ वैराग उदास रहत हैं

प्राचीन ग्रन्थ के प्रथम पृष्ठ का चित्र

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता।

श्रीगुरुरुवाच

सवइया

प्रथन हिं नवधा भक्ति कहत हौं नव प्रकार हैं ताके भेद ।
दशमी प्रेम लक्ष्णा कहिये सो पावै जो ह्वै निर्वेद ॥
परा भक्ति है ताके आगै सेवक सेव्य न होइ विछेद ।
उत्तम मध्य कनिष्ट * तीन विधि सुंदर इनि तें मिटिहैं षेद ॥४॥

शिष्य उवाच

छप्पय

नवधा भक्ति वषांनि कहौ गुरु भिन्न भिन्न करि ।
प्रेम लक्ष्णा कौंन सुनावहु सीस हाथ धरि ॥
परा भक्ति कौ भेव कहौ प्रभु कौंन प्रकारा ।
को उत्तम को मध्य कवन कनिष्ट* निर्द्धारा ॥
यह दया सिंधु मोसौं कहहु तुम समान नहिं कोइ है ।
जव कृपा कटाक्षहि देषि हौं तव मम कारय होइ है ॥५॥

---

(४) नवधा भक्ति और प्रेमलक्ष्णा आदि का वर्णन स्वामीजी ने किन ग्रन्थों के आधार पर किया सो तो प्रगट नहीं होता । परन्तु इनके वर्णन से यह अटकल लगाई जा सकती है कि—(नारद पांचरात्र, शांडिल्य सूत्र, भक्ति—तरंगिणी आदिक ग्रन्थों से ले लिये होंगे ।)

* मूल पुस्तक में 'कनिष्ठा' पाठ है । परन्तु एक मात्रा वढ़ने से 'कनिष्ट' पाठ उत्तम होता है ।

(५) प्रेम लक्षणा=गहरा प्रेम । प्रेम तन्मय ऐसा हो जाना कि प्रेम ही भक्त लक्षण वा पहिचान हो । परा-भक्ति=भक्ति की पराकाष्ठा । सव प्रकार की भक्तियों में शिरोमणि । यह दिव्यज्ञान की समीपवर्त्ती होती है । * इस छप्पय के चौथे चरण में 'कनिष्ट' शब्द 'कनिषट' ऐसा वुलैगा—क्योंकि 'रोला' छन्द का नियम है कि पिछले

श्री गुरुरुवाच

चौपई

सुनि शिष नवधा भक्ति विधानं। श्रवण कीर्त्तन समरण जानं।

पादसेवनं अर्चन वंदन। दासभाव सख्यत्व समर्प्पन॥ ६॥

सोरठा

इनि नव अंगनि जांनि, सहित अनुक्रम कीजिये।

सब ही कौं सुख दानि, भक्ति कनिष्टा यह कही॥ ७॥

शिष्य उवाच

मालती

श्रवन प्रभु कौंन सो कहिये। कीरतन कौंन विधि लहिये॥

जु सुमरन कौंन कहि दीजै। चरन सेवा सु क्यौं कीजै॥ ८॥

अर्चना कौंन विधि होई। वंदना कहौ गुरु सोई॥

दास्य सख्यत्व पहिचानौ। निवेदन आतमा † जानौ॥ ९॥

सोरठा

येक येक कौ भेव, मोहि अनुक्रम सौं कहौ।

तुम कृपाल गुरुदेव, पूछत विलग न मांनिये॥ १०॥

चरणार्द्ध में मात्राओं की रचना=(३+२)+(४+४) अथवा (३+२)+(३+३+२) हों।

(६) इस चौपई के प्रथम चरण में 'शिष्य'='शिष' ऐसा पढ़ा जायगा—नहीं तो एक मात्रा बढ़ेगी, सो ठीक नहीं।

(७) अनुक्रम=उत्तरोत्तर। एक के पीछे दूसरा। दानि=देनेवाली।

(९) † मूल पुस्तक में 'आत्मा' पाठ है 'आत्मा' को 'आतमा' ऐसा पढना चाहिये कि मात्रा की हानि न हो।

(१०) विलग=न्यारापन, मन में बुरा।

श्री गुरुरुवाच

चंपक

अथ श्रवण

शिप तोहि कहौं श्रुति वानी। सव संतनि साषि वषांनी॥
द्वै रूप ब्रह्म के जानै। निर्गुन अरु सगुन पिछानै॥ ११॥
निर्गुन निज रूप नियारा। पुनि सगुन संत अवतारा॥
निर्गुण की भक्ति सु मन सौं। संतन की मन अरु तन सौं॥ १२॥
ऐकाग्रहि चित्त जु राषै। हरि गुन सुनि सुनि रस चाषै॥
पुनि सुनै संत के वैना। यह श्रवण भक्ति मन चैना॥ १३॥

अथ कीर्तन

हरि गुन रसना मुख गावै। अति सै करि प्रेम वढ़ावै॥
यह भक्ति कीरतन कहिये। पुनि गुरु प्रसाद तें लहिये॥ १४॥

अथ समरण

अव समरन दोइ प्रकारा। इक रसना नाम उचारा॥
इक हृदय नाम ठहरावै। यह समरन भक्ति कहावै॥ १५॥

अथ पादसेवन

नित चरन कमल महिं लौटै। मनसा करि पाव पलोटै॥
यह भक्ति चरन की सेवा। संमुभावत है गुरुदेवा॥ १६॥

---

(११) श्रुति=वेद। सापि=साक्षि। वाणी प्रमाण। ब्रह्म=निर्गुण। ईस्वर=सगुण। संत=ऋषि, मुनि, अवतार सव। अतिसय=अत्यन्त।

(१५) रसना=जिव्हा।

(१६) चरण-सेवन—भारतवर्ष की प्राचीन सेवा-पद्धति का एक लक्षण है। लक्ष्मीजी भगवानकी, हनुमानजी रामचन्द्रजी की इत्यादि। पलोटै=दवावै, सहलावै।

अथ अर्चना

चामर ※

अब अर्‍चना कौ भेद सुनि शिप देउं तोहि बताइ।
　　आरोपिकैं तहं भाव् अपनौं सेइये मन लाइ॥
रचि भाव् कौ मंदिर अनूपम अकल मूरति मांहिं।
　　पुनि भाव् सिंघासन विराजै भाव् विनु कछु नांहिं॥१७॥
निज भाव् को तहां करै पूजा बैठि सनमुख दास।
　　निज भाव् की सब सौंज आनै नित्य स्वांमी पास॥
पुनि भाव ही कौ कलश भरि धरि भाव् नीर न्हवाइ।
　　करि भाव् ही के वसन बहु विधि अंग अंग बनाइ॥१८॥
तहं भाव् चंदन भाव् केशरि भाव् करि घसि लेहु।
　　पुनि भाव् ही करि चरचि स्वांमी तिलक मस्तक देहु॥
लै भाव् ही के पुष्प उत्तम गुहै माल अनूप।
　　पहिराइ प्रभु कौं निरषि नख शिष भाव् षेवै धूप॥१९॥
तहं भाव् ही लै धरै भोजन भाव् लावै भोग।
　　पुनि भाव् ही करिकैं समर्प्पै सकल प्रभु कैं योग॥
तहं भाव् ही कौ जोइ दीपक भाव् घृत करि सींचि।
　　तहं भाव् ही की करै थाली धरै ताके बीचि॥२०॥

---

(१७) ※ यह गीता छन्द है—(१४+१२)=२६ मात्रा का अन्त में गुरु लघु। यथार्थ रीतिसे है। १७ वें छन्द से २१ वें तक भाव की विधि अर्थात मानसी-पूजा का विधान है। क्योंकि निराकार-उपासकों के अनुसार प्रत्यक्ष स्थूल मूर्त्ति की पूजा का विधान नहीं। अकल=किसी कला वा कारीगरी से न बनी हो।

(१८) सौंज=सामग्री।

(१९) गुहै=गूंथै। अनूप=अनुपम, सुन्दर।

(२०) धरै का कर्म 'दीपक'। रंग=रागरंग। रागों में गाये हुए भजन वा आरती के पदोंका प्रेम भरा आनन्द।

तहं भाव ही की घंट झालरि संप ताल मृदंग।
तहं भाव ही के शब्द नाना रहै अतिसै रंग ॥
यह भाव ही की आरती करि करै बहुत प्रनाम।
तव स्तुती बहु विधि उच्चरै धुनि सहित लै लै नाम ॥२१॥

अथ स्तुति

मोतीदाम

अहो हरि देव, न जांनत सेव। अहो हरि राइ, परौं तव पाइ।
सुनो यह गाथ, गहौ मम हाथ। अनाथ अनाथ अनाथ अनाथ ॥१॥
अहो प्रभु नित्य, अहो प्रभु सत्य। अहो अविनाश, अहो अविगत्य।
अहो प्रभु भिन्न, द्रसै जु प्रकृत्य। निहत्य निहत्य निहत्य निहत्य ॥२॥
अहो प्रभु पांवन नाम तुम्हार। भजैं तिनकै सब जांहिं विकार।
करी तुम सन्तनि की जु सहाइ। अहो हरि हो हरि हो हरि राइ ॥३॥
अहो प्रभु हो सब जांन सयान। दियौ तुम गर्भ थकैं पय पांन।
सुतौ अब क्यौं न करौ प्रतिपाल। अहो हरि हो हरि हो हरिलाल ॥४॥

स्तुतिका—

(१) गाथ=गाथा—गानेकी स्तुति।

(२) नित्य और सत्यका अनुप्रास संकीर्ण है परन्तु यहां अनुप्रास ही आवश्यक नहीं। अविगत्य=अविगत वा अविगति=जिसकी गति वा स्थिति जानी नहीं जा सकै। भिन्न=ब्रह्मसे न्यारी। द्रसै=दिखाई देवै। प्रकृत्य=प्रकृति, माया। निहत्य=मारा गया, द्वैत भाव रहै तो। हे प्रभुः द्वैतभाव (परमात्मा से माया स्वतंत्र प्रतीत हो तो) यह भाव आत्मा का घातक। आत्महनन इस से होता है।

(३) पावन=पवित्र करनेवाला।

(४) जान सयान=सर्वज्ञ, सावधान। गर्भ थकैं=गर्भमें आते ही। सुतौ=फिर, ऐसे जो आप हो सो।

भजें प्रभु ब्रह्म पुरिंद्र महेस। भजें सनकादिक नारद सेस।
भजें पुनि और अनेकहि साध। अगाध अगाध अगाध अगाध ॥५॥
अहो सुखधाम कहें मुनि नाम। अहो सुख दैन कहै मुनि वैन।
अहो सुखरूप कहें मुनि भूप। अरूप अरूप अरूप अरूप ॥६॥
अहो जगदादि अहो जगदंत। अहो जगमध्य कहैं सव सन्त।
अहो जगजीव अहो जगतंत। अनन्त अनन्त अनन्त अनन्त ॥७॥
अहो प्रभु वोलि सकै कहि कौंन। रहे सिध साधक हूं मुख मौंन।
गिरा मन बुद्धि न होइ विचार। अपार अपार अपार अपार ॥२६॥

दोहा

वहुत प्रशंसा करि कहै, हौं प्रभु अति अज्ञान ॥
पूजा विधि जानत नहीं, सरनि रापि भगवान ॥ ३० ॥

अथ वन्दन

लीला

वन्दन दोइ प्रकार, कहौं शिप संभलियं।
दंड समान करै तन सौं तन दंड दियं ॥
त्यौं मन सौं तन मध्य प्रभूकर पाइ परै।
या विधि दोइ प्रकार सु वन्दन भक्ति करै ॥ ३१ ॥

---

(५) पुरिंद्र=सुरपुरेन्द्र अथवा ब्रह्मपुरिंद्र=ब्रह्मलोक के स्वामी ब्रह्मा। अथवा लेख दोपसे सुरिंद्र (सुरेंद्र) का पुरिंद्र लिखा गया हो—तो, ब्रह्म=ब्रह्मा। सुरेंद्र=विष्णु (वा इंद्र)। महेस (महेश)=शिव। शेस=शेपनाग। अगाध=अगम्य।

(६) मुनिभूप=मुनिराज, मुनीश्वर।

(७) जगतंत=जगत के तत्व।

(३१) लीला छन्द देखो परिशिष्ट सं० (१) वन्दन दो प्रकार—(१) तनसे (२) मन से। तन से दंडाकार साष्टांग और मनसें प्रभु का ध्यान करता हुआ मानों चरणारविंद में पड़ गया। संभलियं=भले प्रकार वा सुनो (गु०) दंडदियं=मानों दण्ड-

अथ दास्यत्व

नित्य भय सौं रहै हस्त जोरें कहै। कहा प्रभु मोहि आज्ञा सु होई।
पलक पतिव्रता पति वचन खंडै नहीं। भक्ति दास्यत्व शिष जांनि सोई ॥३२॥

अथ सख्यत्व

डुमिला

सुनि शिष्य सखापन तोहि कहौं हरि आतम कै नित संग रहै।
पल छाडत नाहिं समीप सदा जितहीं जितकौ यह जीव वहै ॥
अव तूं फिरिकै हरिसौं हित रापहि होइ सखा दृढ़ भाव गहै।
इम सुन्दर मित्र न मित्र तजै यह भक्ति सखापन वेद कहै ॥३३॥

अथ आत्मनिवेदना

कुण्डली*

प्रथम समर्पन मन करै, द्रुतिय समर्पन देह।
तृतिय समर्पन धन करै, चतुः समर्पन गेह ॥
गेह दारा धनं। दास दासी जनं।
वाज हाथी गनं। सर्व द्वै यौं भनं ॥
और जे मे मनं। है प्रभू ते तनं।
शिष्य बांनी सुनं। आतमा अर्पनं ॥३४॥

कार दंडित हो कर पड़ता है। प्रभूकर=प्रभु के। तनमध्य=शरीर के भीतर। अथवा शरीर में ईश्वर को मान कर।

(३३) डुमिला=द्रुमिला=दुमिल छन्द—आठ सगण का वर्ण छन्द है। सवैया का एक भेद है। इम=यों। वेद कहै=उपनिषद (मुंडक ३।१) में 'द्वासुपर्णा सयुजा-सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते......।' मूल पुस्तक में 'शपापन' ऐसा पाठ है हमने 'सखापन' रखा है। केवल लेखक का दोप मात्र है।

(३४) * दोहाके साथ विमोहा (दो रगण का) छंद जोड़ा है, रोला या

दोहा

नवधा भक्ति सु यह कही, भिन्न भिन्न समुझाइ।
याकौ नाम कनिष्ट है, शिष्य सुनहिं चित लाइ॥ ३५॥

इति नवधा भक्ति

शिष्य उवाच

रासा ※

हे प्रभु मोहि कही तुम नौ विधि भक्ति सह।
फेरि कह्यौ समुझाइ सुजानि कनिष्ट यह॥
मध्यहु भक्ति सुनाइ कृपा करि कौंन अब।
जानत हो गुरुदेव जु औसर होइ कब॥ ३६॥

श्री गुरुरुवाच

सोरठा

शिष्य सुनाऊं तोहि, प्रेमलक्षणा भक्ति कौं।
सावधांन अब होइ, जो तेरैं सिर भाग्य हैं॥ ३७॥

इंदव

प्रेम लग्यौ परमेश्वर सौं तब भूलि गयौ सब ही घरबारा।
ज्यौं उनमत्त फिरै जित ही तित नैकु रही न शरीर संभारा॥

उल्लाला छन्द नहीं लगाया। विमोहा को स्वामीजी चन्दाना लिखते हैं। यह भी एक प्रकारका कुण्डलिया है। देह=तन। इस प्रकार तन-मन-धन। गेह=स्थावर सम्पत्ति। दारा=स्त्री इत्यादि जंगम सम्पत्ति। बाजि=घोड़ा। भनं=कहो। मे=मेरा। मूल पुस्तकमें 'आत्मा' पाठ है। छन्द निमित्त 'आतमा' हमने लिखा है।

(३६) रासा-※-छन्द—२१ मात्रा का आदिमें गुरु अंतमें लघु हैं।

(३७) प्रेम लक्षणा—यह भक्ति मध्यमा भी कही आती है। यह कनिष्ठा से आगे और परा से नीचे दर्जे की है।

स्वास उस्वास उठैं सब रोम चलै दृग नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधा विधि छाकि पर्‌यौ रस पी मतवारा॥ ३८॥

नराय

न लाज कांनि लोक की न वेद कौ कह्यौ करै।
न शंक भूत प्रेत की न देव यक्ष तें डरै॥
सुनैं न कांन और की द्रशै न और अक्षणा।
कहै न मुक्ख और बात भक्ति प्रेमलक्षणा॥ ३९॥

रंगिका

निश दिन हरि सौं चित्तासक्ती * सदा ठग्यौ सो रहिये।
कोउ न जानि सकै यह भक्ती प्रेम लक्षणा कहिये॥ ४०॥

विज्जुमाला

प्रेमाधीना छाक्या डोलै। क्यौं का क्यौं ही वांनी वोलै।
जैसे गोपी भूली देहा। ताकौं चाहै जासौं नेहा॥ ४१॥

---

(३८) उनमत्त=पागल, मस्त। संभारा=सम्हाल, देहका अवसान। रोम उठै=रोमांच हो। छाकि परयो=तृप्त हुआ, मस्त हो गया। रस=प्रेम-रस। मतवारा=मतवाला, प्रेममें मस्त।

(३९) नराय=नराच=नाराच छंद—१८ अक्षर का जिस में २ नगण ४ रगण होते हैं। परन्तु यह १६ अक्षर का नराच छन्द है जिसको पंच चामर नाम से पुकाते हैं, और नागराज भी। इसमें जगण+रगण+जगण+रगण+जगण और अन्तमें एक रु होता है। चामर छन्द के आदि में लघु देने से वनता है। द्रशै=देखै। क्षणा=आंख से।

(४०) रंगिका—यह छन्द १६+१२=२८ मात्रा का विषम वृत्त, इसको 'सार' र 'ललित' और 'नरेन्द्र' आदि नाम भी देते हैं। * मूल पुस्तक में 'सक्ति' है।

(४१) विज्जुमाला=विद्युन्माला छन्द आठ गुरु वा दो मगण दो गुरु का वर्ण द। प्रेमाधीना=प्रेम के वश होकर। गोपियों की भक्ति प्रसिद्ध है—यथा 'गोपी की धुजा' (सूरदास)।

छप्पय

कब हूं कै हंसि उठय नृत्य करि रोवन लागय।
कब हूं गद्गद कंठ शब्द निकसै नहिं आगय॥
कब हूं हृदय उमंगि वहुत उच्चय स्वर गावै।
कब हूं कै मुख मौंनि मग्न ऐसैं रहि जावै॥
यौं चित्त वृत्य हरि सौं लगी सावधान कैसैं रहै।
यह प्रेमलक्षणा भक्ति है शिष्य सुनहिं सद्गुरु कहै ॥ ४२ ॥

मनहर

नीर विनु मीन दुखी क्षीर विनु शिशु जैसैं,
पीर जाकै औषध विनु कैसैं रह्यौ जात है।
चातक ज्यौं स्वांति बूंद चंद कौं चकोर जैसैं,
चंदन की चाह करि सर्प अकुलात है॥
निर्धन ज्यौं धन चाहै कामिनी कौं कन्त चाहै,
ऐसी जाकै चाह ताकौं कछु न सुहात है।
प्रेम कौ प्रभाव ऐसौ प्रेम तहां नेम कैसौ,
सुन्दर कहत यह प्रेम ही की वात है॥ ४३ ॥

---

(४२) छप्पय=यह छन्द रोला के चार पद और उल्लाला के दो पद यों छह पद का होता है। गद्गद=कण्ठ रुककर शब्द निकलै। उच्चय=ऊंचा। वृत्य=वृत्ति, लौ, धुन।

(४३) नीर=जल। मीन=मछली। क्षीर=दूध। शिशु=वालक। पीर=पीड़, रोग। चातक=पपीहा पक्षी। स्वांति बूंद=स्वाती नक्षत्र के मेह की बूंद को पपीहा चाहता है, मिलती है जब संतुष्ट होता है। सर्प—रुहियर जातिवाले चन्दन के वृक्ष के सर्प लिपटे रहते हैं, न्यारे होने से दुखी होते हैं। कन्त=पति। कामिनी=स्त्री, पत्नी। कछु=और कुछ, प्रिय वस्तु से भिन्न। 'जहां प्रेम तहां कहा नेम' यह कहावत है। प्रेम=प्रेमलक्षणा भक्ति।

चौपइया

यह प्रेम भक्ति जाकैं घट होई, ताहि कछू न सुहावै।
पुनि भूप तृपा नहिं लागै वाकौं, निश दिन नींद न आवै ॥
मुख ऊपर पीरी स्वासा सीरी, नैंन हु नीझर लायौ।
ये प्रगट चिन्ह दीसत हैं ताके प्रेम न दुरै दुरायौ ॥ ४४ ॥

दोहा

प्रेम भक्ति यह मैं कही, जानैं विरला कोइ।
हृदय कलुपता क्यौं रहै, जा घट ऐसी होइ ॥ ४५ ॥

शिष्य उवाच

चौपई

स्वांमी प्रेम भक्ति यह गाई। सो तौ तुम मध्यस्थ सुनाई।
उत्तम भक्ति परा प्रभु कैसी। करहु अनुग्रह कहिये तैसी ॥ ४६ ॥

श्री गुरुरुवाच

दोहा

शिप तेरै श्रद्धा वढी, सुनिवे की अति प्यास।
परा भक्ति तौसौं कहौं, जातें होइ प्रकास ॥ ४७ ॥

गीतक

विक्षेप कवहुं न होइ हरि सौं निकटवर्त्ती नित्य हीं।
तहां सदा सनमुख रहै आगैं हाथ जौडै भ्रित्य हीं ॥

---

(४४) पीरी=पीली, पीलापन, रुधिर की कमी से। सीरी=सीलापन, ठण्डापन, उष्णता की कमी से। दुरै=छिपै। दुरायौ=छिपाया। "प्रेम छिपाया ना छिपै"।

(४५) कलुपता=कालुष्य, पाप। प्रेमी का हृदय निर्मल हो जाता है।

(४६) मध्यस्थ=मध्यमा (प्रेम लक्षणा)। परा=उत्कृष्ट, सब परे ऊपर वा दूर, परमात्मा सम्बन्धी।

पलु येक कबहुं न होइ अन्तर टगटगी लागी रहै।
यह परा भक्ति प्रकाश परिचय शिष्य सुनि सद्गुरु कहै ॥ ४८ ॥

इंदव

सेवक सेव्य मिल्यौ रस पीवत भिन्न नहीं अरु भिन्न सदा हीं।
ज्यौं जल बीच धरयौ जल पिण्ड सु पिंड रु नीर जुदे कछु नांहीं॥
ज्यौं दृग में पुतरी दृग येक नहीं कछु भिन्नसु भिन्न दिपांहीं।
सुन्दर सेवक भाव सदा यह भक्ति परा परमातम मांहीं॥ ४९ ॥

छप्पय

श्रवन विना धुनि सुनय नैन विन रूप निहारय।
रसन विना उचरय प्रशंसा बहु विस्तारय॥
नृत्य चरन विनु करय हस्त विनु ताल बजावै।
अंग विना मिलि संग बहुत आनन्द बढ़ावै॥
विन सीस नवै तहँ सेव्य कौं सेवक भाव लियें रहै।
मिलि परमातम सौं आतमा पराभक्ति सुन्दर कहै॥ ५० ॥

---

(४८) विक्षेप=जुदाई, न्यारापन। भृत्य=सेवक। प्रकाश परिचय=पराभक्ति के प्रकाश की जानकारी, अथवा प्रगट लक्षण।

(४९) सेवक=ध्याता, भक्त। सेव्य=ध्येय, ईश्वर। सेव्य से मिलकर तादात्म्य सम्बन्ध प्राप्त कर। रस=नित्यानन्द, ब्रह्मानन्द। जलपिंड=जल से वा जल में उत्पन्न शरीर—यथा फेन बुदबुदा, लहर, बर्फ आदि। दृग और पुतरी से अंशांशी भाव प्रयोजनीय है।

(५०) इस छन्द में इन्द्रियों के विना ही इन्द्रियों के कर्म होना कहा, इससे आंतरीय लिंग शरीर की सिद्धि का संकेत है। स्थूल शरीर का वहां कारण अपेक्षित नहीं। यह सिद्धि ध्यानियों, परमभक्तों और योगियों को प्राप्त होना भक्तिमालाओं, योगग्रन्थों में वा महात्माओं के चरित्रों के सुनने वा देखने से जानी और मानी जा सकती है। यह दर्जा ऊंचा है और सहज ही नहीं मिलता। विरले महात्माओं के भाग्य में ही बदा होता है।

चंदाणा (स्रग्विणी)

सेव्य कौं जांइ कै दास ऐसैं मिलै। येक सो होइ पैं येक ह्वै ना मिलै॥
आपनौं भाव दासत्व छाड़ै नहीं। सा पराभक्ति है भाग्य पावै कहीं॥५१॥

हरसंपाणा

मिलै येक संगा। नहीं भिन्न अंगा।
करै यौं विलासा। धरै भाव दासा॥ ५२॥

चौपई

ज्यौं मृगतृष्णां धूप मंझारी। येक मेक अरु दीसत न्यारी॥
त्यौं ही स्वांमी सेवक येका। सुख विलसै यह भिन्न विवेका॥ ५३॥

त्रोटक

हरि मैं हरिदास विलास करै। हरि सौं कब हू न विछोह परै॥
हरि अक्षय त्यौं हरिदास सदा। रस पीवन कौं यह भाव जुदा॥५४॥

---

(५१) चन्दाणा=चंद्रायणा=२१ मात्रा का छन्द=११ मात्रा जगणाँत+१० मात्रा रगणांत परन्तु यहां यह 'स्रग्विणी' चार रगण का छन्द है। स्रग्विणी का चंदाणा नाम भी है। (रणपिंगल) "एक ह्वै ना मिलै"=इस कहने से पराभक्ति का विशेष लक्षण वताया है कि सायुज्यता प्राप्त होकर भी सेवक को सेव्य का शुद्ध भाव वना रहता है। इससे ज्ञान की पराकाष्ठा की अपेक्षा वाकी रक्खी है कि शेष काम ज्ञान से सम्पादन होगा। भाग्य=भाग्य से।

(५२) हरसंपांणां=यह अर्द्धभुजंगी छन्द है जिसको 'सोमराजी' छन्द भी कहते हैं। दो यगण (६ वर्णों) का होता है।

(५३) मृगतृष्णा (मरीचिका) का स्वामी और सेवक के एकत्व में उदाहरण देकर स्वामीजी ने वड़ा चमत्कार वढ़ाया है। सेवक केवल उपाधि से भिन्न प्रतीत होता है जैसे मृगतृष्णा वस्तुतः कुछ है नहीं, प्रतिभास मात्र है।

(५४) अक्षय=नित्य, अमर। त्रोटक=चार सगण का।

मनहर

तेजोमय स्वामी तहं सेवक हू तेजोमय,
तेजोमय चरन कौ तेज सिर नांवई ॥
तेजोमय सब अंग तेजोमै मुखारविंद,
तेजोमय नैननि निरषि तेज भावई।
तेजोमय ब्रह्म की प्रशंसा करै तेज मुख,
तेज ही की रसना गुनानुवाद गावई ॥
तेजोमय सुन्दर हू भाव पुनि तेजोमय,
तेजोमय भक्ति कौं तेजोमय पावई ॥ ५५ ॥

दोहा

त्रिविधि भक्ति लक्षण कहे, उत्तम मध्य कनिष्ट।
सुनहिं शिष्य सिद्धांत यह, उत्तम भक्ति गरिष्ट ॥ ५६ ॥

इति श्री सुन्दरदासेन विरचिते ज्ञानसमुद्रे उत्तमा-मध्यमा-कनिष्टा भक्तियोग सिद्धान्त निरूपणं नाम द्वितीयोल्लासः ॥ २ ॥

---

(५५) तेजस्वरूपता साधक भक्त को भी प्राप्त हुई।

(५६) गरिष्ट=अतिशय गुरु, गुरुतम, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ। कनिष्टा भक्ति को गुरु कहें तो मध्यमा को गरीयान् और उत्तमा को गरिष्ठ। यों तीनों गुरु, गरीयान्, और गरिष्ठ तीन विभाग हुए।

अथ तृतीयोल्लासः

शिष्य उवाच

चौपई

हे प्रभु नवधा कही कनिष्टा । प्रेमलक्षणा मध्य सपष्टा ॥
परा भक्ति उत्तमा बषांनी । ये तीनौं मैं नीकैं जानी ॥ १ ॥
अव प्रभु योग सिद्धान्त सुनावहुं । ताके अंग मोहि समझावहुं ॥
तुम सर्वज्ञ जगत गुरु स्वांमी । कहहु कृपा करि अंतर्यामी ॥२॥

श्री गुरुरुवाच

दोहा

तैं शिप पूछ्यौ चाहि करि, योग सिद्धांत प्रसंग ।
तोहि सुनाऊं हेत सौं, अष्ट योग के अंग ॥ ३ ॥

(तृतीयोल्लास में)

(१) 'कनिष्टा' शब्द के साथ 'सपष्टा' शब्द का हीन अनुप्रास है ।

(२) सिद्धांत—सिधांत ऐसा पढ़ा जायगा ।

(३) योग के अष्ट अङ्ग (अन्वय) योग के छह अङ्ग ही 'हठयोग प्रदीपिका' 'गोरक्ष पद्धति' आदि में है । अन्य मत से यम नियम पूर्व और दो अङ्ग दिए हैं । यथा 'हठ्योग प्रदीपिका' में (उपदेश १) अढाई श्लोक प्रक्षिप्त हैं उन में यम नियम हैं । 'पातंजल योगसूत्र' साधन पाद के २९ वें सूत्र में ("यमनियमासनप्राणायाम-प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि") यम नियम प्रथम ही है । सुन्दरदासजी ने राजयोग के अनुसार अथवा प्रसिद्ध अष्टांगयोग है, ऐसा समझ कर, वा अन्य मत-छाया से हठ्योग में भी आठ ही अङ्ग लिखना ठीक समझा होगा । क्योंकि आगे के छन्द में यम नियम को 'हठ्योग प्रदीपिका' से लेना आप ही कहते हैं ।

तिन के अन्तर्भूत हैं, मुद्रावन्ध समस्त।
नाड़ी चक्र प्रभाव सब, आवहि तेरें हस्त॥ ४॥

छप्पय

प्रथम अङ्ग यम कहौं दूसरौ नियम बताऊँ।
त्रितिय सु आसन भेद सुतौ सब तोहि सुनाऊँ॥
चतुर्थ प्राणायाम पंचमं प्रत्याहारं।
षटसु सुनि धारणा ध्यान सप्तम विस्तारं॥
पुनि अष्टम अङ्ग समाधि है भिन्न भिन्न समुझाइ हौं।
अब सावधान ह्वै शिष्य सुनि ते सब तोहि बताइ हौं॥ ५॥

दोहा

दश प्रकार के यम कहौं, दश प्रकार के नेम।
उभय अङ्ग पहिलैं सधहिं, तब पीछे ह्वै क्षेम॥ ६॥
प्रथम नींव दृढ कीजिये, तब ऊपरि विस्तार।
महलाइल जुडिगै नहीं, त्यौं यम नियम विचार॥ ७॥

---

(४) अन्तर्भूत=अन्तर्गत, अन्दर आए हुए। मुद्रावंध=मुद्रा और बंध। आवें तेरे हस्त=प्राप्त हों, हस्तामलक की नांई सिद्ध हो जांय।

(५) 'सब'=आसन के भेद 'ज्ञानसमुद्र' में सब न कह कर केवल दो ही कहे हैं, सब कहने से उनकी संख्या मात्र का अभिप्राय होगा। ऐसे ही आगे भी 'सब' शब्द का प्रयोग है और ऐसे ही छन्दों के सम्बन्धमें प्रथमोल्लास के आदि में।

(६) यम नियम—'योगांगानिवदंतिषट्' (गोरक्ष पद्धति) 'हठस्य प्रथमांगत्वा-दासनं पूर्वमुच्यते' (हठयोग प्रदीपिका)—इन वचनों से हठ योग के यही अंग हैं। परन्तु योग ही नहीं किसी भी शास्त्र-विहित साधन के पूर्व यम नियम मुख्य माने हुये हैं। इस ही से सुन्दरदासजी ने साधारण साधकों के अर्थ इनको भी लिखा है। क्योंकि इनके विना योगी और भोगी में क्या भेद रहे और योगकी सिद्धि कदापि सम्भव नहीं। इसीसे ये दोनों अत्यावश्यक और अनिवार्य समझना चाहिए।

अथ यमाः

छप्पय

प्रथम अहिंसा सत्य हि जानि स्तेय सु त्यागै।
ब्रह्मचर्य दृढ ग्रहै क्षमा धृति सौं अनुरागै॥
दया वडौ गुन होइ आर्ज्जव हृदय सु आनै।
मिताहार पुनि करै शौच नीकी विधि जानै॥
ये दश प्रकार के यम कहे हठप्रदीपिका ग्रन्थ महिं।
सो पहिलै ही इनकौ ग्रहै चलत योग के पन्थ महिं॥८॥

अहिंसा को लक्षण

दोहा

मन करि दोप न कीजिये, वचन न लावै कर्म।
घात न करिये देह सौं, इहै अहिंसा धर्म॥ ९ ॥

सत्य को लक्षण

सोरठा

सत्य सु दोइ प्रकार, येक सत्य जो वोलिये।
मिथ्या सव संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है॥ १० ॥

---

(८) दश यम और दश नियम हठयोग प्रदीपिका में (प्रक्षिप्त श्लोकों में) दिये हैं यथाः—"अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः। दयार्ज्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश ॥ १ ॥ तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम्। सिद्धान्त वाक्य-श्रवणं ह्रीमती च तपोहुतम् ॥ २ ॥ नियमा दशसंप्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः" ॥— परन्तु फिर आगे उसी ग्रन्थ में उनके लक्षण दिये नहीं। ये लक्षण अन्य स्थलों से सुन्दरदासजी ने लिखे हैं। कुछ तो पातंजल योग में वर्णन हैं शेष मन्वादि स्मृतियों में हैं (पातंजल योग के साधन पाद के २९ वें सूत्र से ४४ सूत्र तक। तथा मनु० २।७७—इत्यादि नियम, याज्ञवल्क्य ३।३१४, अत्रि ४९, यम—याज्ञवल्क्य ३।३१३।

(१०) "ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या"—इत्यादि वाक्य के आधार पर। परन्तु दो प्रकार के सत्य में ब्रह्म को भी गणना करना यह विलक्षण है।

अस्तेय को लक्षण

चौपई

सुनिये शिष्य अवहि अस्तेयं। चौरी द्वै प्रकार की हेयं ॥
तनु की चौरी सब हि बपांनैं। मन की चौरी मन ही जांनैं ॥ ११ ॥

ब्रह्मचर्य को लक्षण

पवंगम

ब्रह्मचर्य इहिं भांति भली विधि पालिये।
काम सु अष्ट प्रकार सही करि टालिये ॥
बांधि काछ दृढ़ बीर जती नहिं होइरे।
और बात अब नांहिं जितेन्द्रिय कोइरे ॥ १२ ॥

अष्ट प्रकार मैथुन को लक्षण

दोहा

नारी समरन श्रवन पुनि, दृष्टि भाषिणं होइ।
गुह्य वारता हास्य रति, वहुरि स्पर्शय कोइ ॥ १३ ॥

सोरठा

शिष्य सुनि हिं यह भेद, मैथुन अष्ट प्रकार तजि।
कहैं मुनीश्वर वेद, ब्रह्मचर्य तब जांनिये ॥ १४ ॥

---

(११) मन की चोरी—दम्भ, कपट, छलछन्द मिथ्या पापवासना आदि। यह भी विलक्षण विचार है।

(१३) अट प्रकार मैथुन—(दक्षस्मृति अ० ७ श्लोक ३१-३२।) भाषिणं=भाषण, वार्तालाप। स्पर्शय=स्पर्शनम्, छूना। "श्रवणं स्मरणं चैव दर्शणं भाषणं तथा। गुह्य वार्ताच हास्यं च स्पर्शनं चाष्ट मैथुनम् ॥ यह आठ प्रकार के कर्म त्यागने से ब्रह्मचर्य रहता है अन्य प्रकार से नहीं जैसे इंद्री छेदन, कुड़की डालना, लोहे वा पीतल की लंगोट आदि लगाना वा नपुंसक करने की औषधियां आदि खाना इत्यादि नीच कर्मों से।

क्षमा को लक्षण

मालती

क्षमा अव सुनहिं शिप मो सौं, सहनता कहौं सव तोसौं।
दुष्ट दुख देहिं जो भारी, दुसह मुख वचन पुनि गारी ॥ १५ ॥
कदे नहिं क्षोभ कौं पावै, उदधि महिं अग्नि वुझि जावै।
वहुरि तन त्रास दे कोऊ, क्षमा करि सहै पुनि सोऊ ॥ १६ ॥

धृति को लक्षण

इंदव

धीरज धारि रहै अभि अन्तर जौ दुख देहहि आइ परै जू।
वैठत ऊठत वोलत चालत धीरज सौं धरि पाव धरै जू ॥
जागत सोवत जीमत पीवत धीरज ही धरि योग करै जू।
देव दयन्त हिं भूतहि प्रेतहि कालहु सौं कवहूं न डरै जू ॥ १७ ॥

दया को लक्षण

त्रोटक

सव जीवनि के हित की जु कहै। मन वाचक काय दयालु रहै ॥
सुख दायक हू सम भाव लियें। शिप जानि दया निरवैर हिये ॥ १८ ॥

---

(१५) मालती=यह 'सखी' छन्द है विजात भेद का १४ मात्रा का (छन्दः प्रभाकरे)। सहनता=सहनशीलता, सहिष्णुता। दुसह=दुःसह, असह्य। यहां मानसिक पीड़ा वा वेदना से अभिप्राय है।

(१६) क्षोभ=क्रोध। उदधि=समुद्र। वहुरि=फिर। त्रास=पीड़ा, दुःख। सव= सव सहनता कहने से मन+वच+कर्म यों तीन प्रकार से अभिप्राय है।

(१७) अभि अंतर=मन वा अंतः करण में। दयंत=दैत्य; असुर। धृति में वीरता का भी आभास आ जाता है। धृति का लक्षण गीता अ० १८। ३३-३५।

(१८) दया का लक्षण कैसा दार्शनिक दिया है। इसका मूल हृदयमें है फिर कर्म और वाणी में इसका विकाश है। सव धर्मों का मूल दया ही है। महात्मा का प्रधान लक्षण दया ही है।

आर्ज्जव को लक्षण

चौपइया

यह कोमल हृदय रहै निश वासर बोलै कोमल वांनी।
पुनि कोमल दृष्टि निहारै सबकौं कोमलता सुख दांनी॥
ज्यौं कोमल भूमि करै नीकी विधि बीज वृद्धि ह्वै आवै।
त्यौं इहै आर्ज्जव लक्षण सुनि शिष योग सिद्धि कौं पावै॥ १९ ॥

❀ मिताहार को लक्षण

पद्धड़ी

जो सात्विक अन्नसु करै भक्ष। अति मधुर सचिक्कण निरपि अक्ष।
तजि भाग चतुर्थय ग्रहै सार। सुनि शिष्य कह्यौ यह मिताहार॥ २० ॥

शौच को लक्षण

चर्पट

बाह्याभ्यंतर मज्जन करिये। मृत्तिका जल करि वपु मल हरिये॥
रागादिक त्यागें हृदि शुद्धं। शौच उभय विधि जानि प्रबुद्धं॥२१॥

दोहा

दश प्रकार ये यम कहे, प्रथम योग कौ अंग।
दश प्रकार अब नियम सुनि, भिन्नहि भिन्न प्रसंग॥ २२ ॥

---

(१९) ब्राह्मण को आर्जव मुख्य कर कहा है। गीता में इस पर जोर दिया है। गीता १३।७,१६।१,१७।१४,१८।४२।

(२०) ❀ 'अथ' यह शब्द प्रत्येक शीर्षक में मूल ग्रन्थ में है। सो ही समझना प्रायः सर्वत्र। मिताहार=शुद्ध, हल्का, हितकारी उत्तम और थोड़ा भोजन। मिताहार और ऋतुचर्य्या का विधान 'घेरंड संहिता में पांचवें उपदेश के श्लोक ८—३१ तक भली भांति दिया है।

अथ नियमाः

छप्पय

तप संतोप हि ग्रहै वुद्धि आस्त्यक्य सु आनय।
दांन संमुझि करि देइ मानसी पूजा ठानय॥
वचन सिद्धान्त सु सुनय लाज मति दृढ़ करि रापय।
जाप करय मुख मौंन तहाँ लग वचन न भाषय॥
पुनि होम करै इहिं विधि तहां जैसी विधि सद्गुरु कहै।
ये दश प्रकार के नियम हैं भाग्य विना कैसैं लहै॥२३॥

तप को लक्षण

पायक्का

शव्द स्पर्श रूपं त्यजणं। त्यौं रस गंधं नांही भजणं।
इन्द्रिय स्वादं अैसैं हरणं। सो तप जानहु नित्यं मरणं॥ २४॥

सन्तोष को लक्षण

हंसाल

देह कौ प्रारव्ध आइ आपै रहै, कल्पना छाड़ि निश्चिन्त होई।
पुनि यथा लाभ कौं वेद मुनि कहत हैं, परम संतोष शिष जांनि सोई॥२५॥

---

(२३) दश नियम—तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, पूजा, श्रवण, लज्जा मति, जप और हवन यों दश कहे। यह गणना अन्य किसी-ग्रन्थ में यथार्थ नहीं मिलती है। हठयोग प्रदीपिका में—'तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्। सिद्धांतवाक्य श्रवणं ह्रीमती च तपोहुतम्'। यह प्रमाण है। जो वहुत ही मिलता जुलता हुआ है।

(२४) नित्यमरण—नित्य ही ऐसा साधन रखना, नित्य ही आपा को मारना है। 'आपा मारे हर मिलै।'

(२५) 'न याचेत्'—ऐसी उपनिषदों में परमहंस गतिवालों को आज्ञा है। (कौशीतकी २।१-'तस्योपनिषन्नयाचेदिति')।

आस्तिक्य कौ लक्षण

सवइया

शास्त्र वेद पुरान कहत हैं शब्द ब्रह्म कौं निश्चय धारि।
पुनि गुरु सन्त सुनावत सोई वारवार शिप ताहि बिचारि॥
होइ कि नहीं शोच मति आंनहिं अप्रतीति हृदये तें टारि।
करि बिस्वास प्रतीति आनि उर यह आस्तिक्य बुद्धि निरधारि॥२६॥

दांन कौ लक्षण

कुण्डलिया

दांन कहत हैं उभय विधि सुनि शिप करहिं प्रवेश।
येक दांन कर दीजिये येक दांन उपदेश॥
येक दांन उपदेश सुतौ परमारथ होई।
दूसर जल अरु अन्न वसन करि पोपै कोई॥
पात्र कुपात्र विशेप भली भू निपजय धांनं।
सुन्दर देपि विचारि उभय विधि कहिये दांनं॥ २७॥

पूजा कौ लक्षण

त्रिभंगी

तौं स्वांमी संगा देव अभंगा निर्मल अंगा सेवैजू।
करि भाव अनूपं पाती पुष्पं गन्धं धूपं पेदंजू॥
नहिं कोई आशा काटै पाशा इहिं विधि दासा नि.कामं।
शिप ऐसैं जांनय निश्चय आनय पूजा ठानय दिन जामं॥ २८॥

---

(२६) शब्दब्रह्म=वेद। शास्त्र।

(२७) कर=हाथ (पंक्ति २ में)। ज्ञान दान से आत्मा की पुष्टि और अन्न दान से शरीर की रक्षा। भू कहकरि भूमि का उदाहरण देना बड़ा चमत्कारमय प्रमाण है। जैसी भूमि होगी वैसा बीज निपजेगा, ऐसे ही जैसे पात्र को दान दोगे वैसा ही फल होगा।

(२८) पूजा का यहां निराकार उपासना लिये हुए लक्षण बांधा है। दिनजामं=

सिद्धान्तश्रवण को लक्षण

कुण्डलिया

वांनी वहुत प्रकार है ताको नांहि न अन्त।
जोई अपने कांम की सोई सुनिय सिन्तत॥
सोई सुनिय सिद्धन्त सन्त सव भाषत वोई।
चित्त आंनिकै ठौर सुनिय नित प्रति जे कोई॥
यथा हंस पय पिवै रहै ज्यौं कौ त्यौं पांनी।
ऐसें लेहु विचारि शिष्य वहु विधि है वांनी॥ २६॥

ह्री को लक्षण

चामर

लज्जा करै गुरु संतजन की तौ सरै सव काज।
तन मन डुलावै नाहिं अपनौ करै लोकहु लाज॥
लज्जा करै कुल कुटंव की लछण लगावै नाहिं।
इहिं लाजतें सव काज होई लाज गहि मन माहिं॥३०॥

दिन रात, निरंतर। निराकार उपासना में भी साकार पदार्थों की भावना करना मन को ठहराने के निमित्त। ऐसे कई विधान भी हैं और स्तोत्र भी हैं जिनमें निराकार की साकार पूजा वर्णित है।

(२९) वानी=शास्त्र वचन। साधुओं का उपदेश ग्रन्थ रूप में। वहुश्रुत होकर सार निकालने का उपदेश है। जैसे हंस जल मिले दूध में से केवल दूध (जो सार है) पीकर पय (निरसार) को छोड़ देता है वैसे ही श्रोता भी सार ग्रहण करता रहै।

(३०) पंक्ति ३—लच्छग=कलंक।

मति को लक्षण

सवइया

नाना सुख संसार जनित जे तिनहिं देखि लोलप नहिं होइ।
स्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागै सुख दोइ॥
पूजा मान वडाई आदर निंदा करै आइ कैं कोइ।
या प्रकार मति निश्चल जाकी सुन्दर दृढ़ मति कहिये सोइ॥३१॥

जाप को लक्षण

पवंगम

जाप नित्य व्रत धारि कैर मुख मौन सौं।
येक दोइ घटिका जु ग्रहे मन पौंन सौं॥
ज्यौं अधिक्य कछु होइ वडौ अति भाग है।
शिष्य तोहि कहि दीन्ह भलौ यह माग है॥३२॥

होम को लक्षण

चामर

अव होम उभय प्रकार सुनि शिप कहौं तोहि वपांनि।
इक अग्नि महिं साकलि होमै सो प्रवृत्ती जांनि॥
जो निवृत्ती यज्ञास होई ताहि और न धोम।
सो ज्ञान अग्नि प्रजालि नीकैं करै इंद्रिय होम॥३३॥

---

(३१) लोलप=लालायित, लिप्त। इहामु=इह—यहां इस संसार में। अमुत्र—परलोक में। उभयलोक निश्चल वुद्धि का लक्षण—गीता अ० २। श्लो० ५३-६८ देखो।

(३२) पौंन सों=प्राणायाम द्वारा। माग=मार्ग, रास्ता।

(३३) हवन दो प्रकार के (१) साकल्ययज्ञ (२) ज्ञानयज्ञ। सो दूसरे का वर्णन उपनिषदों में है। और गीता में भी अनेक यज्ञ हैं—'ज्ञानाग्निदग्ध कर्म्माणं तमाहुः पंडितं वुधाः'। गीता अ० ४।१९ तथा २३ से ३२ तक। धोम=धूम, धूम्र, यज्ञ की धुआं करने की अपेक्षा नहीं रहती। भाव यज्ञ में है।

दोहा

दश प्रकार के यम कहे, दश प्रकार ये नेम।
योग ग्रन्थ मांहे लिपे, मैं समुझाये तेम॥ ३४॥

सोरठा

शिष्य सुनाये तोहि, उभय अङ्ग ये योग के।
सावधान अति होइ, अवहिं पडंग वपांनि हौं॥ ३५॥

चौपई

प्रथम कहौं शिप आसन भेदा। जातें रोग मिटहिं वहु पेदा।
ऋपि मुनि योगी ब्रह्माराधे। तिन सव पहली आसन साधे॥ ३६॥

त्रोटक

शिव जानत है सव योग कला। नित संग शिवा पुनि है अचला॥
दृढ़ आसन तें नहिं विंद पिसै। दृग देखत दम्पति लोक हसै॥३७॥

कुण्डलिया

चतुराशी लप जीव की जाति कहतु है वेद।
तितने ही आसन सवै जांनत है शिव भेद॥
जांनत है शिव भेद और जानय नहिं कोई।
आपु दया तिन करी सुगम करि दीन्हे सोई॥
लक्ष लक्ष महिं एक एक काढे दुखनाशी।
सुलभ सवनि कौं किये प्रगट आसन चतुराशी॥ ३८॥

---

(३४) तेम=(गुजराती) वे, वे सव।

(३५) पडंग=पट्—छह। अंग—विभाग। योग के छह अङ्ग है।

(३७) महादेवजी पार्वती सहित रहते हैं परन्तु योगवल से वीर्य स्थिर रहता है। परन्तु कोई योगी ऐसा न करै क्योंकि यह शक्ति शिव ही को सोहती है इतर को हास्यास्पद है।

(३८) चौरसी आसन हठयोग में प्रधान वर्णन किये हैं। उन ८४ में से सिद्धासन और पद्मासन दो ही स्वामी सुन्दरदासजी ने रखे हैं विस्तार भय से!

दोहा

चतुराशी आसननि में, सार भूत द्वै जांनि।
सिद्धासन पद्मासनहिं, नीकैं कहौं वपांनि ॥ ३९ ॥

* अथ सिद्धासन

मनहर

येडी वाम पांव की लगावै सींवनि कै बीचि,
वाही जोनि ठोर ताहि नीकैं करि जांनियें।
तैसं ही युगति करि विधि सौं भलै प्रकार,
मेढ़ू हू कै ऊपर दक्षन पाव आनियें॥
सरल शरीर दृढ़ इन्द्रिय संयस्य करि,
अचल ऊरध द्रस्य भ्रू के मध्य ठांनिये।
मोक्ष के कपाट कौं उघारत अवश्यमेव,
सुन्दर कहत सिद्ध आसन वपांनिये ॥ ४० ॥

अथ पद्मासन

छप्पय

दक्षिण उरु उप्परय प्रथम वांमहिं पग आनय।
वांम हि उरु उप्परय तत्र हिं दक्षिण पग ठानय॥

हठयोग प्रदीपिका, शिव संहिता, घेरंड संहिता, योगचिन्तामणि आदि में प्रसिद्ध ही है। सिद्धासन की इस विधि से वीर्य स्तम्भन होकर योगी ऊर्द्धरेता और सिद्धि—सम्पन्न हो जाता है।

* मूल पुस्तक में 'तत्र' शब्द है।

(३९) चतुराशी=चौरासी ८४।

(४०) जोनि=योनि। मेढ़ू=लिंग। द्रस्य=दृष्टि। भ्रू के मध्य—इस कहने से त्राटक मुद्रा से अभिप्राय है। कपाट=किंवाड़, द्वार।

दोऊ कर पुनि फेरि पृष्टि पीछै करि आवय।
दृढ़ कै ग्रहै अंगुष्ट चिवुक वक्षस्थल लावय॥
इहिं भाँति दृष्टि उन्मेप करि अग्र नासिका राषिये।
सब व्याधि हरण योगीन की पद्मासन यह भाषिये॥ ४१॥

पद्धड़ी

शिप और जु आसन हरहिं रोग। परि इनि दुइ आसन सधय योग।
तातें तूं ये अब उभय साधि। जब लग पहुंचै निर्भय समाधि॥४२॥

अथ प्राणायाम

विज्जुमाला

आगै कीजै प्राणायामं। नाडी चक्रं पावै ठामं।
पूरै रापै रेचै कोई। ह्वै निःपापं योगी सोई॥ ४३॥

---

(४१) उरु=जंघा। पृष्टि=पीठ। दृढ कै=दृढ करके। चिवुक=ठोडी। वक्षस्थल=छाती। उन्मेप=खोली हुई रखै—लगाए रखै।

(४२) इनि दुई आसन=सिद्धासन और पद्मासन इन दो ही योग साधन के आसनों को मुख्यतया सुन्दरदासजी ने वर्णन किया है। यद्यपि योगशास्त्र में विशेषतः "हठयोग प्रदीपिका" में—"सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रं चेति चतुष्टयम्। श्रेष्ठं तत्रापि च सुखे तिष्ठेत्सिद्धासने सदा" ॥ ३४ ॥ सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन,—इन चार आसनों को अच्छा कहकर इन में सिद्धासन को सर्व श्रेष्ठ कहा है। "नासनं सिद्ध सदृशं" ॥ ४३ ॥ अर्थात् सिद्धासन समान और आसन उत्तम नहीं है। परन्तु "गोरक्ष पद्धति" में—आसनेभ्यः समस्तेभ्यो द्वयमेतदुदाहृतम्। एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम्" ॥ १० ॥ सारे आसनों में ये दो ही आसन उत्तम कहे हैं—एक सिद्धासन दूसरा कमलासन (पद्मासन) सुन्दरदासजी ने गुरु की आज्ञा और गोरखनाथजी के मत के अनुसार ही उक्त दोनों आसनों को ही प्रधान बताया है।

(४३) विज्जुमाला=विद्युन्माला—'मो मो गो गो विद्युन्माला'। आठ गुरु वर्ण का छन्द। आगे=फिर, अर्थात् आसन करने के पीछे। पूरै, राखै, रेचै=पूरक करै, फिर

दोहा

नाडी कही अनेक विधि, हैं दश मुख्य विचार।
इडा पिंगला सुषुमना, सब महिं ये त्रय सार॥ ४४॥

छप्पय

वांम इडा स्वर जांनि चन्द्र पुनि कहियत वाकौं।
दक्षिण स्वर पिंगला सूरमय जानहुं ताकौं॥
मध्य सुषुम्ना वहै ताहि जानत नहिं कोई।
है यह अग्नि स्वरूप काज याही तें होई॥
जब इडा पिंगला गति थकै प्राणायाम प्रभावतें।
तब चलै सुषुमना उलटि कैं सुख उपजै घर आवतें॥ ४५॥

दोहा

दश प्रकार कौ पवन है, भाषौं तिन के नाम।
कहें बिना नहिं जांनिये, कौंन ठौर विश्राम॥ ४६॥

चौपई

प्राणापांन समानहिं जानै। व्यानोदान पंच मन मानै।
नाग हु कूर्म कृकल सु कहिये। देवदत्त सु धनंजय लहिये॥ ४७॥

कुम्भक करै, फिर रेचक करै। स्वास भरकर रोकै फिर निकालै। १+४+२ वा इनको किसी अङ्क से गुणित करके क्रमशः करै। यही साधारण प्राणायाम है।

(४४) इडा=बांई ओर की। पिङ्गला=दाहिनी ओर की। सुषुमना=मध्य की। नाड़ी कही। अनेक=बहत्तर हजार नाड़ियां शरीर में हैं। "द्वासप्तति सहस्राणि नाड़ी द्वाराणि पंजरे"—ह० यो० प्र० ४ उपदेश श्लोक १८ प्रधान दश नाड़ी—देखो गो० प० १ श्लोक २५-३१।

(४५) घर आवतें=घर से प्रयोजन ठिकाना है। सुषुमना का माहात्म्य बहुत बड़ा है। योग सिद्धि में इस ही का—प्रधान प्रभाव होता है। सुख—परमानन्द।

(४६) विश्राम=स्थान। कौन सी पवन कहां रहती वा प्रवाहित होती है।

(४७) दशवायु—'प्राणोपानःसमानश्चोदानव्यानौ च वायवः। नागःकूर्मोऽथ

कुण्डलिया

प्राण हृदय महिं वसत है, गुद मण्डले अपांन।
नाभि समान हिं जांनिये, कंठहिं वसै उदांन॥
कंठ हि वसै उदांन व्यान व्यापक घट सारै।
नाग करय उद्गार कूर्म सो पलक उघारै॥
कृकल सु उपजै क्षुधा देवदत्त हि जृम्भाणं।
मुयं धनंजय रहै पंच पूरव सो प्राणं॥ ४८॥

दोहा

चक्र अनुक्रम कहत हौं, सुनि शिष तिनकै नाम।
पीछै तोहि सुनाइ हौं, विधि सौं प्राणायाम॥ ४९॥

अथ चक्र अनुक्रम

पद्धडी

शिप प्रथम चक्र आधार जानि। तहाँ अक्षर चारि चतुर्दलानि॥
पुनि व स प श वरण विचारि लेहु। है सब शरीर आधार येहु॥ १॥

कृकलो देवदत्तो धनंजयः' ॥२३॥ (गोरक्ष पद्धति प्रथम शतक) फिर आगे ३४—४० श्लोक तक सब वर्णन किया है।

(४९) षट्चक्र का वर्णन 'गोरक्ष पद्धति'में श्लोक १३—२४ तक किया गया है। तथा अन्य कई ग्रन्थों में भी इनका विस्तृत वर्णन 'योगचिन्तामणि' ग्रन्थमें अनेक ग्रन्थों के आधार से लिखा है। और 'गोरक्ष पद्धति' की महीधर पण्डित कृत भाषा टीका में भी अच्छा लिखा है। परन्तु सब कुछ गुरु गम्य है। पुस्तकोंसे कितना प्राप्त हो सकता है ? सुन्दरदासजी ने षट्चक्र कह कर आगे प्राणायाम आदि वर्णन कर समाप्त किया। स्यात् ग्रन्थ विस्तार भय से ही। अपितु सोलह आधार, दो लक्ष्य, पांच आकाश को सूक्ष्म, और सीखनेवालोंको अनावश्यक होनेसे नहीं दिये। साधारणतः 'हठयोग प्रदीपिका' और 'गोरक्षपद्धति' का सूक्ष्मतया अवलम्बन हुआ है।

पुनि स्वाधिष्ठान सु द्वितीय चक्र। तहं षट्दल षट् अक्षर अवक्र।
गनि ब भ म य र ल ये वरण मध्य। सो ब्रह्मचक्र कहिये प्रसिद्ध ॥ २ ॥
मणि पूर चक्र दश दल प्रभाव। पुनि अक्षर दश तेऊ सुनाव।
तहं ड ढ ण त थ द ध न प फ प्रमान। इन वर्ण सहित त्रितिये वषान ॥३॥
अनुहात चक्र है हृदय माहिं। दल अक्षर द्वादश अधिक नाहिं।
क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ समेत। शिप चक्र चतुर्थय समुझि हेत ॥४॥
पुनि पंचम चक्र विशुद्ध आहि। दल अक्षर षोडस लगे ताहि।
तहं आदि अकार अः कार अन्त। शुभ षोडश स्वर ताके गनंत ॥ ५ ॥
अब आज्ञाचक्र सु भ्रुव मंझार। लपि द्वै दल द्वै अक्षर विचार।
तहं हं क्षं वर्ण सु अति अनूप। यह षष्ठ सु चक्र कह्यौ स्वरूप ॥ ६ ॥
जब इनि षटचक्र हि भेदि जाइ। तब उहे सुषमना सुख समाइ।
ताही तें प्राणायाम सार। सुनि शिष्य कहौं ताको विचार ॥ ५६ ॥

अथ प्राणायाम क्रिया

दोहा

इडा नाडि पूरक करै, कुंभक राखै माहिं।
रेचक करिये पिंगला, सब पातक कटि जांहिं ॥ ५७ ॥

(५६ का ४ था) अनुहात=अनाहत चक्र। (५ वां) अ से अः तक १६ स्वर= अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। (६ ठा) भ्रुव= भंवारे (दोनों भंवारोंके बीच में) (इन छहों चक्रोंका वर्णन 'गोरक्षपद्धति' के प्रथम शतक के १३—२४ श्लोक तक है। तथा 'योग चिंतामणि' ग्रन्थमें भी)। (७ वां) इडा, पिंगला सुषमना-तीनों नाड़ियों का प्राण से सम्बन्ध है। इससे प्राणायाम कहा है।

(५७) इडा चंद्रनाडी—बायें नाक से स्वास भरना। कुंभक (सुषुमना स्थान) सांस का रोक रखना। पिंगला सूर्यनाड़ी—दाहिने नथने से सांस को धीरे निकालना।

सोरठा

वीज मन्त्र संयुक्त, षोडश पूरक पूरिये।
चवसठि कुंभक उक्त, द्वात्रिंशति करि रेचना ॥ ५८ ॥

चौपई

वहुरि विपर्यय अैसं धारैं। पूरि पिंगला इडा निकारैं।
कुंभक राषि प्राण कौं जीतै। चतुर्वार अभ्यास व्यतीतै ॥ ५९ ॥

(चामर) गीता

यह ऋृपिनि उक्त सुनाइयौं इहिं भांति प्राणायाम।
सद्गुरु कृपातें पाइये मन होइ अति विश्रांम ॥
अव मतमतांतर कहत हौं सुनि शिष्य अन्य प्रभाव।
गोरक्ष उक्त वपांनि हौं तिहिं सुनत उपजय चाव ॥६०॥

अथ गोरक्ष उक्त

चर्पट ※

सोहं सोहं सोहं हंसो। सोहं सोहं सोहं अंसो।
स्वासो स्वासं सोहं जापं। सोहं सोहं आपै आपं ॥ ६१ ॥

---

(५८) वीज मंत्र—ओंकार। १—४—२ का सांस्कार। इस पर से वढाकर जितनी मात्राएं करैं उतनी वृद्धि। यह साधारण प्राणायाम है। यहां १६ वार ओंकार जपैं उतने में पूरक करैं। ६४ वार ओंकार जपैं उतने वेर कुंभक करैं। और ३२ वार ओंकार जपैं उतने समय में रेचक करैं। यह विधि वताई है। प्राणायाम की मतांतर से अन्य विधिएं भी हैं।

(६१) सोहं-हंसो—यह 'हंस' नाम का मंत्र 'अजपा' गायत्री है। 'गोरक्ष पद्धति' शतक १ के श्लोक ४२—४६ तक इसका वर्णन है। 'हकारेण वहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः। हंसहंसेत्यमुं मंत्रं जीवो जपति सर्वदा।' इत्यादि। 'अजपानाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी'। 'योगचिंतामणि' आदि ग्रन्थों में भी इसका वर्णन है।

द्वादश मात्रा पूरक करणं । द्वादश मात्रा कुंभक धरणं ।
द्वादश मात्रा रेचक जाणं । पूरववत् सु विपर्यय ठाणं ॥ ६२ ॥
अधमे द्वादश मात्रा उक्तं । मध्यम मात्रा द्विगुणा युक्तं ।
उत्तम मात्रा त्रिगुणा कहिये । प्राणायाम सु निर्णय कहिये ॥ ६३ ॥

सोरठा

कुम्भक अष्ट सु विद्धि, मुद्रा दश हि प्रकार की ।
बंध तीन तिनि मद्धि, उत्तम साधन योग के ॥ ६४ ॥

अथ कुंभक नाम

छप्पय

सूरय भेदन प्रथम द्वितीय उज्जाई कहिये ।
शीतकार पुनि त्रितिय शीतली चतुरथ ग्रहिये ॥
पंचम है भस्त्रिका भ्रामरी षष्ट सु जानहुं ।
मूरछना सप्तमं अष्टमं केवल मानहुं ॥
ये कुम्भक अष्ट प्रकार के होइ पवन इम रोधनं ।
तब मुद्राबंध लगाइ यहिं प्रथम करै घट शोधनं ॥ ६५ ॥

(६२-६३) 'प्रथमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता । उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः' (गोरक्ष पद्धति । २ श० । ५ श्लो०) पूरक में १२, कुंभक में १६, रेचक में १० यह कनिष्ट । और इसकी द्विगुणी २४,३२,२० । मध्यम । और तिगुणी ३६, ४८, ३० उत्तम ॥

(६४-६५) आठ प्रकारके कुंभक के भेद, हठयोग 'प्रदीपिका' ग्रन्थ के उपदेश २ श्लो० ४४ से ७८ तक हैं—'सूर्यभेदन मुज्जायी सीत्कारी सीतली तथा ॥ भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छाप्लाविनीत्यष्ट कुंभकाः ॥' ४४ ॥इत्यादि ।

अथ नाद वर्णन

दोहा

जवहिं अष्ट कुम्भक सधहिं, वाजै अनहद नाद ।
दश प्रकार की धुनि सुनहिं, छूटहि सकल विषाद ॥ ६६ ॥

छप्पय

प्रथम भ्रमर गुंजार शंष धुनि दुतिय कहिज्जै ।
त्रितिये वजहिं मृदंग चतुर्थं ताल सुनिज्जै ॥
पंचम घंटा नाद षष्ट वीणा धुनि होई ।
सप्तम वज्जहिं भेरि अष्टमं द्वन्द्वभि दोई ॥
अव नवमें गर्ज्ज समुद्र की दशम मेघ घोपहि गुनै ।
कहि सुन्दर अनहद नाद कौं दश प्रकार योगी सुनै ॥ ६७ ॥

---

(६६) अनहद=अनाहत (विना ठकोरे या वजाने के जो वाजे)। "अनाहतस्य शव्दस्य ध्वनिर्य उपलभ्यते। ध्वनेरंतर्गतं ज्ञेयं ज्ञेयस्यांतर्गतं मनः। मनस्तत्र लयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्" ॥ १०० ॥ ("ह० यो० प्र०" उप० ४)

(६७) दश प्रकारके अनाहत नाद—'आदौ जलधि-जीमूत-भेरी-झर्झर संभवाः । मध्ये मर्द्दल-शंखोत्था घंटा काहलजास्तथा ॥८५॥ अंतेतु किंकिणी-वंश-वीणा-भ्रमर निःस्वनाः । इति नानाविधा नादाः श्रूयंते देहमध्यगाः' ॥८६॥ 'ह० यो० प्र०' । उप० ४ ॥ यह नादानुसंधान की विधि परमानंद की देनेवाली हठयोग में वर्णित है, गुह्यगम्य है जो नादों का क्रम सुन्दरदासजी ने लिखा है वह विरलोपलब्ध है ॥ 'त्रिपुरसारसमुच्चय' ग्रन्थमें—१ भ्रमर २ वंश (वंसो) ३ घंटा ४ समुद्र गर्जन ५ मेघ गर्जना यों क्रम दिया है । नाद की चार अवस्था हैं—१ आरंभ २ घट ३ परिचय ४ निष्पत्तिः । जैसे सर्वत्र योग साधन में है । नाद मानसिक लय का कारण है ।

अथ मुद्रानाम

गीतक

सुनि महामुद्रा महाबंधः महावेध च खेचरी।
उडयान बंध सु मूलबंधहि वन्ध जालंधर करी॥
विपरीत करणी पुनि वज्रोली शक्ति चालन कीजिये।
इम होइ योगी अमर काया शशिकला नित पोजिये॥६८॥

अथ प्रत्याहार

कुण्डलिया

श्रवन शब्द कौं ग्रहत हैं नयन ग्रहत हैं रूप।
गंध ग्रहत है नासिका रसना रस की चूप॥
रसना रस की चूप तुचा सु स्पर्श हि चाहै।
इनि पंचनि कौं फेरि आतमा नित्याराहै॥
कूर्म अंगहि ग्रहै प्रभा रवि कर्पय द्रवणं।
इम करि प्रत्याहार विपय शब्दादिक श्रवणं॥ ६९ ॥

---

(६८) यह क्रम और संख्या मुद्राओं के, बिलकुल 'हठ यो० प्र०' उपदेश ३ श्लोक ६—७ के अनुसार है—'महामुद्रा महाबंधो इत्यादि......'इदं हि मुद्रादशकं जरामरणनाशनम्'। ७। उक्त ग्रन्थ ही में आगे श्लोक १०—१२० तक है। ये महा सिद्धि दाता हैं। इन दशों मुद्राओं के बड़े बड़े फल लिखे हैं यथाः—१'जरामरण नाशनम्' (श्लोक ७) 'अष्टैश्वर्यप्रदायकम्' (श्लोक ८) 'क्षीयंते मरणादयः' (श्लोक १४) 'सोमपान करोति यः' (श्लोक ४४)। इसी को 'शशिला' कहा है। यही 'हठ० यो० प्र०' के उप० ३ श्लोक ४९ से ५२ तक अतीव सुन्दर प्रकार से वर्णन किया है— 'उत्कल्लोलकलाजलम्', 'चंद्रात्सारः' आदि कहा है॥

(६९) यह प्रकरण प्रत्याहार और धारणा के गोरक्ष पद्धति के द्वितीय शतक के श्लोक २२ से ६० तक के अनुसार संक्षेप से है। प्राणायामकी वृद्धिसे मन का निरोध बढ़ा कर विषयों से हटाना ही प्रत्याहार है। इन्द्रियोंको अंतर्मुख करके अंतरात्मा में

अथ पंचतत्व की धारणा

(उनमें प्रथम) पृथ्वीतत्व की धारणा

चौपइया

यह चारे कोण लकार हि युक्तं जांनहुं पृथ्वी रूपं।
पुनि पीत वर्ण हृदि मंडल कहिये विधि अङ्कित सु अनूपं।
तहं घटिका पंच प्रांण करि लीनं चित्त स्थम्भ न होई।
सुनि शिष्य अवनि जय करै नित्य ही भूमि धारणा सोई ॥७०॥

जलतत्व की धारणा

अक्षर वकार संयुक्त जानि जल चन्द्र खण्ड निर्द्धारं।
पुनि ऋपीकेश अङ्कित अति शोभित कंठ पारदाकारं॥
तहं घटिका पंच प्राण करि लीनं चित्त धारिकैं रहिये।
विप कालकूट व्यापै नहिं कवहू वारि धारणा कहिये ॥७१॥

लगाना और थामना यही अभ्यास प्रत्याहार है। चूप=चाह, लालसा। नित्याराहै=नित्य आराधना करै। कूर्म=कछुआ। कछुआ जैसे हाथ पांव और सिर इन पांचों को समेट अंदर ले लेता है वैसे ही साधक इन्द्रियों को अंदर हरण करै। रवि=सूर्य। अपनी किरणों से जलादि रस द्रव्यों को खैंचना है वैसे इन्द्रियों का निग्रह करै।

(७०-७५ तक) 'गो० प०' श० २ के श्लोक ५४ से ६० तक के अनुसार है। तत्वों को, ध्यानस्थ कर बीज मंत्रों से ध्यान कर तत्वोंपर जपाधिकार करना ही धारणा है। अवनि=पृथ्वी। इनका कोष्टक आगे देते हैं।

(७१) चन्द्रखण्ड=अर्द्ध चन्द्राकार। ऋपीकेश=विष्णु। पारदाकारं=पारेके समान स्वेत और चमकदार। वारि=जल। यह छंद गोरक्ष प० शतक २ के श्लोक ५५ के अनुसार है। उसमें 'अर्द्धेन्दु-प्रतिमं' आकार लिखा है।

तेज तत्व की धारणा

यह अग्नि त्रिकोण रेफ संयुक्तं पद्मराग आभासं।
पुनि इन्द्र गोपु दुति मध्य तालुका कहिये रुद्र निवासं॥
तहं घटिका पंच प्राणं करि लीनं ग्रन्थ हिं उक्त वषांनं।
सुनि शिष्य अग्नि भयहन्ता कहिये तेज धारणा जांनं॥७२॥

वायु तत्व की धारणा

भ्रुव मध्य यकार सहित षट्कोणं अैसी लक्ष विचारं।
पुनि मेघ वर्ण ईश्वर करि अङ्कित वारम्वार निहारं॥
तहं घटिका पंच प्राण करि लीनं खेचर सिद्धि हि पावै।
सुनि शिष्य धारणा वायु तत्व की जो नींकैं करि आवै॥७३॥

आकाश तत्व की धारणा

अव ब्रह्मरंध्र आकाश तत्व है सुभ्र वर्त्तुलाकारं।
जहं निश्चय जांनि सदाशिव तिष्टति अक्षर सहित हकारं॥
तहं घटिका पंच प्राण करि लीनं परम मुक्ति की दाता।
सुनि शिष्य धारणा व्योम तत्व की योग ग्रन्थ विख्याता॥७४॥
यह येक थंभिनी एक द्राविणी एक सु दहनी कहिये।
पुनि येक भ्रामिणी येक शोषणी सद्गुरु विना न लहिये॥

(७२) पद्मराग—लाल (मणि)। आभास=कांति, रंगसहित चमक। इंद्रगोप=वीरबहूटी (सावण की डोकरी)। दुति=द्युति, चमक। यह छन्द गोरक्ष प० श० २ श्लो० ५६ के अनुसार है। श्लोक में पद्मराग की जगह प्रवाल है।

(७३) भ्रुव=भौंह, भंवारा। दोनों भंवारों के बीच में। मेघवर्ण=अति नील रंग। यह 'गोरक्ष प०' श० २ श्लो० ५७ के अनुसार है।

(७४) ब्रह्मरंध्र=कपाल का छिद्र। सुभ्र=शुभ्र, सफेद चमकदार,। वर्तुल=अंडाकार, अथवा शिव पिंडाकार। व्योम=आकाश। यह 'गो० प० श० २ श्लोक ५८ के अनुसार है।

ये पंच तत्व की पंच धारणा तिन के भेद सुनाये।
अब आगे ध्यान कहौं बहु विधि करि जो ग्रन्थनि महिं गाये ॥७५॥

अथ ध्यान वर्णनं

दोहा

प्रथमहिं ध्यान पदस्थ है, दुतिये पिण्ड अधीत।
त्रितिय ध्यान रूपस्थ पुनि, चतुर्थ रूपातीत ॥ ७६ ॥

पदस्थ ध्यान वर्णनं

इंदव

जे पद चित्र विचित्र रचे अति गूढ़ महा परमारथ जामैं।
ते अवलोकि विचार करै पुनि चित्त धरै निहचै करि तामैं॥
कै करि कुम्भक मंत्र जपै उर अक्षर ते पुनि जांनि अनामै।
सुन्दर ध्यान पदस्थ इहै मन निश्चल होइ लहै जु विरामै ॥७७॥

---

(७५) यह भी गोरक्ष प० श० २ श्लोक ५९ का अनुवाद है—'स्तम्भिनी द्राविणी चैव दहनी भ्रामिणी तथा। शोषिणी च भवत्येषा भूतानां पंच धारणा' ॥ यह जो वर्णन पंच धारणाओं का किया है महायोगी गोरक्षनाथजी की पद्धति के दूसरे शतक के श्लोकों के अनुसार प्रायः है। यह धारणा की योग क्रिया गुरुगम्य है। केवल पुस्तक से ही सिद्धि की इच्छा करना हानिकारक है। गुरु अच्छा मिलै और क्रमसे अभ्यास करावैं तब ठीक हो।

(७६) सुन्दरदासजी ने ये चार ही प्रकार के ध्यान कहे हैं—१ पदस्थ २ पिंडस्थ ३ रूपस्थ। ४ रूपातीत। परन्तु गोरक्ष पद्धतिमें अव्वल दो भेद—सगुण और निर्गुण (याज्ञवल्क्य के अनुसार) करके फिर ९ ध्यान कहे हैं। 'गुह मेढ़ूं च नाभिश्च हृत्पद्मं च तदूर्ध्वतः। घण्टिकालम्बिकास्थानं भ्रूमध्ये च नभोबिलम्' ॥

(७७) नाना प्रकार के चित्रों में रचित और बीज मंत्रों के ध्यान तथा महावाक्यों वा महामंत्रों के जप सहित ध्यान 'पदस्थ' ध्यान हैं। अनामै—अनामय=निर्मल। विरामै—विराम, शांति वा मुक्तावस्था को पावै।

पिंडस्थ ध्यान वर्णनं

चौपई

पुनि शिष्य कहौं ध्यान पिंडस्थं । पिंड शोधनं करिये स्वस्थं ॥
षट्चक्रनि को धरिये ध्यानं । पुनि सद्गुरु कौ ध्यान प्रमानं ॥७८॥

रूपस्थ ध्यान वर्णनं

नराच

निहारि कैं त्रिकूट मांहिं विस्फुलिंग देपि है ।
पुनः प्रकाश दीप ज्योति दीप माल पेपि है ॥
नक्षत्र माल विज्जुली प्रभा प्रत्यक्ष होइ है ।
अनन्त कोटि सूरचन्द्र ध्यान मध्य जोइ है ॥७९॥
मरीचिका समान शुभ्र और लक्ष जांनिये ।
झलामलं समस्त विश्व तेजमै वपांनिये ॥
समुद्र मध्य डूवि कैं उवारि नैन दीजिये ।
दशौं दिशा जलामई प्रत्यक्ष ध्यान कीजिये ॥८०॥

रूपातीत ध्यान वर्णनं

पद्धड़ी

यह रूपातीत जु शून्य ध्यान । कछु रूप न रेप न है निदांन ॥
तहां अष्ट प्रहर लौं चित्त लीन । पुनि सावधान ह्वै अति प्रवीन ॥ ८१ ॥
जिम पक्षी की गति गगन मांहिं । कहुं जात जात दिठि परय नांहिं ॥

---

(७८) पिंट=शरीर । षट्चक्र का वर्णन ऊपर छन्द ५० से ५६ तक आहो गया ।

(७९-८०) यह वर्णन विलक्षण ज्योति स्वरूप ध्यान का सुन्दरदासजी का अनुभव सिद्ध ही है । विस्फुलिंग=चिनगारियां, मरीचिका ।

(८१-८४) रूपातीत वा शून्य ध्यान याज्ञवल्कादि के अनुसार है ।

पुनि आइ दिखाई देत सोइ। वा योगी की गति इहै होइ ॥ ८२ ॥
इहिं शून्य ध्यान सम और नांहिं। उत्कृष्ट ध्यान सब ध्यान मांहिं॥
है शून्याकार जु ब्रह्म आपु। दशहू दिशि पूरण अति अमापु ॥ ८३ ॥
यों करय ध्यान सायोज्य होइ। तब लगै समाधि अखंड सोइ॥
पुनि उहै योग निद्रा कहाइ। सुनि शिष्य देउँ तोकौं बताइ ॥ ८४ ॥

अथ समाधि वर्णनं

गीतक*

सुनि शिष्य अवहिं समाधि लक्षण मुक्त योगी वर्त्तते।
तहं साध्य साधक एक होई क्रिया कर्म निवर्त्तते॥
निरुपाधि नित्य उपाधि रहितं इहै निश्चय आंनिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि वषांनिये ॥८५॥
नहिं शीत उष्ण क्षुधा तृपा नहिं मूरछा आलस रहै।
नहिं जागरं नहिं सुप्न सुषुपति तत्पदं योगी लहै।
इम नीर महिं गरि जाइ लवनं एकमेकहि जांनिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि वषांनिये ॥८६॥
नहिं हर्ष शोक न सुखं दुःखं नहीं मान अमानयो।
पुनि मनौं इन्द्रिय वृत्य नष्टं गतं ज्ञान अज्ञानयो॥
नहिं जाति कुल नहिं वर्ण आश्रम जीव ब्रह्म न जानिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि वषांनिये ॥८७॥

---

* गीतक वा गीतिका छन्द है। इसमें 'सज जभ रस लग' होते हैं २० वर्णका। परन्तु यहां यह 'हरिगीतिका' छन्द मातृक छन्द है। १६+१२ मात्राका। अन्तमें लघु+गुरु हैं वा रगण (ऽ।ऽ)।

(८६) जागरं=जागृति। तत्पद=अपरोक्ष अनुभव, तल्लीनता, एकत्व, वह परमपद वा अवस्था विशेष।

(८७) अमानयो और अज्ञानयो—ये प्रयोग द्विवचनार्थ के तद्वत् हैं। उस अवस्था में मानापमान और ज्ञान-अज्ञान का भेदभाव नहीं रह जाता है।

नहिं शब्द सपरश रूप रस नहिं गंध जानय रंचहूं।
नहिं काल कर्म स्वभाव है नहिं उदय अस्त प्रपंचहूं ॥
इम क्षीर क्षीरे आज्य आज्ये जले जलहिं मिलानिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि वषांनिये ॥८८॥
नहिं देव दैत्य पिशाच राक्षस भूत प्रेत न संचरै।
नहिं पवन पानी अग्निभय पुनि सर्प सिंहहिं ना डरै ॥
नहिं यंत्र मंत्र न शस्त्र लागहिं यह अवस्था गानिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि वषांनिये ॥८९॥

दोहा

योग सिद्धांत सुनाइयौ, अष्ट अंग संयुक्त।
या साधन ब्रह्महि मिलै, तेऊ कहिये मुक्त ॥ ९० ॥

इति श्री सुन्दरदासेन विरचिते ज्ञानसमुद्रे अष्टांगयोग सिद्धान्त निरूपणं नाम

त्रितियोल्लासः ॥ ३ ॥

---

(८८) जानय=जाना जाता है। रंच=कुछ भी। आज्य=घृत "दुग्धे क्षीरं घृते सर्पिः" (गोरक्ष २।९७) योग की एक सिद्धि ऐसी भी वर्णन की है जिसमें शरीर पर शस्त्र आदि का आघात या किसी मन्त्रादि का प्रभाव नहीं हो सकता है— "अभेद्यः सर्वशास्त्राणामवध्यः सर्व देहिनाम्। अग्राह्यो मन्त्रयन्त्राणां योगी मुक्तः समाधिना' इत्यादि। (गोरक्ष २।८९-९०) तथा "रूप लावण्य बलवज्र संहनन त्वानि काय सम्पत्" (योगसूत्र ३।४६) सुन्दरदासजी का यह समाधि का वर्णन "हठयोग प्रदीपिका" "गोरक्ष संहिता" आदि योग ग्रन्थों से प्रमाणित है तथा उनका निज का अनुभव किया हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है।

अथ चतुर्थोल्लासः

शिष्य उवाच

चौपई

हे प्रभु वहुत कृपा तुम कीन्हीं। ऐसी वुद्धि दया करि दीन्हीं ॥
मोकौं योग सिद्धान्त सुनायौ। जो पूछ्यौ सो उत्तर पायौ ॥ १ ॥
अव प्रभु सांख्य सु मोहि सुनावहु। मेरे सब संदेह मिटावहु ॥
यह गुरुदेव कृपा करि कहिये। तुम विन अवर कहौ कत लहिये ॥ २ ॥

श्री गुरुरुवाच

सोरठा

शिष्य कहौं समुझाइ, जो तें पूछ्यौ प्रीति सौं।
सांख्य सु दैंउ वताइ, तू सुनिवे कौ योग्य है ॥ ३ ॥

अथ सांख्ययोग वर्णन

ड्डमिला

सुनि शिष्य यहै मत सांख्य हि कौ जु अनातम आतम भिन्न करै।
अनआतम है जड रूप लिये नित आतम चेतन भाव धरै ॥
अनआतम सूक्ष्म थूल सदा पुनि आतम सूक्ष्म थूल परै।
तिनकौ निरनै अव तोहि कहौं जिनि जानत संशय शोक हरै ॥४॥

चतुर्थोल्लासः—

(४) अनातम=अनात्म, जड़, प्रकृति (प्रधान)। आतम—आत्मा, चेतन, पुरुष। सांख्यशास्त्र "द्वैत" मत को सिद्ध करता है। एक तो पुरुष (आत्मा) दूसरा प्रधान (प्रकृति) वस इन दो को अनादि सिद्ध पदार्थ जगत् के कारण मानता है। प्रकृति के स्वरूप, तज्जन्य, प्रथम सूक्ष्म (जैसे महत्तत्व वा अहंकार, वुद्धि, मन, तन्मात्रा, इंद्रिय) और फिर स्थूल, पंचभूत, कर्मेन्द्रिय आदि प्रत्यक्ष जगत्। इन दोनों

कुण्डलिया

पुरुष प्रकृतिमय जगत है ब्रह्मा कीट पर्यंत।
चतुर पांनि लौं सृष्टि सब शिव शक्ती वर्तंत॥
शिव शक्ती वर्तंत अंत दुहुंवनि कौ नांहीं।
एक आहि चिद्रूप एक जड दीसत छांहीं॥
चेतनि सदा अलिप्त रहे जड सौं नित कुरुषं। *
शिष्य संमुझि यह भेद भिन्न करि जांनहु पुरुषं॥ ५॥

शिष्य उवाच

हंसाल

हे प्रभु कह्यौ तुम पुरुष चेतन्यमय बहुरि ऐसैं कह्यौ भिन्न जानौं।
समुझि कै प्रकृति जड रूप करि कैं कही जगत कैसैं भयौ सो बषांनौं॥६॥

श्री गुरुरुवाच

छप्पय

पुरुष प्रकृति संयोग जगत उपजत हैं ऐसैं।
रवि दर्प्पण दृष्टांत अग्नि उपजत है तैसैं॥

(सूक्ष्म और स्थूल) से भिन्न आत्मा वा पुरुष है। संशय=सत्यज्ञान न मिलने के पूर्व भ्रम, संदेह वा अज्ञान। शोक=त्रिविध दुःख की निवृत्ति होकर मोक्ष कैसे होगी ऐसा दुःख भरा मनः सन्ताप।

(*) "कुरुषं"—यह शब्द 'पुरुषं' से सानुप्रास होने के निमित्त ही प्रतीत होता है। यों कु=पृथ्वी (स्थूल), रु=शब्द, षं (खं)=आकाश (सूक्ष्म) अर्थात् स्थूल में सूक्ष्मजनित शब्दादि के सम्बन्ध को सृष्टि दिखाती है। पुरुष अलिप्त होकर भी सब पदार्थों में विद्यमान रहता है। अथवा 'कुरुषं'=कुरुख यानी नाराज, उदासीन। चेतन पुरुष प्रकृति से उदासीन वा सम्बन्ध रहित रहता है, सम्बन्ध रहने पर भी (जडव्यावृत्तो जडं प्रकाशयति चिद्रूपः। सांख्यसूत्र अ० ६ सू० ५०। इत्यादि से औदासीन्यं चेति—सां० सू० अ० १ सू० १६३, से भी)

सुई होंहिं चेतन्य यथा चम्बक कै संगा।
यथा पवन संयोग उदधि महिं उठहिं तरंगा ॥
अरु यथा सूर संयोग पुनि चक्षु रूप कौं ग्रहत हैं।
यौं जड चेतन संयोग ते सृष्टि उपजती कहत हैं ॥ ७ ॥

शिष्य उवाच

सवइया

हे प्रभु पुरुष प्रकृति तें प्रथमहिं कौन तत्व उपज्यौ समुझाइ।
विधि करि तत्व अनुक्रम सौं सब ज्यौं उपजै त्यौं देहु वताइ ॥
सूक्षम थूल भये कैसें करि कारण कारय मोहि सुनाइ।
तुम गुरुदेव सकल विधि जानत अन्न आतम आतमा दिखाइ ॥८॥

श्री गुरुरुवाच

दोहा

पुरुष प्रकृति संयोगतें, प्रथम भयौ महतत्व ॥
अहंकार तातें प्रगट, त्रिविधि सु तम रज सत्व ॥ ९ ॥

विशेष—"सांख्यकारिका" और "सांख्यसूत्र" में त्रिविध (सतरजतम) गुणों से त्रिविध सृष्टि की प्रक्रिया खोल कर नहीं दी है। यह अन्य ग्रन्थों की छाया से यथा "सांख्यतत्वकौमुदी" (वाचस्पतिका) और "पंचीकरण" वा वेदान्त के किसी ग्रन्थ के सहारे से लिखा प्रतीत होता है। मूला प्रकृति (प्रधान) की शुद्ध अवस्था जब रहती है तब उसमें तीनों गुण भी समान हों (साम्यावस्था)। जब सृष्टि बनना प्रारंभ हो तो प्रकृति से १ महत्तत्व। महत्तत्व से २ अहंकार। फिर अहंकार से पांचतन्मात्रा (शब्दस्पर्शादि के तत्व) तथा मन और पांचों ज्ञानेन्द्रिय और पांचों कर्मेन्द्रिय। और ३ पंचतन्मात्राओं से पांचों महाभूत (पृथ्वीजलादि) उत्पन्न होते हैं। प्रकृति अनादि और सृष्टि का उपादान कारण। पुरुष अनादि और निमित्त कारण कूटस्थ अकर्ता। यह सांख्य का मूल सिद्धान्त है।

(चामर) गीता

तिहिं तामसाहंकार त दश तत्व उपजे आइ।
ते पंच विषय रु पंच भूतनि कहौं शिष्य सुनाइ॥
ये शब्द सपरश रूप रस अरु गंध विषय सु जांनि।
पुनि व्यौम मारुत तेज जल क्षिति महा भूत वषांनि॥१०॥

चौपई

ये दश तम गुण तें तुम जांनहुं। द्रव्य शक्ति याकौं पहिचानहुं॥
अब इनके लक्षण समुझाऊं। भिन्न भिन्न करि तोहि सुनाऊँ॥११॥

छप्पय

शब्द गुणो आकाश एक गुण कहियत जामहिं।
शब्द स्पर्शंजु वायु उभय गुण लहियहि तामहिं॥
शब्द स्पर्शंजु रूप तीन गुण पावक मांहीं।
शब्द स्पर्शंजु रूप रसं जल चहुं गुण आंहीं॥
पुनि शब्द स्पर्शंजु रूप रस गन्ध पंच गुण अवनि है।
शिष्य इहै अनुक्रम जानि तूं सांख्य सु मत ऐसें कहै॥१२॥

अथ पंच स्वभाव

चौपइया

यह कठिन स्वभाव अवनि को कहिये द्रावक उदक हि जानहुं।
पुनि उष्ण सुभाव अग्नि महिं वर्त्तय चलन पवन पहिचानहुं॥
आकाश सुभाव सुथिर कहियत है पुनि अवकाश लषावै।
ये पञ्च तत्व के पञ्च सुभाव हि सद्गुरु विना न पावै॥१३॥

१०—१३ में तामसाहंकार से उत्पत्ति कही गई है।

अथ राजसाहंकार सर्ग

चौपइया

अथ राजसाहंकार तें उपजी दश इन्द्रिय सु बताऊँ।
पुनि पञ्च वायु तिनकैं समीप ही यह व्यौरौ समुझाऊँ॥
अरु भिन्न भिन्न है क्रिया सु तिन की भिन्न भिन्न है नामं।
सुनि शिष्य कहौं नीकैं करि तोसौं ज्यौं पावै विश्रामं॥१४॥

छप्पय

श्रवण तुचा दृग घ्रांण रसन पुनि तिनि कैं संगा।
ज्ञान सु इन्द्रिय पंच भई अप अपने रंगा॥
वाक्य पानि अरु पाद उपस्थ गुदाहू कहिये।
कर्म सु इन्द्रिय पंच भली विधि जाने रहिये॥
सुनि प्रानापांन समानहू व्यानोदांन सु वायु हैं।
दश पंच रजोगुण ते भये क्रिया शक्ति कौं पायु हैं॥१५॥

अथ सात्विकाहंकार सर्ग

गीतक

अथ सात्विकाहंकार तें मन बुद्धि चित्त अहं भये।
पुनि इन्द्रियन के अधिष्ठाता देवता बहु विधि ठये॥

(१४—१५) में राजसाहंकार की उत्पत्ति है।

(१५) श्रवण=कान। तुचा=त्वचा, खाल। दृग=नेत्र। घ्रांण=नाक, नासा। रसन=रसना, जिव्हा। ये पांचों करण (औजार) पांचों ज्ञानेन्द्रियों के हैं। और ये अन्दर की इन्द्रिय मन के आधीन हैं। इनके भिन्न २ कर्म हैं। वाक्य=उच्चारण की सामग्री जिव्हा, दांत, गाल, तालु, ओठ, कंठ सहित मुख। पानि=दोनों हाथ उङ्गलियों सहित। पाद=दोनों पांव उङ्गलियों सहित। उपस्थ=मूत्रेन्द्रिय वा योनि। गुदा=मलत्याग की इन्द्रिय। इनको पांच कर्मेन्द्रिय कहते हैं। ये भी मन बुद्धि के आधीन हैं।

दिग्पाल मारुत अर्क अश्विनि वरुण ज्ञान सु इंद्रियं।
पुनि अग्नि इंद्र उपेन्द्र मित्रजु प्रजाप्रति कर्मेंद्रियं॥१६॥

दोहा

शशि विधि अरु क्षेत्रज्ञ पुनि, रुद्र सहित पहिचांनि।
भये चतुर्दश देवता, ज्ञान शक्ति यह जांनि॥ १७॥

दोहा

त्रिविधि शक्ति है त्रिगुण मय, तम रज सत्व सु येह।
इनि करि पिण्ड स्थूल है, इनि करि सूक्ष्म देह॥ १८॥
कारण देह सु तीसरौ, सब को कारण मूल।
ताही तें दोऊ भये, सूक्ष्म देह स्थूल॥ १९॥

अथ स्थूल देह वर्णन

चौपई

व्योम वायु पावक जल धरणी। थूल देह इनही की वरणी॥
एक तत्व महिं पंच वताऊं। पंच पंच पचीस सुनाऊं॥२०॥
अस्थि अवनि त्वक् उदक हि जानहुं। मांस अग्नि नीकैं पहिचानहुं॥
नाडी वायु रोम आकाशं। पंच अंश पृथ्वी जु प्रकाशं॥२१॥
मेद सु अवनि मूत्र जल कहिये। रक्त अग्नि यह जांने रहिये॥
शुक्र सु वायु श्लेषम व्योमं। पंच अंश ये उदक समोमं॥२२॥

---

(१६) सांख्य में 'मन, बुद्धि, और अहंकार' यही तीन अन्तःकरण कहे हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय वाह्य-करण कहे है। और 'चित्त' वेदान्त के अन्तःकरण चतुष्टय में है सांख्य में नहीं। (सांख्यकारिका २४ तथा सांख्यसूत्र २।१७ वा १८ से) सात्विक अहंकार से मन, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होते हैं। और देवताओं का वर्णन इन ग्रन्थों में नहीं है। (चरणदासजी के सर्वोपनिषद भाषा में थोड़ा सा है)।

(२२) समोमं=समोपम, वरावर जैसा। अथवा समाया हुआ, अन्तर्गत। पावक=अग्नि। अवनि=पृथ्वी। त्वक्=खाल। श्लेष्म=कफ।

क्षुत्पृथ्वी तृट् जल कौ अंशा। आलस अग्नि न आनहुं संशा॥
संगम वायु नींद नभ जानं। पञ्च अंश ये अग्नि प्रमानं॥२३॥
रोध अवनि भ्रमणं जल मांहीं। ऊर्द्ध गमन अग्नी मंहिं आंहीं॥
अति निर्गमन वायु पहिचानहुं। उच्च स्थिति आकाशहि जानहुं॥२४॥
भय पृथ्वी मोहादिक नीरं। क्रोध अग्नि पुनि कांम समीरं॥
लोभाकाशं कहि समुझाये। पञ्च अंश ये नभ के पाये॥२५॥

अथ अन्य भेद

दोहा

गुदा कर्म इंद्रियनि महिं, नाशा इंद्रिय ज्ञान।
ये दोऊ भू ते प्रगट, शिष्य लेहु पहिचान॥ २६॥
उपस्थ कर्मेंद्रियनि महिं, रसना इन्द्रिय ज्ञान।
ये दोऊ जल ते प्रगट, शिष्य लेहु पहिचान॥ २७॥
चरन कर्म इन्द्रियनि महिं, लोचन इन्द्रिय ज्ञान।
ये दोऊ वसु ते प्रगट, शिष्य लेहु पहिचान॥ २८॥
पानि कर्म इंद्रियनि महिं, त्वकू इंद्रिय पुनि ज्ञान।
ये दोऊ पवन हि प्रगट, शिष्य लेहु पहिचान॥ २९॥

---

(२३) क्षुत=क्षुधा, भूख। तृट्=तृषा, प्यास।

(२४) रोध=अवरोध, रुकावट। निर्गमन=चाल, चलना।

(२६ से ३० तक) अन्य प्रकारसे पांचों भूतों से पांच कर्मेंद्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय की उत्पत्ति का वर्णन है। १—पृथ्वी तत्व से गुदा तो कर्मेंद्रिय और नासा (घ्राण) ज्ञानेन्द्रिय है। २—जलतत्व से एक जननेंद्रिय और एक जिव्हा ज्ञानेंद्रिय है। ३—तेज तत्व से एक पांव कर्मेंद्रिय और आंख ज्ञानेंद्रिय है। वसु=तेज। ४—पवनतत्वसे हाथ कर्मेंद्रिय और त्वचा (स्पर्श) ज्ञानेंद्रिय हैं। और ५—आकाश तत्व से—एक वचन कर्मेंद्रिय और कान ज्ञानेंद्रिय हैं।

अथ लिंग शरीर कथ्यते

चौपई

नव तत्वनि कौ लिंग प्रबंधा। शब्द स्पर्श रूप रस गंधा॥
मन अरु बुद्धि चित्त अहँकारा। ये नव तत्व किये निर्द्धारा॥ ४५॥

दोहा

पन्द्रह तत्व स्थूल वपु, नव तत्वनि कौ लिंग।
इन चौवीस हु तत्व कौ, बहु विधि कह्यौ प्रसंग॥ ४६॥

चौपइया

शिष्य ये चौवीस तत्व जड़ जांनहुं तिनकौ क्षेत्र सु कहिये।
पुनि चेतन एक और पचीस हिं सांख्यहि मत सौं लहिये॥
सो है क्षेत्रज्ञ सर्व कौ प्रेरक पुनि साक्षी बहु जानहुं।
यह प्रकृति पुरुषकौ कीयो निर्णय सद्गुरु कहे सु मांनहुं॥४७॥

---

(४५) लिंग शरीर को यहां (पांच ज्ञानेन्द्रियों और चार अन्तःकरणों) नौ तत्वों का कहा है। परन्तु सांख्यसूत्र अ० ३ के सूत्र ९ में—("सप्तदशैकं लिंगम्")—सत्रह तत्वों का कहा है (अहंकार, बुद्धि, पांच तन्मात्रा, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय का)। शब्दादि पञ्च से हम १५ समझें तो मन+बुद्धि+चित्त और अहंकार यों दो मानें तो १७ हो जायगे।

(४६) परन्तु, स्थूल को यहां १५ तत्वों का कहा है (पंच महाभूत, पंचज्ञान और पंचकर्म की इन्द्रियों का) इस हिसाब से लिंग शरीर नौ तत्व का कहा सो उनके हिसाब नौ तत्व (पांच तन्मात्राएं और चारों अंतःकरण) हैं। अतः स्पष्ट है कि यह सांख्य के मत से थोड़ा सा नहीं मिलता है क्योंकि सांख्य मत में तो—प्रकृति, अहंकार, महत्तत्व, मन, (चार तो ये) पांच तन्मात्रा, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और पुरुष यों पचीस तत्व होते हैं जिन को गण कहते हैं। (महत्तत्व के दो रूप हैं बुद्धि और मन)।

(४७) क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का सांख्य में कोई विशेषता से वर्णन नहीं है।

अथ जाग्रदवस्था कथ्यते

चंपक

यह देह स्थूल विराटा। है पंच तत्व कौ ठाटा।
नभ वायु तेज चल धरणी। पीछे वहु विधि करि वरणी ॥४८॥
जे शव्द स्पर्श हि रूपा। रस गंध मिले तिनि जूपा।
इनि तन्मात्रिका सहेता। ये पंच विषय कौ हेता ॥ ४९ ॥
पुनि पंचेन्द्रिये ज्ञाना। श्रवणादि मिली विधि नाना।
अरु कर्म सु इंद्रिये पंचा। वचनादि मिली जु प्रपंचा ॥ ५० ॥
मन वुद्धि चित्त अहंकारा। यह अंतहकरण विचारा।
पुनि देव चतुर्दश जानहुं। दश वायु मिली यह मानहुं ॥ ५१ ॥
है सत रज तम गुण मांहीं। ये भिन्न भिन्न वर्त्ताहीं।
तहं कालहु कर्म स्वभावा। पुनि जीव स्वरूप दिषावा ॥५२ ॥
अरु काल उपाइ षपावै। यह कर्म सु आंन मिलावै।
पुनि सूत्र सु सुख दुख मानै। सो पाप पुन्य कौ ठांनै ॥ ५३ ॥
है जीव सु चेतन कर्त्ता। जड सर्व पदारथ धर्त्ता।
मिलि सवहिंनि कौ संघाता। यह जाग्रदवस्था ताता ॥ ५४ ॥
सा आहि विश्व अभिमानी। तहं व्रह्मादेव प्रमानी।
है राजस गुण अधिकारा। पुनि भोग स्थूल पसारा ॥ ५५ ॥

---

(४८) विराटा—महान्, वड़ा। ठाटा=ठाट, वनावट। पीछे=ऊपर कई छंदोंमें।

(४९) शव्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच तन्मात्रा हैं। इनके पांच विषय और इनसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पांच महाभूत वनते हैं। जूपा=जुपे, जुते, संयुक्त हुये। तन्मात्रिका=पांच तन्मात्रा, शव्दादि है। ये अव्यक्त सूक्ष्म हैं और पंच महाभूतों की उत्पादक हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय चक्षुरादितो अहंकार ही से उत्पन्न हैं।

(४९ से ६५ तक) जाग्रत, स्वप्न, सुपुप्ति तथा तुरिया ये चार अवस्थाओं

सा कहिये नयन स्थानं। वाणी वैखर्या जानं।
यह जाग्रदवस्था निर्णय। सुनि शिष्य सुप्न अव वर्णय ॥ ५६ ॥

अथ स्वप्नावस्था कथ्यते

चौपइया

दश वायु प्राण नागादिक कहियहिं पंचसु इंद्रिय ज्ञानं।
पुनि पंच कर्म इंद्रिय जे आंहीं तिनिकी वृत्य वपांनं ॥
अरु पंच विषय शब्दादिक जानहुं अंतहकरण चतुष्टय।
पुनि देव चतुर्दश हैं तिन मांहीं सव इंद्रिय संतुष्टय ॥५७॥
यह कालहु कर्म स्वभाव सकल मिलि लिंग शरीर कहावै।
शिष्य नाम हिरण्यगर्भ पुनि ताकौ तेजोमय तनु पावै ॥
अव स्वप्नावस्था याकौं कहिये सा तेजस अभिमांनी।
तहं सतगुण विष्णु देवता जांनहुं भोग वासना ठानी ॥५८॥
पुनि कण्ठ स्थान मध्यमा वाचा जीवातमा समेतं।
शिप सुप्नावस्था कीयौ निर्णय संमुझि देपि यह हेतं ॥५९॥*

अथ सुषुप्त्यवस्था कथ्यते

छप्पय

सुषुपति कारण देह तत्व सवहि तहं लीनं।
लिंग शरीर न रहै घोर निद्रा वशि कीनं ॥
प्राज्ञा अभिमानी जु व्याकृत तम गुण रूपा।
ईश्वर तहं देवता भोग आनन्द स्वरूपा ॥

का वर्णन बहुत करके "माण्डूक्य उपनिषद" पर "श्रीगौड़पादाचार्य" की कारिका छन्दों के अनुसार, प्रतीत होता है। वह ग्रन्थ वेदान्त का है, और उस पर "शंकराचार्य" का भाष्य है।

* छन्द संख्या ५९ के केवल दो चरण ही हैं, परन्तु संख्या पूर्ण छन्द की दी गई है।

पुनि पश्यंती वाणी गुपत हृदय-स्थानक जांनिये।
यह कहत जु सुपुपति अवस्था शिष्य सत्य करि मांनियें॥ ६० ॥

अथ तुर्य्यावस्था कथ्यते

चर्पट

तुर्यावस्था चेतन तत्वं। स्व स्वरूप अभिमानीयत्वं।
परमानन्दं भोगं कहियं। सोहं देव सदा तहं लहियं ॥ ६१ ॥
सर्वोपाधि विवर्जित मुक्तं। त्रिगुणातीतं साक्षी उक्तं।
मूर्द्धनि स्थिति परा पुनि वांणीं। तुर्यावस्था निश्चय जांणीं ॥६२॥

इन्दव

जाग्रतरूप लिये सब तत्वनि इंद्रिय द्वार करै व्यवहारौ।
स्वप्न शरीर भ्रमै नव तत्व कौ मानत है सुख दुःख अपारौ॥
लीन सबै गुन होत सुपोपति जानै नहीं कछु घोर अंधारौ।
तीन कौं* साक्षि रहै तुरियातत सुन्दर सोइ स्वरूप हमारौ ॥६३॥

सोरठा

शिप तूं ऐसैं जांनि, हौं असङ्ग साक्षी सदा।
आपु हि चेतन मांनि, अवर पदारथ जड सबै ॥ ६४ ॥

दोहा

यह शिप मैं तो सौं कह्यौ, सांख्य हु कौ सिद्धान्त।
जो तेरे शंका रही, सो अब पूछि बृतान्त ॥ ६५ ॥

इति श्री सुन्दरदासेन विरचिते ज्ञानसमुद्रे सांख्य सिद्धान्त निरूपणं

नाम चतुर्थोल्लासः ॥ ४ ॥

---

* 'कौ' यहां ह्रस्व उच्चारण हो, अथवा 'कु' स्थानापन्न हो।

(६३) यह वर्णन वेदान्त के सिद्धान्तों के अनुसार प्रतीत होता है। तुरीयातत=तुरीयातीत, चौथी अवस्था से भी परे।

अथ पंचमोल्लासः

शिष्य उवाच

चौपई

हे स्वामिन् तुम ब्रह्म अनूपं। मैं करि जांनै देह स्वरूपं॥
यह मोतं जु भयौ अपराधा। क्षमा करहु मम मेटहु बाधा॥ १॥
हौं तौ भयौ कृतारथ तव ही। तुम से सद्गुरु भेटे जब ही॥
वचन सुनाइ कपाट उघारे। मेरे संशय सकल निवारे॥ २॥
किंचित् मात्र रही आशंका। वह अब तुम तें जैहैं बंका॥
जे तुम तीन सिद्धांत बपांने। ते प्रभु मैं नीकैं करि जांने॥ ३॥
अब तुम तुरियातीत बतावहु। ता पीछै अद्वैत सुनावहु॥
तुम बिन अवर कहै नहिं कोई। तुम ही तें तुम ही सा होई॥ ४॥

श्री गुरुरुवाच

दोहा

साधु साधु शिप धन्य तूं, भलो प्रश्न तैं कीन।
या कौ उत्तर अब कहौं, द्वैत मिटै भ्रम लीन॥ ५॥

---

(१) गुरु के ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान से प्रभावित और शिक्षित होकर शिष्य उसको ब्रह्मस्वरूप से देखकर अपना अविनय क्षमा करवाता है। अनूपं=उपमा वा गुणवर्णन-रहित।

(४) चौथी अवस्था—तुरीया वा तुरीयातीत—शिष्य जानना चाहता है। तुम ही तें=तुम से शिक्षा पाकर।

(५) साधु साधु=प्रशंसा का उद्रेक-द्योतक शब्द है। जैसे "शाबाश, वाह वाह। बहुत ठीक"। लीन=निवृत, मिट जाय।

चौपई

श्रवन मनन कीयौ तैं नीकैं। निदध्यास पुनि जान्यौं टीकैं ॥
अव साक्षातकार तूं होई। तव संदेह रहै नहिं कोई ॥ ६ ॥

दोहा

तुरिया साधन ब्रह्म कौ, अहं ब्रह्म यौं होइ।
तुरियातीत हि अनभवै, हूं तूं रहै न कोइ ॥ ७ ॥

इंदव

जाग्रत तौ नहिं मेरे विषै कछु स्वप्न सु तौ नहिं मेरे विषै है ॥
नाहिं सुषोपति मेरे विषै पुनि विश्वहु तैजस प्राज्ञ पषै है ॥
मेरे विषै तुरिया नहिं दीसत याहि तें मेरो स्वरूप अषै है ॥
दूर तें दूर परै तें परैं अति सुन्दर कोउ न मोहि लषै है ॥ ८॥

शिष्य उवाच

दोहा

हे प्रभु दूरि परै कह्यौ, उरै कहा अव और।
यह तौ भ्रम भारी भयौ, गुरु सु वतावहु ठौर ॥ ९ ॥

---

(६) टीकैं—वा ठीकैं=उत्तम प्रकार से। श्रवण और मनन कर लेने पर निदिध्यास ज्ञान की परिपक्वावस्था के लिये अत्यावश्यक है।

(७) तुरीया अवस्था में जव साधन हो तव अद्वैत ज्ञान की अपरोक्षानुभूति होती है और "अहंब्रह्मास्मि" यह महावाक्य सिद्ध हो जाता है। फिर अंत में इस चौथी अवस्था से भी निवृत्त होकर "स्वात्माराम" पद की प्राप्ति हो जाती है जो केवल मोक्ष का रूप है। वहां निर्विकल्प समाधि में ज्ञाता ज्ञेय, ध्याता-ध्येय भिन्न नहीं रहते एकमेक हो जाते हैं। यही परम अद्वैत-ज्ञान की सिद्धि है।

(८) स्वात्माराम पद की अवस्था का वर्णन है। इसके अन्दर के पदार्थ ऊपर के छन्दों में दिखा आये है। अषै=अक्षय वा अविनाशी निर्विकार।

९ से ४५ के छन्द तक—शिष्य के सन्देह को निवृत्ति के निमित्त न्याय

श्री गुरुरुवाच

उरै परै कछु वै नहीं, वस्तु रही भरपूर।
चतुर भाव तोसौं कहौं, तव भ्रम ह्वै हैं दूर ॥ १० ॥

शिष्य उवाच

चौपई

हे प्रभु चतुर भाव संमुझावहु। भिन्न भिन्न करि अथ बतावहु ॥
द्वैत मिटै सब ही भ्रम छीजै। निःसन्देह मोहि अव कीजै ॥११॥

श्री गुरुरुवाच

चौपइया

शिष्य प्रागभाव सो प्रथमहिं कहिये, नीकी विधि समुझाऊं।
पुनि अन्यौअन्या भाव दूसरौ सोऊ तोहि सुनाऊं ॥
अरु सुनि प्रध्वंसाभाव तीसरौ ताकौ कहौं विचारा।
जब चतुर भाव अत्यंतहि जांनहि तव छूटै भ्रम सारा ॥१२॥

अथ चतुरभावकी सूचानिका

सवइया

मृतिका महिं अभाव घटनि को प्रागभाव यह जानि रहाय।
ता मृतिका के भाजन वहु विधि अन्योअन्याभाव गहाय ॥
मृतिका मध्य लीनता सव की यह प्रध्वंसाभाव लहाय।
न कछु भयौ न अब नहिं ह्वै है यह अत्यंताभाव कहाय ॥१३॥

और वेदांत सम्मत अभावों का वर्णन है। इसको सुन्दरदासजी ने ऐसी उत्तमता से दरसाया है कि, जिसके समान अन्यत्र कठिन से ही देखने में आवै। यह वर्णन सांख्य के मतानुसार प्रतीत नहीं होता है। सांख्य द्वैत और सत्कार्यवाद प्रतिपादन करनेवाला है। सांख्य सूत्र अ० १ के ११४ से १२० सूत्रों में सत्कार्य्यवाद और भाव का प्रतिपादन किया है। कारण और कार्य्य दोनों को सत् कहा है। परन्तु

अथ प्रागभाव वर्णनं

मनहर

पहिलैं जब कछुव न होतौ प्रपंच यह,
एक ही अखंड ब्रह्म विश्व कौ अभाव है।
जैसे काठ पांहन सुलप अति देषियत,
तिन मैं तौ नहीं कछु पूतरी बनाव है॥
जैसैं कंचन की राशि, कंचन विशेषियत,
ताहू मध्य नहीं कछु, भूषन प्रभाव है।
जैसै नभ माँहिं पुनि बादर न जानियत,
सुन्दर कहत शिष इहै प्रागभाव है॥ १४॥

अन्योन्याभाव

सवइया

एक भूमि तें भाजन बहु विधि कूण्डा करवा हण्डिया माट।
चपनी ढकन सराव गगरिया कलश कहाली नाना घाट॥
नाम रूप गुन जूवा जूवा पुनि व्यवहार भिन्न ही ठाट।
सुन्दर कहत शिष्य सुनि ऐसैं अन्योन्याभाव विराट॥ १५॥

वेदांत में प्रकृति को मिथ्या वा असत् कहा है और अभावों से कार्य्य वा कारण की सिद्धि का क्रम कहा, सो ही यहां कहा है।

९ से ४५ छन्द तक अभाव द्वारा जो प्रतिपादन किया है यह 'वैशेषिक दर्शन' के अनुसार है जहां प्रधानतः चार अभाव माने हैं। महामुनि कणाद के 'वैशेषिक सूत्र' ग्रन्थ में नवम अध्याय के प्रथमाह्निक (१—१५ सूत्र) में सत् और असत् का विवेचन है। तथा उस ही ग्रन्थ के प्रथमाध्याय के प्रथम आह्निक के चतुर्थ सूत्र के भाष्य में अभावों के वर्णन है। वेदांत में पांच अभाव कहे हैं सो न्याय वैशेषिक के अनुसार कह कर फिर उनकी शैली के दोष दिखाये हैं। साधुवर

मनहर

एक भूमि कौ विकार कंचन कहावत है,
ताहू के विविधि भांति भूपन अनन्त है।
मुद्रिका कंकन कंठमाला सीस फूल पुनि,
कुण्डल वलय क्षुद्रघण्टिका गनन्त है॥
नाम रूप गुन व्यवहार सव भिन्न भिन्न,
अंग अंग आपुनी ही ठौर लै ठनंत है।
ऐसो भांति शिष्य सुनि सुन्दर कहत तोहि,
विदुपहुं अन्योन्याभाव यों भनन्त हैं॥ १६ ॥

चौपइया

शिष्य एक भूमि कौ ताम्र विकारा ताके पात्र कहावहिं।
पुनि चरवा चरई तष्टी तवला झारी लोटा गावहिं॥
है नाम रूप गुन भिन्न भिन्न हीं दीसहिं विविध प्रकारा।
यह अन्योन्याभाव सु कहिये वहुत भांति विस्तारा॥१७॥

कुंडलिया

लोहा प्रगट सु देपिये सोऊ भूमि विकार।
विविधि भांति ताके भये जगत मांहिं हथियार॥
जगत मांहि हथियार गुरज समशेर कटारी।
वरछी उ गदा भालि कतरनी छुरी संवारी॥
नामरूप गुन भिन्न जहां जैसौ तहं सोहा।
अन्योन्याभाव शिष्य सुनि एक हि लोहा॥ १८॥

पंडित निश्चलदासजी के 'वृत्तिप्रभाकर' ग्रन्थ के छठे प्रकाश में अभावों का ही शास्त्रार्थ है। वेदांत में अनुपलब्धि एक प्रमाण माना गया है इसी को अभाव कहा है। न्याय वैशेषिक में अभाव का ज्ञान इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष कहा है परन्तु उधर लोगोंने वेदांत में इसको इन्द्रियजन्य ज्ञान नहीं माना है। पांच अभाव वृत्ति-प्रभाकर में इस प्रकार कहे हैं:—प्रथम अभाव दो प्रकार के हैं—१ तो अन्योऽन्याभाव और २

छप्पय

भूमि विकार कपास भयौ नाना विधि दरसै।
पासा मलमल सहन सितारा निपजहिं सरसै॥
सिरी साफ वाफता अधोतर भैरव कहिये।
परकाला अरु गजी गनत कहुं वोर न लहिये॥
सुनि शिष्य कहां लौं वरनियहिं अन्त नहीं निश दिन कहै।
इहिं अन्योन्याभाव तें कारण कारय सुधि लहै॥ १९॥

गीतक

पुनि एक भूमि विकार तरु विस्तार वहु विधि देखिये।
जर मूल शापा पत्र पुष्पं फल अनेकनि पेषिये॥
तिहिं नामरूप रु गुन सु भिन्नहिं वहुत भाँति वषानिये।
सो भाव अन्योअन्य कहिये शिष्य निश्चय मानिये॥२०॥

छप्पय

जल विकार अव सुनहु फेन वुद्वुदा तरंगा।
वोला पाला जानि सुतौ जल ही कौ अंगा॥
अग्नि विकार मशाल चिराकहु दीपक जोये।
वायु विकार हि जानि वघूरा आँधी होये॥
आकाश विकार सु अभ्र हैं ते नाना विधि देषयहिं।
यह अन्योन्याभाव शिष पंच तत्वमय पेषयहिं॥ २१॥

दोहा

एक ब्रह्म कारण जगत, कारय है बहु भांति।
चारि षांनि विस्तार यह, चौराशी लष जाति॥ २२॥

संसर्गाभाव। फिर संसर्गाभाव के चार भेद हैं—१ प्रागभाव, २ प्रध्वंसाभाव, ३ सामयिकाभाव और ४ अत्यंताभाव। इन में से सामयिकाभाव को उदयनाचार्य के मत में अत्यंताभाव के अंतर्गत माना है। परन्तु यह क्लिष्ट कल्पना है। अतः अभाव पांच ही मानना ठीक है। सुन्दरदासजी ने चार ही अभाव कहे हैं। सामयिकाभाव

अथ प्रध्वंसाभाव

चौपइया

यह भूमि विकार भूमि महिं लीनं जल विकार जल मांहीं।
पुनि तेज विकार तेज महिं मिलिहै वायु वायु मिलि जांहीं॥
आकाश विकार मिलै आकाशहिं कारण रहै निदानं।
शिप यह प्रध्वंसाभाव सु कहिये जो है सो ठहरानं॥२३॥

दोहा

जो जातें कारय भयो सो ताही मैं छीन।
ऐसैं ही यह जगत सब होइ ब्रह्म महिं लीन॥ २४॥

अथ अत्यन्ताभाव

मनहर

इच्छा हीन प्रकृति न महतत्व अहंकार,
त्रिगुन न शव्दादि व्योम आदि कोइ है।
श्रवणादि वचनादि देवता न मन आदि,
सूक्षम न थूल पुनि एक ही न दोइ है॥
स्वेदज्ज न अण्डज जरायुज न उदभिज्ज,
पशु ही न पक्षी ही पुरुप ही न जोइ है।
सुन्दर कहत ब्रह्म ज्यौंको त्यौंहीं देपियत,
न तौ कछु भयो अब है न कछु होइ है॥ २५॥

पृथक् नहीं कहा है। अब अभावों को स्पष्ट वर्णन करते हैं। (१) प्रागभाव—मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है, परन्तु उत्पत्ति से पूर्व मृतिका में घट का अभाव है। उत्पन्न हो जाने पर उस अभाव का नाश होता है। यही प्रागभाव है और अनादि सांत है। 'अनादि सांतो योऽभावः स प्रागभावः'। (२) अन्योऽन्याभाव—एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में अभाव है। घट का अभाव पट में है। पटका अभाव घट में है। घटः पटो न। पटश्चघटो न'। 'तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताका

छप्पय

कहत शशा के शृङ्ग आँपि किन हूं नहिं देषै।
वहुरि कुसुम आकाश सुतौ काहू नहिं पेषै।
त्यौं ही वंध्या पुत्र पिवूरै झलत कहिये।
मृगजल मांहीं नीर कहूं ढूंढत नहिं लहिये॥
रजु मांहिं सर्प नहिं काल त्रय, शुक्ति रजत सी लगत है।
शिप यह अत्यन्ताभाव सुनि, ऐसैं ही सव जगत है॥ २६॥

पद्धड़ी

शिप यह अत्यन्ताभाव होइ। नहिं उत्पत्ति स्थिति प्रलय न कोइ।
नहिं आदि न अंत न मध्य भाव। नहिं सृष्टा सृष्टि न को उपाव॥२७॥
नहिं कारण कारय द्वै उपाधि। नहिं ईश्वर जीव परै समाधि।
नहिं तत्व अतत्व विभाग भिन्न। नहिं जोति अजोति कछू न चिन्ह॥२८॥
नहिं काल न कर्म सुभाव आहि। नहिं विद्या विद्या लगइ काहि।
नहिं राग विराग न वंध मुक्त। नहिं रूप अरूप अयुक्त युक्त॥२९॥
नहिं आहि प्रमाता कौ प्रमाण। नहिं है प्रमेय नहिं प्रमा जाण।
नहिं लय विक्षेप न निकट दूर। नहिं दिवश न रजनी चन्द सूर॥३०॥

भावोऽन्योऽन्याभावः। अर्थात् अभेद सम्वन्ध की विशिष्टता का अभावपण जिस जगह हो वहां 'अन्योऽन्याभाव' होता है। (३) प्रध्वंसाभाव—घट मृत्तिका में से उत्पन्न होनेके अनंतर मुद्गर, लाठी, पत्थर से तोड़ा जाय तो ठीकरियोंके देखने से घट का नाश वा अभाव जाना जाता है, वहां प्रध्वंसा भाव है। 'घटो'ध्वस्तः। घटका नाश हो गया। कार्य्य के नाश से इसकी उत्पत्ति होती है। इसलिये सादि है और अनंत है। (४) अत्यंताभाव—जो अभाव सदा ही वना रहता है, तीनों कालमें विद्यमान रहा करता है, जिसकी न उत्पत्ति हुई न उसका नाश है, वह त्रैकालिक नित्य एक रस है वह अत्यन्ताभाव है। जैसे वायु में रूप नहीं, अर्थात् कभी भी रूप वायु में नहीं होता। इस से वायु में रूप का अत्यन्ताभाव है। इस कारण यह अभाव

नहिं शुक्ल न कृष्ण न रक्त पीत । नहिं ह्रस्व न दीरघ घांम सीत ।
नहिं अर्थ न धर्म न काम मोक्ष । नहिं पाप न पुन्य अप्रोक्ष प्रोक्ष ॥३१॥
नहिं स्वर्गादिक नहिं नरक वास । नहिं त्रासक कोउ न होइ त्रास ।
नहिं वेद न शास्त्र न शब्दजाल । नहिं वर्णाश्रम नहिं स्मृत्ति चाल ॥३२॥
नहिं संध्या सूत्र न करन्न्यास । नहिं होम न यज्ञ न व्रत उपास ।
नहिं इष्ट उपासनहार कोइ । नहिं निर्गुण सगुण न भेद होइ ॥३३॥
नहिं सेव्य न सेवक सेवकीन । नहिं हेत न प्रीति न प्रेम लीन ।
नहिं नवधा दशधा पराभक्ति । नहिं सालोकादिक चारि मुक्ति ॥३४॥
नहिं साधक साधनसाध्य सार । नहिं सिद्धि न सिद्ध न निर्विकार ।
नहिं कर्त्ता कर्म क्रिया न कोइ । नहिं द्रष्टा दर्शन दृश्य होइ ॥३५॥
नहिं व्यक्त अव्यक्त अशुद्ध शुद्ध । नहिं रक्त विरक्त अबुद्ध बुद्ध ।
नहिं तर्क वितर्क अधीर धीर । नहिं शून्य अशून्य अथीर थीर ॥३६॥
नहिं चिन्त अचिन्त अडोल डोल । नहिं माप अमाप अतोल तोल ।
नहिं कृश स्थूल नहिं युवा बाल । नहिं जरा मृत्यु न अकाल काल ॥३७॥
नहिं जाग्रत स्वप्न न सुषुपतिश्च । नहिं तुरिया त्रय साक्षी मतिश्च ।
नहिं ज्ञे ज्ञाता नहिं ज्ञानगम्य । नहिं ध्ये ध्याता नहिं ध्यानरम्य ॥३८॥

अनादि भी है और अनन्त भी है । 'नित्यसंसर्गाभावत्वमत्यन्ताभावत्वं' । तीनों कालों में होते रहनेवाले वस्तु के अभाव को अत्यंताभाव कहते हैं । यह इस अभाव का लक्षण है । सुन्दरदासजी ने चारों अभावों के उदाहरण बहुत सुन्दर दिये हैं । परन्तु 'अभाव' वेदांत के मत में सादि सांत सिद्ध होते हैं और विनाशी हैं कोई अभाव नित्य नहीं है । और अभाव सब कार्य होने से माया के कार्य्य हैं, और माया अनात्म पदार्थ है और मिथ्या है, इससे अभाव भी सब मिथ्या हैं । 'नेहनानाऽस्तिकिंचन' इत्यादि श्रुतिसे सारे प्रपंच का त्रैकालिक अभाव है । वेदांत अद्वैत सिद्धांत में आत्मा ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही नित्य है उसमें प्रपंच का परमार्थ दृष्टिसे अभाव है । इस ही को प्रपंच का 'अत्यंत अभाव' कहा है । सो अनुपलब्धि कहाता है । सुन्दर-

दोहा

जो कछु सुनिये देपिये, बुद्धि विचारै जाहि।
सो सब वाग विलास है, भ्रम करि जांनहुं ताहि ॥ ३९ ॥
यह अत्यन्ताभाव है, यह ई तुरियातीत।
यह अनुभव साक्षात है, यह निश्चय अद्वीत ॥ ४० ॥
नाहीं नाहीं करि कह्यो, है है कह्यौ वषांनि।
नांहीं है कै मध्य है, सो अनुभव करि जांनि ॥ ४१ ॥
यह ई है पर यह नहीं, नाहीं है है नांहिं।
यह ई यह ई जांनि तू, यह अनुभव या मांहि ॥ ४२ ॥
अब कुछ कहिवे कौ नहीं, कहैं कहां लौं वैंन।
अनुभव ही करि जांनिये, यह गूँगे की सैंन ॥ ४३ ॥
जो तेरै संदेह कछु, रह्यौ रंच हू होइ।
तौ शिष अज हूं प्रश्न करि, फिर समुझाऊं तोहि ॥ ४४ ॥

शिष्य उवाच

चौपई

हे स्वामिन् शंसय सब भाग्यौ। वचन तुम्हारे सोवत जाग्यौ ॥
अब तौ सर्व स्वप्न करि जान्यौ। निश्चय मम संदेह विलान्यौ ॥४५॥

दासजी ने इस ही अत्यंताभाव का वर्णन २५ वें छन्द से लगाकर ४४ वें छन्द तक बहुत सुन्दर और खोल कर किया है तथा आगे शिष्य के वचन में छन्द ४५ से ५३ तक उसी को निश्चय से पुनरावृत्ति कही गई है। कोई कोई वेदांती एक अत्यंताभाव भी मानते हैं। तदनुसार भी यह वर्णन है। और 'सर्वदर्शन संग्रह' ग्रन्थ में अंत में चार ही अभाव कहे हैं (औलुक्य दर्शन में) सामयिकाभाव नहीं कहा है।

✻ चर्पट

का हं क त्वं क च संसारः। क च परमारथ क च व्यवहारः ॥
क च मे जन्मं क च मे मरणं। क च मे देहः क च मे करणं ॥ ४६ ॥
क च मे अद्वय क च मे द्वैतं। क च मे निर्भय क च मे भीतं।
क च माया क च ब्रह्मविचारः। क च मे प्रवृत्तिहि निवृत्ति विकारः॥४७॥
क च मे ज्ञानं क च विज्ञानं। क च मे मन्न निर्विप विप जानं ॥
क च मे तृष्णा क वितृष्णत्वं। क च मे तत्वं क च हि अतत्वं ॥ ४८ ॥
क च मे शास्त्र क च मे दक्षः। क च मे अस्ति हि नास्ति हि पक्ष ॥
क च मे कालः क च मे देशः। क च गुरु शिष्यः क च उपदेशः ॥४९॥
क च मे ग्रहणं क च मे त्यागः। क च मे विरतिः क च मे रागः ॥
क च मे चपलं क च निस्पंदं। क च मे द्वन्द्व क च निर्द्वंद्व ॥ ५० ॥

---

४६ से ५२ छन्द तक शिष्य को ज्ञान प्राप्त हो जाने पर जो उसने अपनी अवस्था कही है सो उसका वर्णन है।

✻ शङ्कराचार्य कृत 'चर्पटपंजरिका' स्तोत्र के छन्द से मिलता यह छन्द होने से चर्पट छन्द कहा है। वास्तव में यह 'रूप चौपाई' वा 'पादाकुलक' है जिसमें १६ मात्रा और अंत्य गुरु होता है। परंतु 'रणपिंगल' के मतानुसार 'चर्पट' एक प्रकार का मात्रिक छन्द है जो १६ मात्रा का होता है। नवीं मात्रा लघु और अंत का वर्ण गुरु हो। (र० पि० पृ० २०७)

(४६) करणं=इंद्रियादि।

(४७) भीतं=भय।

(४८) निर्विप=निष्पाप। विप=पाप।

(४९) दक्षः=दक्षता, चातुर्य्य।

(५०) विरतिः=वैराग्य। निसंद=स्पंद (चपलता) रहितता।

गोमूत्रिका॥ दोहाछंद॥

मायादुखकोमूलहै कायासुखनहिलेश॥
याया विषमामूरहै आया नखतहि केश॥१॥
गोजीगोजीनरिनिपं
विंदु पालर हराम
चतुरविवेकीपाइहै चतुरक्रूर बिश्राम॥२॥

॥ ॥संवत१७४२ वर्षेआषाढसुदिषष्ठी शनिवासरे पो
थी लिषाइतं स्वामी सुंदरदासजी॥ लिषतं रूपादास म
हाजन। फतेपुरमध्ये। पोथी स्वामी सुंदरदासजी कौ ग्रंथ
संपूर्ण॥ [illegible]॥ पोवैक हास्यत्रके मांहि॥ नाद सुनत
वाले कौ नांहि॥ सीशाकवनकै अंकुस गंजन कोबिदेह जिनयो नि
रंजन॥१॥ कौन नगर जहां उपजे लौंन॥ नदीनाथ कहि ऐसा कौ
न काऊपर अस वारचढंत॥ कहाकटे नजतैं नगवंतार॥ दुषदाइक
सोकहिये कौन। शिरकेला शाकवनको जौन॥ पंथी को कादाजें भे
व॥ कौन त्यागिवाले गुरुदेव॥३॥ कौवन भै गहि बैठे मौन॥ हस्ता कै
सिरसोहा कौन॥ काकेकीये कनक अवास॥ त्यागा कौन सुदादूदास
॥४॥ मनिका सांभर अम्बर उदास
कुरंग सागर संकर सिंदूर
कुंजर पवंग संदेस सुदामा
जनक पारक रावन बासना

प्राचीन ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठ का चित्र

क्व च मे वाह्याभ्यंतर भासं। क्व च अध ऊर्द्ध तिर्य प्रकाशं॥
क्व च मे नाड़ी साधन योगं। क्व च मे लक्ष विलक्ष वियोगं॥ ५१॥
क्व च नानात्वं क्व च एकत्वं। क्व च मे शून्याशून्य समत्वं॥
यो अवशेपं सो मम रूपं। वहुना किं उक्तं च अनूपं॥ ५२॥

दोहा

यह मैं श्री गुरुदेव कौ, अनुभव कह्यौ सुनाइ।
जो प्रभु कौं परि※श्रम कियौ, सो फल प्रगट्यौ आइ॥ ५३॥

श्री गुरुरुवाच

चौपई

हे शिप जो इच्छा करि सोई। तोहि न कतहूं वाधा होई।
तूं निर्धूम भयो निर्दोपा। तैं अव पायौ जीवन मोषा॥ ५४॥
जो मैं कह्यौ सु हृदये आन्यौ। ताही क्रम तें ब्रह्म हिं जान्यौ।
आपु ब्रह्म जग भेद मिटायौ। ज्यौं है त्यौंहीं निश्चय आयौ॥ ५५॥
देपै सुनै स्पर्शय वोलै। सूंघय क्रिया करै कहुं डोलै।
पांन पांन वस्त्रादिक जोई। यह प्रारव्ध देह कौ होई॥ ५६॥

दोहा

निरालम्ब निर्वासना, इच्छाचारी येह।
संस्कार पवन हिं फिरै, शुष्क पर्ण ज्यौं देह॥ ५७॥

---

(५१) भासं=ज्ञान (आत्मा और अनात्मा का)। तिर्य=तिर्यक, तिरछा। (ये सव प्रकृति के गुण मात्र हैं)

(५२) अवशेपं=वच रहा अर्थात् इन सव गुणों से न्यारा सो आत्मा का स्वरूप है।

※ 'रि' को ह्रस्व पढ़ा जाना चाहिये। अर्थ—आप को प्रश्नों के उत्तर वताने में जो तकलीफ दी गई उसका अच्छा फल अर्थात् ब्रह्मज्ञान का अनुभव हो गया।

(५७) यह साषी सुन्दरदासजी के अन्त समय में की कही हुई प्रसिद्ध है।

जीवन मुक्त सदेह तूं, लिप्त न कबहूं होइ।
तोकौं सोई जानि हैं, तव समान जे कोइ॥ ५८॥
जो या ज्ञान समुद्र महिं, डुबकी मारै आइ।
सोई मुक्ता फल लहै, दुख दरिद्र सब जाइ॥ ५९॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र की, महिमा कहिये कौंन।
अमृत रस सौं है भर्यौ, तुम जिनि जांनहु लौंन॥ ६०॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र महिं, बहुते रत्न अमोल।
मृतक होइ सो पैठि है, पैठि न सकई लोल॥ ६१॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र को, वारापार न अन्त।

निरालंब=निराधार, निर्लेप, शुद्ध। निर्वासना=वासना रहित। इच्छाचारी=अपनी स्वाभाविकी इच्छा से आचरण करै, स्वतंत्र। आत्मा स्वतंत्र है, शरीर कर्म के संस्कारों से बद्ध होकर (अर्थात्) लिंग शरीर से बार बार जन्म लेता है। परन्तु जो जीवन्मुक्त हो गया वह मरने के पीछे जन्म नहीं लेगा। जीवन्मुक्ति सांख्य के मत में नहीं मानी गई है, यह वेदांत ही का सिद्धांत है कि जीते ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। सुन्दरदासजी ने अपने ग्रन्थों में जीवन्मुक्ति को दरसाया है। सांख्य के कुछ सिद्धांतों का वर्णन 'सवैया' ग्रन्थ के २५ वें अंग में और 'साषी' के २४ वें अंग में भी आया है। वहां ब्रह्म से पुरुष और प्रकृति की उत्पत्ति मानी है और २६ तत्व सांख्य के बताये हैं। इत्यादि। 'ज्ञान समुद्र' में जो सांख्य का वर्णन है उसके उत्तरार्द्ध में प्रायः वेदांत का मेल लगाया गया है। सांख्य में ब्रह्म शब्द से बहुत काम नहीं लिया गया है। वेदांत में सांख्य के आवश्यक अंशों से विशिष्ट ढंग पर काम लेने के उपरांत जो विरुद्ध पदार्थ हैं उनका खंडन किया है। जैसे प्रधान और सत्कार्यवाद तथा प्रकृति और कार्य्यरूप जगत् की सत्यता इत्यादि सांख्य में माने हुये पदार्थों का वेदांत में तिरस्कार किया गया है।

५८ से अंत के छन्द ६६ तक इस 'ज्ञानसमुद्र' ग्रन्थ की महिमा, फल स्तुति और निर्माण काल (संवत १७१०, भादवा सुदि एकादशी समाप्ति का) दिया है।

इति ज्ञानसमुद्र की टीका सुन्दरानन्दी समाप्त

विपई भागै झफकि कैं, पैठै कोई सन्त ॥ ६२ ॥
सुन्दर ज्ञान समुद्र की, जो चलि आवै तीर ।
देपत ही सुख ऊपजै, निर्मल जल गंभीर ॥ ६३ ॥
यह ई ज्ञान समुद्र है, यह गुरु शिष संवाद ।
सुन्दर याहि कहै सुनै, ताकै मिटहिं विषाद ॥ ६४ ॥
संवत सत्रह से गये, वर्ष दशोतर और ।
भाद्रव सुदि एकादशी, गुरुवासर सिरमौर ॥ ६५ ॥
ता दिन संपूरण भयौ, ज्ञान समुद्र सु ग्रन्थ ।
सुन्दर औगाहन करै, लहै मुक्ति कौ पन्थ ॥ ६६ ॥

इति श्री सुन्दरदासेन विरचिते ज्ञान समुद्रे अद्वैत सिद्धांत निरूपणं नामः
पंचमोल्लासः ॥ ५ ॥

समाप्तोऽयं ज्ञानसमुद्रो ग्रन्थः ॥ सर्व छन्द संख्या ३१४ ॥

अथ सर्वांगयोग प्रदीपिका

सर्वांगयोग प्रदीपिका

पंचप्रहार नाम प्रथमोपदेशः

दोहा

बन्दत हौं गुरुदेव के, नित चरणांवुज दोइ।
आतम ज्ञान प्रगट भयौ, संशय रह्यौ न कोइ ॥ १ ॥
भक्तियोग हठयोग पुनि, सांख्य सु योग विचार।
भिन्न भिन्न करि कहत हौं, तीनहुं कौ विस्तार ॥ २ ॥
सनकादिक नारद मुनी, शुक अरु ध्रुव प्रह्लाद।
भक्ति योग सो इन कियौ, सद्गुरु कैं जु प्रसाद ॥ ३ ॥
आदिनाथ मत्सेंद्र अरु, गोरष चर्पट मीन।

'सर्वांगयोग' से अनेक प्रकार के मुक्ति के साधन जो उत्तम और सनातन और सनातन और शास्त्र सम्मत हैं। यथा भक्तियोग विभागों सहित। हठ्योग राजयोगादि सहित (यथाः—मंत्रयोगो हठश्चैव राजयोगो लयस्तथा। योगश्चतुर्विधः प्रोक्तो योगिभिस्तत्वदर्शिभिः) मंत्रयोग, हठ्योग, राजयोग और लययोग—ये चार याज्ञवल्क्य ने कहे हैं। और सांख्य के अंतर्गत सेश्वर निरीश्वर आदि। परन्तु सुन्दरदासजी ने निरीश्वर भेद सांख्य की कहीं भी चर्चा नहीं की,' वरन उन्होंने सांख्य को वेदांत से जा मिला दिया है।

(१) चरणांवुज=चरण कमल। 'आतमज्ञान प्रगट भयो' इत्यादि दोहे के दूसरे अंश से यह वात टपकती है मानों 'ज्ञानसमुद्र' के पीछे यही ग्रन्थ वनाया गया हो।

(२) सनकादिक की 'सनत्कुमार संहिता'। नारद की 'नारदपांचरात्र'। शुकदेव की 'भागवत'। ध्रुव प्रहलाद का चरित्र पुराणादि में। ये सव भक्ति शास्त्र के प्रथम आचार्य हैं। शांडिल्यादि भी।

काणेरी चौरंग पुनि, हठ सु योग इनि कीन ॥ ४ ॥
ऋषभदेव अरु कपिल मुनि, दत्तात्रेय वशिष्ट ।
अष्टावक्र रु जड़भरत, इन के सांख्य सुदृष्ट ॥ ५ ॥
महापुरुष जे इन मतै, तिनकी मैं बलि जाउं ।
मारग आये दश दिशा, पहुंचे एकहिं गांउं ॥ ६ ॥
भक्तियोग है चारि विधि, चहुं विधि हठ हू जांनि ।
चतुर्भांति आचारयनि, सांख्य सु कह्यौ बषांनि ॥ ७ ॥
प्रथम भक्ति अरु मंत्र लय, चर्चा सहित सुनाइ ।
भिन्नै भिन्न प्रकार करि, आगै कहि हौं जाइ ॥ ८ ॥
दुतिय हठहि अरु राज पुनि, लक्ष सहित अष्टङ्ग ।
आगै कहि हौं बहुत विधि, चारि हु के जु प्रसङ्ग ॥ ६ ॥
त्रितिये सांख्य सु ज्ञान सुनि, ब्रह्मयोग अद्वीत ।
ये चार्यौं जौ जानियहि, मिटै सकल भयभीत ॥ १० ॥
इन बिन और उपाय हैं, सो सब मिथ्या जांनि ।
छह दरसन अरु छ्यानवै, पाषंड कहूं बषांनि ॥ ११ ॥

चौपई

तौ केचित् करहिं यज्ञ विधि वेदा । बाजपेय गो अरु बहु भेदा ॥
केचित् तीरथ तीरथ धावैं । दहिनावर्त्त पहुमि दै आवैं ॥ १२ ॥

---

(४) आदिनाथ आदि योग के आचार्य हैं ।

(५) ऋषभ आदि सांख्य के भागवतादि में वर्णन है ।

(७) सांख्य को भी चार प्रकार का कहा, यह विलक्षण है ।

(११) छानवे पाषण्डों का कोई प्रमाण नहीं मिला ।

छन्द १२ से ४९ तक जो गणना की है वोह कई आधारों वा निज के अनुभव से है । वाजपेय-एक प्रकार का यज्ञ । गो=गोमेध यज्ञ । बहुभेदा=नरमेध, अश्वमेध आदिक यज्ञ । दहिनावर्त्त=परिक्रमा । पहुमि=पृथ्वी । षट्कर्म—नित्य के छह कर्म=

केचित् शौच अचार हि धर्मा। संध्या तर्पण अरु षटकर्मा॥
केचित् वर्ण आश्रमाधारी। ब्रह्मचर्य पालहिं ब्रह्मचारी॥ १३॥
केचित् गारहस्थ वहु भांती। पुत्र कलत्र वंधे दिन राती॥
केचित् वानप्रस्थ मत लीनां। कामिनि सहित गवन वन कीनां॥१४॥
केचित् परमहंस संन्यासी। साषा सूत्र तजी वहु पासी॥
केचित् नित्य जु करहिं सनाना। सायंकाल प्रात मध्याना॥ १५॥
केचित् नियम व्रत हि वहु धारैं। चंद्रायन उपवास विचारैं॥
केचित् करैं देव की पूजा। पाती पुष्प तोरि ह्वै दूजा॥ १६॥
केचित् माला तिलक वनावैं। विष्णु उपासी भक्त कहावैं॥
केचित् शिव शिव जपहिं अपारा। गरै लिंग अरु लावहिं छारा॥ १७॥
केचित् कर्म सु थापहिं जैंना। केश लुंचाइ करहिं अति फैंना॥
केचित् मुद्रा पहिरै कानं। कापालिका भ्रष्ट मत जानं॥ १८॥
केचित् नास्तिकवाद प्रचंडा। तेतौ करहिं वहुत पाषंडा॥

संध्या, जप, तर्पण होम, वलिवैश्वदेव और स्नान। तथा पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना।

वर्णाश्रम धर्म शास्त्र सम्मत होनेसे पाषण्ड नहीं हो सकता। इसको दम्भ और कपट से करने पर पाषंड हो सकता है।

(१५) वहुपासी=अनेक वंधनों को छोड़ा।

(१६) व्है दूजा=द्वैतभाव से अर्थात् साधक भाव से साध्यदेव के लिये।

(१७) छारा=भस्म ।

(१८) केश लुचाइ=जैनियों के साधु हाथ से मस्तक के केश खेंच कर उपाड़ते है, उस्तरे कैंची से नहीं काटते हैं। फैंना=फैन, मक्र, फरेव, पाषंड। मुद्रा=जोगी कान फडा कर गोल मुद्रा पहनते हैं। कापालिक—एक शैव शाक्त वा वाम-मत का भेद है, जिस के अनुयायी मनुष्य की खोपड़ी का पात्र और माला रखते हैं और स्मशान में रहते वा विचरते है।

केचित् देवी शक्ति मनावैं । जीव हतन करि ताहि चढ़ावैं ॥ १९ ॥
केचित् वहु विधि होम कराहीं । तिल जव घृतहि अग्नि मुख मांहीं ॥
केचित् यजन करहिं खलु देवा । धूप दीप करि ताकी सेवा ॥ २० ॥
केचित् मलिन मंत्र आराधैं । वशीकरण उच्चाटन साधैं ॥
केचित् मुये मसान जगावैं । थंभन मोहन अधिक चलावैं ॥ २१ ॥
केचित् वनिता कर्पण करहीं । भूपति मोहि धूर्त्त धन हरहीं ॥
केचित् करहिं कलंक पसारा । धात रसाइन मारहिं पारा ॥ २२ ॥
केचित् गुटिका सिद्ध कमावैं । वनस्पती के पात चरावैं ॥
केचित् खड्ग अग्नि जल वांधैं । शिला उठाइ धरहिं पुनि कांधैं ॥ २३ ॥
केचित् करहिं विविधि वैदंगा । वूंटी जरी टटोर हि अंगा ॥
केचित् ज्योतिप गण तिथि वारा । घरी महूर्त्त ग्रह व्योहारा ॥ २४ ॥
केचित् तुला रत्न भू दाना । अन्न वसन पुस्तक विधि नाना ॥
केचित् कहैं संसकृत वांनी । कठिन श्लोक सुनावहिं जांनी ॥ २५ ॥

---

(१९) हतन=मारकर, वलिदान कर के ।

(२१) मलिन मंत्र=अघोरी मंत्र साधन । वशीकरण=मंत्रशास्त्र के प्रधान पट् प्रयोग—मारण, मोहन, वशीकरण, स्थम्भन, उच्चाटन, वा शांति ।

(२२) कर्पण=आकर्पण (प्रयोग) । कलंक पसारा=कपट से अन्य में दोप वता कर अपनी सिद्धाई भंगारना । पारा मारण=वैद्यक की एक सिद्धि जिससे चांदी रांगा से और तांवा से सोना वनता है ।

(२३) पारद की गुटिका सिद्ध करके मुंह में धरने से मनुष्य खेचर होता है अर्थात् उड़ता है । वनस्पति=घास पात खाकर रहते हैं । खड्ग—मंत्र शक्ति से तलवार की धार को वांधना, जल को वांध देना, अग्नि को शीतल कर देना । शिला=भारी पत्थरों को मंत्र के आवेश वा जोश में उठा लेना और चलना । टटोरहिं=नाड़ी देखें वा शरीर को टटोल कर रोग के लक्षण देखें ।

(२४) व्योहारा=ग्रह के चार वा प्रभाव ।

(२५) सुनावहि जानी=सुनाने वा उच्चारण करने की विधि जानते हैं ।

केचित् तर्कत शास्तर पाठी। कौशल विद्या पकरहिं काठी॥
केचित् वाद विविधि मत जानैं। पढि व्याकरण चातुरी ठानैं॥ २६॥
केचित् कविता कवित सुनावैं। कुंडलिया अरु अरिल बनावैं॥
केचित् छंद सवैया जोरैं। जहां तहां के अक्षर चोरैं॥ २७॥
केचित् वीणा बेणु वदीता। ताल मृदंग सहित संगीता।
केचित् नट की कला दिपावैं। हस्त विनोद मधुर सुर गावैं॥ २८॥
केचित् करहिं कष्ट तन भारी। भोजन पंच ग्रास आहारी।
केचित् अन्न गऊ मुख पांहीं। घुटरिनि परहिं अकल कछु नांहीं॥२६॥
केचित् कर धरि भिक्षा पावैं। हाथ पूंछि जंगल कौं धावैं।
केचित् घर घर मांगहि टूका। वासी कूसी रूपा सूका॥ ३०॥
केचित् अपर्स्स पाक बनावैं। मुख मूंदहिं हुन्नर दिपरावैं।
केचित् जीमत कूटहि थारी। करि करि ग्रास देइ कर नारी॥३१॥
केचित् धोवन धावन पीवैं। रहैं मलीन कहौ क्यौं जीवैं।

---

(२८) वदीता=वादित्र, बाजे बजाये।

(२९) पंचग्रास=पांच ही गास ले कर फिर न खाना, अत्यन्त अल्प भोजन करना।' अथवा प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान वायुओं के अर्थ पांच ग्रास प्रथम निकाल फिर खाना। अथवा काग, श्वान, गौ, अभ्यागत और कीड़े मकोड़े के आदि प्रथम पांच ग्रास निकाल कर खाना। गऊ मुख खांही=गौ को खिला कर खावै, अथवा गौ को अन्न चरा दें फिर गोवर में जो अन्न निकलै उस को ऊंछ-वृत्ति से खांय। घुटरनि परहिं=कनक दण्डवत करैं।

(३०) यह वृत्ति तो भिक्षार्थी की है ही, इसमें पाषंड यही हो सकता है कि भिक्षा ले और फिर रात को चोरी आदि कुकर्म करै।

(३१) हुन्नर=हुनर, आचार की बारीकियां, छिलावट। कूटहि थारी=दक्षिणी, खाते समय थाली बजा कर शब्द करते हैं ताकि चांडाल का शब्द कान में न आने पावें जिसके सुनने से वे खाते ही उठ जाते हैं। कर नारी=अपने

केचित् मत्ता अघोरी लीया। अंगीकृत दोऊ का कीया॥ ३२॥
केचित् अभप भपत न सकांहीं। मदिरापान मांस पुनि पांहीं।
केचित् वपुरे दूधाधारी। पांड पोपरा दाप छुहारी॥ ३३॥
केचित् कंद मूल पनि पांहीं। एकाएक रहैं वन मांहीं।
केचित् कापायादिक पहिरें। जपहिं जाप पैठहिं जल गहरैं॥ ३४॥
केचित् रक्त पीत पट कीने। पुनि वस्तर वोढहिं अति भीने।
केचित् दीसे रंगा चंगा। पाट पटम्बर वोढहिं अंगा॥ ३५॥
केचित् रंगहिं काथ महिं कपरा। करि प्रपंच बैठहिं अति लपरा।
केचित् टाट पहरि दिपरावें। वहुत भांति करि लोक रिझावें॥३६॥
केचित् चिरकट वीनहिं पंथा। निर्गुन रूप दिखावैं कंथा।
केचित् मृगछाला वाघम्बर। करते फिरहिं वहुत आडम्बर॥३७॥
केचित् वोढहिं वल्कल चीरा। शीत घांम कछु वचै न नीरा।
केचित् नग्न उघारी देहा। होंहिं दिगम्बर लावहिं पेहा॥ ३८॥
केचित् जटाजूट नप कीन्हे। नाना रूप जाइ नहिं चीन्हें।

हाथ से न खाना, स्त्रियों, भक्तों के हाथ से खाना। धोवन=श्वेताम्बर जैनियों के ढूंढिये आटे का धोवन पीते हैं। और वस्त्र धोने में हिंसा समझते हैं।

(३२) दोऊ=हिंसा से वाम मत और अहिंसा तथा मलिनता से ढूंढिया मत।

(३३) अभप=अभक्ष्य—श्वान, सर्प, मृतक शरीर, भिष्टा आदि। वाम मार्ग में-पंच मकार=मंत्र, मैथुन, मांस, मदिरा और मुद्रा से मोक्ष मानते है। कोई २ मुद्रा के स्थान पर मत्स्य लेते हैं।

(३४) पनि=क्षणि, थोड़ा, अल्प। अथवा खोदकर। अथवा यह फल का पाठांतर है। वा खन-एक खन, एक वार। कापायादिक=गेरुआ, खाकी रंग, लाल, पीले-नीले आदि फकीरों के वस्त्र।

(३६) लपरा=वाचाल उपदेश कथा कहने वाले।

(३७) चिरकट=चीरकट, चिथड़ा। कंथा=गुदड़ी।

केचित् करहिं अज्ञान कसौटी। पंच अग्नि वारहिं मति छौटी ॥ ३९ ॥
केचित् मेघाडम्बर वैठैं। शीत काल जलसाई पैठैं।
केचित् धूम पान करि भूलैं। औंधे होइ वृच्छ सौं भूलैं ॥ ४० ॥
केचित् मरहिं पड्ग की धारा। नृपति हौंन के काज गंवारा।
केचित् मगर-भोज तन करहीं। झंपापात देह परहरहीं ॥ ४१ ॥
केचित् जाइ हिंवारै सीझैं। मन की मूठि तहां अति रीझैं।
केचित् गरा सारि तन त्यागैं। यातें कछू पाइ हैं आगैं ॥ ४२ ॥
केचित् करि पर्वत हिं निवासा। पुनि सो करहिं गुफा मैं वासा।
केचित् एक ठौर न रहांहीं। आजु सु इहां कालिह उहां जांहीं ॥४३॥
केचित् तृग की सेज वनावैं। केचित् लै कंकरा विछावैं।
केचित् व्रत हिं गहैं अति गाढे। द्वादश वर्ष रहैं पग ठाढे ॥ ४४ ॥
केचित् रहैं जाइ समसाना। हम अवधूत करहिं अभिमाना।
केचित् रूंप वृच्छ तर वासा। हम काहू की करहिं न आसा ॥ ४५ ॥
केचित् मौंन गहैं नहिं वोलैं। सैंन हिं सै अन्तर्गति पोलैं।
केचित् चन्दन पौरि वनावैं। पग पावरी नैंन मटकावैं ॥ ४६ ॥
केचित् मेलहिं मूंड ठगौरी। सव लै जांहिं देषते त्यौरी।
केचित् सिहर लगावहिं अंगा। वालक चलै लागि करि संगा ॥ ४७ ॥
केचित् मूठि चलावैं काहू। नारिसिंह भैरव तुम जाहू।

---

(४१) मगर भोज—चाह कर मगरमच्छ का भोजन वनना जलमें डूव कर।

(४२) सीझैं=गलैं। मन की मूठि=मन भावै जितना। गरा=गला। सारि=काट कर।

(४३) एक ठोर न रहांही=सन्यासी वा त्यागी एक दिन वा थोड़े समय एक स्थान में ठहरते हैं।

(४६) अंतर्गति=मन की वात।

(४७) मेलहि मूंड ठगौरी=शिर पर (मंत्र की) भुरकी डालते हैं और फिर

केचित् आक धतूरा पांहीं। पुनि अँगार मेलहि मुख मांहीं ॥ ४८॥
केचित् आफू पोसत भंगी। निपट मूढ मति आहि तरंगी।
ऐसें भ्रम सु कहां लग कहिये। सँमुझि सँमुझि गुरु के पग ग्रहिये॥४९॥

दोहा

वहुत भांति मत देषिकैं, सुन्दर किया विचार।
सद्गुरु के जु प्रसाद तें, भ्रमें नहीं सुलगार॥ ५०॥

इति श्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्गयोगप्रदीपिकायां पंचप्रहारनामः प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

धन ठग ले जाते हैं। खोरी=खोर फटे रह जाते हैं अर्थात् वड़ी फुरती से तुरत भाग जाते हैं और आक वाक रह जाते हैं। सिहर=ठंडे वस्त्र पानी में भीगे शीत ऋतु में पहन के मांगने जांय। अथवा जादू लगावें (अ० सिहर से) वा सिन्दूर लपेटैं।

(४८) नारिसिंह=नाहरसिंह वा नृसिंहदेव मन्त्र की सिद्धि के लिये साधे जाते हैं। इसी तरह भैरव। तुम जाहू=देवता को कहता है कि जाकर अमुक कार्य सिद्ध करो।

(५०) सुलगार=श्रेष्ट पुरुष। संतजन। वा तनिक भी। थोड़ा सा भी।

अथ भक्तियोग नाम द्वितीयोपदेशः

चौपई

भक्तियोग अव सुनहु सयाना। वुद्धि प्रवांन जु करौं वपांना।
भक्ति करन का यहु आरंभा। महल उठै जौ थिर ह्वै थंभा॥ १॥
प्रथमहिं पकरै दृढ़ वैरागा। गहि विश्वास करै सव त्यागा।
जितेन्द्रिय अरु रहै उदासी। अथवा गृह अथवा बनवासी॥ २॥
माया मोह करै नहिं काहू। रहै सवनि सौं वेपरवाहू।
कनक कामिनी छाडै संगा। आशा तृष्णा करै न अंगा॥ ३॥
शील सन्तोप क्षमा उर धारै। धीरज सहित दया प्रतिपारै।
दीन गरीवी रापै पासा। देपै निर्पप भया तमासा॥ ४॥
मान महातम कछू न चाहै। एकै दशा सदा निर्वाहै।
राव रंक की शंक न आनैं। कीरी कुंजर सम करि जानैं॥ ५॥
आतम दृष्टि सकल संसारा। संतनि कौ राषै अधिकारा।
वैर भाव काहू नहिं करई। सतगुरु शब्द हृदै मैं धरई॥ ६॥
सार ग्रहै कूकस सव नाषै। रमिता राम इष्ट सिर राषै।
आंन देव की करै न सेवा। पूजै एक निरंजन देवा॥ ७॥
मन माहैं सव सौंज सु थापै। वाहर के वंधन सव कापै।
शून्य सु मंदिर अधिक अनूपा। ता महिं मूरति जोति स्वरूपा॥ ८॥
सहज सुखासन वैठै स्वामी। आगै सेवक करै गुलामी।

---

(४) निरपप=निरपेक्ष, उदासीन। भया=होकर।

(५) एकै दशा=एक रसता।

(७) कूकस=भुस, छूंछल।

(८) कापै=काटै।

संजम उदक सनान करावै। प्रेम प्रीति के पुष्प चढ़ावै॥ ९॥
चित चन्दन लै चरचै अंगा। ध्यान धूप पेवै ता संगा।
भोजन भाव धरै लै आगै। मनसा वाचा कछू न मांगै॥ १०॥
ज्ञान दीप आरती उतारै। घण्टा अनहद शब्द विचारै।
तन मन सकल समर्पन करई। दीन होइ पुनि पायनि परई॥ ११॥
मग्न होइ नांचै अरु गावै। गदगद रोमांचित हो आवै।
सेवक भाव कदे नहिं चोरै। दिन दिन प्रीति अधिक ही जोरै॥ १२॥
ज्यौं पतिव्रता रहै पति पासा। ऐसैं स्वामी की ढिंग दासा।
काहू दिशा भूलि जो जाई। तौ पतिव्रत जु रहै नहिं भाई॥ १३॥
नैकु न पाव आन दिश धारै। जो पति कहै सु आज्ञा पारै।
सदा अपण्डित सेवा लावै। सोई भक्ति अनन्य कहावै॥ १४॥

दोहा

यह सो भक्ति अलिंगनी, विरला जानै भेव।
भाग्य होइ तौ पाइये, समझावै गुरुदेव॥ १५॥

अथ मंत्रयोग

चौपई

मन्त्रयोग अब सुनियहु भाई। सतगुरु विना न जान्यौं जाई।
जाकै कछू रूप नहिं रेपा। कौन प्रकार जाइ सो देपा॥ १६॥
सब संतनि मिलि कियौ विचारा। नाम विना नहिं लगै पियारा।
कहूं न दीसै ठौर न ठाऊं। ताकौ धरहिं कवन विधि नाऊँ॥ १७॥
अपनैं सुख के कारन दासा। काढ्यौ सोधि सु परम प्रकाशा।

---

(१२) चौरै=छिपावै वा घटावै।

(१३) रहै नहिं भाई—हे भाई (साधु, शिष्य) पतिव्रत धर्म जाता रहै, विगड़ जाय।

(१५) अलिंगनी—अलिंग=ब्रह्म। ब्रह्म सम्बन्धवाली। बारीक, सूक्ष्म, झीणीं।

ताकौ नाम राम तव राख्यौ। पीछैं विविधि भांति वहु भाष्यौ ॥ १८ ॥
सहस्र नाम की कौंन चलावै। नाम अनन्त पार कौ पावै।
राम मन्त्र सवकै सिरमौरा। ताहि न कोई पूजत औरा ॥ १९ ॥
राम मन्त्र सव मंहि तत सारा। और आहि जग के व्यौहारा।
राम मन्त्र तें शिला तिरानी। पाथर कहा तिरै कहुं पांनी ॥ २० ॥
राम मन्त्र के ऐसै कामा। पत्र न उठ्यौ लिषै जव नामा।
राम मन्त्र शिव गौरि सुनायौ। सोई नारद ध्रुवहिं पढायौ ॥ २१ ॥
पुनि प्रह्लाद गह्यौ सो मंत्रा। सही कसौटी काढे जंत्रा।
जरे न मरे पड्ग की धारा। राम मन्त्र के ये उपकारा ॥ २२ ॥
सुगम उपाइ और सदरोजी। राम मन्त्र कौं जौ ले षोजी।
प्रथम श्रवन सुनि गुरु कै पासा। पुनि सो रसना करै अभ्यासा ॥ २३ ॥
ता पीछै हिरदै मैं धारै। जिह्वा रहित मंत्र उच्चारै।
निश दिन मन तासौं रह लागौ। कवहूं नैंक न टूटै धागौ ॥ २४ ॥
पुनि तहां प्रगट होइ रंकारा। आपु हि आपु अखण्डित धारा।
तन मन विसरि जाइ तहां सोई। रोमहि रोम राम धुनि होई ॥ २५ ॥
जैसैं पांनी लौंन मिलावै। ऐसैं ध्वनि महिं सुरति समावै।
राम मन्त्र का इहै प्रकारा। करै आपु से लगै न वारा ॥ २६ ॥

---

(१८) नाम राम=राम नाम ही को मुख्य मन्त्र ईश्वर प्राप्ति के लिये कहा है।

(२०) शिला तिरानी=सेतु वांधने में राम नाम लिख कर नल नील आदि नें शिला पानी पर रक्खी सो डूवी नहीं। पत्र न उठ्यो=पत्ते पर नाम लिख देनें से इच्छानुसार वह इतना भारी हो गया कि उठाये न उठा।

(२२) सही कसोटी=जो जो कष्ट हिरण्याक्ष ने दिये सो सव राम भजन सें सह गये। काढे जंत्रा=यंत्र में होकर मानों निकले, अर्थात् पूर्ण कष्ट भोगे और वाल वांका न हुआ।

(२३) सदरोजी—सच कमाई।

(२५) रंकारा="राम राम राम राम" की लगातार अखण्डित धुनि गुजारते

दोहा

मन्त्र योग इहिं विधि करहु जे कोइ चाहै राम।
सतगुरु के जु प्रसाद तें मन पावै विश्राम ॥ २७ ॥

अथ लययोग

चौपई

अब लययोग कहूं बहु भांती। लय बिन भय व्यापै दिन राती।
लय बिनु जन्म मरन नहिं छूटै। लय बिनु काल आइ कैं कूटै ॥ २८ ॥
लय समान नहिं और उपाई। जो जन रहै राम लय लाई।
निशि वासर ऐसैं लै लागै। आवागमन सकल भ्रम भागै ॥ २९ ॥
जैसैं चातक करैं पुकारा। पीव पीव करि बारंबारा।
ऐसी विधि लय लावै कोई। परम स्थान समावै सोई ॥ ३० ॥
जैसैं कुञ्जी अंड सभारै। पुनि सो कूर्म दृष्टि नहिं टारै।
जो कोऊ लै लावै ऐसी। ताको जरा मृत्यु कहु कैसी ॥ ३१ ॥
जैसैं बालक सर्प कुरंगा। थकित सु होइ नाद कै संगा।
ऐसी लय जो कोई लावै। जोनी संकट बहुरि न आवै ॥ ३२ ॥
जैसैं बरत बांस चढि नटनी। बारंबार करै तहां अटनी।
इत उत कहूं नैंक नहिं हेरै। ऐसी लय जन हरि तन फेरै ॥ ३३ ॥

रहने से—"रां रां रां रां" ऐसी संक्षिप्त आवाज निकलने लगती है जो शनैः शनैः "रं-रं-रं-रं" हो जाती है। इस ही को रंकार कहा है।

(३१) कुञ्जी—कुञ्ज पक्षी की मादिन। जो अपने ध्यान से अण्डे को सेती है। कूर्म=कछुआ और मगर ध्यान से अण्डे को सेते हैं।

(३२) बालक, सर्प, कुरङ्ग=बालक सुन्दर गीत वा कहानी सुन मग्न हो जाता है। सांप सपेरे की पूंगी पर प्रसन्न हो जाता है। कुरङ्ग, हिरण, नाद, बांसुरी आदि में रत हो जाता है। जोनी संकट (योनि+संकट) आवागमन।

(३३) अटनी=अटन, चलना फिरना, चक्कर देना।

जैसें कुम्भ लेइ पनिहारी। सिरि धरि हंसै देइ कर तारी।
सुरति रहै गागरि कै मंझा। यों जन लय लावै दिन संझा॥ ३४॥
जैसें गाइ जँगल कौं धावै। पानी पिवै घास चरि आवै।
चित्त रहै वछरा कै पासा। ऐसी लय लावै हरिदासा॥ ३५॥
ज्यौं जननी गृह काज कराई। पुत्र पिंघूरै पौढत भाई।
उर अपनैं तैं छिन न विसारै। ऐसी लय जन कौं निस्तारै॥ ३६॥
जैसें कीट भृङ्ग की त्रासा। पलटि जाइ यहु वड़ा तमासा।
ऐसी विधि लय लागै जाकी। वारवार वलिहारी ताकी॥ ३७॥
सव प्रकार हरि सौं लै लावै। होइ विदेह परम पद पावै।
छिन छिन सदा करै रस पाना। लय ते होइ ब्रह्म समाना॥ ३८॥

दोहा

यह लय योग अनूप है करै ब्रह्म सामान।
भाग्य विना नहिं पाइये सतगुरु कहै सुजांन॥ ३९॥

अथ चर्चायोग

चौपई

अव यह चर्चायोग वपानौं। मति अनुमान कछू जो जानौं।
निराकार है नित्य स्वरूपं। अचल अभेद्य छांह नहिं धूपं॥ ४०॥

(३४) मंझा=मांझ, मध्य। संझा=रात्रि।

(३६) पिंघूरे=पालने में।

(३७) कीट, भृङ्ग=लट को कुम्हारी मक्खी अपने वनाये मिट्टी के गुञ्जाले में ...लती है और मुंह उसका वन्द कर उसके चारों तरफ गुञ्जारती है तो ऐसा विश्वास ... कि लट की मक्खी हो जाती है। राम नाम की गुञ्जार से मनुष्य की पशुता मिट ...र देवतापन आ जाता है।

(४०) अभेद्य=अच्छेद्य, अखण्ड। छांह नहिं धूपं=न तो कार्य है न कारण, ... आभास है न प्रतिभास।

अव्यक्त पुरुप अगम अपारा। कैसैं कै करिये निर्द्धारा।
आदि अन्त कछु जाइ न जांनी। मध्य चरित्र सु अकथ कहांनी ॥ ४१ ॥
प्रथमहिं कीनौं (है) ओंकारा। तातें भयौ सकल विस्तारा।
जावत यह दीसै ब्रह्मण्डा। सातौं सागर अरु नव खण्डा ॥ ४२ ॥
चंद सूर तारा दिन राती। तीनहुं लोक सृजे वहु भांती।
चारि पांनि करि सृष्टि उपाई। चौराशी लप जाति वनाई ॥ ४३ ॥
ब्रह्मा विष्णु सु सृजे महेशा। गण गंधर्व असुर सुर सेसा।
भूत पिशाच मनुष्य अपारा। पशु पक्षी जल थल संसारा ॥ ४४ ॥
पान पान नाना विधि वानी। भिन्न सुभाव किये कछु जानी।
हलन चलन सव दिया चलाई। सहजैं सव कछु होता जाई ॥ ४५ ॥
आप निरंजन परम प्रकाशा। देपै न्यारा भया तमाशा।

---

(४१) अव्यक्त=अप्रगट, गुप्त। अगम=अगम्य, जो वुद्धिगोचर नहीं है। जाइ न जांनी=जानी नहीं जा सकै। अकथ=अकथनीय, वर्णनातीत।

(४२) ओंकारा—ओंकार सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुआ, फिर ओंकार से सव सृष्टि हुई। यह श्रुति सिद्ध है। जावत=पैदा हुआ और प्रगट हुआ ऐसा प्रतीत हुआ, स्वतः नहीं।

(४३) तीनहुं लोक—पृथ्वी अंतरिक्ष और स्वर्ग। अथवा भूः भुवः स्वः। वा सत, रज, तम गुण प्रधान तीन लोक की त्रिलोकी। चारि पानि=स्वेदज, अंडज जरायुज और उद्भिज। जाति=योनियां।

(४४) गण=देवताओंके समूह।

(४५) नाना विध वाणी—देशों और मनुष्यों के अन्तर से संसार में अनेक भांति की वोलियां। सहजैं=प्रगट में मानो स्वतः विना इच्छा और प्रयास के हो रहा है। कछु जानी=उसकी सृष्टि का पूरा भेद जाना नहीं जा सका।

तांहीं कछु लीपै नहिं छीपै। घट घट मांहिं आपुही दीपै ॥ ४६ ॥
चर्चा करौं कहां लग स्वामी। तुम सब ही के अंतरजामी।
सृष्टि कहत कछु अन्त न आवै। तेरा पार कौन धौं पावै॥ ४७ ॥
तूं जु अगाध अपार सु देवा। निगम नेति जानैं नहिं भेवा।
तेरा को करि सकै वषाना। थकित भये सब संत सुजाना ॥ ४८ ॥
तेरी गति तूं ही पै जानैं। मेरी मति कैसै जु प्रवानैं।
कीरी पर्वत कहा उचावै। उदधि थाह कैसैं करि आवै ॥ ४९ ॥
भक्ति मंत्र लय कीनी चरचा। समझै सन्त करै जो परचा।
एक किये तिहुं लोक वड़ाई। चारयौं की कछु कही न जाई ॥ ५० ॥

दोहा

ये चारयौं अंग भक्ति के नौधा इनहीं मांहिं।
सुन्दर घट महिं कीजिये वाहरि कीजै नांहिं ॥ ५१ ॥

इति श्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्गयोग प्रदीपिकायां भक्तियोग नाम द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

---

(४६) लीपै नहिं छीपै=लिपा छिपा नहीं, नितान्त लिप्त वा गुप्त नहीं है वरन प्राप्य है। दीपै=प्रकाश करै।

(४८) निगम नेति=वेद नेति नेति कहते हैं उनको भी रहस्य ज्ञात नहीं।

(४९) उचावै=सिर पर उठावै।

(५०) परचा=अभ्यास और तल्लीनता से अनुभव कर यथार्थ जानै। एक-किये=इन चार योगों में से एक ही किसी को संसार में इतना गौरव है।

इति द्वितीयोपदेशः

अथ हठयोग नाम तृतीयोपदेशः

चौपई

अवहि कहूं हठयोग सुनाई। आदिनाथ के वन्दौं पाई।
रवि शशि दोऊ एक मिलावै। याही तें हठयोग कहावै॥ १॥
प्रथम सु धर्म देश कहुं ताकै। भलौ राज्य कछु दुषल न जाकै।
तहां जाइ कै मठिका करई। अल्प द्वार अरु छिद्रसु भरई॥ २॥
लिप्त करै चहुं ओर सुगंधा। कूप सहित मठ इहिं विधि वंधा।
तामहिं पैठि करै अभ्यासा। गुरु गमि हठ करि जीतै स्वासा॥३॥
श्रमन करै वकवाद न मांडै। होइ असंग चेष्टा छांडै।
अति उछाह मन माहैं करई। निश्चय रापि धीर्य पुनि धरई॥ ४॥
हठ करि आसन साधै भाई। हठ करि निद्रा तजतौ जाई।
हठ ही करि आहार घटावै। पाटौ पारौ कछू न पावै॥ ५॥
हठ करि तीक्ष्ण कटुक सु त्यागै। सरसों तिल मद मांस न मांगै।
हरित शाक कबहू नहिं पाई। हिंगु ल्हसनु सव देइ वहाई॥ ६॥
देह कष्ट पुनि करै न सोई। प्रात सनान उपासन कोई।

---

(१) आदिनाथ=महादेव, सव योग विद्या और योग विद्या के आचार्यों के आदि गुरु और प्रथम आचार्य।

(२) भलो राज्य······=ऐसे देश में मठ बाँध हठ्योग करै जहां का राज्य शान्त और निष्कण्टक हो।

(३) गुरु गमि=गुरु के उपदेश और ज्ञान के अनुसार क्योंकि योग गुरुगम्य है. विना गुरु के योग दुःसाध्य है।

(४) श्रम न करै······=योगी को परिश्रम करना निषिद्ध है, अधिक वोलना भी अयोग्य है।

(५) निद्रा······=साधन वढ़ जाने पर अल्पाहारी और अल्पशायी होता जाय।

(६ से १२ तक) योगी का आहार-व्यवहार योग ग्रन्थों में (हठयोग प्रदीपिका,-

गोहूं शालि सु करैं अहारा। साठी चांवर अधिक पियारा॥ ७॥
पीर पांड घृत मधु पुनि सांनी। सूंठि पटोल निर्मल अति पांनी।
यहु भोजन सु करै हठ योगी। दिन दिन काया होइ निरोगी॥ ८॥
पट कर्मनि करि देह प्रछालै। नाडी शुद्ध होंहि मल टालै।
विधि करि करैं क्रिया हैं जेती। धौती वस्ती अरु पुनि नेती॥ ९॥
त्राटक निरणै नौली फेरै। कपाल भाथी नीकै हेरै।
ये पट कर्म सिद्धि के दाता। इन तैं सूक्षम होइ सु गाता॥ १०॥
आउं पित्त कफ रहै न कोई। नष सिष लौं वपु निर्मल होई।
सदाभ्यास तें होइ सु छंदा। दिन दिन प्रगटै अति आनंदा॥ ११॥

दोहा

या हठ योग प्रभाव तें, प्रगट होइ आनन्द।
विचरै तीनहुं लोक मैं, जव लग सूरय चन्द॥ १२॥

राजयोग लक्षन

चौपई

राजयोग का कठिन विचारा। सँमुझैं विना न लागै प्यारा।
राजयोग सव ऊपर छाजै। जो साधै सो अधिक विराजै॥ १३॥
राजयोग कीना शिव राई। गौरा संग अनंग न जाई।
घृत नहिं ढरै अग्नि के पासा। राजयोग का वड़ा तमासा॥ १४॥
नाडीचक्र भेद जौ पावै। तौ चढि विंद अपूठौ आवै।
करनी कठिन आहि अति भारी। वशवर्त्तिनी होइ जौ नारी॥ १५॥

शिवस्वरोदय, गोरक्षपद्धति, योगचिन्तामणि, आदि में भली भांति वर्णन है। उसके अनुसार संक्षेप से सुन्दरदासजी ने कहा है। योग के पट्कर्म—"धौतिर्वस्तिस्तथा नेती नौलिका त्राटकस्तथा। कपाल भाती चैतानि पट् कर्माणि समाचरेत्" ॥ अर्थात् नेती, धौती, नौली, त्राटक, कपालभाती, वस्ति। सानी=मिलाकर।

(१५) नाड़ी चक्र=नाड़ी शरीर की जिसका भेदन और पट्चक्र का भेदन। अपूठौ=लौट कर मस्तिष्क में वीर्य, कपाली मुद्रा आदि के साधन से, चढ जावै।

दीसै संग रहै पुनि मुक्ता। अष्ट प्रकार भोग कौ भुक्ता।
पाप पुन्य कछु परसै नांहीं। जैसैं कमल रहै जल मांहीं॥ १६॥
सदा प्रसन्न परम आनन्दा। दिन दिन कला बधै ज्यौं चंदा।
ऐसी भांति रहै पुनि न्यारा। राजयोग का इहै विचारा॥१७॥
राजयोगि के लक्षण ऐसै। महा पुरुष बोलै हैं तैसै।
जाकौं दुख अरु सुख नहिं होई। हर्ष शोक व्यापै नहिं कोई॥ १८॥
जाकौं क्षुधा तृषा न सतावै। निद्रा आलस कबहु न आवै।
शीत उष्ण जाकौं नहिं भाई। जरा न व्यापै काल न पाई॥ १९॥
अग्नि न जरै न बूडै पांनी। राजयोग की यह गति जांनी।
अजर अमर अति वज्र शरीरा। षड्ग धार कछु भिदै न तीरा॥ २०॥
जाकौं सब वैठै ही सूझै। अस सबहिन की भाषा बूझै।
सकल सिद्धि आज्ञा महिं जाकै। नव विधि सदा रहैं ढिग ताकै॥ २१॥
इच्छा परै तहां सो जाई। तीनि लोक महिं अटकन काई।
स्वर्ग जाइ देवनि महिं वैठै। नागलोक पाताल सु पैठै॥ २२॥
मृत्यु लोक महिं आपु छिपावै। कबहुक प्रगट सु होइ दिषावै।
हृदै प्रकाश रहै दिन राती। देषै ज्योति तेल विन बाती॥ २३॥

दोहा

राजयोग के चिन्ह ये जानैं विरला कोइ।
त्रिया संग मति कीजियहु जो ऐसा नहिं होइ॥ २४॥

---

(१६) अष्ट प्रकार भोग=आठ भांति के मैथुन जिनसे ब्रह्मचारी और योगी निरंतर बचे रहते हैं। जैसे कमल जलमें—'पद्म पत्रमिवाम्भसा' (गीता)।

(१७) सदा प्रसन्न=योगी विषयों को जीतने और आत्म दर्शन से तथा ब्रह्मचर्य के बल से सदा प्रसन्न मुख रहता है। यही योगी का एक लक्षण है।

(१८) महापुरुष=शिव, सनकादि, याज्ञवल्क्य, दत्तात्रेय, गोरक्ष, पातंजलि आदि।

(१९) जरा=बुढापा। योगी अमरत्व को पा कर मृत्यु को जीत लेता है।

१८ से २३ तक के छंदों में जो वर्णन है वह पातंजल योग सूत्र के 'विभूतिपाद' के अनुसार है विशेषतः सूत्र ३६ से ५० तक देखिये।

अथ लक्षयोग

चौपई

लक्षयोग है सुगम उपाई। सतगुरु विना न जान्यौं जाई।
रोग न होइ आयु वहु वाधे। लक्षयोग जो कोई साधै॥ २५॥
प्रथम हिं अधो लक्ष कौं जानैं। नाशा अग्र दृष्टि थिर आनैं।
यातें मन पवना थिर होई। अधो लक्ष जो साधै कोई॥ २६॥
ऊर्द्ध लक्ष करै इहिं भांती। दृष्ट्याकाश रहै दिन राती।
विविधि प्रकार होइ उजियारा। गोपि पदारथ दीसहिं सारा॥ २७॥
मध्य लक्ष मन मध्य विचारै। वपु प्रमान कोइ रूप निहारै।
यातें सात्विक उपजै आई। मध्य लक्ष जो साधै भाई॥ २८॥
वाह्य लक्ष और पुनि जांनहुं। पंच तत्व की लक्ष सु ठानहुं।
अग्र नासिका अंगुल चारी। नील वर्ण नभ देषि विचारी॥ २९॥
नासा अग्र अँगुल छह देषै। धूम्र हि वर्ण वायु तत पेषै।
अंगुल अष्ट नासिका आगै। रक्त वर्ण सु वह्नि तत जागै॥ ३०॥
नासा अग्र अंगुल दश तांई। श्वेत वर्ण जल देषि तहांई।
नासा अग्र सु अंगुल वारा। पीत वर्ण भू देषि अपारा॥ ३१॥
वाह्य लक्ष और वहु तेरी। सो जानैं जो पावै सेरी।
सतगुरु कृपा करै जौ कवही। देइ वताइ छिनक मैं सवही॥ ३२॥
अंतर् लक्ष जु सुनहुं प्रकाशा। व्रह्म नाडिका करहु अभ्यासा।

---

(२८) लक्ष=साधन के लिये प्रतीक जिसमें चित्त लगावे। यह अंतर, मध्य और वहिः तीन स्थानिक तीन प्रकार का कहा गया है और भिन्न-भिन्न फल हैं। वपु=शरीर। अपना प्रिय कोई आकार स्थिर करै और उसही पर लक्ष करै।

(२९) पंच तत्व का लक्ष्य=यह स्वरोदय से मिलता साधन है। इससे तत्व सिद्ध होते हैं।

(३२) सेरी=रास्ता, मार्ग।

अष्ट सिद्धि नव निद्धि जहां लौं। टरहिं न कबहूं जिवै तहां लौं ॥ ३३ ॥
बहुरि लक्ष करि मध्य लिलारा। जैसा एक बड़ा होइ तारा।
याके कियें बहुत गुन होई। घट महिं रोग रहै नहिं कोई ॥ ३४ ॥
रक्त वर्ण भ्रमरा उनमाना। लक्ष करै त्रिकुटी जु सथाना।
यातें सब कौं लगै पियारा। बातन देषहिं बारम्बारा ॥ ३५ ॥

दोहा

लक्षयोग जो साधई बैठत ऊठत कोइ।
सतगुरु के जु प्रसाद तें अति सुख पावै सोइ ॥ ३६ ॥

अथ अष्टांगयोग

चौपई

अब यहु कहूं योग अष्टङ्गा। भिन्न भिन्न बहु भांति प्रसंगा।
प्रथमहिं यम अरु नियम विचारै। पकरि टेक दश दशहिं प्रकारै ॥ ३७ ॥
बहुरयौ करै सु आसन सबही। नर्म शरीर होइ पुनि तबही।
तामहिं सारभूत द्वै साधै। सिद्धासन पद्मासन बांधै ॥ ३८ ॥
प्राणायाम करै विधि ऐसी। सतगुरु संधि बतावै जैसी।
इडा नाडि करि पूरै बांई। रेचक करै पिंगला जाई ॥ ३९ ॥
पूरि पिंगला इडा निकारै। द्वादश बार मन्त्र विधि धारै।
द्विगुण त्रिगुण करि प्राणायामं। उत्तम मध्यम कनिष्ट नामं ॥ ४० ॥

---

(३३) ब्रह्म नाड़ी=सुषुम्ना नाड़ी जो ब्रह्म-स्वरूपा कही जाती है और अग्नि-स्वरुपा भी है। इसके सहारे ही कुण्डलिनी चढ़ कर ब्रह्मरंध्र में जा पहुंचती है।

(३४) मध्य लिलारा=ललाट के बीच में। त्राटक से मिलती विधि।

(३५) रक्तवर्ण भ्रमरा=लाल रंग के भौंरे के आकार का लक्ष्य। सिंदूर के रंग का।

(३७ से ५१ तक) अष्टांग योग हठ योग का संक्षेप सार वर्णित है जो 'ज्ञान समुद्र' में विस्तार से कहा है।

कुंभक अष्ट भांति के जानैं। मुद्रा पंच प्रकार सु ठानैं।
वंध तीनि नीकी विधि लावै। और भेद सद्गुरु तें पावै॥ ४१॥
प्रत्याहार पकरि मन रापै। विपै स्वाद कवहूं नहिं चापै।
जैसैं कूरम सकुचै अंगा। ऐसैं इन्द्री रापै संगा॥ ४२॥
पंच धारणा तत्व प्रकाशा। पृथि अप तेज वायु आकाशा।
अक्षर सहित देवतनि ध्यावै। पंच पंच घटिका लय लावै॥ ४३॥
ध्यान सु आहि उभैं जु प्रकारा। एक सगुण इक निर्गुन सारा।
सगुन सु कहिये चक्र स्थानं। निर्गुण रूप आतमा ध्यानं॥ ४४॥
प्रथम चक्र आधार कहावै। कञ्चन वर्ण चतुर दल ध्यावै।
दुतिय चक्र है स्वाधिष्टानं। माणिक्याकृति ध्याय सु जानं॥ ४५॥
नाभिस्थान चक्र मणि पूरा। तरुण अर्क निभ ध्यावहु सूरा।
हृदय स्थान चक्र अनुहातू। विज्जुल प्रभा ध्याय संगातू॥ ४६॥
कंठस्थान सु चक्र विशुद्धा। दीपक प्रभा जु ध्याय प्रवुद्धा।
आज्ञा चक्र नील निभ ध्यावै। भ्रू मध्ये परमेश्वर पावै॥ ४७॥
इति षट चक्र ध्यान जो जानै। तव हिं जाइ निर्गुन पहिचानै।
गगनाकार ध्याय सव ठौरा। प्रभा मरीची जल नहिं औरा॥४८॥
अव समाधि ऐसी विधि करई। जैसैं लौंन नीर महिं गरई।

---

(४१) कुंभक आठ प्रकार=देखो 'ज्ञानसमुद्र' वहां दश प्रकार की मुद्राएं कही गई हैं। संभवतः महामुद्रा आदि पहिली पांच ली होंगी। क्योंकि तीन वंध कह दिये हैं। और विपरीत करणी और वज्रोली को छोड़ दिया हो।

(४३) पंच धारणा—पांचों तत्वों की धारणा का वर्णन भी 'ज्ञानसमुद्र' में है। और यहां भी संक्षेपसे है।

(४५ से ४८ तक) षट्चक्र कथन किये है। यहां उनके रंग भी कहे हैं। देखो 'ज्ञानसमुद' और टिप्पणी। अनुहातू=अनाहत चक्र। संगातू=साथ में।

मन इन्द्री को वृत्य समावै। ताकौ नाम समाधि कहावै॥ ४९॥
जीवात्म परमात्म दोई। सम रस करि जब एकै होई।
बिसरै आप कछू नहिं जानै। ताको नाम समाधि बषानै॥ ५०॥
काल न पाइ शस्त्र नहिं लागै। यंत्र मंत्र ता देषत भागै।
शीत उष्ण कबहूं नहिं होई। परम समाधि कहावै सोई॥ ५१॥

दोहा

यह हठ योग सु चारि विधि, नींकै कह्यौ सुनाइ।
साधनहारे पुरुष की, सुन्दर बलि बलि जाइ॥ ५२॥

इति श्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्गयोग-प्रदीपिकायां
हठयोग नाम तृतीयोपदेशः॥ ३॥

———

(४९) वृत्य=वृत्तियां (मनकी)

(४९ से ५१ तक) समाधि का लक्षण और फल—देखो 'ज्ञानसमुद्र' और टिप्पणी।

अथ सांख्ययोग नाम चतुर्थोपदेशः

चौपई

अब सांख्य सु योग हि सुनि लेहू। पीछै हम को दोष न देहू।
आतम अनआतमा विचारा। याही तें सांख्य सु निर्द्धारा॥ १॥
आतम शुद्ध सु नित्य प्रकाशा। अन आतमा देहका नाशा।
आतम सूक्षम व्यापक मूला। अन आतमा सो पंच सथूला॥ २॥
पृथि अपु तेज वायु अरु गगना। ये पंचौं आतम संलग्ना।
पंचनि में मिलि और विकारा। तिनि यह किया प्रपंच पसारा॥३॥
शब्द सपर्श रूप रस गंधा। तन्मातृका पंच तन बंधा।
श्रोत्रत्वक् चक्षु जिह्वा घ्राणं। ज्ञान सु इन्द्रिय कियौ बषाणं॥ ४॥
वाक्य हि पाणि पाद अरु पायुः। उपस्थ सहित पंच समुझायुः।
कर्म सु इन्द्रिय इन कौ नामा। तत्पर अपनै अपनै कामा॥ ५॥
मन अरु बुद्धि चित्त अहंकारा। चतुष्ट अन्तहकरण विचारा।
तिन कै लक्षण भिन्नै भिन्ना। महापुरुष समुझाये चिन्हा॥ ६॥
संकल्पै अरु विकलप करै। मन सौ लक्षण ऐसौं धरै।
बुद्धि सु लक्षण बोध हिं जांनी। नीकौ बुरौ लेइ पहिचानी॥ ७॥

---

१ से ११ तक सांख्य शास्त्र के सिद्धान्तों को अति संक्षेप से अपने ढंग पर स्वामी ने दरसाया है। इसही को कुछ विस्तार से "ज्ञानसमुद्र" उल्लास चौथे में और हमारी टिप्पणी को देखने से ज्ञात होगा कि सुन्दरदासजी किस प्रकार सांख्य का निरूपण करते हैं। सांख्य को वेदांत से जा जुटाया है। सांख्य के मूल सिद्धांतों में और वेदांत के मूल सिद्धान्तों में जो भेद हैं सो छिपे नहीं। इसही प्रकार सांख्य और योग के मूल सिद्धान्तों में जो भेद हैं सो भी समझ रखने योग्य हैं। यदि इनमें आंतरिक भेद न होता तो पृथक् पृथक् दर्शनशास्त्र क्यों होते। सुन्दरदासजी वेदान्त की झलक सांख्य में भी लाते हैं। और यह बात स्वाभाविक है। आत्म

चेतन लक्षण चित्त अनूपा। अहंकार अभिमान स्वरूपा।
नौ तत्वनि कौ लिंग शरीरा। पंद्रह तत्व स्थूल गंभीरा॥ ८॥
ये चौवीस तत्व वंधानं। भिन्न भिन्न करि कियौ वषानं।
सव कौ प्रेरक कहिये जीवा। सो क्षेत्रज्ञ निरन्तर शीवा॥ ९॥
सकल वियापक अरु सवंगा। दीसै संगी आहि असंगा।
साक्षी रूप सवनि तें न्यारा। ताहि कछू नहिं लिपै विकारा॥१०॥
यह आतम अन आतम निरना। समझै ताकौं जरा न मरना।
सांख्य सु मत याही सौं कहिये। सत गुरु विंना कहौ क्यौं लहिये॥११॥

दोहा

सांख्य योग सो यह कह्यौ, भिन्न हि भिन्न प्रकार।
आतम नित्य स्वरूप है, देह अनित्य विचार॥ १२॥

ज्ञानयोग

चौपई

ज्ञानयोग अव ऐसैं जानैं। कारण अरु कारय पहिचानैं।
कारण आतम आहि अखंडा। कारय भयौ सकल व्रह्मण्डा॥ १३॥
ज्यौं अंकुर तें तरु विस्तारा। वहुत भाँति करि निकसी डारा।

और अनात्म का भेद जो 'विवेक के नाम से वेदान्त में वड़े समारोह से वर्णित है वह सांख्य में वैसा नहीं है। वहां तो प्रकृति विकृति आदि से अधिक काम रहता है जो प्रधान के नाम से वर्णित है। वेदान्त इसका खण्डन करता है।

१३ से २३ तक—ज्ञानयोग का अति संक्षेप से वर्णन है। इस प्रकार का वर्णन "ज्ञानसमुद्र" में भी आया है। सुन्दरदासजी ने ज्ञानयोग, व्रह्मयोग और अद्वैतयोग तीन नाम के प्रकरणों को भी सांख्य के उपदेश ही में वर्णित किया है। इनमें से ज्ञानयोग का सम्वन्ध कुछ न्याय और कुछ उपनिषदों के वेदान्त से मिलता है। सांख्य ईश्वर को कारण नहीं वताता न सृष्टि का लय पुरुष में ही मानता है। "ज्ञानसमुद्र" में स्वामी ने ऐसा वर्णन अद्वैत के पंचम उल्लास में अभावों के निरू-

शापा पत्र और फरफूला। यौं आतमा विश्व कौ मूला ॥ १४ ॥
जैसैं नभ महिं वादर होई। ता महिं लीन भये पुनि सोई।
ऐसैं आतम विश्व विचारा। महापुरुष कीनौ निरधारा ॥ १५ ॥
जैसैं उपजै वायु वघूरा। देपत के दीसहिं पुनि भूरा।
आंटी छूटैं पवन समाही। आतम विश्व भिन्न यौं नाहीं ॥ १६ ॥
ज्यौं पावक तैं दीसत न्यारा। दीप मसाल जु विविध प्रकारा।
ताही मांझ होइ सो लीनां। यौं आतमा विश्व लै चीन्हां ॥ १७ ॥
जैसैं उपजै जलकै संगा। फेन वुद्वुदा और तरंगा।
ताही मांझ लीन सो होई। यौं आतमा विश्व है सोई ॥ १८ ॥
ज्यौं पृथ्वी तैं भाजन भाई। विनसि गये ता मांझ विलाई।
यौं आतम तैं विश्व प्रकाशै। कहन सुनन कौं दूजा भासै ॥ १९ ॥
ज्यौं कञ्चन के भूषन नाना। भिन्न भिन्न करि नांव वषाना।
गारे सर्व एक ही हूवा। यौं आतमा विश्व नहिं जूवा ॥ २० ॥
जैसैं तंतुहि पट लै वाना। वोत प्रोत सो तंतु समाना।
भेद भाव कछु भिन्न न होइ। यौ आतमा विश्व नहिं दोइ ॥ २१ ॥
जैसैं करी सूत की माला। मनिका सूत न होइ निराला।
यौं आतमा विश्व नहिं भेदा। कहत पुकारें प्रगट जु वेदा ॥ २२ ॥
ज्यौं प्रतिमा पाहन मैं दीसै। दूजी वस्तु न विश्वावीसै।
यौं आतमा विश्व नहिं न्यारा। ज्ञानयोग का इहै विचारा ॥ २३ ॥

दोहा

ज्ञानयोग सो जानि है, जाको अनुभव होइ।
कहैं सुनैं कहा होत है, जब लग भासत दोइ ॥ २४ ॥

पर्णो में दरसाया है। सो वहां देखने से समझा जा सकता है। यह ज्ञानयोग का जो स्वामी ने वर्णन किया है यह अत्यन्त सच्चा और परम उत्कृष्ट ज्ञान है। 'आतमा विश्व है सोई' (छन्द १८) 'यौं आतमा विश्व नहिं दोई' (छन्द २१),

ब्रह्मयोग

चौपई

ब्रह्मयोग अब कहिये ऐसा। उपजै संशय रहै न कैसा।
ब्रह्मयोग का कठिन विचारा। अनुभव विना न पावै पारा॥ २५॥
ब्रह्मयोग अति दुर्लभ कहिये। परचा होइ तबहिं तौ लहिये।
ब्रह्मयोग पावै निःकामी। भ्रमत सु फिरै इन्द्रियारामी॥ २६॥
ब्रह्मयोग सोई भल पावै। पहिले सकल साधि करि आवै।
ब्रह्मयोग सब ऊपर सोई। ब्रह्मयोग विन मुक्ति न होई॥ २७॥
ब्रह्मयोग जौ उपजै आई। तौ दूजा भ्रम जाइ विलाई।
होइ अव्यापक कछू न व्यापै। ब्रह्मयोग तब उपजै आपै॥ २८॥
सब संसार आप मैं दिषै। पूरण आपु जगत महिं पेषै।
आपुहि करता आपुहि हरता। आपुहि दाता आपुहि भरता॥ २९॥
आपु ब्रह्म कछु भेद न आनैं। अहं ब्रह्म ऐसैं करि जानैं।
अहं परात्पर अहं अखण्डा। व्यापक अहं सकल ब्रह्मण्डा॥ ३०॥
अहं निरञ्जन अहं अपारा। अहं निरामय अरु निरकारा।
अहं निर्लेप अहं निज रूपं। निर्गुण अहं अहं सु अनूपं॥ ३१॥
अहं सुख रूप अहं सुख राशी। अहं सु अजर अमर अविनाशी।

'कारण आतम आहि अखण्डा'। 'कारय भयो सकल ब्रह्मण्डा' (छन्द १३) इत्यादि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किंचन' इत्यादि उपनिषदों के मन्त्रों के अनुसार परम सत्य ज्ञान का प्रकाशक है। इसमें कुछ संदेह नहीं है।

(२५) कैसा=कैसा भी संशय हो (वही निवृत्त हो जाय)।

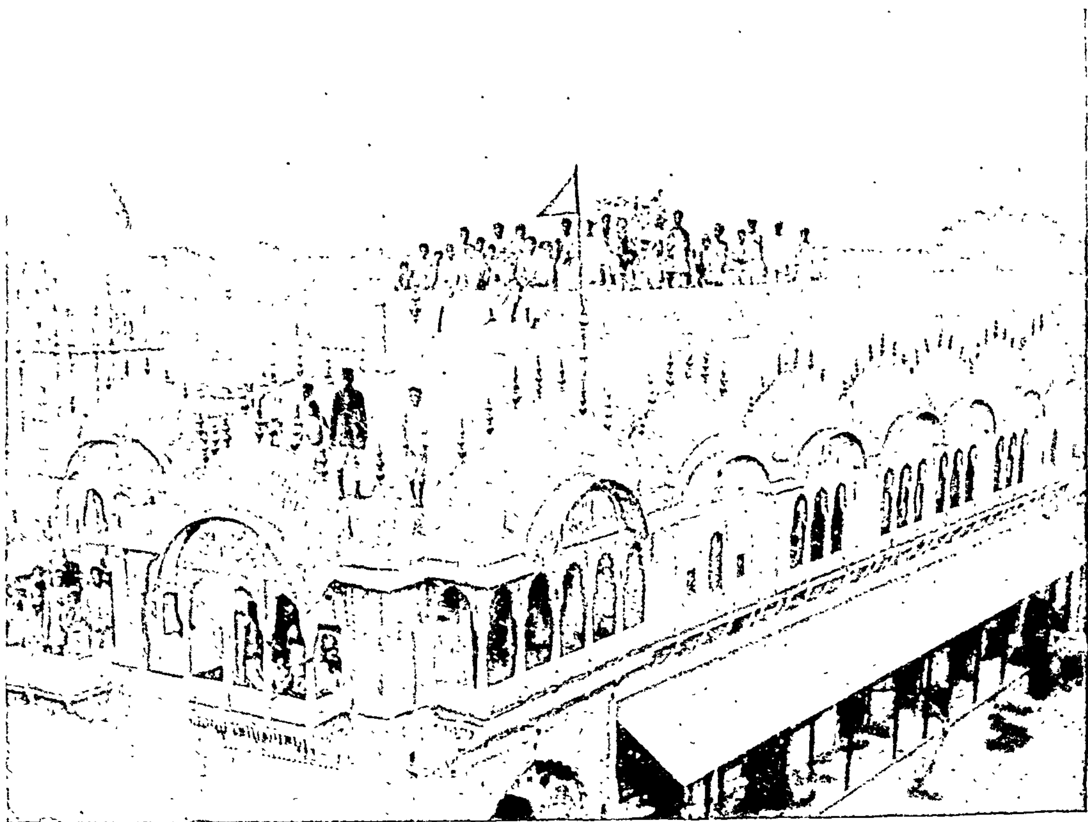
(२६) परचा=परिचय, अनुभव।

(२७) साधि=वेदांत के साधन चतुष्टय भलीभांति साध लेवै।

(३०) "अहं ब्रह्म"—"अहं ब्रह्मास्मि" यह ज्ञान धारण होय।

(३१) निरकारा=निराकार।

फतहपुर का अति प्रसिद्ध श्री लक्ष्मीनाथजी का मन्दिर



इसके पीछे फतहपुर शहर का भी दृश्य है। सुन्दरदासजी "फतहपुरिया" कहाते हैं। प्रसिद्ध भीपजन के लिए

अहं अनन्त अहं अद्वीता । अहं सु अज अव्ययं अभीता ॥ ३२ ॥
अहं अभेद्य अछेद्य अलेपा । अहं अगाध सु अकल अदेपा ।
अहं सदोदित सदा प्रकाशा । साक्षी अहं सर्व महिं वासा ॥ ३३ ॥
अहं शुद्ध साक्षात सु न्यारा । कर्ता अहं सकल संसारा ।
अहं सीव सूक्षम सब सृष्टा । अहं सर्वज्ञ अहं सब द्रष्टा ॥ ३४ ॥
अहं जगनाथ अहं जगदीशा । अहं जगपत्ति अहं जगईशा ।
अहं गोविंद अहं गोपालं । अहं ज्ञानघन अहं निरालं ॥ ३५ ॥

दोहा

अहं परम आनन्द मय अहं ज्योति निज सोइ ।
ब्रह्मयोग ब्रह्महि भया दुविध्या रही न कोइ ॥ ३६ ॥

अद्वैतयोग

चौपई

अब अद्वैत सुनहुं जु प्रकासा । नाहं ना त्वं नों यहु भासा ।
नहिं प्रपंच तहां नहीं पसारा । न तहां सृष्टि न सिरजनहारा ॥ ३७ ॥
न तहां प्रकृति पुरुष नहिं इच्छा । न तहां काल कर्म नहिं वंछा ।
न तहां शून्य अशून्य न मूला । न तहां सूक्षम नहीं सथूला ॥ ३८ ॥
न तहां तत्व अतत्व विभेदा । न तहां वस्तु विवस्तु न वेदा ।
न तहां वर्ण विवर्ण विनाना । न तहां रूप अरूप सथाना ॥ ३९ ॥

---

(३२) अभीता=निर्भय ।

(३३) अकल=निष्कल, क्रिया रहित, निस्पन्द । सदोदित=सदा+उदित—
[illegible]ा सर्वदा प्रकाशवान ।

(३४) सीव=शिव, स्वयं ब्रह्मस्वरूप, कल्याणस्वरूप । सृष्टा=उपजानेवाला ।

(३५) ज्ञानघन=पूर्ण ज्ञानस्वरूप । निरालं=निराला, न्यारा, वा निरालम्ब ।
[illegible] ब्रह्मयोग का वर्णन 'ज्ञानयोग' और 'अद्वैतयोग' के बीच में ठीक ही रक्खा है ।

न तहां व्यापक व्याप्य विशेषा। न तहां रूप नहीं तहां रेषा।
न तहां जोति अजोति न कोई। न तहां एक नहीं तहां दोई॥ ४०॥

न तहां आदि न मध्य न अंता। नहिं प्रतिपाल नहीं तहां हंता।
न तहां शक्ति नहीं तहां शीवा। न तहां जन्म नहीं तहां जीवा॥ ४१॥

न तहां लेप न लेपनहारा। न तहां कर्म नहीं करतारा।
न तहां स्वर्ग न नरक निवासा। न तहां त्रासक न तहां त्रासा॥ ४२॥

न तहां धर्म अधर्म न करता। न तहां पाप न पुण्य न धरता।
न तहां पंडित मूरप कौंना। न तहां वाद विवाद न मौंना॥ ४३॥

न तहां शास्तर वेद पुराना। न तहां होम न यज्ञ विधाना।
न तहां संध्या सूत्र न शापा। न तहां देव मनुष्य न भापा॥ ४४॥

न तहां इष्ट उपासनहारा। न तहां सगुण न निर्गुण सारा।
न तहां सेवक सेव्य न सेवा। न तहां प्रेम न प्रीति न लेवा॥ ४५॥

न तहां भाव नहीं तहां भक्ती। न तहां मोक्ष नहीं तहां मुक्ती।
न तहां जाप्य नहीं तहां जापी। न तहां मन्त्र नहीं लय थापी॥ ४६॥

न तहां साधक सिद्ध समाधी। न तहां योग न युक्त्याराधी।
न तहां मुद्रा वंधन लागै। न तहां कुण्डलिनी नहीं जागै॥ ४७॥

न तहां चक्र न नाडि प्रचारा। न तहां वेध न वेधनहारा।
न तहां लिंग अलिंग न नाशा। न तहां मन बुधि चित्त प्रकाशा॥ ४८॥

न तहां सत-रज-तम गुन तीना। न तहां इन्द्रिय द्वार न कीना।
न तहां जाग्रत स्वप्न न धरिया। न तहां सुपुप्ति न तहां तुरिया॥ ४९॥

मानो यह बिचली मंजिल वा भूमिका है। आत्म-अनात्म का विवेक होने के पीछे ज्ञानयोग का उदय होय। ज्ञानयोग में दृढ़ हो जाने पर यह ब्रह्मयोग की भूमिका प्राप्त हो। इसमें भलीभांति स्थिर हो जाने पर अद्वैतयोग मिलै, तब उस भूमिका वा अवस्था में तुरीयातीत की गति मिलै।

दोहा

ज्ञे ज्ञाता नहिं ज्ञान तहं ध्ये ध्याता नहिं ध्यान।
कहनहार सुन्दर नहीं यह अद्वैत वषान ॥ ५० ॥

इति श्री सुन्दरदास विरचितायां सर्वाङ्गयोग प्रदीपिकायां सांख्ययोग नाम चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

॥ समाप्तोऽयं सर्वांगयोग प्रदीपिका ग्रन्थः ॥

सर्व छन्द संख्या २०३

३७—५० तक—इसी प्रकार का वर्णन "ज्ञानसमुद्र" के पांचवें उल्लास में है। वहां देखिये।

इति सर्वाङ्गयोग की सुन्दरानन्दी टीका समाप्तः

पंचेन्द्रिय चरित्र

अथ पंचेन्द्रिय चरित्र

दोहा

नमस्कार गुरुदेव कौं, कीयौ वुद्धि प्रकास।
इन्द्रिय पंचचरित्र कौं, वरनत सुन्दरदास॥ १ ॥

अथ गज चरित्र

निर्भय वन मैं फिरत गज, मदनमत्त अति अंग।
शंक न आनैं और की, क्रीड़त अपने रंग॥ २ ॥

चौपई ※ (सखी)

गज क्रीड़त अपनै रंगा। वन मैं मदमत्त अनंगा।
वलवन्त महा अधिकारी। गहि तरवर लेइ उपारी॥ ३ ॥
जव दंत भूमि धरि चंपै। तव भार अठारह कंपै।
जहां मन मानै तहां धावै। फल भक्ष करै जो भावै॥ ४ ॥
पुनि पीवै निर्मल नीरा। पैठै जल गहर गंभीरा।
जित ही तित सूंड पसारै। गज नाना भांति पुकारै॥ ५ ॥

※ मूल पुस्तक में 'चौपई' छन्द लिखा है। परन्तु लक्षण से यह 'सखी' छन्द है। इससे सखी भी लिखा गया है। चौपई १६ मात्रा की होती है। यह १४ मात्रा का है। (देखो परिशिष्ट)

नोट—पांचों इंद्रियों के लिये पांच पृथक् पृथक् जीव लक्षित करके उनको मोह किस प्रकार हो कर दुःख व्यापा है यही वर्णन करके पांचों इन्द्रियों की विषय-लोलुपता और उससे अनिष्ट की प्राप्ति का वहुत मनोरंजक और उपदेशदायक प्रवचन कथन किया है। अध्यात्म और शांत रसमें अत्यन्त श्लाघनीय है।

(४) चंपै=टकरा, दवावै।

वैठै जव ही मन मानै। सोवै तव भै नहिं आनै।
पुनि जागै अपनी इच्छा। उठि चलै जहां कौ वंछा॥ ६॥
ऐसी विधि वन में डोलै। कोइ अपनै वलु नहिं तोलै।
कछु मन में धरै न शंका। हम तें कोऊ और न वंका। ७॥
अति गर्व करै अभिमानी। बूझै नहिं अकथ कहानी।
घट मैं अज्ञान अंधेरी। नहिं जानत अपनौ वैरी॥ ८॥
इक मनुप तहां को आवा। तिहिं कुञ्जर देपन पावा।
उन ऐसी वुद्धि विचारी। फिरि आवा नग्र मझारी॥ ९॥
तव कहा नृपति सौं जाई। इक गज वन मांझ रहाई।
हम पकरि इहां लै आवैं। तव कहा वधाई पावैं॥ १०॥
राजा कहि करौं निहाला। तव लोक कुटँव प्रतिपाला।
जौ लै आवै गज भाई। देहौं तव वहुत वधाई॥ ११॥

दोहा

वहुत वधाई देउ तुहि, लै आवै गजराज।
तो तूं मेरे काम कौ, करौं सवनि सिरताज॥ १२॥

चौपई (सखी)

तव कीयौ दूत सलांमू। हम करहिं नृपति कौ कांमू।
कोउ देहु हमारौ संगा। दश वीस जने वल अंगा॥ १३॥
नृप तव ही वेगि वुलाये। तिनि आवत सीस नवाये।
नृप कही सवनि सौं गाथा। तुम जाहु इनौं के साथा॥ १४॥
नृप दूत हि वीरा दीनौ। उनि सिर चढाइ करि लीनौ।
तव विदा होइ घर आवा। कछु मन मैं फिकरि उपावा॥ १५॥
पुनि सुमिरे सिरजनहारा। तुम देउ वुद्धि करतारा।

(७) तोलै=वरावर मानै।

(१२) कामकौ=मतलव का, प्रवीण।

तब बुद्धि विधाता दीनी। कागद की हथिनी कीनी ॥ १६ ॥
विचि कालबूत भरि लीया। कछु अधिक तमाशा कीया।
अति चित्र विचित्र संवारी। सब कीये चिन्ह विचारी ॥ १७ ॥
मनु अबही उठि कैं भागै। मुख बोलत वार न लागै।
उन हुन्नर ऐसा कीनां। इक जीव मांहिं नहिं दीनां ॥ १८ ॥
तब दूत वहां लै जाहीं। गज रहत जहां बन मांहीं।
उनि एक सरोवर पेषा। गज आवत जातें देषा ॥ १९ ॥
तहां पंधक कीना जाई। पतरे तृण लीन छवाई।
तृण ऊपरि मृतिका नाषी। ता ऊपर हथिनी राषी ॥ २० ॥
वे दूत रहे छिप भाई। चुपचाप असारति लाई।
कोउ समय तहाँ गज आवा। जलपान करै नहिं पावा ॥ २१ ॥
त्रिय देषत अति बेहाला। भयौ कामअंध ततकाला।
हथिनी कौ देषि स्वरूपा। शठ जाइ पर्यौ अंध कूपा ॥ २२ ॥

दोहा

धाइ पर्यौ गज कूप मैं, देष्या नहीं विचारि।
काम अन्ध जानै नहीं, कालबूत की नारि ॥ २३ ॥

---

(१७) कालबूत=अन्दर अन्य खेरीज पदार्थ की भरती जैसे घास, चिथड़े आदिक ऊपर से सूरत और ही बनी हुई।

(१८) मनु=मानूं, जैसे तो। हुन्नर=हुनर, तरकीब।

(२०) पंदक=खंदक, गढा, खड्डा। पतरे तृण=थोड़ा फैला हुआ घास। छवाई=ऊपर विछाकर ढक दिया।

(२१) असारति=इशारत, सैन, इशारा आपस में। करै नहिं पावा=करने नहीं पाया, कर नहीं सका।

(२२) त्रिय=यहां हथनी। अंध कूपा=वह खंदक जो हाथी के पकड़नें को खोदा गया था।

(२३) धाई परयो—जलदी चलकर हथनी को लपका तो खड्डे में गिर गया। हथनी भी हाथ न आई, जो भ्रम मात्र था।

चौपई (सखी)

गज कालबूत नहिं जांनों। सुधि वीसरि गई निदानों।
गज कूदि कूदि सिर मारै। भूमी धरि सूंड पछारै॥ २४॥
बल बहुत हि करै गंवारा। निकसन का कतहुं न द्वारा।
तब आये दूत नजीका। देष्या हस्ती अति नीका॥ २५॥
उन संकल तुरत मंगाई। कल ही कल पग पहराई।
दिन दश नहिं दियौ अहारा। बल छीन भया तिहिं बारा॥ २६॥
जब उतरि गई सब रीसा। तब चढे महावत सीसा।
उनि अंकुश कर गहि लीना। कुंजर कै मस्तक दीना॥ २७॥
गज तबहिं कष्ट दुष पावा। अंकुश कै जोर नवावा।
तब पंचक महिं तें काढे। उनि बाहरि कीये ठाढे॥ २८॥
पठये राजा पहं साथी। लै आये घर को हाथी।
उनि किया नजरि सौं मेला। पुनि भये परस्पर भेला॥ २९॥
गज सबहिन सौं पतियाना। बसि भये तबहिं उन जाना।

---

(२४) सुधि वीसरि गई निदानों=अन्त में, निश्चय ही, (कामान्ध होने और विवेक शून्य हो जाने से) सची सुध बुध जाती रही और नहीं समझ सका कि यह हथनी नहीं है केवल धोखा है जिसमें फंस गया। महात्मा साधु जगजीवणजी (दादूजी के शिष्य) इस कालबूत की हथणी पर कहते हैं:—"कालबूत की हस्तनी कुंजर कान्ति हरन्त। कहि जगजीवन रामजी मार झरन्त मरन्त"। (वाणी। माया का अङ्ग साषी २०३)

(२५) कतहू=किधर भी। दूत=पकड़नेवाले, जिन्होंने वह खड्डा खोद जाल बिछाया था।

(२६) कल ही कल=तरकीब और चतुराई से। तिहिं वारा=उतने समय दस दिन के में।

(२७) रीसा=रीस, क्रोध।

(२९) उनि किया नजरि सौं मेला=दूर से ही राजा को हाथी दिखा दिया। अथवा आपस में इशारे से बातचीत कर ली कि अब हाथी राजा के पास ले चलें।

लै चले नृपति के पासा। पूजी दूतनि की आसा॥ ३०॥
जब निकट नगर कै आये। तब सब ही देषन धाये।
गज लिये गये दरवारा। नृप आगै कीन जुहारा॥ ३१॥
नृप देषि पुसी भयौ भारी। दीयौ सिरपाव उतारी।
पुनि द्रव्य दिया ततकाला। नृप कीये दूत पुसाला॥ ३२॥
गज भया काम वसि अंधा। गहि राजदुवारे वंधा।
गज काम अंध नहिं जाना। मानुष कै हाथ विकाना॥ ३३॥
गज वैसाये तैं वैसैं। ज्यौं कहै महावत तैसैं।
अति भूप प्यास दुख देषै। पिछला सुख कतहु न पेषै॥ ३४॥
पुनि सीस धुनै पछितावै। परवसि कछु होइ न पावै।
गज काम अंध गहि कीना। इहिं काम वहुत दुख दीना॥ ३५॥

दोहा

काम दिया दुख वहुत ही, वन तजि वंध्या ग्राम।
गज वपुरे की को कहै, विश्व नचाया काम॥ ३६॥

चौपई (सखी)

यह काम वली हम जाना। ब्रह्मा पुनि काम भुलाना।
इहिं काम रुद्र भरमाया। भिलनी कै पीछे धाया॥ ३७॥

---

(३२) पकड़नेवालों को सिरोपाव वख़शा। पुसाला=खुशहाल, प्रसन्न, संतुष्ट।

(३४) पिछला सुख=पिछली स्वतन्त्रता का सुख, जो जंगल में प्रकृति-माता की गोद में था वह अब इस परतन्त्रता में कहां?

(३५) होइ न आवै=वन नहीं पड़ै।

(३७) भिलनी के पीछे=श्री महादेवजी की वह कथा जब पार्वतीजी ने भीलनी का स्वरुप वनाकर उनकी जितेन्द्रियता की परीक्षा ली थी, क्योंकि वे भीलनी पर मोहित हो गये थे।

इहिं काम पुरन्द्र निपाता। भग सहस किये तिहिं गाता।
इहिं काम चन्द्रमा धाहे। गुरु गृहनी देषि उमाहे॥ ३८॥
इहिं काम पराशर अन्धा। उन धाइ गही मछगन्धा।
इहिं काम शृंगी ऋषि ताये। तिनि नीकी भांति नचाये॥ ३९॥
इहिं काम वालि संघारा। रघुनाथ बांन भरि मारा।
इहिं काम लंकपति पोये। दश सीस पकरिकै रोये॥ ४०॥
इहिं काम विश्वामित्र डूलै। तेऊ देषि उर्वशी भूलै।
इहिं काम कीचक संतापै। गहि भीम पंभ तरि चापै॥ ४१॥
इहिं काम अनेक विगोये। जो अंध निशा मैं सोये।
देवासुर मानुप जेते। गण गंध्रव मारे केते॥ ४२॥
पुनि जीव लक्ष चौराशी। डारी सबहिन कौं पाशी।
इहिं काम लोक त्रय लूटै। कोइ शरण राम के छूटै॥ ४३॥

(३८) पुरंद्र=पुरंदर, इंद्र। गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्या से जार कर्म करने पर इंद्र को शाप हुआ उससे शरीर में सहस्र भग हो गये, चन्द्रमा कलंकी हुआ और अहल्या पाषाणकी शिला हुई। यह कथा महाभारत वा पद्मपुराणादि में प्रसिद्ध है।

(३९) पराशर ऋषि धीवर कन्या योजनगंधापर आसक्त हुये जिसको मत्स्य-गंधा भी कहा है। शृंगीऋषि (ऋष्यशृङ्ग) विभाण्डक मुनिके पुत्र थे। अंगदेशमें अकाल पड़ा जब रोमपाद राजा ने अप्सराओं से इनको वश करा के अपने देशमें बुलाया तब वृष्टि हुई।

(४०) वालि ने सुग्रीवकी स्त्री को अन्याय से अपने घर में रक्खा और वालि ने भाई को निकाल दिया। तब श्री रामचन्द्र ने वालि को मार डाला। रावण ने सीताका हरण किया तब रामचन्द्र द्वारा वह युद्ध में मारा गया और सकुटुम्ब नष्ट हुआ तथा लंका भी गई।

(४१) विश्वामित्र मेनका अप्सरा पर मोहित हुये और शकुंतला पैदा हुई। राजा विराट का साला कीचक द्रौपदी पर बलात्कार करते भीम द्वारा मारा गया। चापै=दबा दिये।

विनु परसत यह दुख होई। परसत कैसी गति लोई।
कह सुन्दरदास विचारा। देषहु गज के व्यवहारा॥ ४४॥

दोहा

गज व्यवहारहिं देषि करि वेगहि तजिये काम।
सुन्दर निशदिन सुमरिये अलष निरंजन राम॥ ४५॥

इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे गज चरित्रः काम इन्द्रिय प्रसङ्ग प्रथमोपदेशः॥ १॥

(४४) लोई=प्राप्त होवै। (महाभारत, रामायण, भागवत, आदि में प्रसिद्ध है।)

अथ भ्रमर चरित्र

दोहा

बैठत भ्रमर कली कली, चंचल चपल सुभाव।
तृप्ति न होइ सुगन्ध तैं, फिरत सु अपने चाव ॥ १ ॥

चौपई (सपी)

अलि फिरत सु अपनै चाऊ। अति चञ्चल चपल सुभाऊ।
पियरे मुख श्याम शरीरा। कहुं रहत नहीं पल थीरा ॥ २ ॥
अलि वहुत पहुप को संगी*। नहिं ऐसो कोई रंगी‡।
अलि वास लेइ उड़ि जाई। कहुं एक ठौर न रहाई ॥ ३ ॥
अलि करत फिरै गुञ्जारा। जाकैं मकरन्द अहारा।
कवहूं कै दैव संजोगा। अलि गयो कंवल कै भोगा ॥ ४ ॥
वह कंवल प्रफुल्लित जोया। मनका धोपा सव पोया।
बैठा अंवुज कै मांहीं। शठ काल सु जानै नांहीं ॥ ५ ॥
तिहिं कंवल प्रेम रवि केरा। रवि अस्त भयो तिहिं वेरा।
तव अंवुज संपुट लावा। अलि माहिं रहे सुख पावा ॥ ६ ॥

---

* वसिया—पाठान्तर।

‡ रसिया—पाठांतर ॥ (भ्र० च० में)

(३) रंगी=रंगीला, रसिक।

नोट—मूल (क) पुस्तक में पाठ—'अलि अनेक पहुप को वसिया। ऐसो कोउ और न रसिया'। पाठांतर से संशोधन किया गया है।

(४) मकरन्द=सुगन्ध।

(५) काल=अपनी मृत्यु।

(६) केरा=का। कमल को सूर्य का प्रेम है। सूर्य रहै तव तक ही खिला रहै।

मन में यौं करत विचारा। सव राति पिऊं रस सारा।
उड़ि जाऊं होइ जव भौरा। रजनी आऊं इहिं ठौरा॥ ७॥
यहु उत्तम ठौर सुवासा। इहं करि हौं सदा विलासा।
हम वैठे पुष्प अनेका। कोउ कंवल समान न एका॥ ८॥
यौं करतें रैनि विहांनी। वूझी नहिं अकथ कहानी।
इक गज आयौ वड़ प्राता। कछु कीया पैल विधाता॥ ९॥
रवि उदै भया सौ नांहीं। जातें संपुट पुलि जाहीं।
संपुट सो रहिगा लागा। अलि भीतरि रह्या अभागा॥ १०॥

दोहा

भीतरि रहिगा कंवल कै, अलि सुगन्ध लपटाइ।
मूरप मर्म न जानिया, काल पहूंच्या आइ॥ ११॥

चौपई (सषी)

जल में पैठा गज धाई। जल पीया वहुत अघाई।
उनमत्त करै गज क्रीड़ा। नहिं जानत पर की पीड़ा॥ १२॥
धरि ऐसैं सूंडि चलाई। कछु नैकु दया नहिं आई।
गहि अंवुज लियौ उपारी। गज पीठ सु अपनी झारी॥ १३॥
पुनि पकरि पांव तरि दीना। अलि मुये मांहि मतिहीना।
जौ वीधे※ जाइ सुवासा। तौ भया भ्रमर का नाशा॥ १४॥

---

(७) भौरा=भोर; प्रातःकाल।

(९) वड़ प्राता=वड़ी फजर ही।

(१३) झारी=दे मारा। झाड़ा।

(१४) वीधे=वींधे, विध गये, फंस गये। सुगंध के मोह में फूल में फंस गये।

※ मूल पुस्तक में 'वीधे' पाठ है। विधे=फँसे (यह अर्थ) और वांधे का स्पष्ट है ही।

इहिं गंध विषै रुचि जाकी। पुनि होइ इहै गति ताकी।
नासा इंद्रिय कै घाले। अलि प्रांण त्यागि कैं चाले॥ १५॥
जिनि गंध विषै मनु दीना। ते भये भ्रमर ज्यौं छीना।
जिन के नासा वसि नाहीं। ते अलि ज्यौं देषि विलाहीं॥ १६॥
ऐसी रुचि कबहुं न करिये। अलि देषि देषि अति डरिये।
यह रुचि हरि नाम भुलावै। यह रुचि सौं काम जगावै॥ १७॥
तब काम तें उपजै क्रोधा। पुनि लोभ मोह बड़ जोधा।
सब ही गुन उपजै आई। जौ रंचक गंध सुहाई॥ १८॥
चौवा चन्दन कर्पूरा। कस्तूरी अग्र हजूरा।
सिर लाये तेल फुलेला। तब कहा राम सौं मेला॥ १९॥
पुनि और अनेक सुगन्धा। ये सकल जीव कौ फंधा।
जन सुन्दर कहि समुझावा। यह भ्रमर चरित्र सुनावा॥ २०॥

दोहा

भ्रमर चरित्र सुनाइया नासा इन्द्रिय जांनि।
सुन्दर यह रुचि त्यागि कैं (हरि) चरन कंवल रुचि आंनि॥ २२॥

॥ इति श्री सुन्दरदास विरचिते भ्रमर चरित्रे नासा इन्द्रिय प्रसंगे द्वितीयोपदेशः॥

---

(१६) विलांहीं=विला जांय, मरि जांय।

(१७) काम जगावैं=कामवासना उपजै। (१८) 'कामते क्रोधा' इत्यादि। यहां गीता अ० २ श्लोक ६२ का स्मरण होता है 'संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधाद् भवति संमोहो……'॥ रंचक=थोड़ी सी, तनकसी। चोवा=एक सुगन्ध द्रव्य जो अगर से बनता है। अग्र=अगर, एक सुगन्ध द्रव्य जो वृक्ष से निकलता है। हजूरा=हाजिर, प्रस्तुत।

अथ मीन चरित्र

दोहा

मीन मग्न जलमैं रहै, जल जीवन जल गेह।
जल विछुरत प्रांणहि तजै, जल सौं अधिक सनेह ॥ १ ॥

सषी

वा जल सौं अधिक सनेहा। जल विनु दुष पावत देहा।
जल ही मैं विचरत भाई। जल ही मैं केलि कराई ॥ २ ॥
कवहूं जल ऊपरि पेलैं। कवहूं गहिरैं तन मेलैं।
छिन में जोजन फिरि आवै। ताकी गति कोउ न पावै ॥ ३ ॥
कछु शंक नहीं मन मांहीं। अपनौं रिपु जानत नाहीं।
नृप साहि चढ़हिं जौ साथा। तउ मीन न आवै हाथा ॥ ४ ॥
इक धीवर वुद्धि उपाई। वनसी की साज वनाई।
लोहे का कंटक कीना। तिहिं ऊपरि आमिष दीना ॥ ५ ॥
लीया लंवा इक डोरा। कंटक वंध्या तिहिं छोरा।
लै आयौ जल के पासा। सव देषहिं लोक तमासा ॥ ६ ॥
जल भीतरि वनसी डारी। तहां आयौ मीन निहारी।

(मीनचरित्र)

(१) मीन=मछली। गेह=घर, निवास।

(३) गहिरैं तन मेलैं=गहिरे जलमें (तन) अपने शरीर अर्थात् अपने आपको ठहरावैं।

(४) नृप साहि चढहि...=राजा वा वादशाह फौजैं ले कर चढैं और पीछा करैं तौ भी पकड़ में नहीं आवै।

(५) वनसी=मछली पकड़ने का वांस। (डोर वा कांटे सहित) आमिष=मांस।

शठ जिह्वा स्वाद भुलाना। उनि कंटक काल न जाना ॥ ७ ॥
गहि मांस लिया मुख माहीं। शठ कंटक देष्या नाहीं।
मुख महिं तैं भीतरि लीला। तब डोरा कर में हीला ॥ ८ ॥
उन धींवर वेगि संभारा। जल महिं तैं बाहरि डारा।
अति छटपटाइ बहुतेरा। कहा होइ काल जब घेरा ॥ ९ ॥
वरि कैऊ धरि धरि पटका। कछु प्राण चले कछु अटका।
तब धींवर घर लै आवा। उनि गली गली दिपलावा ॥ १० ॥
शठ स्वाद माँहि मन दीना। जिह्वा घर घर का कीना।
जिस गहिरै ठौर ठिकाना। सो रसना स्वाद बिकाना ॥ ११ ॥
तब गाहक लै गयौ मोली। कछु दिया गांठि तैं पोली।
उनि खण्ड खण्ड गहि कोना। इहिं स्वाद बहुत दुख दीना ॥ १२ ॥

दोहा

स्वाद दिया दुख बहुत ही, मीन गये तजि प्रान।
आगें और कथा सुनहुं, वनचर स्वाद भुलान ॥ १३ ॥

सपी

वनचर होता वन मांहीं। नाना विधि केलि कराहीं।
कबहूं द्रुम द्रुम परि डोलै। कबहूं मुख टह टह बोलै ॥ १४ ॥
कोउ बाजीगर तहां आवा। मरकट कहुं फंधा लावा ॥
इक गागरि भुइ में गाडी। तिहि मांहि मिठाई छाडी ॥ १५ ॥
पुनि छिद्र कियौ इक आना। मर्कट के हाथ समाना।

---

(८) लीला=निगल गया। हीला=हिला (शिकारी के हाथ तक डोरा हिला)

(१२) गांठितैं खोली=अपने पास से कुछ दिया।

(१४) वनचर=बंदर। द्रुम=वृक्ष। टह टह=बंदर की बोली जब वह मस्ती पर आता है।

(१५) भुइं=पृथ्वी में।

कर पैसे गागरि मांहीं। मूठी तै निकसै नांहीं ॥ १६ ॥
ऐसी विधि फंद पसारा। कछु वाहरि चर्वन डारा।
पुनि आप छिप्या कहुं जाई। मर्कट आवा तहां धाई ॥ १७ ॥
कपि चर्वन मुख में नावा। अति स्वाद लगा सब पावा।
पुनि गागरि में कर मेला। कछु भया दई का षेला ॥ १८ ॥
कपि भीतरि बांधी मूठी। निकसै नहिं बहुरि अपूठी।
कपि गागरि दंतनि खंडै। शठ भीतरि मूठि न छंडै ॥ १९ ॥
अति किचकिचाइ भो सोरा। वाजीगर आवा दोरा।
उनि रसरी गर महिं नाई। तब गागरि फोरि अडाई ॥ २० ॥
वाजीगर घर लै आवा। कर लकुटी लेइ डरावा।
नीकै करि दीनी त्रासा। वाजीगर कीन तमासा ॥ २१ ॥
जैसें कह तैसें नाचै। मानै लकुटी की आंचै।
सब काहू करै सलांमू। कपि ऐसा किया गुलांमू ॥ २२ ॥
जो जिह्वा नहीं संभारा। तौ नाचै घर घर वारा।
यह स्वाद कठिन अति भाई। यह स्वाद सबनि कौं षाई ॥ २३ ॥

दोहा

स्वाद सबनि कौ वसि किया, कहत सयाने दास।
कपि की कहा चलाइये, सुनहुं और उल्लास ॥ २४ ॥

---

(१८) नावा=लाया।

(१९) अपूठी=उलटी, वापस निकालने पर भी नहीं निकलै।

(२०) सोरा=शोर, भयानक शब्द। रसरी=रस्सी। नाई=डाली। अडाई=टाई, गिराई।

(२२) आंचै=ताप, भय, दहशत।

(२४) सयाना=यह शब्द सुन्दरदासजी के छन्दों वा पदों में अनेक स्थलों में आया है। प्रतीत होता है इसके उच्चारण की उनकी मीठी टेव सी थी। अथवा यह कवि का एक पैंक वा अपर नाम हो।

सपी

इक सुनहु और उल्लासा। जो कीया स्वाद तमासा।
शृङ्गी ऋषि वन मैं रहई। जिह्वा इन्द्री दृढ गहई॥ २५॥
जिह्वा इन्द्री नहिं डोलै। पुनि मुख सौं कबहु न बोलै।
वह सूके पत्र चवाई। फल गिरे परे सो पाई॥ २६॥
ऋषि देह नग्न अति छीना। तृण ऊपरि आसन कीना।
ऐसी विधि तप करि धीरा। बैठे सरिता के तीरा॥ २७॥
कहुं मेघ न वरिषै भाई। तब राजहि कथा सुनाई।
जो शृङ्गी ऋषि इहां आवै। तौ मेघ इन्द्र वर्षावै॥ २८॥
तब बोलै नृपति उदासा। शृङ्गी ऋषि वन महिं वासा।
क्यौं आवै नगर मझारी। वह उग्र तपस्याधारी॥ २९॥
गनिका इक नृप पहिं आई। उन वात इहै समझाई।
शृङ्गी ऋषि कौं लै आवै। तब कौन मौज हम पावै॥ ३०॥
पुनि नृपति कहै इहिं वेरा। हौं देऊं धन बहुतेरा।
गनिका जुहार तब कीनौ। नृप बीरा ताकौ दीनौ॥ ३१॥
गनिका अपने घर आई। उनि और सपी समुझाई।
तुम चलहु हमारे संगा। हम जाइ करहिं तप भंगा॥ ३२॥

दोहा

भंग करहिं तप जाइ कैं, तो नृप करहिं सनेहु।
अब सपि विलम न कीजिये, सामग्री सब लेहु॥ ३३॥

---

२५ से अन्त तक जो ऋष्यशृंग मुनि का चरित्र वर्णित है इसका किंचित सार ऊपर प्रथमोपदेश के ३९ वें छन्द की टीका में दे आये हैं। यह चरित्र रामायणादि ग्रन्थों में विस्तार से दिया गया है। उल्लास शब्द से यहां प्रकरण वा आख्यायिका लेना। यह ऋष्यशृंग मुनिका आख्यान प्रथम वाल्मीकि रामायण में—बालकाण्ड नवें सर्ग से ग्यारहवें सर्ग तक—सुमन्त्र सारथी ने राजा दशरथ को कहा

सपी

तव सामग्री सव लीनी। जो नाना विधि उनि कीनी।
चौवा चन्दन कर्पूरा। कस्तूरी केसरि जूरा॥ ३४॥
नाना विधि और सुवासा। लै चली शृंगी ऋषि पासा।
पुनि लिये वहुत पकवाना। लडुवा लपसी रस पाना॥ ३५॥
गनिका वन महिं तव आई। इक नीकी ठौर वनाई।
तुम वैठहु इहां सहेली। हौं जैहौं उहां अकेली॥ ३६॥
देपौं ऋषि की गति जाई। कहि हौं तुम सौं तव आई।
गनिका गई ऋषि कैं भेपा। ऋषि वोलत हुइ उन देषा॥ ३७॥
जव भई क्षुधा की वेरा। ऋषि चहूं दिशा तव हेरा।
पुनि उठे तव हिं ततकाला। जलमें मुख हाथ प्रछाला॥ ३८॥
ऋषि केउक तरवर देपे। फल पत्र सवनि के पेपे।
तव सूके पात चवाये। फल गिरे परे सो पाये॥ ३९॥
ऐसी विधि कीन अहारा। जलपान किया तिहिं वारा।
ऋषि आसन वैठे आई। गनिका ऋषि की गति पाई॥ ४०॥
फिरि आई अपने डेरा। सपियन कौं दीन निवेरा।
वा सवै मरम हम जाना। अव लै जैहौं पकवाना॥ ४१॥
तव सामग्री सव लीनी। सपियन कौं शिक्षा दीनी।
तव लै आई उंहि ठौरा। ऋषि मरम न जानत औरा॥ ४२॥
लडवा द्रुम द्रुम तर डारे। मैदा के पत्र संवारे।
लपसी पत्रनि पर लाई। गनिका सव युक्ति वनाई॥ ४३॥

है। उसका सार यह है कि—'पहिले भगवान् सनत्कुमार ऋषि ने ऋषियों से आपको पुत्र प्राप्ति के विषय में कहा था कि कश्यप ऋषि के विभाण्डक नामक प्रसिद्ध पुत्र है उसके ऋष्यशृंग नाम का पुत्र होगा। उसके पिता उसका पालन पोषण वन ही में करेंगे। अपने पिता के साथ वनचारी ब्राह्मण रह कर सब प्रकार के ब्रह्मचर्य व्रत धारे रहे। उन्होंने संसार का कुछ जाना ही नहीं था। वे अग्नि और पिता की सेवा में

दोहा

युक्ति बनाई जांनि सब, जगै मदन की ताप।
गनिका पाशी रोपि कैं, लागि रही कहुं आप ॥ ४४ ॥

सपी

पुनि आप रही कहुं लागी। ऋृपि कैं जु क्षुधा तब जागी।
ऋृपि चहूं दिशा पुनि जोया। तब उठे हाथ मुंह धोया ॥ ४५ ॥
ऋृपि केउक तरवर ताके। कछु वहुत गिरे फल पाके।
ऋृपि लै मुख मैं छिटकावा। कछु औरै स्वाद जनावा ॥ ४६ ॥
ऋृपि कीयौ वहुत अहारा। अति स्वाद लगा तिहिं वारा।
पुनि पीयौ ऊपरि पांनी। ऋृपि की सुधि सबै हिरानी ॥ ४७ ॥
ऋृपि आये अपनो ठौरा। मन भयौ और को औरा।
अब आसन लगै न भाई। ऋृपि रहे छोडि छिटकाई ॥ ४८ ॥
गनिका तब लाइ सुवासा। फल लै आई ऋृपि पासा।
ऋृपि कौं पूछी कुशलाता। ऋृपि कही परसपर वाता ॥ ४९ ॥

रत रहते थे। दैववशात् अङ्ग देश में रोमपाद राजा के अत्याचारों से दुर्भिक्ष पड़ा किसी उपाय से न मिटा। राजा-प्रजा महा दुःखी हुये। वेदाध्ययन से बढ़े हुये ब्राह्मणों से अकाल निवारण का उपाय पूछा। तो उन लोगों ने कहा कि विभाण्डक के पुत्र ऋष्यश्रृंग को किसी भी प्रकार बुलवाइये। उन वेदपारगामी महातपस्वी ऋष्यश्रृंग को परमादर से सावधानी से बुला कर अपनी कन्या शांता को दे दो। राजा को चिन्ता हुई कि अब ऋष्यश्रृंग कैसे आवैं। पुरोहित और मंत्री को लाने को कहा तो वे नीचे मुख करके रह गये। और कहा कि हम विभाण्डक से डरते हैं सो ऋष्यश्रृंग को नहीं ला सकते। फिर यह उपाय सोचा गया कि चतुर रूपवती वेश्याएं जाकर ऋषि को अपनी चतुराई से लिवा लावें। ऋष्यश्रृंग वनमें रहकर वेद पढने और तपस्या करने के सिवा और कुछ नहीं जानते हैं। अब वेश्याएं सुन्दर सजावट और ठाठ से वन में गई और ऋष्यश्रृंग मुनि के देखने का उपाय करने लगी। वह बड़े

शृङ्गी ऋषि पूछे हरऊ। तुम किंहिं वन मैं तप करऊ।
गनिका कहि फल जहं ऐसे। हम तिंहिं वन मैं तप वैसे ॥ ५० ॥
ऋषि पूछन लागे अंगा। यहु मृतिका कैसे रङ्गा।
गनिका कहि हम जिहिं ठाऊं। तहं मृतिका इहै विछाऊं ॥ ५१ ॥
ऋषिराज हु भाव हमारा। फल करिये अङ्गीकारा।
ऋषि वहुरि कछू फल पाया। गनिका सौं नेह वढाया ॥ ५२ ॥
गनिका तव लागी सेवा। वहु भांति षवावै मेवा।
पुनि जल शीतल अचुवावै। ता मांहि सुगन्ध मिलावै ॥ ५३ ॥
ऋषि अति ही भये प्रसन्ना। तुम निकट रहौ निश दिन्ना।
गनिका नजीक हुइ सूती। घर घालै वहुत निपूती ॥ ५४ ॥
जव लगौ अंग सौं अंगा। ऋषि कीयौ तासौं संगा।
गनिका कीयौ तप छीना। ऋषि भये वहुत आधीना ॥ ५५ ॥

दोहा

वहुत भये आधीन ऋषि, सुधि सव गई हिराइ।
मृतक हि फेरि जिवाइया, गनिका वड़ी वलाइ ॥ ५६ ॥

सषी

गनिका कहि सुनि ऋषि प्यारे। अव आसन चलहु हमारे।
ऋषि चले विलम्व न लाई। गनिका अपनै लै आई ॥ ५७ ॥

भारी धीरजवाले मुनि ऋष्यश्रृंग पिता के लाड़ प्यार से सदा संतुष्ट रहते थे इससे आश्रम से वाहर कहीं भी नहीं जाते थे। उन्होंने जन्म से लेकर अवतक कभी स्त्री नहीं देखी थी और कुछ ही नगर का देखा था। एक दिन ऋष्यश्रृंग खेलते २ वेश्याओं के स्थान तक आ गये। वहां उन स्त्रियों को देखा। वे मधुर स्वर से गाती-गाती ऋषि के पास आ कर कहने लगी कि आप कौन हैं, और क्या काम करते हैं? और इस दूर के निर्जन वन में किस लिये विचरते हैं? ऋषि-पुत्र ने कहा "मेरा नाम ऋष्यश्रृंग है, मैं विभाण्डक का पुत्र हूं जिनका मैं औरस पुत्र हूं। मेरा नाम पृथ्वी

उठि और सपी पग लागी। हम धन्य आज वड़ भागी।
ऋषि आसन दै बैठाये। नाना पकवान पवाये ॥ ५८ ॥
ऋषि देपि सबनि कौ भाऊ। अति रोम रोम सुख पाऊ।
ऋषि कहै इनौं के गाता। ए कौन बृच्छ के पाता ॥ ५९ ॥
गनिका कहि सुनि ऋषि लेहू। हैं अतिथि हमारे येहू।
इन के आश्रम द्रुम आंहीं। फल पत्र वड़े वड़े तांहीं ॥ ६० ॥
अब हम तुम मिलि तहां जइये। इन कौं सुख दैं तब अइये।
ऋषि चले विलंब न कीनौं। गनिका तव कर गहि लीनौं ॥ ६१ ॥
लै आई नगर मझारी। ऋषि देपा दृष्टि पसारी।
ऋषि शौर सुनौ जब कानां। मन मैं उपज्यौ तब ज्ञाना ॥ ६२ ॥
हौं इहां कहां तें आवा। यह स्वाद धका मोहि लावा।
ऋषि सोवत सैं तब जागे। कर झटकि अपूठे भागे ॥ ६३ ॥
पुनि आये ऋषि वन मांही। मन मैं बहुतै पछिताही।
जौ रसना स्वाद हि लागी। तौ पीछै इन्द्री जागी ॥ ६४ ॥
जौ रसना स्वाद न होई। तौ इन्द्री जगै न कोई।
कहै सुन्दरदास सयानां। यह मीन चरित्र वपानां ॥ ६५ ॥

भरमें प्रसिद्ध है। मेरा आश्रम ही है आप वहां चलो आपका सत्कार करूंगा।" वे सब वहां गईं। ऋषिपुत्र ने पाद्यार्घ और फलफूल से सत्कार किया। उन्होंने अंगीकार किया परन्तु विभाण्डक के भय से शीघ्र वहां से चली आने का विचार किया। ऋष्यश्रृंग को बहुत उत्तम-उत्तम पदार्थ खाने को दिये और उनसे आलिंगन किया। ऋष्यश्रृंग ने उन को खाकर समझा कि ये भी एक प्रकार के फल है। फिर वेश्यायें तो वहां से उस दिन चली गईं। ऋषि पुत्र उनके वियोग में दुःखी रहे। दूसरे दिन वे उसी स्थान में पहुंचे। वेश्याएं देख कर बहुत प्रसन्न हुई और ऋषि पुत्र को कहा कि आप हमारे आश्रम में पधारिये वहां नाना प्रकार के स्वादु पदार्थ खाने को हैं। इस पर ऋष्यश्रृंग उनके साथ हो लिये। इस प्रकार वेश्याएं ऋष्यश्रृंग को अंग देश में

दोहा

मीन चरित्र विचारि कैं, स्वाद सबै तजि जीव।
सुन्दर रसना राति दिन, राम नाम रस पीव॥ ६६ ॥

इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे मीन चरित्रे जिह्वा इन्द्रिय प्रसङ्गस्तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

लिवा लाई। वहां आते ही इन्द्र एक साथ जगत् को प्रसन्न करते हुये वर्षा करने लगे। राजा रोमपाद ने उनका बहुत सत्कार किया और अपने रनवास में ले जा कर अपनी कन्या शान्ता से शास्त्र विधि से विवाह कर दिया। फिर ऋष्यशृंग अपनी पत्नी सहित अंग देश ही में रहे ॥ इति ॥—यह आख्यान भागवत, पद्मपुराण आदि में भी आया है। ऋषि को हरिणी-गर्भ-संभूत भी लिखा है। उनके सिर में सींग भी लिखा है।

अथ पतंग चरित्र

दोहा

देह दीप छवि तेल त्रिय, वाती वचन वनाइ।
वदन ज्योति हग देषि कैं, परत पतंगा आइ ॥ १ ॥

सपी

तहं परत पतंगा आई। वह जोति देषि जर जाई।
कछु पान पान नहिं होई। जरि भस्म भये शठ सोई ॥ २ ॥
उनि अन्ध अग्नि नहिं जानी। हग देपत बुद्धि नसानी।
उनि देषि जोति उजियारा। शठ तन मन अपना जारा ॥ ३ ॥
यह दृष्टि प्रवल अति भारी। नहिं रोकी जाइ हत्यारी।
यह दृष्टि करै वेहाला। यह दृष्टि हि चलै कुचाला ॥ ४ ॥
यह दृष्टि चहूँ दिशि धावै। यह दृष्टि हि पता पवावै।
यह दृष्टि जहां जहां अटकै। मन जाइ तहां तहां भटकै ॥ ५ ॥
यह दृष्टि निहारै वामा। यह दृष्टि जगावै कामा।
जव देपै दृष्टि स्वरूपा। तव जाइ परै अन्ध कूपा ॥ ६ ॥
पहिले मन दृष्टि पठावै। तव सकल संदेसा पावै।
जव दृष्टि हि दृष्टि मिलानी। तव अन्तर की मन जानी ॥ ७ ॥
इहि दृष्टि मरम जव पावा। तव पीछे तें मन धावा।
मन के पीछे तन जाई। तव सव ही धर्म नसाई ॥ ८ ॥
को योगि जती संन्यासी। वैरागी और उदासी।
जौ देह जतन करि रापै। तौ दृष्टि जाइ फल चापै ॥ ९ ॥
अति करहिं विप्र आचारा। दे चौका लीक निनारा।

जो सूद्र त्रिया तहां दरसै। तौ दृष्टि जाइ तन परसै ॥ १० ॥
बाजीगर पुतरि नचावै। सब हाव भाव दिखलावै।
कपि झूठ साच करि जाना। शठ देषत दृष्टि भुलाना ॥ ११ ॥

दोहा

सबैं भुलाने दृष्टि में, बुद्धि गई सब नासि।
आगैं अबहिं सुनौ भिया, और दृष्टि की पासि ॥ १२ ॥

सषी

इक और दृष्टि की पासी। कछु कहतैं आवत हाँसी।
कोइ डायनि दृष्टि चलावै। तब बालक अति दुख पावै ॥ १३ ॥
जब डायनि की सुधि चीन्ही। तब पकरि फजीहति कीन्ही।
पहिलैं गहि मूंड मुंडावा। पीछै मुख कालिक लावा ॥ १४ ॥
पुनि पकरि नाक धरि काटी। उनि रक्त जीभ सौं चाटी।
तब लै करि गदह चढाई। पुनि गली बजार फिराई ॥ १५ ॥
लरिका सब पीटहिं तारी। उन पत्थर ढीमनि मारी।
सब ऐसै लोक सुनावैं। जौ करै सु तैसा पावैं ॥ १६ ॥
यह दृष्टि तना फल देषा। उनि दृष्टि सु अपनी पेषा।
यह दृष्टि हि पेल पिलावै। यह दृष्टि हि बहुत भ्रमावै ॥ १७ ॥

---

(१०) निनारा=न्यारा, भिन्न। यदि "लीकनि नारा" ऐसा पढा जाय तो नारा वा न्यारा स्पष्ट ही है। सूद्र त्रिया=शूद्र की स्त्री को देख उस पर वह आचारी ब्राह्मण भी आसक्त हो जाय। इस दृष्टि का इतना प्रभाव है।

(११) बाजीगर बनावटी पुतली बांदरी सी बना कर बन्दर के सामने नचाता है तो उसको बन्दर सच्ची समझ कर उससे प्रेम करता है। यह दृष्टि का दोष है। इस संसार के मिथ्या रूपों को सच्चा मान कर मनुष्य भ्रम में पड़ा हुआ है। सो सावधान रहना चाहिये।

१३ से १६ तक—डाकन की दृष्टि की वार्ता जो कही सो प्रधान प्रसंग

यह दृष्टि हि माया ताकै। यह दृष्टि न कबहूं थाकै।
यह दृष्टि जाइ घर फोरै। यह दृष्टि हि गांठी छोरै॥ १८॥
यह दृष्टि हि महल उठावै। यह दृष्टि हि ठौर बनावै।
यह दृष्टि हि वस्त्र सु पेषै। यह दृष्टि आरसी देषै॥ १९॥
यह सकल दृष्टि की बाजी। सब भूले पंडित काजी।
यह दृष्टि कठिन हम जाना। देवासुर दृष्टि भुलाना॥ २०॥
को सन्त दृष्टि यह आनै। सब ठौर ब्रह्म पहिचानै।
कह सुन्दरदास प्रसंगा। यह देषि चरित्र पतंगा॥ २१॥

दोहा

देषि चरित्र पतंग का, दृष्टि न भूलहु कोइ।
सुन्दर रमिता राम कौं, निशि दिन नैनहुं जोइ॥ २२॥

इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे पतंग चरित्रे चक्षु इन्द्रिय प्रसङ्ग चतुर्थोपदेशः॥ ४॥

चाक्षुष—इन्द्रिय के वशवर्त्ती होने के विषय से पृथक् है। आगे २२ तक अनेक उदाहरण और दृष्टि दोष से अनिष्ट कहे। और ब्रह्म को एक ही दृष्टि सर्वत्र व्यापक जानने का अभ्यास करैं यह फल निकाला है।

अथ मृग चरित्र

दोहा

मृग वन वन विचरत फिरै, चहुं दिशि केलि करन्त।
पेल विराना पाइ कैं, होइ रह्या मैमन्त ॥ १ ॥

सषी

मृग होइ रह्या मैमन्ता। चहुं वोर फिरै विचरन्ता।
मृग हाथ वीस दश डाकै। तृण हालि उठै तव ताकै ॥ २ ॥
कोउ पत्र पवन तें वाजै। मृग चौंकि फरक हो भाजै।
नहिं काहू का पतियारा। मृग निश दिन रहै हुस्यारा ॥ ३ ॥
इक वधिक तहां को आवा। उनि नीकैं नाद वजावा।
मृग नाद सुन्यौ जव काना। सुधि विसरि गई सव आना ॥ ४ ॥
मृग ध्यान धस्या मन लाई। कछु और नहीं सुधि पाई।
मृग थकित भया तिहिं वारा। नहिं तन की कछु संभारा ॥ ५ ॥
तहां अनेक पत्र तृण हालै। मृग अव न ठौर तैं चालै।

(मृग चरित्र में)

(१) मैमन्त=स्वच्छन्द, ढीठ, मदमत्त।

(४) आना=आन, समय। 'सव' शव्द सुधिका विशेषण है। 'सव सुधि' उस समय आनन-फानन भूल गया। यह अर्थ है। या तो तिनके के हिलने पर कूद फांद मार दूर भाग जाता था। या अव मनोहारी नाद सुनते ही मोहित हो गया और सुध बुध विसर गई। शव्द का ऐसा असर पड़ा श्रवणेन्द्रिय पर। यह श्रवण-दोष का उदाहरण है।

मृग ऐसैं रहिगा सीधा। मनु होइ पंक मैं बीधा॥ ६॥
मृग भया नाद वसि सोई। मनु लिष्या चित्र मैं होई।
मृग भया अचेत गंवारा। तब वधिक बान भरि मारा॥ ७॥
मृग नाद विषै मन दीना। इहिं नाद प्राण हति लीना।
मृग पहिलै नहीं संभाला। यह नाद भयौ फिरि काला॥ ८॥
यह नाद विषै मन लावै। सौं मृग ज्यौं नर पछितावै।
इहि नाद विषै जो भीना। सो होइ दिनै दिन छीना॥ ९॥

दोहा

छीजि गया मृग नाद रस, भई जीव की घात।
एक कहत हौं और अब, सुनहु सर्प की बात॥ १०॥

सर्प

इक सर्प रहै बिल मांही। तिहिं कोई जानत नांही।
तहां बाजीगर इक आवा। मधुरै सुर नाद बजावा॥ ११॥
जब सर्प सुन्यौ वहु नादा। कछु श्रवनहु पायौ स्वादा।
नहि निकसत लाई बारा। उनि आवत ही फुफकारा॥ १२॥
फन करि कैं ध्यान लगावा। बाजीगर तबहिं पिलावा।
पढि धूरि सीस पर नाई। पुनि पूंछ हाथ मैं आई॥ १३॥
जब बहुत बार लग पेला। तब पकरि पिटारै मेला।
बाजीगर लेइ सिधारा। नीकैं करि दांत उपारा॥ १४॥
इहि नादहि परवसि कीना। इहिं नाद बहुत दुख दीना।
को नाद न रीझहु भाई। यह नाद बड़ा दुखदाई॥ १५॥

---

(६) पंक में बीधा=कादे में गड़ गया कि स्तब्ध सा हो गया, हिला तक नहीं।

(८) काला=कालस्वरूप, मौत।

यह नाद सुनै सुखवासी। घर तजि क होइ उदासी।
वह जाइ कहूं परदेसा। पुनि करि योगी को भेसा ॥ १६ ॥
कहुं शीत घाम तन छीजै। कहुं पांनी बरसत भीजै।
पुनि कहुं जागै कहुं सोवै। घर यादि करै तव रोवै ॥ १७ ॥
कहुं भूप प्यास अति मरई। ऐसी विधि निश दिन भरई।
विन ज्ञान वहुत दुख पावै। वह संमझि संमझि पछितावै ॥ १८ ॥
जौ नाद विषै मन लाया। तौ नाद तना फल पाया।
यह नाद जीव कौं पासी। यह नाद लोह की गांसी ॥ १९ ॥
जव मुनिजन लावहिं ताली। कवहूं नहिं देह संभाली।
यह नाद श्रवन ह्वै धावै। तव जाइ समाधि जगावै ॥ २० ॥
यह नाद करै मन भंगा। यह नाद करै वहु रंगा।
यहि नाद मांहिं इक ज्ञानं। तिहिं समुझै सन्त सुजानं ॥ २१ ॥
जव नाद सुनावै कोई। तव ब्रह्म विचारै सोई।
कहै सुन्दरदास सन्देशा। यह मृग चरित्र उपदेशा ॥ २२ ॥

---

(१६) सुखवासी=सुख से रहनेवाला पुरुष।

छन्द १६ से १८ तक किसी मर्म्मभेदी कटुवचन से दुःखित वा स्त्री वा शत्रु के दुर्वाक्य से विराग को प्राप्त पुरुष का वर्णन प्रतीत होता है कि जिसको वह असह्य होने से घरवार छोड़, छिटका कर विरक्त हो गया। परन्तु ज्ञान न होने से मन और तनसे तो दुःखी ही रहा। जो गुरु के उपदेश-नाद से विरक्त होता है उसको कायिक, मानसिक क्लेश से दुःख नहीं होता, वह तो उसको सहकर शरीर और मन का धर्म समझ कर निवारण कर देता है। यह अभिप्राय है।

(१९) तना=तणां (मारवाड़ी) करके, का।

(२०) ताली=समाधि।

(२२) इस छन्द में सुन्दरदासजी ने वह रहस्य वता दिया है जिसके साधन से नाद ही में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने लग जाय। कोई भी नाद किसी प्रकार का कानमें

दोहा

मृग चरित्र उपदेश यहु, नाद न रीझहु जांन।
सुन्दर यह रस त्यागि कै, हरि जस सुनिये कांन ॥ २३ ॥

इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे मृग चरित्रे श्रवण-इन्द्रिय प्रसङ्ग पंचमोपदेशः ॥ ५ ॥

पड़े उसमें ब्रह्म का विचार करै। यह समझै कि यह ब्रह्म का ही स्वरूप है। ओंकार की ध्वनि आकाश में व्याप्त है। अतः सर्वत्र व्याप्त है। आकाश एक परम सूक्ष्म तत्व है उसके अन्दर शब्द भरा हुआ है और यावन्मात्र शब्द ओंकार वा ब्रह्म से उत्पन्न है। बस इस प्रकार विचार कर अभ्यास करने से ज्ञान की वृद्धि होती जायगी। इस प्रकार स्थूल नाद से सूक्ष्म नाद में गति होगी और ब्रह्म की प्राप्ति होगी। ज्ञानी का यह दृढ निश्चय होता है—'देह प्राण को धर्म यह शीत उष्ण क्षुत प्यास। ज्ञानी सदा अलिप्त है ज्यूं अलिप्त आकास ॥' (ग्रन्थ पंच प्रभाव दो० २९)।

अथ पंचेन्द्रिय निर्णयं

दोहा

गज अलि मीन पतंग मृग, इक इक दोष विनाश।
जाके तन पंचौं वसै, ताकी कैसी आश ॥ १ ॥

सषी

अव ताकी कैसी आसा। जाके तन पंच निवासा।
पंचौं नर के घट मांहैं। अपना अपना रस चाहैं ॥ २ ॥
ये श्रवन नाद के लोभी। बहु सुनैं त्रिपति नहिं तौभी।
ये नैंन रूप कौं धावैं। कवहू सन्तोष न आवै ॥ ३ ॥
इहिं नासा गन्ध सुहाई। सो कवहू नहीं अघाई।
यह रसना स्वाद भुलानीं। इनि कवहू त्रिपति न मानीं ॥ ४ ॥
अध इन्द्रिय भोग हिं राती। नहिं तृप्त होइ मदमांती।
ये पंचौ पंच अहारा। अपना अपना रस न्यारा ॥ ५ ॥
इन पंचौं जगत नचावा। इन पंच सवनि कौं षावा।
ये पंच प्रवल अति भारी। कोउ सकै न पंच प्रहारी ॥ ६ ॥
ये पंचौं षोवै लाजा। ये पंचौं करहि अकाजा।
ये पंच पंच दिश दौरैं। ये पंच नरक मैं बोरैं ॥ ७ ॥
ये पञ्च करैं मति हीना। ये पञ्च करैं आधीना।
ये पञ्च लगावैं आशा। ये पञ्च करैं घट नाशा ॥ ८ ॥
ये पञ्च विकर्म करावैं। ये पञ्चौं मान घटावैं।
ये पञ्चौं चाहैं गलुका। ये पञ्च करैं पुनि हलुका ॥ ९ ॥

---

(६) न पंच प्रहारी=इन पांचों को मारने को समर्थ नहीं।

(८) घट नाशा=शरीर का नाश करा दें।

(९) गलुका=नरम गास का भोजन। चट्टूपन। हलुका=हलका, हीनता।

ये पञ्च कठिन अति भाई। ये पंचौं देंहि गिराई।
ये पञ्चौं किनहि न फेरा। नर करहिं उपाइ घनेरा॥ १०॥

दोहा

पञ्चौं किनहु न फेरिया, वहुते करहिं उपाइ।
सर्प सिंह गज वसि करैं, इन्द्रिय गही न जाइ॥ ११॥

सषी

ये इन्द्रिय गही न जांहीं। नर सूर बीर वहु आंहीं।
कोउ वाघ पकरि लै आवै। इन्द्रिन का मरम न पावै॥ १२॥
कोउ सर्प गहैं पुनि धाई। इंद्रिन की गति नहिं पाई।
कोउ गज उनमत्त हि फेरैं। चलती इन्द्री नहिं घेरैं॥ १३॥
कोउ रन मैं सनमुख झूझैं। इंद्रिनि की गति नहिं वूझैं।
कोउ पैठहिं दरिया मांहीं। इन्द्रिय वसि करी न जांहीं॥ १४॥
कोउ यन्त्र मन्त्र आराधैं। ये इन्द्रिय कवहु न साधैं।
कोउ मुये मसान जगावैं। जागत इन्द्री न सुलावैं॥ १५॥
कोउ भूत प्रेत वसि कीना। परि इन्द्रिन कै आधीना।
कोउ आगम निगम वषानैं। इंद्रिन की सुधि नहिं जानैं॥ १६॥
कोउ कष्ट करैं अति भारी। ये इन्द्रिय जाहिं न मारी।
कोउ पंच अग्नि पुनि तापैं। इन्द्रिनि के आगै कांपै॥ १७॥
कोउ मेघाडंवर भीजैं। इंद्रिन के घाले छीजैं।
कोउ शीत काल जल पैसैं। इन्द्रिनि के लालच ऐसैं॥ १८॥

---

(१०) फेरा=रोका गति से, वश किया।

(१५) सुलावैं=चंचलता मिटा कर शांत करैं।

(१६) आगम निगम=वेद शास्त्र।

(१७) पंच अग्नि=चारों ओर चार अग्नि जलावैं और पांचवीं सूर्य्य की ताप, यों पंचाग्नि। इनके वीच वैठ कर तप करैं।

(१८) पैसैं=प्रवेश करैं। जल में धस कर जपादि वहुत काल तक करैं। पंच

कोउ धूमपान अति करहीं। इन्द्रिनि के स्वारथ मरहीं।
कौ कन्द मूल पंनि पावैं। पर इन्द्रिय हाथ न आवैं॥ १९ ॥
कोउ रहैं राति दिन ठाढे। इन्द्रिनि के लीये गाढे।
कौ पकरि रहैं मुख मौंना। इन्द्रिय वसि होंहि न कौंना॥ २० ॥
कौ पहुमी भ्रमि कैं आवैं। इन्द्रिनि के प्रेरे धावैं।
कौ सीझैं जाइ हिंवालैं। इन्द्रिय अपनी नहिं गालैं॥ २१ ॥
कौ बूडै झंपा पाती। इन्द्रिय वसि करी न जाती।
कौ मगर भोज तन कीन्हां। इंद्रिय अपनी नहिं चीन्हां॥ २२ ॥
कौ करवत धारहिं सीसा। वसि होंहि न पंच पचीसा।
कौ गरा काटि तन त्यागैं। इंद्रिय सौं आगैं आगैं॥ २३ ॥

ाप में भिन्न-भिन्न पांच प्रकार का तप करना। पवन में, आकाश में वस्त्र रहित नग्न हो कर, पृथ्वी पर वा अन्दर पड़े रहना, पंचाग्नि से तपना, जल में खड़े रह कर जपादि करना। इस प्रकार के अनेक साधु, किसी कामना विशेष से, ऐसे कठिन व्रत ा तप करते हैं। इन को हेय वताया है। 'कर्षयंति शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः' इत्यादि गीता में भी वचन हैं। वेदांत में ज्ञान ही की विशेषता और प्रधानता है।

(१९) खनि=खोदकर।

(२०) कौनां=कोई नहीं, कुछ भी नहीं।

(२१) पहुमी=पृथ्वी (यात्रा व देशाटन संसार का)

(२१) सीझैं=गलैं।

(२२) झंपापाती=पहाड़ पर से गिरैं।

(२२) मगर भोज=मगर मच्छ का अहार होना। अर्थात् उसका भोजन वन जाना, मर जाना जल के जन्तुओं द्वारा।

(२३) करवत=काशी करोत लेना। आगैं आगैं=इंद्रियों ने पीछा नहीं छोड़ा, निवृत्त न हो सकी।

पुनि और उपाइ अनेका। ये इंद्रिय किनहुं न छेका।
ये इंद्रिय अति वलवन्ता। को राषै विरले सन्ता॥ २४॥

दोहा

सन्त सयाने राषि हैं, इन्द्रिय अपनी मारि।
देह दृष्टि सब दूरि करि, पूरन ब्रह्म विचारि॥ २५॥

सपी

ये इंद्रिय कोई मारै। सो पूरन ब्रह्म विचारै।
ये इंद्रिय जिनि वसि कीन्हां। तिनि आतम रामहि चीन्हां॥ २६॥
ये इंद्रिय जिनि गहि फेरा। तिहिं राम कहत है मेरा।
ये इंद्रिय जिनि गहि राषी। ताकी सब वोल हिं साषी॥ २७॥
ये इंद्रिय जाके हाथा। तिहिं सब जन नावै माथा।
ये इंद्रिय दवैं सु सूरा। ये इंद्रिय दवैं सु पूरा॥ २८॥
ये इंद्रिय दवैं सु योगी। ये इंद्रिय दवैं सु भोगी।
ये इंद्रिय दवैं सु ज्ञानी। ये इंद्रिय दवैं सु ध्यानी॥ २९॥
ये इंद्रिय दवैं सु जपिया। ये इंद्रिय दवैं सु तपिया।
ये इंद्रिय दवैं सु यत्ती। ये इंद्रिय दवैं सु सत्ती॥ ३०॥
ये इंद्रिय दवैं सु जैनां। ये इंद्रिय दवैं सु ऐंना।
ये इंद्रिय दवैं सु शैवा। ये इंद्रिय दवैं सु दैवा॥ ३१॥

---

(२४) छेका=काटा, निवारण किया।

(२५) देह दृष्टि=स्थूल दृष्टि।

(२७) तिहिं राम कहत हैं मेरा=उन को 'मेरा राम' अर्थात् मैं उनको वर्णन योग्य समझता हूं, अथवा वे राम समान वा ईश्वर तुल्य कहने योग्य हैं।

(२८) दवैं=दवावैं, वश करैं, जेर करैं।

(३०) छन्द की मात्रा पूर्णार्थ 'जती', 'सती' का ऐसा उच्चारण किया है।

(३१) ऐनां=खास, विशिष्ट पुरुष (हैं)।

(३१) दैवा=वैष्णवजन, वा दैवी पुरुष ।

ये इन्द्रिय दवैं सु ओधू। ये इन्द्रिय दवैं सु वोधू।
ये इन्द्रिय दवैं सु भक्ता। ये इन्द्रिय दवैं सु मुक्ता ॥ ३२ ॥
ये इन्द्रिय दवैं सु पंडित। ये इन्द्रिय दवैं सु मुण्डित।
ये इन्द्रिय दवैं सु शेषा। ये इन्द्रिय दवैं अलेषा ॥ ३३ ॥
ये इन्द्रिय दवैं सु जिंदा। ये इन्द्रिय दवैं सु वंदा।
ये इन्द्रिय दवैं सु पीरा। ये इन्द्रिय दवैं सु मीरा ॥ ३४ ॥
ये इन्द्रिय दवैं सु न्यारा। ये इन्द्रिय दवैं सु प्यारा।
ये इन्द्रिय दवैं सु राता। ये इन्द्रिय दवैं सु मांता ॥ ३५ ॥

दोहा

इन्द्रिय दवैं सु अगम अति, इन्द्रिय दवैं अगाध।
इन्द्रिय दवैं सु जगत गुरु, इन्द्रिय दवैं सु साध ॥ ३६ ॥

सखी

कोउ साधू यह गति जानैं। इन्द्रिय उलटी सव जानैं।
इनि श्रवन सुनैं हरि गाथा। तव श्रवना होहिं सनाथा ॥ ३७ ॥
हरि दरशन कौं दृग जोवैं। ये नैंन सफल तव होवैं।
हरि चरण कँवल रुचि घ्राणं। यह नासा सफल वषाणं ॥ ३८ ॥
इहिं जिह्वा हरि गुन गावैं। तव रसना सफल कहावैं।
इहिं अङ्ग संत कौं भेटैं। तव देह सफल दुष मेटैं ॥ ३९ ॥

---

(३२) ओधू=अवधूत, परमहंस। वोधू=वौद्ध, ज्ञानी।

(३३) मुण्डित=सन्यासी। शेखा=मुसल्मानों के सिद्ध। अलेखा=अलख, जोगी।

(३४) जिंदा=जिंदा जावेद—अमर। वंदा=वंदगाने खुदा, परम भक्त, पार्षद। पीरा=पीर मुर्शद, गुरु। मीरा=अफ़सर, राजा।

(३५) राता=भक्ति में अनुरक्त। मांता=प्रेम में मस्त।

(३७) उलटी=अंतर्मुखी वना दें। इन्द्रिय का विषय अंतरात्मा वना ले।

कहु और न आनैं चीतैं। ऐसी विधि इन्द्रिय जीतैं।
यह इन्द्रिन कौ उपदेशा। कोउ संमुझै साधु संदेशा॥ ४० ॥
यह पँच इंद्रिनि कौ ज्ञाना। कौ संमुझै संत सुजाना।
जो सीपै सुनै रु गावै। सो राम भक्ति फल पावै॥ ४१ ॥
यह संवत सोलहसैका। नवका परि करिये एका।
सावन वदि दशमी भाई। कविवार कह्या संमुझाई॥ ४२ ॥*
हम वुद्धि प्रमान वपाना। को दोप न देहु सयाना।
कहै सुन्दरदास पवित्रा। अति नीकैं पंच चरित्रा॥ ४३ ॥

दोहा

पंच चरित्र वपानिया, निर्मल ज्ञान प्रकास।
जो ये पंचौं वसि करैं, सो प्रभु सुन्दरदास॥ ४४ ॥

इति श्री सुन्दरदास विरचिते पंचेन्द्रिय चरित्रे पंचेन्द्रिय निर्णयो नाम भिन्न-भिन्न प्रसङ्गः पष्टोपदेशः ॥ ६ ॥

॥ समाप्तोऽयं पंचेन्द्रिय चरित्र-ग्रन्थः छन्द संख्या २२१ ॥

---

* संवत् १६९१—श्रावण कृष्णा शुक्रवार को यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। ३८ वर्ष की अवस्था में बनाया था।

सुख समाधि

अथ सुख समाधि

अर्ध सवइया

नमस्कार गुरुदेव हि मेरौ, जिनि यह कीयौ ज्ञान प्रकास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १ ॥
गई गोपि ह्वै भक्ति आगिली, काढे प्रगट पुरातम षास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २ ॥
तक्र त्यागि तत लियौ काढि कैं, भोजन उहै अमृत कौ ग्रास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ३ ॥

सुखसमाधि=इंद्रियोंका निरोध होकर वृत्तियां सिमट कर अंतर्मुखी हो जांय और ज्ञान के प्रकाश में समाधि लगै, परब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान हो उस अवस्था में जो ब्रह्मानन्द का 'सुख' मिलता है उसही के वर्णन की चेष्टा सुन्दरदास जी ने भांति-भांति से की है। यद्यपि 'जिन जाना तिन न वखाना'। पहुंच गये सो फिर क्या कह सकते हैं। तव भी जिज्ञासु की संतुष्टता के निमित्त शिष्य की शांति के अर्थ, यह शैली अवधारित की है।

(१) 'घी सो घौंटि रह्यौ घट भीतर'=यह एक कहने का ढंग है। घी अति सर, चिकना, अमृतोपम, निःस्वादु पदार्थ है। उसके खाने में जो आनन्द आता है वह अकथनीय है वैसे ही ब्रह्मानन्द का सुख कहने में नहीं आता। घी के खाने पर जो आल्हाद आता है उसी का उदाहरण है। सुख सौं सोवै="शतै सुखं कस्तु समाधिनिष्ठः" 'प्रश्नोत्तर रत्न मालिका' में श्री जगद्गुरु शंकराचार्यजी ने कहा है। इस सुख का स्वाद गूंगे के गुड़के समान है। तत्व (ज्ञान) की प्राप्ति और अतत्व (अज्ञान) की हानि ही अपेक्षित है।

(२) गई गोपि व्है=पहिली भक्ति वा साधन की क्रिया तो लुप्त हो गई। प्रगट पुरातम खास=आत्मा में गड़े हुये ज्ञान के प्राचीन संस्कारों का उदय हो गया अर्थात् सत्य ज्ञान ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो गई।

कण हरि नाम सार संग्रह करि, और क्रिया कौ काटै घास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ४ ॥
आतम तत्व विचार निरन्तर, कीयौ सकल कर्म कौ नास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ५ ॥
और कछू उर में नहिं आवै, बातैं कोऊ कहौ पचास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ६ ॥
कौंण करै जप तप तीरथ व्रत, कौंण करै यम नेम उपास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ७ ॥
इडा पिंगला सुषुमन नारी, को अब करै योग अभ्यास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ८ ॥
कोउक दिन लौं आसन साधे, कोउक दिन लौं पैंचे श्वास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ९ ॥
कोउक दिन लौं रजनी जागै, कोउक दिन लौं फिरै उदास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १० ॥
देषे नाना मते ऋषिनि के, देषे वर्णाश्रम संन्यास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ११ ॥
अर्थ धर्म अरु काम जहां लौं, मोक्ष आदि सब छाडी आस।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १२ ॥

---

(४) कण=घास को त्याग कण वा अन्न का ग्रहण।

(५) कर्म का नाश=ज्ञान के उदय में अज्ञान (कर्म) का लोप आप ही हो जाता है।

६ से आगे प्रायः सब छन्दों में अन्य क्रिया और साधनों की, ब्रह्मानन्द मिल जाने पर अनावश्यकता, और मिल जाने पर जो उच्चकोटि की स्थिति होती है उसी का वर्णन किया है। ऐसा वर्णन ही 'सवैया' के अंग 'आत्मानुभव' में है—"क्या कहिये कहते न बनै कछु जो कहिये कहते ही लजइये', 'दीवा करि देखैं सुतो ऐसी नहिं लाइ है'। 'सुन्दर आतम को अनुभो सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैना'। 'सुन्दर

को वकवाद करै काहू सौं, मिथ्या जान्यौं वचन विलास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १३ ॥
कोऊ निंदा करै वहुत विधि, कोऊ करै प्रसंसा हास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १४ ॥
समझ परी संशै नहिं कोऊ, सम करि जाने गृह वनवास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १५ ॥
काहू संग मोह नहिं ममता, देषहि निर्पष भये तमास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १६ ॥
कौन करै या तन की चिंता, जो प्रारब्ध सु आवै पास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १७ ॥
स्वर्ग नरक संशै नहिं कोऊ, आवागवन न जम की त्रास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १८ ॥
कीयौ श्रवन मनन पुनि कीयौ, ता पीछै कीयौ निदिध्यास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ १९ ॥
वार वार अव कासौं कहिये, हूवौ हिरदय कवल विगास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २० ॥
अंधकार मिटि गयौ सहज ही, वाहरि भीतरि भयौ उजास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २१ ॥
देह भिन्न आतमा भिन्न है, लिपै न कवहूं ज्यौं आकाश ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २२ ॥
देह अनित्य उपजि करि विनसै, आतम नित्य अजर अविनाश ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २३ ॥

साक्षात्कार अनुभो प्रकास है' । अथवा 'प्रेमपरा ज्ञानी के अंगम' 'सुन्दर कोऊ न जान सकै यह गोकुल गांवको पैंडो ही न्यारो' वा 'आश्चर्य के अङ्ग' में—'सुन्दर मौन गही सिध साधक कौन कहे उसकी मुख वातैं' ॥ और 'साखी' में 'आत्मानुभव के अङ्ग' में 'सदा रहै आनंद में सुन्दर ब्रह्म समाइ । गूंगा गुड़ कैसे कहैं मनही मन मुसकाइ' ।

जाकौं अनुभव होइ सु जाणैं, पायौ परमानन्द निवास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २४ ॥
कस्तूरी कर्पूर छिपावै, कैसैं छानी रहै सुवास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २५ ॥
जल तैं पाला पाला ते जल, आतम परमातम इकलास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २६ ॥
जैसैं नदी समुद्र समावै, द्वैत भाव तजि ह्वै जलरास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २७ ॥
रज्जु में सर्प सीप में रूपो, मृग तृष्णा जल ज्यौं आभास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २८ ॥
पूरण ब्रह्म अखंड अनावृत, यह निश्चय याही विसवास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ २९ ॥
देपै सुनै सपर्शय वोलै, सूंघै अनाशक्ति अनयास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ३० ॥
जगत क्रिया देपै ऊपर की, आशय पाइ सकै नहिं तास।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ३१ ॥

---

(२६) इकलास=इखलास, मैत्री का संबंध, एकता।

(२७) जलरास=जलका ढेर, यथा समुद्र। 'तज्जलान्' उपनिषद में आया है।

(२८) रज्जु-सर्प, सीप और चांदी तथा मृग-तृष्णा आदि माया के लिये और आत्म-अनात्म के भ्रम सिद्ध करने को दृष्टान्त दिये जाते हैं।

(२९) अनावृत=नहीं बदलने वाला, एक रस, जैसा का तैसा।

(३०) सपर्शय=स्पर्श करैं। यहां इन्द्रियों के व्यापार ज्ञानी के लिये कहे है सो ज्ञानी उनमें लिप्त नहीं होता है। वे क्रियायें होती रहती हैं परन्तु अनायास ही, उन में आसक्ति उसकी नहीं होती है।

(३१) तास=उस (ज्ञानी) की, जो सुख समाधि में मग्न हो रहा है।

सद्गुरु बहुत भांति समझायौ, भक्ति सहित यह ज्ञान उल्हास ।
घी सौ घौंटि रह्यौ घट भीतरि, सुख सौं सोवै सुन्दरदास ॥ ३२ ॥

॥ समाप्तोऽयं सुखसमाधि ग्रन्थः ॥ ३

---

(३२) उल्हास=प्रमोद्गार, उत्साह, आनन्द ।

स्वप्न प्रबोध

अथ स्वप्न प्रबोध

दोहा

स्वप्नै में मेला भयौ, स्वप्नै मांहिं विछोह।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं मोह निर्मोह॥ १॥
स्वप्नै में संग्रह कियौ, स्वप्नै ही में त्याग।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नां कछु राग विराग॥ २॥
स्वप्नै मांहि यती भयौ, स्वप्ने कामी होय।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, कामी यती न कोय॥ ३॥
स्वप्नै में पंडित भयौ, सुपनै मूरष जान।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं ज्ञान अज्ञान॥ ४॥
स्वप्नै में राजा कहै, स्वप्नै ही मैं रंक।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं सांथरौ प्रयंक॥ ५॥
स्वप्नै में हत्या लगी, स्वप्नै न्हायौ गंग।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, पाप न पुन्य प्रसंग॥ ६॥
स्वप्नै सूरा तन कियौ, स्वप्नै चाल्यौ भागि।
दोऊ मिथ्या ह्वै गये, सुन्दर देष्यौ जागि॥ ७॥

स्वप्न प्रबोध ग्रन्थ में स्वप्न का दृष्टांत संसार में घटाया है। स्वप्न के पदार्थ स्वप्न में सच्चे दीखें और जागने पर झूठे। वैसे ही संसार मिथ्या जाना जाता है जब ज्ञान रूपी जाग्रत अवस्था प्राप्त होती है। नामरूपात्मक जगत का प्रपंच तुरीयावस्था में असत्य प्रतीत होता है।

(५) सांथरा=घासका विछौना। पर्यंक=पलंग। न्हायो गंग=गंगा स्नान से पाप-निवृत्ति होती है।

स्वप्नै गयौ प्रदेशमें, स्वप्नै आयौ भौंन।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, आयौ गयौ सु कौंन॥ ८॥
स्वप्नै पोई वस्तु कौं, पाई स्वप्ने मांहिं।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, पाई पोई नांहिं॥ ९॥
स्वप्नैमें भूल्यौ फिर्यौ, स्वप्नै पाई वाट।
सुन्दर जाग्यौ स्वप्न तें, औघट रह्यौ न घाट॥ १०॥
स्वप्नै चौराशी भ्रम्यौ, स्वप्नै जम की मार।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं डूब्यौ नहिं पार॥ ११॥
स्वप्नै में मरिवो करै, स्वप्नै जन्मै आइ।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, को आवै को जाइ॥ १२॥
स्वप्न मांहिं स्वर्गहिं गयौ, स्वप्नै नरकहिं दीन।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, धर्म अधर्म न कीन॥ १३॥
स्वप्नै में दुर्वल भयौ, स्वप्नै माँहिं सपुष्ट।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं रूप नहिं कुष्ट॥ १४॥
स्वप्नै में सुख पाइयौ, स्वप्नै पायो दुःख।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, ना कछु दुःख न सुक्ख॥ १५॥
स्वप्नै में योगी भयौ, स्वप्नै में संन्यास।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, ना घर ना वनवास॥ १६॥
स्वप्नै में लौंका भयौ, स्वप्ने मांहि मथेंन।

(८) भौंन=भवन, घर।

(१०) औघट=टेढा मेढा। यथा—'अवगट घाट बाट सब रोके'। वांका, ऊंच नीचा, अड़बड़।

(११) डूब्यो और पार—इस से संसार में डूबना, लिप्त रहना और पार उतरना निवृत्ति वा छुटकारा पाना प्रयोजन है।

(१३) दीन=दिया, मिला।

(१४) सपुष्ट=सुपुष्ट, मोटा। कुष्ट=कोढ का होना, अर्थात् विरूप वा राजरोगी।

सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, ना कछु लेंन न देंन ॥ १७ ॥
स्वप्नै में ब्राह्मण भयौ, स्वप्नै में शूद्रत्व।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं तम रज नहिं सत्व॥ १८ ॥
स्वप्ने में यम नियम व्रत, स्वप्ने तीरथ दान।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, एक सत्य भगवान॥ १९ ॥
स्वप्नै दौड्यौ द्वारिका, स्वप्नै में जगनाथ।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नां को संग न साथ॥ १९ ॥
स्वप्ने में मथुरा गयौ, स्वप्ने में हरिद्वार।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं वदरी केदार॥ २० ॥
स्वप्ने में काशी मुवौ, स्वप्नै मगहर मांहिं।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, मुक्ति रासिभौ नांहिं॥ २१ ॥
स्वप्ने दुष्कर तप कियौ, स्वप्ने संजम जाप।

---

(१७) लौंका=अध विलोया दही। (राजस्थानी) मथॅन=मथैंनी (जिस पात्र में दही विलोया जाय), विलौनी।

(१८, १९) एक पाद और दूसरे पाद में कहीं-कहीं प्रतिकूल वा विपरीत वाक्य वा वर्णन हैं, कहीं नहीं हैं। अनेक घटनाओं का वृत्तांत जैसा-जैसा मनुष्यों के अनुभवों में होता रहा वा होता रहता है वैसा-वैसा लिखा है। संसार की अवास्तविकता, स्वप्न के तद्वत, प्रदर्शित की गई है। जैसे स्वप्न के अनुभूत पदार्थ जाग्रत में झूठे प्रतीत होते हैं, वैसे ही इस संसार के पदार्थ सत्य ज्ञानोदय रूपी जाग्रत अवस्था हो जाने पर मिथ्या भासते हैं। वह अवस्था केवल ज्ञानियों को ही प्रतीत होती है। प्रकृति में क्षरता (रूपका न ठहरना, अनित्यता) तो थोड़ा विचारने पर साधारणतया प्रगट ही है। परन्तु तात्विक अनुभव में सारा संसार ही त्रिकाल ही में, आद्योपान्त अवस्तु, मिथ्या, भ्रम, झूठा प्रतीत होता है।

(२०) वदरी केदार=श्री वदरीनाथजी तीर्थ, और रास्ते में केदारनाथ का तीर्थ।

(२१) रासिभौ=गदहा। मगहर वा मगध देशमें मरने से गदहा होता है

सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं आसिका न श्राप॥२२॥
स्वप्ने में निन्दा भई, स्वप्ने मांहिं प्रशंस।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं कृष्ण नहिं कंस॥२३॥
स्वप्ने में भारत भयौ, स्वप्नै यादव नास।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, मिथ्या वचन बिलास॥२४॥
स्वप्न सकल संसार है, स्वप्ना तीनौं लोक।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, तब सब जान्यौ फोक॥२५॥

॥ समाप्तोऽयं स्वप्नप्रबोध ग्रन्थः ॥

ऐसा लोक में भ्रम प्रसिद्ध है। जिसको कबीरजी ने मगध देश में मर कर दूर किया।

(२२) आसिका=आशीर्वाद। शुभ मंगल वचन।

(२५) फोक=फोकट, निःसार। फोक एक हलका घास मरुस्थल में होता है।

वेद विचार

अथ वेद विचार

दोहा

परमातमहिं प्रणांम करि, गुरु संतनु सिर नाइ।
'वेद विचार' हिं कहत हौं, सुनहु सकल चित लाइ॥ १ ॥
वेद प्रगट ईश्वर वचन, ता महिं फेर न सार।
भेद लहैं सद्गुरु मिलें, तव कछु करै विचार॥ २ ॥
वेद वहुत विस्तार है, नाना विधिके शव्द।
पढ़तें पार न पाइये, जो वीते वहु अव्द॥ ३ ॥
वेद वृक्ष करि वरनियौ, पत्र पुष्प फल जाहि।
त्रिविधि भांति शोभित सघन, ऐसो तरु यह आहि॥ ४॥
एक वचन है पत्र सम, एक वचन है फूल।
एक वचन है फल समा, समझि देषि मति भूल॥ ५॥
कर्म पत्र करि जानिये, मंत्र पुष्प पहिचानि।
अन्त ज्ञान फल रूप है, कांड तीन यौं जानि॥ ६ ॥

वेद विचार में वेदों के स्वरूप और उनकी शिक्षा और गुणों पर बड़ा मार्मिक विचार स्वामीजी ने किया है। वेद को वृक्ष कह कर उसके त्रिकांड (तीन डालों) को—कर्म, उपासना और ज्ञान—को कह कर, पत्र पुष्प, फल आदि वर्णन कर वृक्ष का रूपक सार्थक किया है।

वेदों की उपयोगिता वहुत वढ़िया रीति से कही है। विधिवाक्य, निषेधवाक्य, रोचक भयानक वाक्य का निर्देश पांडित्यपूर्ण है। वेदरूपी वृक्ष के कर्मरूपी पत्ते हैं, भक्तिरूपी पुष्प हैं, ज्ञानरूपी फल हैं। यह ज्ञान-फल निजस्वरूप, आत्मज्ञान, अपरोक्षानुभूति ज्ञानानन्द है। यही वेद का महा-फल वा प्रयोजन है। सोही वेदान्त-रूप है।

विषई देष्यौ जगत सब, करत अनीति अधर्म।
इन्द्रिय लंपट लालची, तिनहिं कहे विधि कर्म ॥ ७ ॥
निषिध छुड़ावण कारनैं, भय उपजायौ आइ।
मद्य मांस पर त्रिय गवन, इनतें नरक हिं जाइ ॥ ८ ॥
जो सत कर्मनि आचरैं, तिनकौं भाष्यौ स्वर्ग।
नाना विधि सुख भोगवैं, सो जानैं अपवर्ग ॥ ९ ॥
ज्यौं बालक कै रोग ह्वै, औषध कटुक न षात।
मोदक वस्तु दिषाइ कैं, औषध प्यावै मात ॥ १० ॥
यौं सत कर्मनि कौं कहे, निषिध छुडावण काज।
मूरष जाने सत्य करि, सुख स्वर्गापुर राज ॥ ११ ॥
ज्यौं पशु हरहाई करहिं, षेत विराने पांहिं।
षूंटे बांधे आनि सब, छूटि न कतहू जांहिं ॥ १२ ॥
वर्णाश्रम बंधेज करि, अपने अपने धर्म।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पुनि शूद्र दिढाये कर्म ॥ १३ ॥
ब्रह्मचर्य गृहचर्य हू, वानप्रस्थ संन्यास।
अपने अपने धर्म तें, ह्वै स्वर्गापुर वास ॥ १४ ॥
जोग यज्ञ जप तप क्रिया, दान पुन्य निहगर्व।
तीर्थ ब्रत अरु त्याग पुनि, यम नियमादिक सर्व ॥ १५ ॥
जो इन कर्मनि कौं करै, तजै काम आसक्ति।
सकल समर्प्यै ईश्वरहि, तब ही उपजै भक्ति ॥ १६ ॥

---

(८) निषिध=निषिद्ध, वर्जित, हेय।

(९) अपवर्ग=मोक्ष।

(११) स्वर्गापुर=स्वर्गलोक।

(१२) हरहाई=हरे घास वा खेत को स्वच्छन्दता से खाने की टेव, निरंकुशता, आजादी।

कर्म पत्र महिं नीकसै, भक्ति जु पुष्प सुवास।
नवधा विधि निस दिन करै, छांडि कामना आस ॥ १७ ॥
पीछे वाधा कछु नहीं, प्रेम मगन जब होइ।
नवधा ऊ तव थकि रहै, सुधि वुधि रहै न कोइ ॥ १८ ॥
तव ही प्रगटै ज्ञान फल, समझै अपनौं रूप।
चिदानन्द चैतन्य घन, व्यापक ब्रह्म अनूप ॥ १९ ॥
वेद वृक्ष यौं वरनियौ, याही अर्थ विचार।
कर्म पत्र ताकें लगौं, भक्ति पुष्प निरधार ॥ २० ॥
ज्ञान सु फल ऊपर लग्यौ, जाहि कहे वेदान्त।
महा वचन निश्चै धरै, सुन्दर तव ह्वै शान्त ॥ २१ ॥

॥ समाप्तोऽयं वेदविचार ग्रन्थः ॥

---

(२१) महा वचन=महावाक्य, वेदों के सत्यज्ञान के सिखाने वाले सिद्धान्त— 'तत्वमसि', 'अहम्ब्रह्मास्मि', 'खम्ब्रह्म', 'सर्वखल्विदंब्रह्म', 'नेहनानाऽस्ति किंचन'। इत्यादि। सब अद्वैत ज्ञान सिद्धान्त के द्योतक और प्रतिपादक सर्वोत्तम सारभूत सूत्र समान वाक्य हैं जो वेदान्त का सत्य निर्णय समझाते हैं और धारते हैं।

उक्त अनूप

अथ उक्त अनूप

दोहा

नमस्कार गुरुदेव कौं, वार वार कर जोरि।
सुन्दर जिनि प्रभु शब्द सौं, काटै बंधन कोरि ॥ १ ॥
तिनकी आज्ञा पाइ कै, भाषौं ज्ञान अनूप।
अनसमझैं भव जल वहै, समझैं ह्वै चिद्रूप ॥ २ ॥
तमगुण रजगुण सत्वगुण, तिनकौ रचित शरीर।
नित्य मुक्त यह आतमा, भ्रम तें मानत सीर ॥ ३ ॥
तीन गुननि की वृत्ति मंहिं, है थिर चांचल अङ्ग।
ज्यौं प्रतिबिंव हि देषिये, हालत जल के संग ॥ ४ ॥
तीन गुननि की वृत्य जे, तिन मैं तैसौ होइ।
जड सौं मिलि जडवत भयौ, चेतन सत्ता षोइ ॥ ५ ॥
पर धन पर दारा गवन, चोरी हिंसा कृत्य।
निद्रा तन्द्रा आलसं, ये तम गुण की वृत्य ॥ ६ ॥
तामस गुण की वृत्ति मैं, होइ तामसी आप।

उक्त अनूप=अनुपम उक्ति वढ़िया कथन। इस छोटे से सुन्दर ग्रन्थ में सुन्दरदासजी ने माया के तीनों गुणों का प्रभाव और उनसे आत्मा की भिन्नता तथा उन गुणों से किस प्रकार वचकर निर्गुणता को पाना—श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि से दिव्य ज्ञान की प्राप्ति—गुरु का शुभ अवसर और शुद्ध अवस्था में आने पर शिष्य को ज्ञान का परम उपदेश देना और उससे ब्रह्म ज्ञान का होना कहा है।

(१) कोरि=कोटि, वहुत से।

(३) सीर=शराकत, सम्बन्ध।

कष्ट परै जब आइ कैं, मानै दुख संताप ॥ ७ ॥
राजस गुण की वृत्ति ये, कर्म करै बहु भांति ।
सुख चाहै अरु उद्यमी, जक न परै दिन राति ॥ ८ ॥
राजस गुण की वृत्ति तें, सुख दुख आवहिं दोइ ।
ते सब मानैं आपु कौं, क्यौं करि छूटै सोइ ॥ ९ ॥
रज सत मिश्रित वृत्ति ये, जप तप तीरथ दान ।
योग यज्ञ यम नेम व्रत, वंछै स्वर्गस्थान ॥ १० ॥
बहुत भांति की कामना, इन्द्र लोक की चाहि ।
सत्य लोक जो पाइये, तहां बहुत सुख आहि ॥ ११ ॥
कोउक सात्विक शुद्ध ह्वै, सब तें भयौ उदास ।
दुहूं लोक को त्याग करि, मुक्ति हेत जिज्ञास ॥ १२ ॥
उनि सद्गुरु कौं आइ कैं, पूछ्यौ यह सन्देह ।
मैं हौं कौंन कृपाल ह्वै, दूर करौ भ्रम येह ॥ १३ ॥
सद्गुरु देष्यौ शुद्ध अति, मन वच काय सहेत ।
भली भूमि मैं बीजिये, तब वह निपजै षेत ॥ १४ ॥
तासौं सद्गुरु यौं कह्यौ, तू है ब्रह्म अखण्ड ।
चिदानन्द चैतन्य घन, व्यापक सब ब्रह्मण्ड ॥ १५ ॥
उनि वह निश्चय धारि कै, मुक्त भयौ ततकाल ।
देष्यौ रजु कौं रजु तहां, दूरि भयौ भ्रम व्याल ॥ १६ ॥
ज्यौं रवि के उद्योत तें, अन्धकार मिटि जाइ ।

---

(८) जक=निचलापन, जक पड़ना=निचला वा ठाला रहना । (राजस्थानी महावरा है) ।

(१०) वंछै=वांछना करै, इच्छा करै ।

(१२) जिज्ञास=जिज्ञासु, (इस शब्द को कहीं कहीं यकार से भी लिखा है, और हम ने साधुओं को बोलते भी सुना है ।)

(१६) ततकाल=तत्काल, तुरन्त ('क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं

तैसें ज्ञान प्रकाश तें, भ्रम सब गयौ विलाइ ॥ १७ ॥
शुद्ध हृदय सुनि मनन करि, निदिध्यास पुनि होइ ।
याही साधन साधि कैं, भयौ वस्तुमय सोइ ॥ १८ ॥
शुद्ध हृदय में ठाहरै, यह सद्गुरु कौ ज्ञान ।
अजर वस्तु कौं जारि कैं, होइ रहै गलतान ॥ १९ ॥
कनक पात्रमैं रहत है, ज्यौं सिंहनि कौ दुद्ध ।
ज्ञान तहां हीं ठाहरै, हृदय होइ जब शुद्ध ॥ २० ॥
शुद्ध हृदय जाकौ भयौ, उहै कृतारथ जांन ।
सोई जीवन मुक्त है, सुन्दर कहत वषांन ॥ २१ ॥

॥ समाप्तोऽयं उक्त अनूप ग्रन्थः ॥

निगच्छति') वेदान्त और अध्यातम पक्ष में अशुभ कर्मों का अस्त और शुभ कर्मों का उदय होते ही अति शीघ्र उत्तमता और दिव्यता प्रगट होने का आख्यान है। एक सैन में गुरु शिष्य का भला कर देता है, परन्तु वह अवसर पाकर ।

(१७) रज़ु=रज्जु, रस्सी । व्याल=सर्प । यह प्रसिद्ध रज्जु-सर्प का दृष्टान्त है। अर्थात् अज्ञान-जनित भ्रम की निवृत्ति से सत्य ज्ञान का प्रगट होना (उपायों या प्रारब्ध से) ।

(२०) ऐसा प्रसिद्ध है कि सिंहनी का दूध केवल सोने के पात्र ही में ठहर सकता है, अन्य पात्र में से निकल वहता है। इसी प्रकार अधिकारी को ज्ञान मिलता है ।

अद्भुत उपदेश

अथ अद्भुत उपदेश

दोहा

सद्गुरु पायनि परत हौं, मोहि दिषायौ पन्थ।
तातें सुन्दर कहत है, रचि करि 'अद्भुत ग्रन्थ' ॥ १ ॥
परमातम सुत आतमा, ताकौ सुत मन धूत।
मन के सुत ये पंच हैं, पंचौं भये कपूत ॥ २ ॥
रवि समान परमातमा, दर्प्पन बुद्धि हिं जांनि।
तामहिं प्रतिबिंबित भयौ, जीवातम पहिचांनि ॥ ३ ॥
दर्प्पन कौ आभास ज्यौं, कंस पात्र मैं होइ।
त्यौं आतमा प्रकाश मन, देह मध्य है सोइ ॥ ४ ॥

---

(२) परमातम सुत=ब्रह्म से, अंशरूप जीव, (जीव को ईसाई ईश्वर का पुत्र कहते हैं सो भी मिलाया जावे कि सनातन धर्म रूपी समुद्र में सब रत्नों का समावेश है)। उस आत्मा का सकाश वा प्रकाश रूप मन है जो बड़ा धूर्त्त वा चालाक चंचल है। और मन के आभास रूप ये पांचों इन्द्रियां हैं। इन को कपूत इसलिये कहा कि अपने पूर्वज आत्मा परमात्मा से वहिर्मुख होकर विषयों में मन को फंसाया रखते हैं। मानों फिरंद और वागी हैं।

(३) इस में सूर्य और दर्पण का दृष्टान्त दिया है। वेदान्त में जल पूरित घटों का दृष्टान्त प्रसिद्ध ही है।

(४) कंस=कांस्य कांसी का। दर्पण से उतरता कांसी वा कोई भी चमकदार धातु में जो प्रकाश सूर्य्य का होवै सो दर्पण के से हीन होता है और इसी को आत्मा से उतरता मन और उससे उतरता देहमें बताया है। प्रकाश की उत्तरोत्तर कमी रहती है सो प्रगट ही है।

कंस पात्र कौ होइ पुनि, सदन मध्य आभास।
त्यौं मन तें इन्द्रिय सकल, बहु विधि करहिं प्रकास ॥ ५ ॥
परमातम साक्षी रहै, व्यापक सब घट मांहिं।
सदा अखंडित एक रस, लिपै छिपै कछु नांहिं ॥ ६ ॥
ताकौं भूल्यौ आतमा, मन सुत सौं हित दीन।
ताके सुख सुख पावई, ताके दुख दुख कीन ॥ ७ ॥
मन हित बंध्यौ पंच सौं, लपटि गयौ तिनि संग।
पिता आपनौं छाडि कै, रच्यौ सुतनि कै रंग ॥ ८ ॥
ते सुत मद मांते फिरहिं, गनैं न काहू रंच।
लोक वेद मर्याद तजि, निशि दिन करहिं प्रपंच ॥ ९ ॥
पंचौं दौरे पंच दिशि, अपने अपने स्वाद।
नैंनूं राच्यौ रूप सौं, श्रवनूं राच्यौ नाद ॥ १० ॥
नथुवा रच्यौ सुगन्ध सौं, रसनूं रस वंस होइ।
चरमूं सपरश मिलि गयौ, सुधि बुधि रही न कोइ ॥ ११ ॥
सबै ठगनि कै वसि परै, जित पैंचहिं तित जांहिं।
तिन के संग लगे फिरहिं, तृप्ति सु मांनै नांहिं ॥ १२ ॥
श्रवनूं ठगियौ नाद ठगि, राग रंग बहु भांति।
वाद्य गीत वत चातुरी, सुनै दिवस अरु राति ॥ १३ ॥
नैंनूं ठग्यौ सु रूप ठगि, श्वेत रक्त अरु श्याम।
हरित पीत निरपत रहै, निरपत छिन छिन वाम ॥ १४ ॥
नथुवा ठग्यौ सुगन्ध ठगि, नाना विधि के फूल।
चोवा चन्दन अरगजा, सूंघि सूंघि करि भूल ॥ १५ ॥

---

(१२) ठगनि=विषय रूपी चोर जो मन को इन्द्रियों के धकाये से ले जाता हैं।

(१३) बत=बातें, किस्से कहानी।

रसनं पट रस ठगि ठग्यौ, मिष्ट अम्ल अरु षार।
तीक्ष्ण कटुक कषाय पुनि, इनसौं कीयौ प्यार ॥ १६ ॥
चर्मूं ठग्यौ स्पर्श ठगि, कोमल अङ्ग सुहाइ।
कोमल सज्या वस्त्र पुनि, नारी सौं लपटाइ ॥ १७ ॥
ये पंचौं इनि ठगि ठगे, भये दुखित अरु दीन।
पिता सुतनि के सङ्ग ही, सदा रहै आधीन ॥ १८ ॥
कोउक पूरव पुन्य तें, सद्गुरु प्रगटे आइ।
परवस देपि दया करी, श्रवनं लियौ बुलाइ ॥ १९ ॥
तासौं छानै सैं कही, गुप्त मते की वात।
तुमकौं ठग लीये फिरहिं, काहे की कुशलात ॥ २० ॥
ये ठग तुम कौं मारि हैं, लूटि लेहिं सब माल।
चेति सकहु तौ चेतियौ, ठग सु नहीं ये काल ॥ २१ ॥
श्रवनं मानी सत्य करि, गुरु कौं कियौ प्रणाम।
तुम हमरी रक्षा करी, मरि जाते वेकाम ॥ २२ ॥
ज्यौं हम छूटहिं ठगनि तें, सो भाषहु गुरुदेव।
भिन्न भिन्न समुझाइ करि, हमहिं वतावहु भेव ॥ २३ ॥

---

(१६) रसनं=रसना, जिह्वा। पट् रस=छहों रस।

(१७) चर्मं=स्पर्श इन्द्रिय।

(१८) ठगि ठगे=ठगों द्वारा ठगे गये। पिता=मन के लिये कहा गया जैसा कि ऊपर छन्द २, ९ आदि में। सुतनि=पुत्रों के।

(१९) परवस=मन को इन्द्रियों के वश में पड़ा देख कर।

(२०) छानै सैं—(राजस्थानी) चुपचाप से, धीरे से।

(२१) ठग सुनहीं, ये काल=ये ठग हैं सो तुम्हारे काल (मृत्यु) हैं। तुम्हारा नाश करनेवाले हैं।

(२२) वेकाम=वृथा, किसी प्रयोजन बिना ही।

(२३) भेव=भेद, प्रकार, ढंग।

सुनि श्रवनूं तोसौं कहौं, तू है जान प्रवीन।
वे चारौं समुझै नहीं, महा मुग्ध मति हीन ॥ २४ ॥
अव तूं मेरो वचन सुनि, तोहि कहौं संदेश।
निकट पिता कै जाइ करि, कहिये हित उपदेश ॥ २५ ॥
तव श्रवनूं मन पै गयौ, वात कही समुझाइ।
तोहिं नींद क्यौं परत है, चहुं दिशि लागी लाइ ॥ २६ ॥
अहो पिता हम सव ठगे, पंच शत्रु हैं लार।
शव्द स्पर्श जु रूप रस, गंध महा वटमार ॥ २७ ॥
यह सुनि मन कौं भय भयौ, कहनै लागो वोहि।
तैं इह वात कहाँ सुनी, श्रवनूं पूछौं तोहि ॥ २८ ॥
मोहि एक सद्गुरु मिल्या, तिनि यह भाषी आइ।
तुमहिं पंच ठग ठगत हैं, अपने पितहिं सुनाइ ॥ २९ ॥
तातें आयौ कहन कौं, तुमहिं सन्देशा तात।
वै ठग हम कौं मारि हैं, वुरी भई यह वात ॥ ३० ॥
अव उठि विलम न कीजिये, चलि सद्गुरु पैं जांहिं।
वाकै शरनै उवरि हैं, नहिं तर उवरैं नांहिं ॥ ३१ ॥

---

(२४) जान=जानकारी, ज्ञानी, समझदार।

(२४) मुग्ध=मोहांध, मूर्ख।

(२७) लार=(राजस्थानी) साथ। वटमार=लुटेरे (वाट रास्ते में, मारैं लूटैं सो)।

(नोट—यह श्रवण इन्द्रिय का रूपक आख्यायिका के आकार में इतना सुन्दर सरल भाषा में वांधा गया है कि पढ़ते ही मन मुदित होता है। वस्तुतः ज्ञान का प्रारंभ और साधन का श्रीगणेश श्रवण (सुनने) से ही होता है। शिक्षा की सच्ची प्रणाली भी श्रवण से ही है।)

(३१) नहिंतर=(राजस्थानी मुहावरा) नहीं तो।

श्रवनूं मन कौ संग करि, लै आयौ गुरु पास।
करि प्रणाम पाइनि परे, दोऊ परे उदास ॥ ३२ ॥
नीचे ह्वै करि गिरि रहे, चरननि सौं लपटाइ।
हम तौ ठग जानै नहीं, तुम प्रभु दिये बताइ ॥ ३३ ॥
तुम कृपाल गुरु देव जू, तुम ही हो रिछपाल।
शरनि तुम्हारे उबरि हैं, जो तुम होउ दयाल ॥ ३४ ॥
हम कौं वेगि छुड़ाइये, हम सु तुम्हारे दास।
वार वार विनती करहिं, कठिन ठगन की पास ॥ ३५ ॥
दीन वचन जब ही सुने, सद्गुरु भये प्रसन्न।
तुमहिं छुड़ाऊं वेगि दे, भय जिनि आनहु मन्न ॥ ३६ ॥
श्रवनूं मन जिज्ञास अति, देपै सद्गुरु आप।
लग्यौ कहन उपाय तबै, काटन दुख संताप ॥ ३७ ॥

श्रीगुरुरुवाच

यह निश्चय करि धारि मन, तोहि कहौं समुझाइ।
ब जै तेरै चारि सुत, तिनि तूं दियौ वहाइ ॥ ३८ ॥
श्रवनूं तेरौ सुत भलौ, चास्यौं महा कपूत।
वह तोकौं निस्तारि है, उनतें जाइ अऊत ॥ ३९ ॥
अब तूं मेरी सीप सुनि, चारौं निकट बुलाइ।
एक मते मैं रापि सब, अपने अङ्ग लगाइ ॥ ४० ॥

---

(३४) रिछपाल=रक्षक (सम्भवतः 'रिष्टपाल' का अपभ्रंश है। रिष्ट=शुभ, मंगल और रक्षपाल भी प्रयोग मिलता है।

(३५) पास=फांसी।

(३६) वेगि दे=शीघ्र, जलदी। (दे का लगाना राजस्थानी ढंग है। वेगदं भी प्रयोग है)

(३७) जिज्ञास=जिज्ञासा, ज्ञान पाने की उत्कट इच्छा।

(४०) 'एक मतेमें राखि', और 'मिलि बैठहिं इक ठौर'। इस का कहना

तब उन कौं सुधि होइ है, मिलि बैठहिं इक ठौर।
या विधि छूटहिं ठगनि तें, भूलि न भापै और ॥ ४१ ॥
श्रवनूं हरि चरचा सुनें, एक अग्र जब होइ।
तब ही भागै नाद ठग, बंधन रहै न कोइ ॥ ४२ ॥
नैनूं हरि के दरस कौं, लोचहिं वारम्बार।
तब ही भागै रूप ठग, रहै न एक लगार ॥ ४३ ॥
नथवा कौं यह रुचि रहै, हरि चरणांबुज बास।
तब ही भागै गन्ध ठग, रहै न याके पास ॥ ४४ ॥
रसनूं हरि के नाम कौं, रटै अखण्डित जाप।
तब ही भागै स्वाद ठग, कबहु न लागै ताप ॥ ४५ ॥
चरमूं हरि के मिलन की, रुचि रापै सब जाम।
तब ही भागै स्पर्श ठग, सरहिं सकल विधि काम ॥ ४६ ॥
या उपाय करि छूटिये, उपजै सुख सन्तोप।
पुत्र पिता मिलि हरि भजहु, पावहु जीवन मोप ॥ ४७ ॥
तब मन यह उपदेश सुनि, चार्यौं लिये बुलाइ।
नैनूं नथवा रसनुवा, चमूं बैठै आइ ॥ ४८ ॥
ज्यौं उपाइ सद्गुरु कही, त्यौं ही करने लाग।
पुत्र पिता हर्षत भये, जागे पूरब भाग ॥ ४९ ॥

कितना सरल और उत्तम उपाय है कि भिन्न-भिन्न विषयों से इन्द्रियों को रोक कर एकाग्र मन के पास रखना।

(४३) लगार=लगाव, निशानी भी। व्यक्ति, साथ आने वाला कोई।

(४५) ताप=आँच विषय वासना की।

(४७) मोप=मुक्ति।

(४९) जागे पूरब भाग=यह महावरा है और यथार्थ भी है। प्रारब्ध कर्म प्रकाशित होने पर भलाई होती है। पुन्य का उदय प्रधानतः पूर्व संचित कर्मों

तब सद्गुरु इनि सबनि कौं, भाष्यौ निर्मल ज्ञान।
पिता पितामह परपिता, धरिये ताकौ ध्यान ॥ ५० ॥
सब मिलि पूछी सद्गुरु हिं, पिता पितामह कौंन।
ताके आगै परपिता, करहि कवन विधि गौंन ॥ ५१ ॥
तुम पंचनि कौ मन पिता, मन कौ आतम जानि।
आतम पित परमातमा, ताहि लेहु पहिचानि ॥ ५२ ॥
तब पंचौ मन सौं मिले, मन आतम सौं जाइ।
आतम परमातम मिले, ज्यौं जल जलहि समाइ ॥ ५३ ॥
अपने अपने तात सौं, बिछुरत ह्वै गये और।
सद्गुरु आप दया करी, ले पहुंचाये ठौर ॥ ५४ ॥
प्रसरे हू ये शक्ति मय, संकोचे शिव होइ।
सद्गुरु यह उपदेश करि, किये वस्तुमय सोइ ॥ ५५ ॥
जैसैं ही उतपत्ति भई, तैसैं ही लयलीन।
सुन्दर जब सद्गुरु मिले, जो होते सो कीन ॥ ५६ ॥
याके सुनते परम सुख, दुख न रहै लवलेश।
सुन्दर कह्यौ विचारि करि, अद्भुतग्रन्थुपदेश ॥ ५७ ॥

॥ समाप्तोऽयं अद्भुत उपदेश ग्रन्थः ॥

और संस्कारों के होने जगने से फल दिखाते हैं। और यह ईश्वर और शिक्षक गुरु की कृपा के आश्रित और आधीन रहता है।

(५४) ठौर=स्थान, परम गति की प्राप्ति।

(५५) यह सृष्टि का एक नियम तथा योग-विद्या का एक सिद्धान्त है। प्रसारण से विस्तार और आकुंचन से संक्षेप और सिमट कर स्वरूपमें पुनः आ जाना है। शक्ति=प्रकृति और विकृति। शिव=निजस्वरूप, परमात्मतत्व। वस्तुमय= वास्तविकताकी प्राप्ति।

(५६) होते=पहिले थे सो, निजस्वरूप।

(५७) 'अद्भुतग्रन्थुपदेश' यह पाठान्तर 'अद्भुत-ग्रन्थ-उपदेश' का किया गया है।

पंच प्रभाव

अथ पंच प्रभाव

दोहा

गुरु गोविन्द प्रणाम करि, सन्तनि की वलि जात।
सुन्दर सब कौ कान दे, सुनियहु अद्भुत वात ॥ १ ॥
भक्ति सुता परब्रह्म की, आई इहिं संसार।
उत्तम वर ढूंढत फिरै, माया दासी लार ॥ २ ॥
देषे जोगी जंगमा, संन्यासी अरु जैंन।
वे तौ मन मानैं नहीं, करते देषै फैन ॥ ३ ॥
षट दरसन पुनि देषिया, देषे सोफी सेष।
तेऊ मन आये नहीं, देषे सारे भेष ॥ ४ ॥
तब सन्तनि कै ढिग गई, देषे शीतल रूप।
क्षमा दया धृति दीनता, सब गुन अजब अनूप ॥ ५ ॥
तिन के लक्षण देषि कैं, भक्ति सु बोली आप।
तुम ते मन राजी भयौ, मो सौं करहु मिलाप ॥ ६ ॥

---

(१) जैसे ग्रन्थ 'अद्भुत उपदेश' में प्रपिता, पिता, पुत्र का रुपक देकर विषयों पर जय का उपाय वर्णन किया गया। वैसे ही यहां इस 'पंचप्रभाव' ग्रन्थ में पृथक् ढंग से रुपक बांधा है। भक्ति को परमात्मा की प्यारी पुत्री कहा है और माया को उस भक्ति की दासी कहा है। सन्तों को पसन्द कर भक्ति उनसे विवाह करती है तो दासी भी साथ ही जाती है। अब जो सन्त भक्ति ही को परमप्रिया रखते हैं और दासी माया को केवल दासी करके वरतते हैं वे सर्वोत्तम है। और जो दासी से सम्बन्ध करते हैं वे यथा कर्म मध्यम, कनिष्ट और निकृष्ट हैं। जैसे इस काल के राजपूत वा धनी कोई-कोई। अध्यात्म पक्षमें 'भक्ति' का 'दासी' से भेद जो है सो परमात्म दृष्टि और संसार दृष्टि का भेद जानना चाहिये।

भक्ति विवाही सन्तजन, माया दासी संग।
जुवती सौं निश दिन रमैं, दासी सौं नहिं रंग ॥ ७ ॥
जुवती अति प्यारी लगी, तासौं बांधी प्रीति।
दासी कौं आदर नहीं, यह सन्तनि की रीति ॥ ८ ॥
दासी घर कौं काम सब, करती डौलै साथ।
जुवती ऊंचे वंश की, जीमैं ताकै हाथ ॥ ९ ॥
दासी आज्ञा मैं रहै, जहं भेजै तहं जाइ।
ताकौ संग करै नहीं, बरतैं सहज सुभाइ ॥ १० ॥
सो वह उत्तम जानिये, जाकै नीति विचार।
सुन्दर वंदै लोक सब, यह उत्तम ब्यौहार ॥ ११ ॥
जो दासी कौं आदरै, जुवती सौं अति नेह।
दोऊ घर मांहीं रहै, सुनहु विचार सु येह ॥ १२ ॥
दासी कर जीमैं नहीं, बरतैं नाना भाइ।
जाति माँहि नहिं काढिये, सब मिलि बैठै आइ ॥ १३ ॥

---

(७) भक्ति विवाही=संतजन (ज्ञानी पुरुष) परमात्मा की भक्ति ही को अपना परम लक्ष्य कर उससे इतना गाढ़ सम्बन्ध करते हैं जैसे पुरुष अपनी विवाहिता स्त्री से। वही आनन्द की दाता है।

(९) जीमैं—आत्मा की तुष्टि के निमित्त ज्ञान की सामग्री का भोग करैं। ज्ञान ही आत्मा का भोजन है। सन्तों का ज्ञान भक्ति रस से परिपूरित रहा करता है। यही अभिप्राय है।

(छन्द ७ से ११ तक) उत्तम संत वे हैं जो भक्ति ही से काम रखते हैं, माया का निरादर करते हैं और उससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते हैं।

(छन्द १२ से १४ तक) मध्यम संत वे हैं जो थोड़ा माया का भी लगाव रखते हैं और भक्ति का ठीक सम्बन्ध रखते हैं।

जुवती सौं रस रंग अति, दासी सौं नहिं प्यार।
सुन्दर सो मध्यस्थ है, जाकौ यह व्यवहार॥ १४॥
जो दासी के रंग रच्यौ, मन राषै तिहिं पास।
जुवती सौं हलभल करै, कछु इक राषै आस॥ १५॥
दासी कै संग डोलई, मन राख्यौ बिलंबाइ।
जुवती सौं कबहुंक मिलै, लट्ट पट्ट करि जाइ॥ १६॥
कोउक वासौं मिलि चलै, कोउक राणै शंक।
सुन्दर यह सु कनिष्ट गति, अंक लगाई पंक॥ १७॥
जो दासी सौं मिलि गयौ, अंग अंग लपटाइ।
जीमैं लागो हाथ तिंहिं, जुवती निकट न जाइ॥ १८॥
सो तौ वृपली पति भयौ, कुलहिं लगाई गारि।
जुवती उठि पीहरि गई, वाकौं माथै मारि॥ १९॥
जाति मांहि वाहरि कियौ, जब उपजी औलादि।
तासौं कोऊ ना मिलै, जनम गमायौ वादि॥ २०॥
कुल मरजादा सब तजी, तजी लोक की लाज।
सुन्दरता की नीच गति, कीयौ बहुत अकाज॥ २१॥
ऐसौ भेद विचारि करि, भक्ति मांहि मन देउ।
माया सौं मिलि जाहु जिनि, इहै सीप सुनि लेउ॥ २२॥

(छन्द १५ से १७ तक) कनिष्ट संत वे हैं जो माया से अधिक संबंध रखते हैं और भक्ति दिखावट मात्र रखते हैं।

(छन्द १८ से २१ तक) अधमाधम नीचातिनीच संत वे हैं यदि वे इस नाम के योग्य भी हों तो, जो माया ही से काम रखते हैं, केवल साधु का वेश मात्र उनके शरीर पर होता है, और भक्ति-ज्ञानसे कुछ उनका सम्बन्ध नहीं। यों चार प्रकार के संत-साधु कहे। परन्तु ज्ञानी को इन चारों से पृथक् और ऊंचा बताया है।

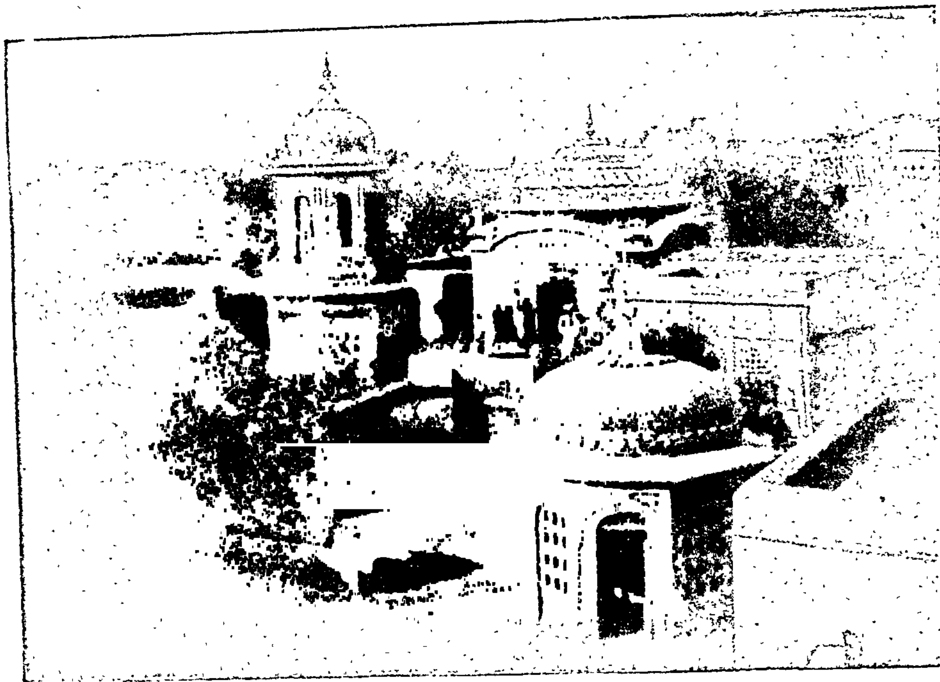
सत्व रजो तम तीनि गुन, तिनि कौ यह व्यौहार।
उत्तम मध्यम अधम अध, कहे सु चारि प्रकार॥ २३॥
तीन भक्ति चौथौ जगत, फेर सार कछु नांहि।
तीन भजैं भगवंत कौं, चौथो भव जल मांहि॥ २४॥
ज्ञानी इन चारयौं परै, ताके चिन्ह न कोइ।
ना सो भक्त न जगत है, बंध मुक्त नहिं सोइ॥ २५॥
ना वहु रक्त विरक्त है, ना वहु भीत अभीत।
तुरिया मैं वरतै सदा, निश्चय तुरियातीत॥ २६॥
जो कोउ पूछै फेरि करि, कैसैं तुरियातीत।
क्षुधा तृषा व्यापै सदा, लगै घाम अरु शीत॥ २७॥
याकौ उत्तर अब कहौं, सुनि लीजै मन लाइ।
शीत उष्ण वाकौं नहीं, ना वहु पिवै न पाइ॥ २८॥
देह प्राण कौ धर्म यह, शीत उष्ण क्षुत् प्यास।
ज्ञानी सदा अलिप्त है, ज्यौं अलिप्त आकास॥ २९॥

---

(२५) 'ज्ञानी इन चारों परैं'।

(२६) 'तुरिया में वरतै सदा निश्चय तुरियातीत'। और आगे भी। तुरियातीत=तुरीय चतुर्थ अवस्था से भी आगे वा रहित। अर्थात् विमुक्त और विशिष्टतया ब्रह्ममय। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीय ये चार अवस्था कही गई है।

(२९) क्षुत्=क्षुधा, भूख। देह प्राण को धर्म='गुणागुणेषु वर्त्तन्ते इति मत्वा न सज्जंते' (गीता) ज्ञानी की तो अवस्था स्थूलादि तीनों अवस्थाओं से ऊंची है और सुख दुःखादि द्वन्द शरीर और प्राण को व्यापते हैं आत्माको नहीं व्यापते, क्योंकि 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' (गीता)—ज्ञानी तो आत्मा ही है यही मेरा मत है।



छज्जू भक्त का चौबारा, लाहौर

भक्ति भक्त माया जगत, ज्ञानी सब कौ सीस।
पंच प्रभाव बषानिया, सुन्दर दोहा तीस ॥ ३० ॥

॥ समाप्तोऽयं पंच प्रभाव ग्रन्थः ॥

---

(३०) भक्ति भक्त...इत्यादि कहने से यही प्रयोजन है कि भक्ति और भक्ति करनेवालों और माया के विकारों, और सब संसार के सर्व पदार्थों से ज्ञानी ऊंचा है जैसे शरीर में सिर है। अथवा जैसे शरीर में सिर उत्तमांग कहा गया वैसे ही ज्ञानी और उसका ज्ञान सर्वश्रेष्ट है। पंचप्रभाव—१ उत्तम २ मध्यम ३ अधम ४ अध(नीचातिनीच) और पांचवां ज्ञानी तुरीयातीत पांच प्रभाव वा पांच प्रकार कहे गये। मनुष्य पर भक्ति, माया और ज्ञान के जैसे प्रभाव वा असर पड़ते हैं तदनुसार ये पांच कहे गये।

गुरु सम्प्रदाय

अथ गुरु सम्प्रदाय

दोहा

प्रथमहिं निज गुरुदेव कौं, वन्दन वारम्बार।
उक्ति युक्ति तव आंनि कैं, करिये ग्रन्थ उचार ॥ १ ॥

चौपई

नमस्कार गुरुदेव हि करिये। जिनकी कृपा हुतें भव तरिये।
गुरु विन मारग कोउ न पावै। गुरु विन संशय कौंन मिटावै॥ २ ॥
सम्प्रदाय अव सुनहु हमारी। तुम पूछी हम कहैं विचारी।
सव को गुरु परमातम एका। जिनि यह कीयौ चित्र अनेका॥ ३ ॥
सव कौ ईश सकल कौ स्वामी। घट घट व्यापक अंतरजामी।
सो जव घट मंहि लहरि उठावै। तव गुरु शिष्यहिं आनि मिलावै॥ ४॥
कै शिष्य हिं गुरु पैं लै जाई। प्रेरक उहै और नहि भाई।
अव प्रतिलोम हिं कहौं प्रनाली। जैसी विधि यह पद्धति चाली ॥ ५ ॥
प्रथमहिं कहौं आपुनी वाता। मोहि मिलायौ प्रेरि विधाता।
दादूजी जव द्यौसह आये। वालपनें हम दरसन पाये ॥ ६ ॥
तिनि के चरननि नायौ माथा। उनि दीयौ मेरैं सिर हाथा।
स्वामी दादू गुरु है मेरौ। सुन्दरदास शिष्य तिनि केरौ ॥ ७ ॥

(ग्रन्थ गुरु सम्प्रदाय)—यह दादू सम्प्रदाय की प्रणाली जो सुन्दरदासजीने कही है सो उनसे पूर्व के किसी अन्य ग्रन्थ में देखी नहीं गई परन्तु जाखल के मङ्गलरामजी साधुने अरिल्ल छन्द में इस ही का अनुकरण किया है। यथा—जनगोपाल-कृत 'दादू जन्मलीला परची', चतुरदास कृत 'थांभापद्धति', राघवदास कृत 'भक्तमाल', हीरादास कृत 'दादूरामोदय' (संस्कृत में) तुल्सी कृत 'दादू विलास', वासुदेव कृत 'दादू चरित चन्द्रिका' तथा अन्य दादू जन्मलीलाएं जो साधुओं ने वनाई हैं। उनमें

दादूजी को गुरु अब सुनिये। बहुत भांति तिनिके गुन गुनिये।
दादूजी कौं दरसन दीन्हौ। अकस्मात् काहू नहिं चीन्हौं॥ ८॥
वृद्धानन्द नाम है जाकौ। ठौर ठिकानौ कहूं न ताकौ।
सहज रूप विचरै भू मांहीं। इच्छा परै तहां सो जांहीं॥ ९॥
वृद्धानन्द दया तब कीनीं। काहू पै गति जाइ न चीनीं।
दादूजी तब निकट बुलायौ। मुदित होइ करि कंठ लगायौ॥ १०॥
मस्तक हाथ धर्यौ है जब हीं। दिव्य दृष्टि उघरी है तबही।
यौं करि कृपा बडौ दत दीनौ। वृद्धानन्द पयानौ कीनौ॥ ११॥

दोहा

तिनि कौ कुशलानन्द गुरु, कहिये परम प्रसिद्धि।
दशौं दिशा जाकै कुशल, पाई पूरण सिद्धि॥ १२॥

चौपई

वीरानन्द तिन्है गुरु कीन्हा। जिनि इन्द्रिय मन वसि कर लीन्हा।
काम क्रोध मद मत्सर माया। सूरा तन करि मारि गिराया॥ १३॥
धीरानन्द भयौ गुरु तिनकौ। धीरज सहित ध्यान है जिनकौ।
धीरज सहित निरंजन ध्यायौ। धन्य धन्य सब काहू गायौ॥ १४॥
तिनकौ गुरु अब कहौं सुनाई। लब्ध्यानन्द सकल सुखदाई।
जाही कौं उपदेश बतायौ। तिनि ततकाल परम पद पायौ॥ १५॥
तिन कौ गुरु कहिये विख्याता। समतानन्द परम सुखदाता।
कीरी कुंजर सम करि जानैं। नीच ऊंच कहुं भेद न आनैं॥ १६॥

किसी में भी ये कुशलानन्द से लगाकर पूर्णानन्द तक के ३६ नाम नहीं हैं। दादूजी के गुरु श्रीकदम स्वयम् वृद्धानन्द वा बुड्ढन थे और अन्त में सुन्दरदास जो सब से पिछले शिष्य थे। 'ब्रह्मसम्प्रदाय' यह नाम दादूजी की सम्प्रदाय को राघवदासजी ने अवश्य दिया है। यही नाम सुन्दरदासजी ने दिया है, जो राघवदासजी से पहले हुये थे। सम्भवतः इस प्रणाली की नामावली सुन्दरदासजी ने किसी प्रतिपक्षी के समा-

तिनि हूं क्षमानन्द गुरु पायौ। क्षमावन्त सब के मन भायौ।
सहन शील ऐसौ नहिं कोई। काहू हुते क्षुभित नहिं होई॥ १७॥
तिन कौ गुरु है निर्गत रोषा। तुष्टानन्द लिये संतोषा।
तृष्णा सकल पोदि जिनि गाडी। मुक्ति आदि सब इच्छा छाडी॥ १८॥
तिन के गुरु समान को नाहीं। सत्यानन्द प्रगट जग मांही।
मुख तें सदा सत्य ही बोलैं। नहिं तो वदन कपाट न पोलै॥ १९॥
तिन के गुरु अब कहौं सुनाई। गिरानन्द गुरु मिलियौ आई।
जाकी गिरा सबनि कौं भावै। गिरा मांहि गोविन्द बतावै॥ २०॥
तिनकौ गुरु अब कहौं विचारी। विद्यानन्द चतुर अति भारी।
एक ब्रह्म विद्या उर जाकै। और अविद्या रही न ताकै॥ २१॥
तिन कौ गुरु है परम प्रवीना। नेमानन्द नेम यह लीना।
नारायण बिन और न भावै। याही नेम निरंजन ध्यावै॥ २२॥
प्रेमानन्द भयौ गुरु ताकौ। प्रेम भक्ति करि दृढ मन जाकौ।
आठ हू पहर मग्न ही रहै। देहादिक की सुधि नहीं लहै॥ २३॥

दोहा

तिन कौ गलितानन्द गुरु, गलित रहै हरिनाम।
गलित भयौ गोविन्द सौं, निशि दिन आठौं जाम॥ २४॥

चौपई

योगानन्द तासु गुरु कहिये। जोग युगति मैं निश दिन रहिये।
आतम परमातम सौं जोरै। याही योग जगति सौं तोरै॥ २५॥

धानके लिये रची होगी। और ये ३६ नाम 'कुशलानन्द' ज्ञान की क्रमोन्नति या परिपाटी को प्रकारांतर से दिखाने को दे दी होगी। वास्तव में ऐसे नामों के कोई पुरुषों का होना प्रमाणित नहीं। सम्प्रदाय का तो उल्लेख सुन्दरदासजी ने अपने ग्रन्थ "गुरुकृपा अष्टक" के अन्त में भी किया है—यथा, "कहि सुन्दर ग्रन्थ प्रसिद्ध यह सम्प्रदाय परब्रह्म की॥ १८॥" प्रत्येक नाम की स्वामीजी व्याख्या ऐसी करते हैं जिस

तिन कौ गुरु कबहूं न वियोगी। भोगानन्द ब्रह्म रस भोगी।
इन्द्रिय भोग मृषा करि जानैं। इन्द्रिनि परैं भोग मन मानैं॥ २६॥
तिन कौ गुरु है ज्ञानानन्दा। सोलह कला प्रगट ज्यौं चन्दा।
सुधा श्रवै अरु शीतल रूपा। ताकौ दरसन परम अनूपा॥ २७॥
तिनहू कौ गुरु प्रगट बतायौ। नाम निष्कलानन्द सुनायौ।
सकल कला जिनि दूर निवारी। ज्ञान कला उर अन्तर धारी॥ २८॥
तिन कौ गुरु है तत्व स्वरूपं। नाम पुष्कलानन्द अनूपं।
पुष्कल प्रगट करी जिनि बांनी। पुष्कल कीरति सब जग जांनी॥ २९॥
तिन को गुरु सब रहित विकारा। अखिलानन्द अनन्त अपारा।
अखिल विश्व में महिमा ऐसी। बरनी जाइ न काहू कैसी॥ ३०॥
तिन कौ गुरु या जग में नांमी। बुद्ध्यानन्द बुद्धि को स्वांमी।
सब के अन्तर्गत की जानैं। बातैं कछु रह्यौ नहिं छानैं॥ ३१॥
तिन के गुरु के और न झौरा। रमतानन्द रमैं सब ठौरा।
तीनि लोक में अटक न कोई। तासौं मिलै सु तैसा होई॥ ३२॥
तिन के गुरु कौ पार न लहिये। अव्ध्यानन्द महद्गुरु कहिये।
पूरन ज्ञान भर्‍यौ जल जामैं। मुक्ताफल उपजै है तामैं॥ ३३॥
तिन के गुरु कीयौ भ्रम नाशा। सहजानन्द द्वन्द्व नहिं पासा।
सहजैं ब्रह्म मांहिं थिरि होई। कष्ट कलेश कियौ नहिं कोई॥ ३४॥
तिन कौ गुरु कहिये निःकामा। निजानन्द है ताकौ नामा।
निज आनंद मांहिं सुख पायौ। तुच्छानन्द दृष्टि नहिं आयौ॥ ३५॥

गे उग नाम का अर्थ और ज्ञान का लक्षण तुरत समझ में आता है। और अन्य कुछ ब्यौरा इन नामों का देते नहीं कि किस देश में किस समय में थे। इस ही से हमने यह निष्कर्ष निकला है कि यह प्रणाली ज्ञान की पैडियों के 'नाम' मात्र हैं। न इनको कल्पित कह सकते और न मिथ्या ही कह सकते और न सत्य ही कह सकते हैं। इन से दूसरा नतीजा यह निकलता है कि दादूजी किसी सम्प्रदाय विशेष के शिष्य नहीं थे।

दोहा

तिन कौ वृहदानन्द गुरु, वृहद् ब्रह्म मंहि वास।
वोर छोर ताकौ नहीं, जैसैं वृहदाकाश ॥ ३६ ॥

चौपई

तिन कौ गुरु आतम संलग्ना। शुद्धानन्द शुद्ध ज्यौं गगना।
हृदय शुद्ध वाणी प्रति शुद्धा। जो परसै सो होइ विशुद्धा ॥ ३७ ॥
तिन कौ गुरु है अति गम्भीरा। अमितानन्द अमोलिक हीरा।
जाकी मति कछु कही न जाई। वहुत भांति करि ग्रन्थनि गाई ॥ ३८ ॥
तिन कौ गुरु अव कहि समुभाऊं। नित्यानन्द जास कौ नाऊं।
नित्य मुक्त निर्मल मति जाकी। कोऊ लषि न सकै गति ताकी ॥ ३९ ॥
तिन कौ सदानन्द गुरु ऐसौ। सदा एक रस कहूं न भैसौ।
एक सदा सवहि न मंहि जानैं। द्वैत भाव कवहूं नहिं आनैं ॥ ४० ॥
तिनहूं चिदानन्द गुरु कीन्हौ। चेतन ब्रह्म आपु जिनि चीन्हौ।
जाकी सक्ति जगत सव होई। चेतन करि वरतावै सोई ॥ ४१ ॥
तिनि गुरु कियौ अद्भुतानन्दा। अद्भुत आशय निकट न द्रन्दा।
अद्भुत गति मति अद्भुत वानी। अद्भुत लीला किनहुं न जांनी ॥ ४२ ॥
तिन कौ गुरु है सुख कौ सागर। नाम अक्षयानन्द उजागर।
अक्षय ज्ञान सुनायौ जाकौ। अक्षय रूप कियौ ता ताकौ ॥ ४३ ॥
तिन कौ गुरु सव ऊपर छाजै। नाम अच्युतानन्द विराजै।
अच्युत सदा रहै सुनि भाई। च्युत सव और जगत ह्वै जाई ॥ ४४ ॥
तिन कौ गुरु सवहिंन ते न्यारौ। नाम पूरनानन्द पियारौ।
सव विधि पूरन परम निधाना। वाहरि भीतरि पूरन ज्ञाना ॥ ४५ ॥

उनको तो ईस्वर वृद्धानन्द (वुड्ढन) रुप से ज्ञान दे गये। फिर इनकी परम्परा केवल ईस्वर ही से मिलती है और ईस्वर ज्ञानस्वरुप, चिदानन्द, चैतन्यघन है। वीच में जो नाम हैं सो सव ईस्वरीय ज्ञान के पर्याय मात्र है।

तिन कौं गुरु सब के सिरमौरा। ऐसौ कोऊ सुन्यौ न अ
ब्रह्मानन्द नाम तिहिं कहिये। तिन कैं मिलें ब्रह्म है र
यह पद्धति प्रतिलोम सुनाई। जहं तें भई तहां पहुं
संप्रदाय यौं चली हमारी। आदि अन्त तुम लेहु विच

दोहा

परम्परा परब्रह्म तें, आयौ चलि उपदेश
सुन्दर गुरु तें पाइये, गुरु विन लहै न लेश
संप्रदाय इहिं विधि चली, प्रगट करी जगदीश
सुन्दर सिर तें नख गनहिं, नख तें गनिये शीश
पैरी पैरी उतरिये, पैरी ही चढि जा
सुन्दर यौं अनुलोम है, अरु प्रतिलोम कहा
गनैं एक तें सौ लगैं, सौ तें गनिये एक
कहिबे ही कौ फेरि है, सुन्दरि समझि विवेक
सुन्दर पृथ्वी आदि दे, गनैं व्योम लौं को
व्योंम आदि दै जोगनैं, पृथ्वी आवै सो
संप्रदाय यह ग्रन्थ है, ग्रन्थित गुरु कौ ज्ञान
सुन्दर गुरु तें पाइये, गुरु विन लहै न आ

॥ समाप्तोऽयं गुरुसम्प्रदाय ग्रन्थः ॥

(४६-४७)—पद्धति ब्रह्म (ब्रह्मानन्द) तक पहुंचा दी गई औ
और उससे दादू और उससे सुन्दर वस हो चुका। इस को प्रतिलो
लिखा है। उल्टा अनुलोम ब्रह्मानन्द से चलता और सुंदरदास प
इस की व्याख्या स्वयम् ग्रंथकर्त्ता ने आगे के छंदों में स्पष्ट कर दी
भी दरसा दिया है—"सम्प्रदाय यह ग्रंथ है ग्रंथित गुरुको ज्ञान
पाइये गुरु विन लहै न आन" ॥ ५३ ॥

(४८—५३)—परब्रह्म से सब ज्ञान का तारतम्य है। परन्तु वा
प्राप्त हो सकता है। जैसे बादल के विना वर्षा का जल नहीं मिलत
ज्ञान का कारण है, निमित्त है, जरिया है। ज्ञान नित्य है परन्तु
द्वारा ही प्राप्त होता है।

गुन उत्पत्ति नीसांनी

अथ गुन उत्पत्ति नीसांनी

दोहा

मन उमग्यौ कछु कहन कौं, हृदय बढ्यौ आनन्द।

सुन्दर बहुत प्रकार करि, वन्दत गुरु गोविन्द ॥ १ ॥

नीसांनी

गुरु गोविन्द प्रसाद तें प्रकटी मुख वांनी।

जैसौ बुद्धि प्रकाश है बरनौं नीसांनी ॥ २ ॥

प्रथम निरंजन आपुही मन मैं यहु आंनी।

पंच तत्व गुन तीन तें सब सृष्टि उपांनी ॥ ३ ॥

व्यौम वायु पावक किये जल भूमि मिलांनी।

राजस सात्विक तामसा तीनौं त्रिबिधांनी ॥ ४ ॥

रज गुण तें ब्रह्मा किये राजस अभिमानी।

सात्विक विष्णु उपाइया प्रतिपालक प्रांनी ॥ ५ ॥

तम गुण तें शंकर भये संहारक जांनी।

ऐसी विधि भव पथ चलै यह रचना ठांनी ॥ ६ ॥

(गुन उत्पत्ति नीसांनी)—इस ग्रन्थ में त्रिगुणात्मिक सृष्टि का प्रसार और त्रिगुणातीत चैतन्य उस की आदि और सर्व व्यापक सर्व नियंता है इस का आश्चर्यमय वर्णन है। नीसांनी=छन्द २३ मात्रा का, १३+१० पर यति और अंत में दो गुरु यह लक्षण छन्द रत्नावलि में है। छन्दार्णव में हठपट्ट लिखा है। नीसांनी शब्द का श्लेषार्थ यहां पहिचान वा लक्षण भी है।

(३) उपानी=पैदा की।

(४) त्रिविधानी=तीन प्रकार की। यह संज्ञा स्त्रीलिंग बनाई है।

(६) ठानी=दृढ़ता से बना डाली।

सत्य लोक ब्रह्मा रहै ताकै ब्रह्मांनी।
विष्णु वसै वैकुण्ठ मैं ठाकुर ठकुरांनी ॥ ७ ॥
रुद्र रहै कैलाश मैं भव लिये भवानी।
इन्द्र रहै अमरावती जाकै इन्द्रानी ॥ ८ ॥
सुर अरु असुर सबै किये अप अपने थानी।
गन गंधर्व उपाइया हाहा हू गानी ॥ ९ ॥
किन्नर अरु विद्याधरा यक्षादि धनानी।
भूत पिशाच निशाचरा राक्षस दुख दांनी ॥ १० ॥
चन्द सूर दीपक किये तारा नभ तांनी।
सप्त दीप नव षंड मैं दिन रैंन थपांनी ॥ ११ ॥
सागर मेरु उपाइया पृथ्वी मध्यांनी।
अष्ट कुली पर्वत किये विचि नदी वहांनी ॥ १२ ॥
भार अठार वनस्पती फल फूल फुलांनी।
समये समये आइकैं घन वरषहिं पांनी ॥ १३ ॥
मानव पशु पंषी किये करतार विनांनी।
ऐसी विधि रचना रची कछु अकथ कहानी ॥ १४ ॥

---

(९) थानी=स्थान में रहने वाले।

(९) हाहाहू=हाहाहूहू, गंधर्व जाति। गानी=गायक, गाने वाले। गंधर्व, किन्नर, विद्याधर, यक्ष ये देवता जाति हैं। यक्ष लोग कुवेर के आधीन इससे धन के मालिक (धनानी) हैं।

(११) तांनी=वितान, फैलाव किया। थपानी=स्थापन किये, वनाये।

(१२) मध्यानी=वीच में। अष्टकुली पर्वत—पर्वत अष्ट न देखे न सुने। हां सात पर्वत हैं और सात की संख्या के लिये पर्वत शब्द आता है। अष्टकुली नाग प्रसिद्ध हैं।

(१४) करतार विनांनी=करतार ईश्वर ने वितान अर्थात् फैलाव फैलाया है।

स्वेदज अण्ड जरायुजा उद्भिज उपजांनी ।
पेचर भूचर जलचरा ये चारौं पांनी ॥ १५ ॥
कीट पतंग जहां लगे गिनती न गिनांनी ।
चौराशी लप कहन कौं जिव जाति वपांनी ॥ १६ ॥
शेप नाग वैकुण्ठ लौं विस्तार वितांनी ।
चवदह तीनौं लोक मैं जाको रजधानी ॥ १७ ॥
आपु न वैठै गोपि ह्वै व्यापक सव कानी ।
अध ऊरध दश हू दिशा ज्यौं शून्य समानी ॥ १८ ॥
चेतनि शक्ति जहां तहाँ घट घट नहिं छांनी ।
हलन चलन जातैं भया सो हैं सेनानी ॥ १९ ॥
जड़ चेतन द्वै भेद हैं ऐसैं संमुझांनी ।
जड उपजै विनसै सदा चेतन अप्रवानी ॥ २० ॥
लिपै छिपै नहिं सव करै जिन मंड मंडानी ।
सुंदर अद्भुत देपिये अति गति है रानी ॥ २१ ॥

॥ समाप्तोऽयं गुन उत्पत्ति नीसांनी ग्रन्थः ॥

---

(१५) चारखान=चतुर्खान—(क) स्वेदज (ख) अंडज (ग) जरायुज (घ) उद्भिज ये चार प्रकार के जीव है। और खेचर (पक्षी, कीट-पतंग) भूचर (पशु, वानर सर्प्पादि) जलचर (मछली शंख आदि) चौथे पातालचर (जो पाताल में रहते हैं। किसी के मत में अग्निचर (आग के कीड़े)।

(१९) सेनानी=निशानी, लक्षण। जीव जाति में स्पंदन अपने आप हिलना चेष्टा करना यह चेतन का एक लक्षण है जो जड़ पदार्थ में नहीं है। परन्तु यह साधारण मत है। वास्तविक सिद्धांत में सब चेतन से उत्पन्न होने से चेतन के अंश हैं। फिर जड़ कहां रहा। 'सर्वं-खल्विदं ब्रह्म' इस का प्रमाण है।

(२०) क्षर और अक्षर का सकल सृष्टि में भेद। अप्रवानी=प्रमाण रहित, अपरिमित। अर्थात् उत्पत्ति और नाश का लक्षण नहीं है।

(२१) मंड=मंडन, सृष्टि। मंडानी=बनाया, फैलाया।

सद्गुरु महिमा नीसांनी

अथ सद्गुरु महिमा नीसांनी

दोहा

अद्भुत ख्याल रच्यौ प्रभू, वहुत भांति विस्तार।
संत किये उपदेश कौं, पार उतारनहार ॥ १ ॥

नीसांनी

पार उतारन हार जी गुरु दादू आया।
जीवनि के उद्धार कौं हरि आपु पठाया ॥ २ ॥
राम नाम उपदेश दे भ्रम दूरि उड़ाया।
ज्ञान भगति वैराग हू ए तीन दृढाया ॥ ३ ॥
विमुख जीव सन्मुख किये हरि पंथ चलाया।
झूठ क्रिया सव छाड़ि कै प्रभु सत्य वताया ॥ ४ ॥
माया मिथ्या सांपिनी जिनि सव जग षाया।
मुख तें मंत्र उचारि कैं उनि मृतक जिवाया ॥ ५ ॥
वूड़त काली धार मैं गहि नाव चढाया।
पैली पार उतारि कैं निज पद पहुंचाया ॥ ६ ॥
पर उपकारी हैं इसे मोटी निधि ल्याया।
जन्म जन्म की भूप थी सव जीव अघाया ॥ ७ ॥

(ग्रन्थ सद्गुरु-महिमा नीसांनी)—सुन्दरदासजी निज गुरु श्रीदादूदयाल का गुणानुवाद वहुत रोचक ललित और मनोभाव भरे वचनों में करते हैं। ये वीस नीसांनी छन्द उनके वहुत सार भरे और प्रसिद्ध हैं। सुन्दरदासजी दो स्थानों में अपने काव्यकल्लोल का अत्यंत उभार करते है, एक ब्रह्म के वर्णन में दूसरे गुरु महिमा में। वीररस के वर्णन में भी कमी नहीं होती है। नीति कथन में भी पूर्ण चातुरी होती है।

दयावंत दुख मेटना सुख दायक भाया।
शीलवंत साचै मतै संतोष गहाया ॥ ८ ॥
रवि ज्यौं प्रगट प्रकाश मैं जिनि तिमिर मिटाया।
शशि ज्यौं शीतल है सदा रस अमृत पिवाया॥ ९ ॥
अति गंभीर समुद्र ज्यौं तरवर ज्यौं छाया।
वानी वरिषै मेघ ज्यूं आनन्द वढ़ाया ॥ १० ॥
चंदन ज्यौं लपटै वनी द्रुम नाम गमाया।
पारस जैसैं परसतैं कंचन ह्वै काया॥ ११ ॥
चंवक ज्यौं लोहा लगैं भृति अंगि लगाया।
हीरा ज्यौं अति जगमगै निरमोल निपाया ॥ १२ ॥
कामधेनु चिंतामनी तरु कल्प कहाया।
सव की पूरै कामनां जिनि जैसा ध्याया ॥ १३ ॥
अडिग इसा है मेरु ज्यौं डौलै न डुलाया।
भूमि जिसा भारीपवां जिनि सहन सिषाया ॥ १४ ॥
निर्मल जैसा नीर है मल दूर वहाया।
तेजवंत पावक जिसा भय शीत नसाया ॥ १५ ॥
पवन जसा सव सारिपा को रंक न राया।
व्यौम जिसा हृदये वड़ा कहुं पार न पाया ॥ १६ ॥

---

(१०) वानी=दादूजी की वाणी और पद। दादूजी की वाणी के गुण वहुत हैं परन्तु माधुर्य तो प्रधान गुण है।

(११) द्रुम—वृक्ष। वृक्ष नाम मिटा के चन्दन नाम कर दिया। मनुष्य से देवता और जीव से ब्रह्म वना दिया।

(१२) भृति=पालन करना, पोषना। अथवा भिड़ने वा टकराने से ही अपने अंग में ही सदा लगा लिया। निपाया=वनाया, सुडौल किया। तरु कल्प=कल्पतरु, कल्पवृक्ष।

टेक जिसी प्रह्लाद है ध्रुव ज्यों मन लाया।

ज्ञान गह्यौ शुकदेव ज्यौं पर ब्रह्म दिपाया ॥ १७ ॥

योग युगति गोरक्ष ज्यौं धंधा सुरझाया।

हद छाड़ि वेहद मैं अनहद वजाया ॥ १८ ॥

जैसैं नाम कवीर जी यौं साधु कहाया।

आदि अंतलूं आइ कैं रमि राम समाया ॥ १९ ॥

सद्गुरु महिमा कहन कौं मैं वहुत लुभाया।

मुख मैं जिह्वा एक ही तातें पछिताया ॥ २० ॥

नमस्कार गुरुदेव कौं जिनि वन्दि छुड़ाया।

दादू दीन दयाल का सुन्दर जस गाया ॥ २१ ॥

दोहा

सद्गुरु की महिमा कही, मति अपनी उनमान।

सुन्दर अमित अनंत गुन, को करि सकै वपान ॥ २२ ॥

॥ समाप्तोऽयं सद्गुरु महिमा नीसांनी ग्रन्थः ॥

---

(१८) अनहद=अनाहत नाद।

(१९) नाम=नामदेवजी भक्त।

(२१) वंदि=कैद, बन्धन।

(२२) उनमान=अनुमान, अनुसार।

बावनी

अथ बावनी

दोहा

गुरु अविनाशी पुरुष है, घटका दादू नांव।
सुन्दर शोभा का कहूं, नख शिख पर बलि जांव ॥ १ ॥
शब्द सुनत मुक्ता भया, काटे कर्म अनेक।
मनसा वाचा कर्मना, हृदये राषै एक ॥ २ ॥
इक अक्षर है एक रस, क्षरै सु है ओंकार।
तरवर ज्यौं का त्यौं रहै, छाया बहुत प्रकार ॥ ३ ॥
बावन अक्षर सब कथै, पण्डित वेद पुरान।
इक अक्षर सो अगम घर, बूझै सन्त सुजान ॥ ४ ॥

चौपई

※ॐकार आदि उतपन्ना। ॐकार त्रिधा भयौ भिन्ना।
ॐकार उरै यह माया। ॐकार परै हरि राया ॥ ५ ॥

बावनी—वर्णमाला के बावन अक्षरों को आदि में देकर छन्द रचना। इस को कक्का बारखड़ी भी कहते हैं। यह चाल काव्य के क्षुद्र रचनाओं की प्राचीन है। यह 'बावनी' बहुत चमत्कारी है।

(२) मुक्ता=मुक्त, छुट गये।

(३) क्षरै=मिटै। यह अक्षर क्षर का श्लेष है। बावन अक्षर इस बावनी में यों हैं=ओं नमः सिवं—ये ५+अ से अः तक (ऋ, ॠ, ऌ, ॡ छोड़कर-१२ स्वर+क से ह तक-३३ व्यंजन+और (त्र को छोड़कर) क्ष और ज्ञ संयुक्ताक्षर=यों बावन हैं।

※ इस चौपई में 'ओं' अक्षर की तीन मात्रा लेनी चाहिये अथवा इस को 'ओमकार' यों पढ़ना उचित है।

नमस्कार निश दिन है ताकौं। नित्य निरन्तर नमिये वाकौं।
निकट न दूरि नजरि नहिं आवै। नेति नेति कहि निगम सुनावै ॥ ६ ॥
मनतें अगम मरै नहिं जीवै। मुक्त न बंध शक्ति नहिं शीवै।
मौंन अमौन कह्या नहिं जाई। मोल माप नहिं रह्या समाई ॥ ७ ॥
सित न असित कछु हरित न पीरा। ससि हरि सूर तप्त नहिं सीरा।
सीस न पाव श्रवन नहिं नासा। सरस न निरस सब्द नहिं स्वासा ॥८॥
द्धन्ध अद्धन्ध धूप नहिं छाया। धीर अधीर न भूषा धाया।
धर्‍या अधर नहिं रूप कुरूपं। ध्ये ध्याता नहिं ध्यान स्वरूपं ॥ ९ ॥
अकह अगह अति अमित अपारा। अकल अमल अज आम विचारा।
अलप अभेव लपै नहिं कोई। अति अगाध अविनाशी सोई ॥ १० ॥
आदि न अंत मध्य कहु कैसा। आशा पास नहीं कछु ऐसा।
आवै जाइ न सुप्त न जागै। आहि अपण्डित पोछैं आगै ॥ ११ ॥
इत उत जित कित है भरपूरा। इड़ा पिंगला तें अति दूरा।
इच्छा रहत इष्ट कौं ध्यावै। इतनी जानैं तो इत पावै ॥ १२ ॥

---

(७) शीवै=शिव। रह्या समाई=सर्वव्यापी।

(८) सित=सफेद। असित=काला। हरि=यहां सूर्य का अर्थ लें तो सूर शब्द आगे है इससे द्विरुक्ति होती है अतः पवन अर्थ लेना जिस में सीतलता का भी गुण है।

(९) द्धन्ध=द्ध इस संयुक्ताक्षर को आद्य में देने को धंध (धंध=क्रियावान) के ध को द्ध बनाया।

(१०) अकह=कहनेमें न आवै। अगह=ग्रहण करने के योग्य नहीं मन बुध्यादि द्वारा। अकल=कला रहित, निर्विकार। अमल=निर्मल। अज=जन्म रहित।

(१२) इच्छा रहत=जिज्ञासु कामना को त्याग दे। इत=इस ओर, परम गति को।

ईश्वर एक और नहिं कोई। ईश शीश पर राषहु सोई।
ईहा और ईरपा भांनौं। ईतरता कबहूं नहिं आंनौं ॥ १३ ॥
उत्तम वहै उनमुनी लावै। उर मैं पैसि अपूठा आवै।
उरै उरै उरभ्यौ संसारा। उलटा चलै सु उतरै पारा ॥ १४ ॥
ऊंच नीच सम देपै दोऊ। ऊरा पूरा है नहिं कोऊ।
ऊपर तरै एक पहिचानैं। ऊवावाई जगतहिं जानैं ॥ १५ ॥
एकै ब्रह्म अनेक दिषाये। एकाकी हूये तिनि पाये।
ए मेरे ये तेरे कीये। एही अन्तर इन करि लीये ॥ १६ ॥
ऐया बूझि तुम्हारी जानी। ऐयत कोटिनि दृष्टि भुलानी।
ऐश्वर्य हि मन कौं मति लावै। ऐसा ज्ञान गुरू समुझावै ॥ १७ ॥
ओत प्रोत ओ व्यापक सारै। ओछी बुद्धि ओस जल धारै।
ओर छोर वाकौ कहुं नाहीं। ओट आंपि की आवहिं जांही ॥ १८ ॥

---

(१३) ईहा=इच्छा। भानौं=तोड़ो, छोड़ो। ईतरता=भेदभाव।

(१४) उनमनी=एक मुद्रा। उरमें=हृदय में। अन्तःमुख होकर। अपूठा आवै—वहिर्मुखता को त्याग दे। उरै=परली तरफ, परमगति से नीचे। उलटा= संसार वा वहिर्मुखता से प्रतिकूल होकर।

(१५) ऊरा=ऊणां (अधूरा)। तरै=तलै, नीचै। उवावाई=ऊआवाई, वृथा ही, तथ्य रहित। यह शब्द गुजराती भाषा का मुहाविरा प्रतीत होता है। सूरदासजीने भी इस का प्रयोग किया है—यथा, "जन्मगमायो ऊआवाई। भजे न चरणकमल यदुपति के रह्यो विलोकत छांई।..." ॥

(१६) ऐयाबूझि=अफसोस ऐसी तुम्हारी अक्ल ! यह शब्द सुन्दरदासजी के अन्य ग्रन्थ में भी आया है। ऐयत=अयुत, दश हजार। धनाढ्यता के गर्व ने सूक्ष्म ग्राही दृष्टि को भुला दिया। अर्थात् भगवान से विमुख कर दिया।

(१८) ओत प्रोत=खड़े आड़े, इधर भी उधर भी, सर्वत्र। ओट आंखिकी= अदृष्ट हो रहता है। आता है जाता है पर सहज ही दिखाई नहीं देता है। ओझल

औषध याही एक विचारी। और उपाइ सकल अंधियारी।
औसर बीतें फिरि पछितावै। औतरि औतरि यातें आवै॥ १९॥
अंश उहै बोलै या माहीं। अजन मांहि निरंजन छांहीं।
अंध न लहै और दिशि दौरै। अतक आइ आइ सिर फोरै॥ २०॥
अह अह उपजै आतम ज्ञाना। अहन अहन मैं वाही ध्याना।
अहल ताहि कबहूं नहिं होई। अहटि रहे तौ बूडै सोई॥ २१॥
कक्का करि काया में वासा। काया मांहें कवल प्रकाशा।
कंवल माहिं कर ताकौ जोई। करता मिल कम नहिं कोई॥ २२॥
खख्खा पेल पसारा वाका। खलकहिं तजै खसम होइ ताका।
खेंचि खेंचि मनस्यौं मन लावै। खरी बात खालिक कौं भावै॥ २३॥
गग्गा गुप्त कहै गुरुदेवा। ज्ञान गुफा में अलप अभेवा।
गल गल स्वाद तजै गुण मारै। गगन गहै गोविन्द निहारै॥ २४॥
घध्घा घट में औघट कहिये। घट ही मांहि घाट कौं लहिये।
घाट मांहि घन घुरै निसाना। घण्टा घोर सुनै कौ कांना॥ २५॥

होता है। ओसजल=ओस विंदु की तरह मूर्ख को ज्ञान दिया हुआ थोड़े समय ठहरता है फिर उड़ जाता है।

(१९) औतरि=उतर कर या उत्तरोत्तर अज्ञान से हानि होय। यातैं=इस कारण से अज्ञान के रहने से अवनति होय।

(२०) अन्तक=मौत।

(२१) अहल=हरकत, नुकसान। अहटि=हटना विमुख।

(२३) खसम होहि=प्रकृति का स्वामी रहै न कि आधीन और विवश।

(२४) गल गल= नरम नरम। जैसे हलवा, खीर, आदि भोजन। अर्थात् इन्द्रियों के भोग। गगन=आकाश, अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म और व्यापक।

(२५) औघट=टेढ़ा मेंढ़ा, तिर्यक आत्मा, ब्रह्म। घाट=सुघरता, ब्रह्मप्राप्ति। घन=गर्जन बादल की। घंटा घोर=घंटा भेरि आदि शब्द जो अनाहत नाद है। योगी मानते हैं।

नन्ना नेह निरंजन लागै। नारी तजै नरक तें भागै।
निशि दिन नैनहु नींद न आवै। नर तव ही नारायन पावै॥ २६ ॥
चच्चा चित चहुं दिशि तें फेरैं। चौक हि वैठि चहूं दिश हेरैं।
चलत चलत जव आगै जाई। चारि पदारथ लागै पाई ॥ २७ ॥
छच्छा छाया देषनि भूली। छल वल करै छलैगी ऊली।
छिन छिन जौ तरवर तत पीवै। छाकि रहै तौ जुगि जुगि जीवै॥ २८ ॥
जज्जा जांणत जांणत जांणैं। जतन करै तौ सहज पिछांणैं।
जोग जुगति तन मन हिं जरावै। जरा न व्यापै जोति जगावै॥ २६ ॥
झझ्झा झरत रहैं झल देषैं। झुकि झुकि नीझर पीव अलेषैं।
झूझि झटिक उलटा रस वूझैं। झलमल झाल दशौं दिश सूझै॥ ३० ॥
नन्ना नांव लिये निसतरिये। नषिर उपाइ कछू नहिं करिये।
नारी नषसिष करै सिंगारा। नाकि हि विना फजीहति वारा॥ ३१ ॥

---

(२७) चौकहि=चौकन्ना रह कर। अथवा मैदान में आकर। लागै पाई=पांव पड़े, आप ही आधीन हो जाय।

(२८) ऊली=(अप्रशस्त शब्द है) यहां मामा के लिये है, छली। तरवर तत=अमर रोंख का, मधुमक्खी होकर, रस पीवो—यह विलक्षण वार्त्ता योग की, किसी सिद्धान्त से सुन्दरदासजी ने ली है।

(२९) जरावैं=यहां वश करने को निर्मल करै अर्थ है। जरा=वुढापा। योगी दीर्घायु हो जाते हैं। अमर भी सुने गये हैं। जोति=ज्योति, अन्तर्ज्योति। ब्रह्म-ज्योति स्वरूप आत्मा का आकार।

(३०) झरत=निकलती। झुकि=कुछ श्रम करने से। अथवा संसार से दूर हटने से। पीव=पीवै। अलेखैं=वहुत। लिखने में न आ सकै जितना। झूझि=वीरता करके। आपा मार कर। झटिक=झटका करके, सिर काट कर अपना। उलटा रस=उलट रस पीना यह योग की एक क्रिया है जो उन्मनी मुद्रा या खेचरी मुद्रा से होती है। ब्रह्म के रस वा मजे को समझने लगै। झलमल=झलामल, चकाचौंध। ऐसो वर्णन 'ज्ञान समुद्र' में देखो।

(३१) नखिर=(अप्रशस्त शब्द है) न कछु छोटा। अन्यतर। वारा=दाव, कारण।

टट्टा टेरि कह्या गुरु ज्ञाना। टूक टूक ह्वै मरि मैदाना।
टगै न टेक टूटि नहिं जाई। टलै काल औरहिं कौ षाई ॥ ३२ ॥
ठट्ठा ठगनी कौ मती धीजै। ठगै फेरि कैं तब का कीजै।
ठौर छोड़ि जिनि तकै पसारा। ठगनी पैठि करै घट छारा ॥ ३३ ॥
डड्डा डारि देह डर सबही। डोरी पकरि डिगै नहिं कबही।
डंड कमंडल डिढ करि राषी। डेरैं गये सु बोलै साषी ॥ ३४ ॥
ढढ्ढा ढारन ढारै पासा। ढारै अब जिनि देषि तमासा।
ढूंढे चौपडि ढुलि मिलि जाई। ढबका तब काहे कौं पाई ॥ ३५ ॥
णणा रुण झुण बाजै वीणां। णारायण मारग अति झींणां।
णाम प्रवीण होइ जे कोई। णागर मरण मिटावै सोई ॥ ३६ ॥
तत्ता तरली लगै शरीरा। तन मन भूलै पैली तीरा।
तब त्रिभुवन पति पकरै बांही। तत्वै तत्व मिलै तूं नांही ॥ ३७ ॥
थथ्था थावर जंगम थाना। थिरक रह्या सब मांहि समानां।
थिर सु होइ थकियौ जनि राहा। थाहत थाहत मिलै अथाहा ॥ ३८ ॥
दद्दा दम गहि दिल कौं धोई। दिल मैं दर्द मिलैगा सोई।
दह दिश तोहि होइ दीदारा। देई अभै पद सिरजनहारा ॥ ३९ ॥

---

(३२) टगै=(अप्रशस्त शब्द) टलै, डिगै।

(३३) फेरिकैं=चक्कर देकर, धोखा देकर। ठौर=असली ठिकाना, ईश्वर में निश्चय। पसारा=माया, संसार। पैठि=अन्दर (दिल में) घुस कर।

(३४) डारि देह=गिरा देने का वा गिरा देगा। (असली सच्चे मार्ग से) डोरी=सीधे रास्ते जाने का अवलम्ब, सहारा (गुरु ज्ञान)। डण्डकमण्डल=सामान, ज्ञान-ध्यान के साधन। डिढ=दृढ। डेरैं=डेरे में, निज घर, आत्मस्थान। बोलै साषी=ज्ञान प्राप्त हो जाने पर अन्तर्दृष्टि से ज्ञान का उपदेश करैं।

(३५) ढबका=ढबका, धोखा, हार।

(३६) णागर=नागर, ईश्वर (नटनागर)।

(३८) थिरक=ठहरा हुआ। अथाहा=थाह रहित, परमात्मा।

धध्धा धाम धणी का दीसै। धून्ध मार जौं नान्हां पीसै।
ध्यान धरै धुनि सौं लै लावै। धन्य धन्य सब कोई गावै॥ ४० ॥
नन्ना निरनै करि निरवारा। निकट निरंजन सब तैं न्यारा।
न्यारै कौं नीकै करि जानैं। नांही कछू तहां मन मांनै ॥ ४१ ॥
पप्पा परमिति लहै न कोई। परम पुरुष परलै नहिं होई।
पानी पादौ पेट न पृष्टी। पंच तत्व तैं पैला इष्टी ॥ ४२ ॥
फफ्फा फूल विना फल चाषै। फूल जाइ तौ फिरि करि नाषै।
फटकि पिछौड़ि डारि चतुराई। फूंकि देह सब मानि बड़ाई ॥ ४३ ॥
वब्बा वानिक वनिहै तेरा। बंद लगाइ शब्द सुनि मेरा।
बार बार वहुर्‍यौ नहिं भेटा। वेगि न मिलै बाप कौ बेटा ॥ ४४ ॥
भभ्भा भयौ सिधौं का मेला। भारी भेद बूझि लै चेला।
भिष्या भोजन भरि भरि षाई। भंडारा गुरु बांट्या आई ॥ ४५ ॥

---

(४०) धूंध मार=जोर मार कर, धूधी लाग कर। नान्हा पीसै=वारीक पीसना अर्थात् तत्व प्राप्ति के लिये जप तप करै।

(४१) निरवारा=(निर्वार्य से) दृढता से, निश्चय से।

(४२) परमिति=अन्त, हद्द। पानी पादौ=हाथ, पांव। पैला=परे, भिन्न। इष्टी=इष्टदेवता, परम तत्व।

(४३) फूल=(यहां) माया। फल=(यहां) ईश्वर। फूल जाइ=कदाचित माया का प्रभाव हो जाय। फिरि करि=लौट कर। नाषै=डाल दे। माया से निवृत्त हो जाय।

(४४) वन्द=योग क्रिया का वन्ध (जालन्धर वन्ध आदि)। शब्द=उपदेश। वहुर्‍यो=वहुर्‍यो, वहका, भूला। वाप=ईश्वर। वेटा=जीव।

(४५) सिधौं का मेला=सिद्ध पुरुषों का सत्संग हुआ है, ऐसा उत्तम अवसर आ गया है। भंडारा=जिमनार, उदारता से सब को प्रसाद बांटा। षाई=इसका दूसरा अर्थ खन्दक वा अन्नका खजाना। भिष्या=साधु सन्तों को जो मांगा सो ही दिया।

मम्मा मारि ममता मति आनै। मोम होइ तव मरमहि जानै।
मरदहिं मान मैल होइ दूरी। मन मैं मिलै सजीवनि मूरी ॥ ४६ ॥
यय्या याकौं याही पावै। याहि पकरि याकै घर ल्यावै।
याकौ याही वैरी होई। याकौ इहै मित्र है सोई ॥ ४७ ॥
ररा रती रती समुझाया। रे रे रंक सुमर लै राया।
रमिता राम रह्या भरपूरा। रापि हृदै पण छाड़ि न सूरा ॥ ४८ ॥
लल्ला लगि करि उठै भभूका। लंवा गुरू लगावै लूका।
लूटी लाटि लोगन कौं पाई। लंका छोड़ि प्रलंका जाई ॥ ४९ ॥
वव्वा वोरा ज्यौं गरि जावै। वैसा होइ उसी ल्यौ लावै।
वासौं कोई कहै न जूवा। वाहि वाहि करि वाही हूवा ॥ ५० ॥
सस्सा सेत पीत नहिं स्यामा। सकल सिरोमनि जिसका नामा।
संसकार तें सुमरै कोई। सोधै मूल सुखो सो होई ॥ ५१ ॥
पप्पा पतकौं फाडि जलावै। पोडि तजै पोटा नहिं पावै।
पुशी होइ पग चढि आकाशा। पाइ अभप तव निहचल वासा ॥ ५२ ॥

---

(४६) मरदहि=मरदन कर, स्नान कर। मान=अभिमान का मल, वा मानजा मेरी। मन में=अन्तःकरण में, अन्तर्मुख होने से।

(४७) याहि=इसको (जीव वा आत्मा को) "आत्मैव हि आत्मनो वन्धुः। आत्मैव हि रिपुरात्मनः"। "आत्मानम् आत्मनाविद्धि"। (गीता योगवासिष्ट में)।

(४८) पण=प्रण। सूरा=शूरवीर।

(४९) लूका=चिनगारी। लूका लगाना=आग लगाना, वखेड़ा करना (अथवा ज्ञानरूपी आग अन्दर जलाना जिससे सव कर्म दग्ध हो जांय)। लंवा=पहुंचवान, समर्थ (गुरु)।

(५०) वोरा=ओर (तर्फ)। जूवा=झूठ, झूठा।

(५२) पत कौं फाड़ि जलावै=संचित कर्मों का (तप और ज्ञान से) नाश कर दे। पोडि=दोप, कुस्वभाव। पग=पंक्षी, यहां जीवसे अभिप्राय है। जो आत्म लोकमें विचर कर 'अभप खाय' अर्थात् अपने मांस वा आपेको मारै तो शांति पावै।

शश्शा शाहिब शेवक शंगा। शुरति करै जब सिमटै अंगा।
शोरस पीर सिया होइ ऐसा। शकर शेश रसिक है जैसा॥ ५३॥
हहृहा हौंणहार पर राषै। हरषि हरषि करि हरिरस चाषै।
हाल हाल होइ हेत लगावै। हँसि हँसि हंसै हंस मिलावै॥ ५४॥
क्षक्षा क्षिरि क्षिरि गये अनेका। क्षण क्षण माँहि षबरि करि येका।
क्षर संसार क्षाल जिनि कीया। क्षाली सही परा करि लीया॥ ५५॥
ज्ञान उहै कोई जो पावै। ज्ञाता कै हृदये ठहरावै।
ज्ञेय वस्तु कौं जानैं सोई। ज्ञानी उहै और नहिं कोई॥ ५६॥
करत करत अक्षर का जौरा। निशा वितीत प्रगट भयौ भौरा।
सुन्दरदास गुरू मुषि जांनां। षिरै नहीं तासौं मन मांनां॥ ५७॥

दोहा

क्षर मांहे अक्षर लष्या, सतगुरु के जु प्रसाद।
सुन्दर ताहि विचारि तैं, छूटा सहज विषाद॥ ५८॥

॥ समाप्तोऽयं वावनी ग्रन्थः॥

---

(५३) इस छन्द में 'शेवक' 'शुरति' आदि शब्द चिंत्य हैं। 'शोरस, पीर' इसका पाठांतर='शेष रु पीर' उत्तम है। सिया=शिया मतके मुसलमान।

(५४) हाल हाल होइ=प्रतिक्षण, निरन्तर। अथवा सूफियों के भक्ति-मग्न होकर वेसुध हो जाने को 'हाल' आना कहते है वह हाल।

(५५) क्षाल=स्नान—'वीचि क्षालित' यथा। क्षाली=ख्याली, होशियार।

(५७) षिरै नहीं=अक्षर=अ+क्षर=अ, नहीं और क्षर खिरना वा मिटना। ईश्वर, अव्यय।

गुरुदया षट्पदी

अथ गुरुदया षट्पदी

दोहा

अलष निरंजन वन्दिकैं गुरु दादू के पाइ।
दोऊ कर तब जोरि करि सन्तन कौं सिर नाइ ॥ १ ॥
सुन्दर तोहि दया करी सतगुरु गहियौ हाथ।
माता था अति मोहि मैं राता विषया साथ ॥ २ ॥

त्रिभंगी

तौ मै मत माता विषया राता वहिया जाता इन वाता।
तब गोते पाता बूडत गाता होती घाता पछिताता ॥
उनि सब सुख दाता काट्यौ नाता आप विधाता गहि लेला।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला ॥ १ ॥
तौ सतगुरु आया पंथ बताया ज्ञान गहाया मन भाया।
सब कृत्रिम माया यौं समुझाया अलष लषाया सच पाया ॥
हौं फिरता धाया उनमुनि लाया त्रिभुवन राया दत देला।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला ॥ २ ॥

(ग्रन्थ गुरु दया षट्पदी)

(२) राता=रत, अनुरक्त। फंसा हुआ।

(त्रिभंगी) (१) गहिलेला=पकड़ लिया, उद्धार कर दिया। चेतनि भेला=चेतन में मिला हुआ, जीवन्मुक्त। मारग बूझेला=सच्चे रास्ते को समझ लिया। गुरु कृपा और उपदेश से सन्मार्ग में प्रवृत्ति हो गई।

(२) उनमुनि=उन्मनी अवस्था—योग में वृत्ति-हीनता की संज्ञा अथवा उन्मुनी मुद्रा। दत देला=ईश्वररूपी धन का दान देनेवाला।

तौ माया बटके कालहि झटके लै करि पटके सब गटके।
ये चेटक नटके जानहिं तटके नैंक न अटके वै सटके॥
जौ डोलत भटके सतगुरु हटके बन्धन घटके काटेला।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला॥ ३॥
तौ पाई जरिया सिर परि धरिया बिस ऊपरिया तन तिरिया।
जौ अब नहिं डरिया चञ्चल थिरिया गुरु उच्चरिया सो करिया॥
तब उमग्यौ दरिया अमृत झरिया घट भरिया छूटौ रेला।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला॥ ४॥
तौ देष्यौ सीना मांझ नगीना मारग झीना पग हीना।
अब हौ तूं दीना दिन दिन छीना जल बिन मीना यौं लीना॥
जौ सो परवीना रस मैं भीना अन्तरि कीना मन मेला।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला॥ ५॥
तौ बैठा छाजं अन्तरि गाजं रण मैं राजं नहिं भाजं।
जौ कीया काजं जोड्या साजं तोडी लाजं यह पाजं॥

---

(३) इस छन्द में 'टके' अन्त्यानुप्रास से शब्द-लालित्य बढ़ाया है। गुरु की कृपा से ज्ञान और कर्म में इतने बढ़ चढ़ गये कि माया को बटके=टुकड़े टुकड़े कर दी, काल शत्रु को झटके से हटा दिया या फौरन् गिरा कर जीत लिया और गटके=(मानों) खा लिया। चेटक=तमाशा, परच्या। नट जैसे खेल में अद्भुत बातें दिखाता है वैसे गुरु ने दिखाई। तटके=जो संसारसागर के पार (पैलीपार) जा बैठे-तरणतारन महात्मा लोग। अटके=रुके। सटके=मायाजाल में से चतुराई से निकल खिसके। भटके=फिरते फिरे—कुमार्ग में भ्रमते फिरे। हटके=कुमार्ग से रोका।

(४) जरिया=जड़ी (ज्ञान की औषधि) थिरिया=स्थिरता प्राप्त हुई।

(५) सीना=अन्तःकरण (फा०)। पग हीना=(मुझे चलने की शक्ति नहीं, पंगु हूं)। हौ=होजा, बनजा। दीना=दीन अभिमान रहित, आपा मार। छीना=क्षीण, छीन। यौं लीना=इस प्रकार से तल्लीन हो जा।

उनि सब सिरताजं तवहि निवाजं आनन्द आजं अक्केला ।
दादू का चेला चेतनि भैला सुन्दर मारग बूझैला ॥ ६ ॥

॥ समाप्तोऽयं गुरुदयाषट्पदी ग्रन्थः ॥

---

(६) छाजं=छाजै, सोहै । गाजं=गर्जना करै, अर्थात् माया से निर्भय होकर ललकारै । राजं=राजै, युद्ध करने में वीरोचित कार्य्य करता सुन्दर प्रतीत होवै । पाजं=(यहां) वंधन, क्योंकि पाज भी वांधी जाती है । तवहि निवाजं=इस ही लिये अथवा तुरन्त उद्धार करनेवाला है । अक्केला=अकेला, अद्वितीय—उस जैसे काम करने में कोई नहीं ।

भ्रम विध्वंस अष्टक

अथ भ्रम विध्वंस अष्टक

दोहा

सुन्दर देष्या सोधि कैं सब काहू का ज्ञान।
कोई मन मानै नहीं बिना निरंजन ध्यान॥ १॥
षट दरसन हम षोजिया योगी जंगम शेष।
सन्यासी अरु सेवडा पण्डित भक्ता भेष॥ २॥

त्रिभंगी

तौ भक्त न भावै दूरि बतावैं तीरथ जावैं फिरि आवैं।
जी कृत्रिम गावैं पूजा लावैं झूठ दिढावैं बहिकावैं॥
अरु माला नावैं तिलक बनावैं क्यौं पावैं गुरु बिन गैला।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै पैला॥ १॥
तौ योगी गहिला देषे सहिला नांहीं लहिला वो महिला।
वै मांस भषैला मद पीवैला भूत जपैला पूजैला।
जी गोरष कहिला सोनक रहिला बिनहीं चहला बीधेला॥
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै पैला॥ २॥

(भ्रमविध्वंस में)

(२) सेवड़ा=जैन यती, ढूंढिया आदि।

(१) दूरि बतावैं=ईश्वर का स्थान दूर के तीर्थादि में बताते हैं (भक्तलोग)। पूजा लावैं—मूर्त्तियों की पूजा करैं वा करावैं। और उनकी सबही साधना बाहरी है। माला नावैं—माला फेर कर नाम राम का लेवैं।

(२) गहिला=बावला। वा योगी ग्रहण किया। महिला=महल। भगवान का सच्चा स्थान (हृदय—अन्तरात्मा) जपैला, पूजैला=जपैंगे और पूजैंगे। स्मशान आदि में शव पर मन्त्र-सिद्धि। गोरष कहिला=गुरु गोरखनाथ के अनुयायी योगी कहावैंगे।

नौ तपी सन्यासी राप लगासी जटा वधासी भटकासी ।
जब जोवन जासी धौला आसी तब करि दासी बैठासी ॥
सब अकलि गमासी लोक हसासी माया पासी अरभ्फेला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै पेला ॥ ३ ॥
नौ जंगम अंगा लडिकैं लिंगा फिरै कुढङ्गा शिव मगा ।
वैं डसैं अनङ्गा वडे भुजंगा दीप पतंगा सर्वंगा ॥
पुनि नांही चङ्गा देषे रङ्गा उनकौ संगा छाडेला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै पेला ॥ ४ ॥
नौ अरहत धरमी भारी भरमी केश उपरमी वेशरमी ।
जौ भोजन नरमी पावै पुरमी मनमथ करमी अति उरमी ॥
अरु दृष्टि सु चरमी अन्तिर गरमी नाहीं मरमी गहि ठेला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै पेला ॥ ५ ॥

वा गोरख जगावेंगे घर-घर जाकर। सोनक रहिला=सब केश, पंच केश, रक्खेंगे। इस प्रक्रिया को 'सोनकादि' ऐसा नाम देते हैं। सिख धर्म के अनुसार हजामत न कराने की आदि यहीं से है। चहला=चाहेंगे। उन ही मतवालों को अधिक चाहैंगे। बंधेला=उदासी नागे साधुओं में मूत्रेन्द्रिय को तांबे की कड़ी से बाँध देते हैं। यह दृढ ब्रह्मचर्य है मानों।

(३) अरभेला=उरभैंगे। डालैंगे गले में।

(४) जंगम=एक सम्प्रदाय योगियों की। लिंगा लिंगायतिक मत के योगी। कुढंगा=बुरे ढंग से। बुरे वेश में। शिव मंगा=सदाशिव ही के नाम से भीख मांगते हैं। डसैं=कटावैं। अनंगा=(यहां) नग्न। भुजङ्गा=सर्प। सर्प डसालैं और नहीं मरैं। दीप पतंगा=अग्नि में चलैं परन्तु न जलैं—(जैसे बीकानेर में एक प्रकार के साधु)। रङ्गा=उनके रङ्ग ढङ्ग देख उनका साथ छोड़ा।

(५) अरहत धरमी=जैन। उपरमी=लुञ्चन करनेवाले। पुरमी=खुरमा—एक उत्तम पकवान। अति उरमी=बहुत प्रपंचवाले अर्थात् त्यागी वेश धारण कर लेने पर

तौ शेष मुलाना पढैं कुराना पच्छिम जाना उनि ठाना।
जी भांगि भुजाना वगनी छाना भये दिवाना सैताना॥
अरु जीव दुषाना दरद न आना कह्या न माना वरजेला।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै पेला॥ ६॥
तौ पंडित आये वेद भुलाये षटक रमाये त्रपनाये।
जी संध्या गाये पढि उरझाये रानाराये ठगि पाये॥
अरु वड़े कहाये गर्व न जाये राम न पाये थाघेला।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै पेला॥ ७॥
तौ ए मत हेरे सर्वहिन केरे गहि गहि गेरे वहुतेरे।
तव सतगुरु टेरे कानन मेरे जाते फेरे आघेरे॥
उन सूर सवेरे उदै कियेरे सवै अंधेरे नाशेला।
दादू का चेला भरम पछेला सुन्दर न्यारा ह्वै पेला॥ ८॥

छप्पय

सतगुरु मिले सुजान श्रवन जिनि शब्द सुनाया।
सिर पर दीया हाथ भरम सब दूरि उड़ाया॥

भी षड्ऊर्मियों में पड़े हुए। षडूर्मी—छह ऊर्मियां ये हैं—शोक, मोह, वुढ़ापा, मृत्यु, भूख और प्यास। चरम=चर्मदृष्टि वे कहाते हैं जो वहिरङ्ग में ही रहते हैं अन्तर्दृष्टि नहीं पाते। अन्तिर गरमी=अन्दर काम की आग है। दमन नहीं कर सके। गहि ठेला=मरम (रहस्य) न पाकर योंही ठेले रहे—साधु वन गये। वृथा। वा ठेला (मुख्य साधन) न पाकर।

(७) त्रपनाये=तर्पणादि (उपाकर्मादि) किये। थाघेला=थाग वा पता लग गया, अन्दाजा हो गया। गेरे=डाल दिये, त्याग दिये। आ घेरे=आकर घेर लिया, रोक लिया (कुमार्ग की ओर से)। (छप्पय)—यह सुन्दरदासजी के शिष्य होने का द्योतक है, जव दादूजी द्यौसा में फतहपुर सीकरी से लौटते द्यौसा के पास ठहरे

उपज्या आतम ज्ञान ध्यान अभिअंतरि लागा।
किया ब्रह्म सौं नेह जगत सौं तोर्या तागा॥
तौं राम नाम दत्त पाइया छूटे बाद बिवाद तें॥
अब सुन्दरदास सुखी भये गुरु दादू परसाद तें॥ १॥

॥ समाप्तोऽयं भ्रम विध्वंस अष्टक ग्रन्थः ॥

तब सुन्दरदासजी उनके शिष्य हुये। उनके पिता ने भेंट कर दिये। दादूजी ने उनके सिर पर हाथ धर कर उन्हें अपना लिया। दत्त=धन, दातव्यता से प्राप्त।

गुरु कृपा अष्टक

अथ गुरु कृपा अष्टक

दोहा

दादू सद्गुरु के चरण, अधिक अरुण अरविन्द।
दुःखहरण तारण-तरण, मुक्तकरण सुखकन्द ॥ १ ॥
नमस्कार सुन्दर करत, निश दिन वारंवार ॥
सदा रहौ मम सीस पर, सद्गुरु चरण तुम्हार ॥ २ ॥

त्रिभंगी

तौ चरण तुम्हारा प्राण हमारा तारण हारा भव पोतं।
जो गहै विचारा लगै न वारा विन श्रम पारा सो होतं॥
सब मिटै अंधारा होइ उजारा निर्मल सारा सुख राशी।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ १ ॥

दोहा

तन मन इन्द्री वशकरन ऐसा सद्गुरु सूर।
शंक न आनै जगत की हरि सौं सदा हजूर ॥ ३ ॥

त्रिभंगी

तौ सदा हजूरं अरि दल चूरं भागे दूरं भकभूरं।
तब बाजै तूरं आतम मूरं झिलि मिलि नूरं भरपूरं ॥
पुनि रहै अकूरं नांहीं ऊरं प्रेम हिलूरं वरपाशी।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ २ ॥

---

(१) प्राण हमारा=आपके चरणारविन्द हमको प्राण समान प्यारे हैं। क्योंकि वे संसार से तारनेवाली नावके समान हैं। सो होतं=सो पुरुष (पार) हो जाता है। सारा=सार, तत्व।

(२) भकभूरं=(रजवाड़ी ग्रामीण भाषा) वेतहाशा, तडाके बन्द, वे-

दोहा

दुन्द रहित निर्मल दशा सुख दुख एक समान ।
भेदाभेद न देपिये सद्गुरु चतुर सयान ॥ ४ ॥

त्रिभगी

तौ चतुर सयानं भेद न आनं अविचल थानं जिनि जानं ।
अरु सब भ्रम भानं नाहीं छानं पद निर्बानं मन मानं ॥
जौ रहै निदानं सो पहिचानं पूरण ज्ञानं मम आशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ ३ ॥

दोहा

सम दृष्टी शीतल सदा अद्भुत जाकी चाल ।
ऐसा सद्गुरु कीजिये पल मैं करै निहाल ॥ ५ ॥

त्रिभंगी

तौ करै निहालं अद्भुत चालं भया निरालं तजि जालं ।
सो पिवै पियालं अधिक रसालं ऐसा हालं यह ष्यालं ॥
पुनि वृद्ध न बालं करम न कालं भागे सालं चतुराशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ ४ ॥

दोहा

मनसा वाचा कर्मना सब ही सौं निर्दोप ।
क्षमा दया जिनके हृदै लीयें सत सन्तोप ॥ ६ ॥

लोग । वा, भोंडे लोग, अज्ञानी । बाजे तूरं=तूर (एक बाजा) बजना, विजय दुन्दुभी फतह के नकारे बजना । आतम मूरं=आतमा मूल में अर्थात् तत्वतः प्राप्त होने से । अकूरं=अंकुर, बीजारोपण । ऊरं=बहुत बड़ा नहीं, पौधा ही है । हिलूरं=हिलोरा, बहाव, लहर । मेह की बौछाड़ वा झड़ी ।

(३) निदानं=आदि कारण संसार का, वा अन्त निश्चय । आशी=आवैगा, मिलैगा ।

(४) सालं=साल, कांटा—जन्म मरण का ।

त्रिभंगी

तौ सत सन्तोषं है निर्दोषं कतहुं न रोषं सब पोषं ।
पुनि अन्तह कोषं निर्मल चोषं नांहीं धोषं गुन सोषं ॥
तिहिं सम सरि जोषं कोइ न होषं जीवन मोषं दरसाशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ ५ ॥

दोहा

भान उदै ज्यौं होत ही रजनी तम कौ नाश ।
सुखदाई सद्‌गुरु सदा जिन कै हृदै प्रकाश ॥ ७ ॥

त्रिभंगी

तौ हृदै प्रकाशं रटतै स्वासं भया उजासं तम नाशं ।
पुनि धर आकाशं मध्य निवासं कीया वासं अनयाशं ॥
सो है निज दासं प्रभु कै पासं करत विलासं गुणगासी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनासी ॥ ६ ॥

दोहा

सद्‌गुरु प्रगटे जगत मैं मानहुं पूरण चन्द ।
घट मांहि घट सौं पृथक लिप्त न कोऊ द्वन्द ॥ ८ ॥

---

(५) सब पोषं=सब (शिष्यादि भक्त भावुक जनों को) तुष्टि और आश्रय। अन्तह कोषं···=अन्तःकरण का भण्डार विकार-रहित और चोषं=उत्तम (कसौटी चढा वा परखा हुआ द्रव्य समान) है। नाहीं धोषं=(कपटी साधुओं की तरह) किसी प्रकार का आडम्बर वा झूठी दिखावट नहीं है। गुन सोषं=गुण निःशेष हो चुके। अर्थात् इन्द्रिय और मन को जीत लिया गुणों पर अधिकारी हो गये। सम सरिजोषं=जोश (आवेश, मनके उफान) के अवसर पर भी शांति और समवृत्ति रखनेवाले। होषं=हविस, इच्छा। मोषं=मोक्ष (जीवन्मुक्ति)।

(६) धर-धारणा ध्यान। आकाशं=निराकार। अनयाशं=अनायास, सहज (समाधि)

त्रिभंगी

तौ लिप्त न द्वन्द्वं पूरण चन्दं नित्यानंदं निस्पंदं ।
सो गुरु गोविंदं एक पसन्दं गावत छंदं सुखकन्दं ॥
जे हैं मतिमन्दं बीधे फंदं वै सब रिंदं सुरझासी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ ७ ॥

दोहा

सद्गुरु सुधा समुद्र है सुधामई है नैंन ।
नष शिष सुधा स्वरूप पुनि सुधा सु बरषत बैंन ॥ ६ ॥

त्रिभंगी

तौ जिनिकी बांनी अमृत वपांनी संतनि मांनी सुखदांनी ।
जिनि सुनि करि प्रानी हृदये आनी बुद्धि थिरांनी उनि जांनी ॥
यह अकथ कहानी प्रगट प्रवानी नांहिन छांनी गंगासी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ ८ ॥

छप्पय

सद्गुरु ब्रह्मस्वरूप रूप धारहिं जग माहीं ।
जिनके शब्द अनूप सुनत संशय सब जांहीं ॥
उर मंहि ज्ञान प्रकाश होत कछु लगै न वारा ।
अन्धकार मिटि जाइ कोटि सूरय उजियारा ॥
दादू दयाल दह दिश प्रगट झगरि झगरि द्वै पष थकी ।
कहि सुन्दर पंथ प्रसिद्ध यह संप्रदाय परब्रह्म की ॥ १ ॥

॥ समाप्तोऽयं गुरु कृपाष्टक ग्रन्थः ॥

---

(७) निसंदं=निश्चेष्ट, शांत । बीधे=बिगड़े, टूटे ।

(८) गंगासी=गंगा समान (अमृत लहरी) ।

छप्पय(१) रूप धारहिं=गुरु ब्रह्मका अवतार वा अंश हो कर प्रगट होता है । सूरय=सूर्य ।

गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक

अथ गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक

दोहा

दादू सद्गुरु सीस पर, उर मैं जिनकौ नाम।
सुन्दर आये सरन तकि, तिन पायौ निज धाम॥ १॥
वहे जात संसार मैं, सद्गुरु पकरे केश।
सुन्दर काढे डूबतें, दै अद्भुत उपदेश॥ २॥

गीतक

उपदेश श्रवन सुनाइ अद्भुत हृदय ज्ञान प्रकाशियौ।
चिरकाल कौ अज्ञान पूरन सकल भ्रम तम नाशियौ॥
आनंददायक पुनि सहायक करत जन निःकाम है।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं॥ १॥

दोहा

सुन्दर सद्गुरु हाथ मैं, करडी लई कमांन।
मार्‌यौ पैंचि कसीस करि, वचन लगाया बांन॥ ३॥

गीतक

जिनि वचन वान लगाइ उर मैं मृतक फेरि जिवाइया।
मुख द्वार होइ उचार करि निज सार अमृत पिवाइया॥
अत्यन्त करि आनन्द मैं हम रहत आठौं जाम हैं।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं॥ २॥

---

(२) वहेजात......=ऐसे वचन अन्य कई स्थानों पर सुन्दरदासजीने लिखे हैं।

(३) कसीस करि=वांण विद्यावालोंका मुहाविरा है। 'कशिश' (खूब खैंचतान) करके।

(गीतक २) मृतक फेरि जिवाइया......—मार कर जिलाना यह चमत्कार

दोहा

सुन्दर सद्गुरु जगत मैं, पर उपगारी होइ।
नीच ऊंच सब ऊधरै, सरनै आवै कोइ ॥ ४ ॥

गीतक

जो आइ सरनैं होहि प्रापति ताप तिन तिन की हरै।
पुनि फेरि बदलैं घाट उनकौ जीव तैं ब्रह्महिं करैं॥
कछु ऊंच नीच न दृष्टि जिनकै सकल कौ बिश्राम हैं।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनांम हैं॥ ३ ॥

दोहा

सुन्दर सद्गुरु सहज मैं, कीये पैली पार।
और उपाइ न तिर सकै, भवसागर संसार॥ ५ ॥

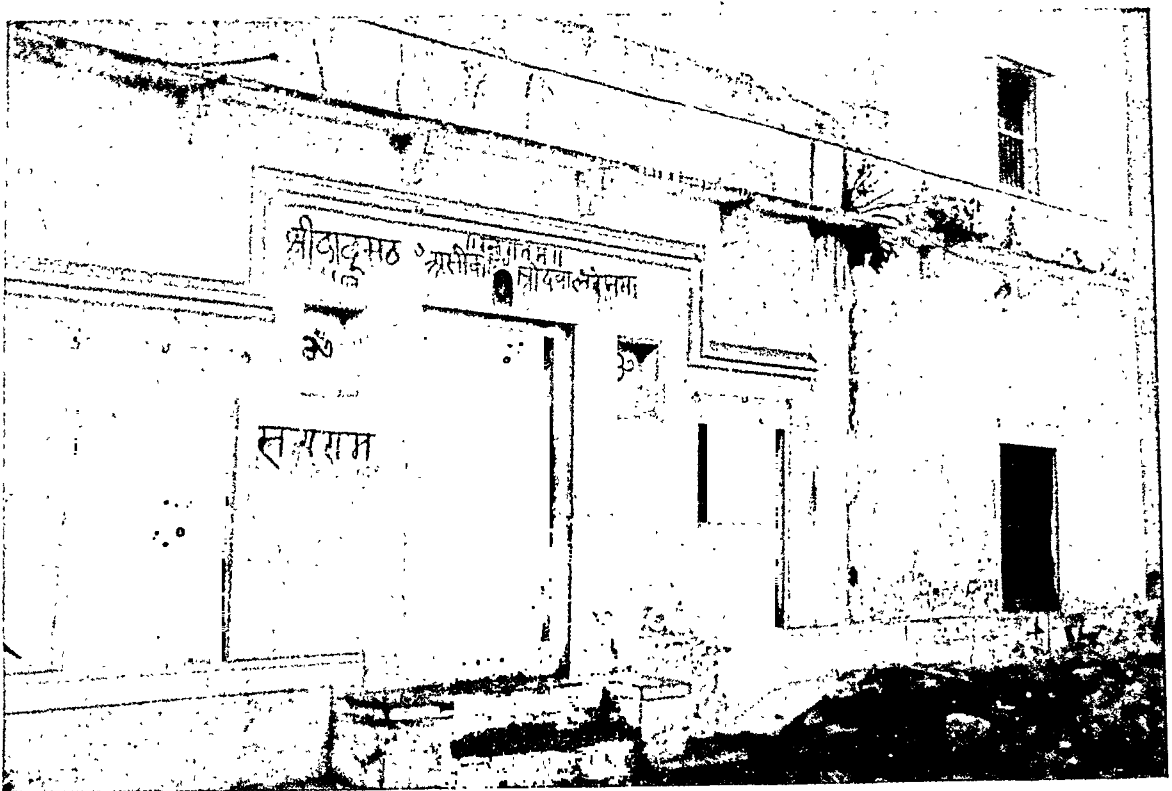
गीतक

संसार सागर महा दुस्तर ताहि कहि अब कौ तरै।
जो कोटि साधन करै कोऊ वृथा ही पचि पचि मरै॥

है। यहां वही आपा (अहंकार) मारना अभिप्रेत है। होइ=(मुख रूपी द्वारे होकर) निजसार=अत्यन्त सार, ठेठ सार, सारका भी सार। वा निज=आत्मा (उसका सार आत्म ज्ञान)। आनंद मैं हम......—इस शब्द-विन्यास में मैं के पीछे 'हम को' यह शब्द भावार्थ में लगाइये। फिर 'इसलिये' पढ़कर 'हम रहत' पढिये। अर्थात् 'हमको आनन्द में मग्न कर दिया इस लिये हम आनन्द में......'। अथवा—'हम अत्यन्त करि आठों जाम आनन्द में' यह अन्वय ठीक है।

(४) ऊधरैं=उद्धारैं-उद्धार करैं। (गी० छन्द ३) पुनि, फेरि=फेरि (क्रिया) फेर कर। घाट=स्वरूप।

(दो० ५) भव सागर संसार=संसार जो भवसागर कहाता है। भवसागर की संसृति।



दादू मठ, काशी ।

जिनि विना परिश्रम पार कीये प्रगट सुखके धाम हैं।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं ॥ ४ ॥

दोहा

सुन्दर सद्गुरु यौं कहै, याही निश्चय आंनि।
जो कछु सुनिये देपिये, सर्ब स्वप्न करि जांनि ॥ ६ ॥

गीतक

यह स्वप्न तुल्य दिषाइये जे स्वर्ग नरक उभै कहैं।
सुख दुःख हर्ष विषाद पुनि मानापमान सबै गहैं ॥
जिनि जाति कुल अस बर्ण आश्रम कहे मिथ्या नाम हैं।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रणाम हैं ॥ ५ ॥

दोहा

सुन्दर सद्गुरु यौं कहै, सत्य कछू नहिं रंच।
मिथ्या माया बिस्तरी, जो कछु सकल प्रपंच ॥ ७ ॥

(छं० ४) विना परिश्रम=सहज ही। (यम, नियम, तप वा घोर साधन के विना ही)।

(छं० ५) यह स्वप्न तुल्य...यह छन्द श्री दयाल के एक सिद्धांत का वर्णन है।

(दो० ७) मिथ्या माया—यह पंचादि तत्वों की वनी हुई सृष्टि सत्य (नित्य वा अक्षर) नहीं है न चिदात्मक है। यह क्षर और अनित्य होने से मिथ्या (दीखने मात्र) जादूगरका सा ख्याल है। न सत् है न असत् है। अनिर्वचनीय है जो किसी भांति भी कहने वा समझने में नहीं आती है। जैसे स्वप्न जो न झूठा ही है न सचा ही। क्योंकि यदि सचा होय तो जाग्रत में भी दीखा चाहिये और झूठा (अनहुआ) होय तो हुआ क्या प्रतीत हुआ, न होता तो निद्रा की अवस्था में क्या भासमान हुआ।

गीतक

उपज्यौ प्रपंच अनादि कौ यह महामाया विस्तरी।
नानात्व ह्वै करि जगत भास्यौ बुद्धि सबहिन की हरी।
जिनि भ्रम मिटाइ दिपाइ दीनौ सर्व व्यापक राम है।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं॥ ६॥

दोहा

सुन्दर सद्गुरु यौं कहै, भ्रम तें भासै और।
सींप मांहि रूपो द्रसै, सर्प रज्जु की ठौर॥ ८॥

गीतक

रज्जु मांहि जैसैं सर्प भासै सीप मैं रूपौ यथा।
मृग तृष्निका जल बुद्धि देषै विश्व मिथ्या है तथा॥
जिनि लख्यौ ब्रह्म अखंड पद अद्वैत सबही ठाम है।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं॥ ७॥

दोहा

सुन्दर सद्गुरु यौं कहै, मुक्त सहज ही होय।
या अष्टक तें भ्रम मिटै, नित्य पढै जे कोय॥ ९॥

(छ० ६) उपज्यो प्रपंच अनादि......अनादि को—उत्पत्ति जिसकी अज्ञात सी है। महा=बड़ी शक्तिवाली, विशाल। नानात्व=नाना रूप, गुण कर्म स्वभावादि के भूत पदार्थ वा व्यक्तियां। राम=ब्रह्म।

(दो० ८) रूपो...रज्जु=ये दोनों उदाहरण माया की मिथ्या प्रतीत के हैं, जिनसे यथार्थ पदार्थ ही अज्ञान (भ्रम) से अयथार्थ जाना जाता है।

(छन्द ७) छन्द ७ के आदि में 'रज्जु' को 'रजु' ऐसा उच्चारण करना चाहिये जिससे छन्द का भंग न होने पावै। मृगतृष्णिका=मृगतृष्णा वा मरीचिका—जो मरुआदि के थल के टीबों में धूप के समय जल सा प्रतीत हो, जिसकी प्राप्ति में वे भाग कर प्राण दे देते हैं। यह तीसरा उदाहरण माया की मिथ्या रूपता का है।

गीतक

जौ पढै नित प्रति ज्ञान अष्टक मुक्त होइ सु सहज ही।
संशय न कोऊ रहै ताकै दास सुन्दर यह कही॥
जिनि ह्वै कृपाल अनेक तारे सकल विधि उद्दाम हैं।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रनाम हैं॥ ८॥

दोहा

सुन्दर अष्टक सब सरस, तुम जिनि जानहुं आन।
अष्टक याही कहै सुनै, ताकै उपजै ज्ञान॥ १०॥

॥ समाप्तोऽयं गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक ग्रन्थः॥

(छ० ८) उद्दाम=स्वतंत्र, महान्।

गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक

अथ गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक

दोहा

परमेश्वर अरु परम गुरु, दोऊ एक समांन।
सुन्दर कहत विशेष यह, गुरुतें पावै ज्ञांन॥ १॥
दादू सद्गुरु के चरन, वंदत सुन्दरदास।
तिनि की महिमा कहत हौं, जिनि तें ज्ञान प्रकाश॥ २॥

भुजङ्गप्रयात

प्रकाशं स्वरूपं हृदै ब्रह्म ज्ञानं, सदाचार येही निराकार ध्यानं।
निरीहं निजानंद जाने जगादू, नमो देव दादू नमो देव दादू॥ १॥
अछेदं अभेदं अनंतं अपारं, अगाधं अवाधं निराधार सारं॥
अजीतं अभीतं गहे हैं समादू, नमो देव दादू नमो देव दादू॥ २॥
हते काम क्रोधं तजे काल जालं, भगे लोभ मोहं गये सर्व सालं॥
नहीं द्वन्द कोऊ डरै हैं जमादू, नमो देव दादू नमो देव दादू॥ ३॥

गुरुदेव महिमास्तोत्र में गुरु को ईश्वर समान ही नहीं उससे भी बढ़ कर कहा है। 'गुरु गोविन्द दोनूं खड़े किसके लागों पाय। वलिहारी गुरुदेव की सतगुरु दिया मिलाय' इत्यादि साधुओं में गुरु की महिमा बहुत भारी है। यही ज्ञान की प्राप्ति में श्रद्धा और विश्वास द्वारा मुख्य हेतु है।

(१) सदाचार येही=चार वा साधन सदा ये ही है। वा उनके मत में अन्य सदाचार के साधन की अपेक्षा नहीं—केवल ब्रह्म का ध्यान ही। निरीहं=काम रहित। जुगादू=सनातन। प्राचीन।

(२) समादू=समादिषट् सम्पत्ति के साधक। वा समाधि योग की।

(३) सालं=(शाल्य) कांटे, द्वन्द वा शंका संदेह के शूल। जमादू=यमराज आदि।

गुणातीत देहादि इन्द्री जहां लौं, किये सर्व संहार वैरी तहां लौं ॥
महा सूर धीरं नहीं को विषादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥ ४ ॥
मनो काय वाचं तजें है विकारं, उदै भान होतें गयौ अंधकारं ॥
अजोन्यं अनायास पाये अनादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥ ५ ॥
क्षमावंत भारी दयावन्त ऐसे, प्रमाणीक आगं भये संत जैसे ॥
गह्यौ सत्य सोई लह्यौ पंथ आदू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥ ६ ॥
किये आप आपं बड़े तत्व ज्ञाता, बड़ी मौज पाई नहीं पक्षपाता ॥
बड़ी बुद्धि जाकी तज्यौ है विवादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥ ७ ॥
पढ़ै याहि नित्यं भुजंगप्रयातं, लहै ज्ञान सोई मिलै ब्रह्मतातं।
मनो कामना सिद्धि पावै प्रसादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ॥ ८ ॥

दोहा

परमेश्वर महिं गुरु बसै परमेश्वर गुरु मांहिं।
सुन्दर दोऊ परसपर भिन्न भाव सो नांहिं ॥ १ ॥
परमेश्वर व्यापक सकल घट धारें गुरुदेव।
घट कौं घट उपदेश दे सुन्दर पावै भेव ॥ २ ॥

॥ समाप्तोऽयं गुरुदेव महिमा स्तोत्राष्टक ग्रन्थः ॥

---

(५) अजोन्यं=दादूजी नदी में लोदीरामजी को प्राप्त हुए थे इससे वे अयोनिज (अजोन) थे।

(८) ब्रह्मतातं=तातैं, ब्रह्म पावै। अथवा तात, प्यारा ऐसा जो ब्रह्म सो पावै।

रामाष्टक

अथ रामाष्टक

मोहिनी*

आदि तुम ही हुते अवर नहिं कोइ जी।
अकह अति अगह अति वर्न नहिं होइ जी॥
रूप नहिं रेप नहिं श्वेत नहिं श्यामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥ १॥
प्रथम ही आप तें मूल माया करी।
वहुरि वह कुव्विकरि त्रिगुन ह्वै विस्तरी॥
पंच हू तत्व तैं रूप अरु नामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥ २॥

---

* कहीं यह 'स्रग्विणी' छन्द है। अथवा कहीं 'विपिनि तिल्का' नाम का छन्द है जिसमें १०+१० मात्रा पर विराम और अंत में रगण है। यदि सर्वत्र गणों का निभाव होता तो निशिपाल छन्द होता (पंदरा अक्षर और भ, ज, स, न, र गणका) परन्तु यह मात्रिक सा रह गया इस से २० मात्रा का। अथवा संकर वृत्त है। और मोहनी छन्द १५ अक्षर का और स, भ, त, य स गणों का होता है सो है नहीं।— इसका ऐसा लक्षण प्रगट हो रहा है कि आदिमें गुरु हो तो उसके आगे लघु हो फिर गुरु हो चाहे लघु। और अन्तमें लघु गुरु अवश्य हो। अन्त में रगण का भी नियम नहीं रहा। कहीं रगण कहीं सगण है।

(१) अगह=ग्रहण वा प्राप्त होना कठिन है जिसका। वर्न=वर्णन।

(२) कुव्विकरि=(पाठां० कुब्विकरि) यह अप्रशस्त शव्द है। इसका अर्थ विकृत होनेके लिए, फैल्ने के ल्यिे।

त्रिधि रजो गुण लियें जगत उतपति करै।
विष्णु सत गुण लियें पालना उर धरै॥
रुद्र तम गुण लिये संहरै धामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥ ३॥
इन्द्र आज्ञा लियें करत नहिं और जी।
मेघ वर्षा करैं सर्व्व ही ठौर जी॥
सूर शशि फिरत हैं आठ हूं जाम जी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥ ४॥
देव अरु दानवा यक्ष ऋषि सर्व्वजी।
साध अरु सिद्ध मुनि हौंहि निह गर्व्वजी॥
शेष हू सहस्र मुख भजत निष्कामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥ ५॥
जलचरा थलचरा नभचरा जन्तजी।
च्यारि हू पांनि के जीव अगिनन्तजी॥
सर्व्व उपजैं पपैं पुरुष अरु वामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥ ६॥
भ्रमत संसार कतहू नहीं वोरजी।
तीनहू लोक मैं काल कौ सोरजी॥
मनुष तन यह बड़े भाग्य तें पामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥ ७॥

---

(३) धामजी=धाम—प्रभाव, शक्ति, अवस्था या देवता विशेष।

(४) करत नहिं और जी=आज्ञा के विपरीत काम नहीं कर सकता।

(५) हौंहि निहगर्व्व=आपके भय से गर्व्व उनका नहीं रह सकता।

(६) वाम=स्त्री।

(७) वोर=ओर छोर, अन्त। सोर=शोर, जोरशोर। पाम जी=पाते हैं।

पूरि दशहू दिशा सर्ब्ब मैं आपजी।
स्तुति हि कौ करि सकै पुन्य नहिं पापजी॥
दास सुन्दर कहै देहु विश्रामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी॥ ८॥

॥ समाप्तोऽयं रामाष्टक ग्रन्थः॥

---

(८) पुन्य नहिं पाप जी=शुद्धावस्था में पुण्य-पाप का कुछ भेद ही नहीं रहता है। जब परमेश्वर सर्व व्यापक है और उसका वैसा ही स्पष्ट ज्ञान हो जाने पर यह अवस्था प्राप्त हो जाती है। यह अभिप्राय है। विश्राम=शान्ति, निर्विकल्पता।

नामाष्टक

अथ नामाष्टक

मोहिनी*

आदि तूं अन्त तूं मध्य तूं व्योमवत्।
वायु तूं तेज तूं नीर तूं भूमितत्॥
पञ्च हू तत्व तूं देह तैं ही करे।
हे हरे हे हरे हे हरे हे हरे॥ १॥

च्यारि हू पानि के जीव तैं ही सृजे।
जोनि हीं जोनि के द्वार आये वृजे॥
ते सबै दुःख मैं जे तुम्हैं वीसरे।
ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे॥ २॥

जे कछू ऊपजे व्याधि हू आधवे।
दूरि तूं ही करै सर्व जे बाधवे॥
वैद्य तूं औषधी सिद्ध तूं साधवे।
माधवे माधवे माधवे माधवे॥ ३॥

ब्रह्म तूं विष्णु तूं रुद्र तूं वेषजी।
इन्द्र तूं चन्द्र तूं सूर तूं सेषजी॥
धर्म तूं कर्म तूं काल तूं देशवे।
केशवे केशवे केशवे केशवे॥ ४॥

---

* यह स्रग्विणी छन्द है। देखो नोट ऊपर रामाष्टक पर।

(२) वृजे=गये। आये गये=जन्मे और मरे।

(३) आधवे=आधि-व्याधि। बाधवे=बाधित हो जांय, मिट जांय।

(४) वेष=सविशेष निर्विशेष। माधवे, केशवे, ईश्वरे आदि सुन्दरे पर्यंत

देव में दैत्य में ऋष्य में यक्ष में।
योग में यज्ञ में ध्यान में लक्ष में॥
तीन हूं लोक में एक तूं ही भजे।
हे अजे हे अजे हे अजे हे अजे॥ ५॥
राव में रङ्क में साह में चौर में।
कीर में काग में हंस में मोर में॥
सिंह में स्याल में मच्छ में कच्छये।
अक्षये अक्षये अक्षये अक्षये॥ ६॥
बुद्धि में चित्त में पिंड में प्राण में।
श्रोत्र में बैन में नैन में घ्राण में॥
हाथ में पाव में सीस में सोहने।
मोहने मोहने मोहने मोहने॥ ७॥
जन्म तें मृत्यु तें पुन्य तें पाप तें।
हर्ष तें शोक तें शीत तें ताप तें॥
राग तें दोष तें द्वन्द तें है परे।
सुन्दरे सुन्दरे सुन्दरे सुन्दरे॥ ८॥

॥ समाप्तोऽयं नामाष्टक ग्रन्थः ॥

शब्द सम्बोधन वा सप्तमी के अर्थ यथारुचि दे सकते हैं, भाषा विशेषता के अभिप्राय से।

(५) ऋष्य=ऋषियों में। भजे=भजन किया जाता है। अजे=हे अज, अजन्मा!

(६) कच्छये=अक्षये (अच्छये) से सानुप्रास के लिये ऐसा रूपान्तर है।

(८) सुन्दरे=इस शब्द में ईश्वर और कवि का नाम दोनों विदित होते हैं।

आत्मा अचलाष्टक

अथ आत्मा अचलाष्टक

कुण्डलिया

पांनीं चलस सदा चलै चलै लाव अरु बैल।
पांभी चलतौ देषिये कूप चलै नहिं गैल॥
कूप चलै नहिं गैल कहै सब कूवो चालै।
ज्यौं फिरतो नर कहै फिरै आकाश पतालै॥
सुन्दर आतम अचल देह चालै नहिं छांनीं।
कूप ठौर कौ ठौर चलत है चलस रु पांनीं॥ १॥
सृष्टि सवाई चलत है चलै न कबहू राह।
अपने अपने काम कौं चलै चौर अरु साह॥
चलै चौर अरु साह कहै सब मारग चालै।
जल हालत लगि पौंन कहै प्रतिबिंब हि हालै॥
सुन्दर आतम अचल देह आवै अरु जाई।
राह ठौर कौ ठौर चलत है सृष्टि सवाई॥ २॥

※ सुन्दरदासजी की ये कुण्डलियां 'गिरिधर कविराय' की कुण्डलियाओं और 'ऐन साहब' की कुण्डलिया तथा सतसई की कुण्डलिया 'अम्बिकादत्तजी' की तथा अन्य कुण्डलियों से किसी प्रकार भी कम नहीं अपितु अर्थ और अद्भुतता और चमत्कार में कुछ बढ़ कर प्रतीत होती है।

(१) चलस=चड़स। पांभी=कहीं भी (ग्राम्य उच्चारण)। गैल=हे गहला। बावला (रजवाड़ी ग्राम्यभाषा)। यह ग्रहग्रसित का अपभ्रन्श प्रतीत होता है।

(२) सवाई=सब ही। पाठान्तर "सवाई" लैं तो यह अर्थ होगा कि जीव अधिकतर। राह=रास्ता, मार्ग। 'राह' शब्द को पुल्लिङ्ग माना है। प्रतिबिम्ब=सूर्य—

तेल जरै बाती जरै दीपग जरै न कोइ।
दीपग जरता सब कहै भारी अचरज होइ॥
भारी अचरज होइ जरै लकरी अरु घासा।
अग्नि-जरत सब कहै होइ यह बडा तमासा॥
सुन्दर आतम अजर जरै यह देह विजाती।
दीपक जरै न कोइ जरत है तेल रु बाती॥ ३॥
बादल दौरे जात है दौरत दीसै चन्द।
देह संग तें आतमा चलत कहै मतिमन्द॥
चलत कहै मतिमन्द आतमा अचल सदाहीं।
हलै चलै यह देह थापि ले आतम मांहीं॥
सुन्दर चञ्चल बुद्धि संमभि तातें नहिं बौरे।
दौरत दीसै चन्द जात हैं बादल दौरे॥ ४॥
गङ्गा बहती कहत हैं गङ्गा वाही ठौर।
पानी बहि बहि जात है कहै और की और॥
कहै और की और परत है देपत पाडी।
गडी ऊपली कहै कहै चलती कौं गाडी॥

चन्द्र के बिम्ब की तसवीर वा छाया जो पानी में घंटों में दिखाई देती है। यह वेदान्त का प्रसिद्ध उदाहरण है कि आत्मा (सूर्य की तरह) एक है तो भी प्रतिबिम्ब की तरह घट-घट में भिन्न दिखती है।

(४) थापिले=स्थापित वा आरोपित कर ले। बौरे=हे बोरे, बावले। यदि 'बोरे' पाठ रक्खें तो अन्य वा भिन्न ऐसा अर्थ होगा कि बुद्धि की अस्थिरता वा अज्ञान के कारण वास्तविक पदार्थका ज्ञान नहीं होता है, वरना आत्मा निजस्वरूप से भिन्न (जड़) नहीं है।

(५) गंगा वाही ठौर=विष्णु की पाविनी शक्ति रूपी देवता श्री गंगाजी तो स्थिर है, जलधारा उनका स्थूल आकार बहता है। परत हैं देपत पाडी=यह नदी है,

सुन्दर आतम अचल देह हलचल ह्वै भंगा।
पांनी वहि वहि जाइ वहै कवहू नहिं गङ्गा ॥ ५ ॥
कोल्हू चालत सव कहैं समझि नहीं घट माँहिं।
पाटि लाठि मकडी चलै वैल चलै पुनि जांहिं॥
वैल चलै पुनि जांहि चलत है हांकन हारौ।
पेली घालत चलै चलत सव ठाट विचारौ॥
सुन्दर आतम अचल देह चञ्चल है मोल्हू।
समझि नहीं घट माँहि कहत है चालत कोल्हू॥ ६ ॥
विन जाने नर कहत हैं चल्यौ जाइ वाजार।
लोग चलै सव जात हैं हाट न चलै लगार॥
हाट न चलै लगार विचार कछू नहिं लहते।
नदी तीर के वृच्छ कहैं पांनी में वहते॥
सुन्दर आतम अचल देह यह चलै दिवाने।
चल्यौ जाइ वाजार कहत है नर विन जाने॥ ७ ॥

परन्तु जहां विशाल है वहां उसको खाडी (छोटा समुद्र) कहते हैं। गड़ी ऊषली कहे=ऊषलीमें श्लेष है—१ऊखली पत्थरकी, २ उखड़ी हुई। चलती कों गाड़ी=गाड़ी में श्लेष है—१ गाड़ी लकडी की शकटी, २ गड़ी हुई। इन उदाहरणों में सामान्य अर्थ वा ग्रन्थ के प्रयोजन से भिन्नता है।

(६) कोल्हू=गन्ने की घाणी। उसमें एक बीचमें चोंचदार लाठ होता है। उसके साथ दूसरी लकड़ी से कोल्हूसे भिड़ी पाठ होती है उसके साथ जुवेकी लकड़ी लगी रहती है। लाठकी चोंच पर एक गड्ढेदार लकड़ी का टूक जुड़ा रहता है उसही में लाठ फिरती है। इसी को मकड़ी कहते हैं।

(६) पेली—गन्ने के टुकड़े। मोल्हू=(अप्रशस्त शब्द है) मूर्ख, मोघा (मोल्या का विगड़ा रूप है)

(७) चल्यो जाइ वाजार='वाजार जारी है' वा 'हाट चलती है' यह वाजार वा

सब कोऊ ऐसें कहें काटत हैं हम काल।
काल नास सब को करै वृद्ध तरुन अरु बाल॥
वृद्ध तरुन अरु बाल साल सबहिन कैं भारी।
देह आपुको जानि कहत हैं नर अरु नारी॥
सुन्दर आतम अमर देह मरि है घर पोऊ।
काटत हैं हम काल कहत ऐसें सब कोऊ॥ ८॥

॥ समाप्तोऽयं आत्मा अचलाष्टक ग्रन्थः॥

हाट के जारी रहने और कारवार के होते रहनेके अर्थ में बोलचाल में आते हैं। न थकना वा बन्द रहने वा दिवाला निकल जाने के अभाव, वा विपरीत अर्थ, में है। लगार=लगाव मात्र, कुछ भी, थोड़ा भी। 'विचार' शब्द के होने से छन्द चिन्त्य होता है। वृक्ष पानी में वहते—ऐसा वहुत कम कहने-सुनने में आता है।

(८) घर पोऊ=देहके नाश का होना घर का नाश होना है। अथवा हे घर खोने वाले! अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति न करके मानों अपना नाश आप करने वाले पुरुष!॥

पंजाबी भाषा अष्टक

१८।१

अथ पंजाबी भाषा अष्टक

चौपइया

वहु दिलदा मालिक दिलदी जाणैं दिल मौं बैठा देषै ।
हुंण तिसनौं कोई क्यौं करि पावैं जिसदै रूप न रेषै ॥
वे गोस कुतव पैकम्बर थक्कै पीर अवलिया सेषै ।
भी सुन्दर कहि न सकै कोइ तिसनौं जिसदी सिफ्ति अलेषै ॥ १ ॥
वहु षोजनहारा तिसनौं पूछै जे बाहरि नौं दोडै ।
वे केई जाइ गुफा मौं बैठै केई भीजत चौडे ॥
भी दिठ्ठे सोक हजारनि दिट्ठे दिठ्ठे लष्षु करोडै ।
कहि सुन्दर षोजु बतावै प्रभुदा वै केई जग मैं थोडै ॥ २ ॥
भी उसदा षोजु करैं वहुतेरे षोजु तिणां दैं बोलै ।
वह भुल्लेनौं भुल्ला समुझावै सोभी भुल्ला डोलै ॥
वै जित्थैं कित्थैं फिरै विचारा फिरि फिरि छिल्लकु छोलै ।
कहि सुन्दर अपना वन्धनु कप्पै सोई वन्धनु षोलै ॥ ३ ॥
भी षोजे जती तपी संन्यासी सब्भो दिठ्ठे रोगी ।
वह उसदा षोजु न पाया किन्ही दिठ्ठे ऋषि मुनि योगी ॥

पंजाबी भाषा अष्टक—(१) दिलदा=दिलका (दा=का) । हुंण=इस समय । गोस=फर्याद सुननेवाला या कुतुब । कुतुब=सरदार धर्मका । पैकंबर=पैगंबर । मुसलमानों का अवतार । अवलिया=औलिया, धर्माचार्य । सेषै=शैख, मुसल्मानोंके पण्डित ।

(२) सोक=सो, सैंकड़ों । दिट्ठे=देखे ।

(३) तिणां हैं=उनही के । बोलै=प्रगट होवैं । जित्थैं तित्थैं=जिधर, उधर । छिल्लकु=छिल्का । छिलका (कांदे प्याज आदिका) छोलना, वृथा वा असार काम करना । कप्पैं=काटै ।

वे बहुते फिरैं उदासी जग मौं बहुते फिरैं वियोगी ।
कहि सुन्दर कोई विरले डिठ्ठे अमृत रस दे भोगी ॥ ४ ॥
बहु षोजो बिना षोजु नहिं निकलै षोजु न हथ्थौं आवै ।
पंषीदा षोजु मीनदा मारगु तिसनौं क्यौं करि पावै ॥
है अति बारीकु षोजु नहिं दरसै नदरि किथौं ठहरावै ।
कहि सुन्दर बहुत होइ जब नन्हां नन्हेनौं दरसावै ॥ ५ ॥
भी षोजत षोजत सभु जुग हंढ्या षोज किथौं नहिं पाया ।
तूं जिसनौं षौजै षोजतु सीमौं सतगुरु षोज बताया ॥
तैं अपना आपु सही जब कीता षोज इथां ही आया ।
जब सुन्दर जागि पया सुपनै थौं सभु संदेह गमाया ॥ ६ ॥
भी जिसदा आदि अन्तु नहिं आवै मध्य हु तिसदा नांहीं ।
वहु बाहिर भितरु सर्व निरंतरु अगम अगोचर मांहीं ॥
वह जागि न सोवै षाइ न भुष्पा जिसदै धुप्पु न छांहीं ।
कहि सुन्दर आपै आपु अखंडित शब्द न पहुंचै तांहीं ॥ ७ ॥
वे ब्रह्मा विष्णु महेस प्रलै मौं जिसदी पुसै न रूंहीं ।
भी जिसदा कोई पारु न पावै सेसु सहंस फणु मूंहीं ॥
भी यहु नहिं यहु नहिं यहु नहिं होवै इसदै परै सु तूंहीं ।
वेह जो अवशेष रहै सो सुन्दर सो तूंही सो हूंहीं ॥ ८ ॥

॥ *समाप्तोऽयं पंजाबी भाषाष्टकः* ॥

---

(४) सभ्भों=सब, सारे । वियोगी=वियोगी, वैरागी, विरक्त ।

(५) हथ्थौं=हाथों में (आना) प्राप्त होना । पंषा=पक्षी, परिंद । नदरि=नजर, दृष्टि । नन्हा=बारीक सूक्ष्म ।

(६) हंढ्या=फिरते फिरे । किथौं=कहीं भी । सही=निश्चय । कीता=किया । इथां=यहां ही । पया=पड़ा । थौं=से । (७) भितरु=भीतर, अंदर ।

(८) पुसै न रूंही=रूवां भी न उपडै, बालभी बांका न हो । सहंस फणु-मूंहीं=हजार फण के मुंहवाले । यहु नहिं ३=नेति ३ ।

ब्रह्मस्तोत्र अष्टक

अथ ब्रह्मस्तोत्र अष्टक

भुजंगप्रयात

अखण्डं चिदानन्द देवाधिदेवं। फणिन्द्रादि रुद्रादि इन्द्रादि सेवं।
मुनीन्द्रा कवीन्द्रादि चन्द्रादि मित्रं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्रं॥ १॥
धरा त्वं जलाग्नि मरुत्वं नभस्त्वं। घट त्वं पट त्वं अणुत्वं महत्वं।
मनस्त्वं वचस्त्वं दृग त्वं दृश त्वं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते समत्वं॥ २॥
अडोलं अतोलं अमोलं अमानं। अदेहं अछेहं अनेहं निधानं।
अजापं अथापं अपापं अतापं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमापं॥ ३॥
न ग्रामं न धामं न शीतं न चोष्णं। न रक्तं न पीतं न श्वेतं न कृष्णं।
न शेषं अशेषं न रेषं न रूपं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अनूपं॥ ४॥
न छाया न माया न देशो न कालो। न जाग्रन्न स्वप्तं न वृद्धो न बालो।
न हृस्वं न दीर्घं न रम्यं अरम्यं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं॥ ५॥

ब्रह्मस्तोत्र अष्टक—यह संस्कृत और हिन्दी भाषा मिश्रित है। दोनों का स्वाद देता है।

(१) फणींद्र=शेषनाग।

(२) मरुत्व=मरुत्=पवन, त्वं=तू। अणु=परमाणु, वैशेषिक मतसे सृष्टिका आदि कारण। महत्वं=महत् महत्तत्व सांख्य मतसे सृष्टि का आदि कारण। दृशत्वं=तूं सर्वत्र समान एक रस है।

(३) अनेहं=अन+इह=काम रहित वा नेह रहित। अमापं=माप रहित, अप्रमेय, असीम।

(४) चोष्णं=च+उष्णं, गर्म। रक्तं=लाल। पीतं=पीला।

(५) जाग्रन्न=जाग्रत नहीं। स्वप्तं=सुप्तं।

न बद्धं न मुक्तं न मौनं न वक्तुं । न धूम्रं न तेजो न यामी न नक्तं ।
न युक्तं अयुक्तं न रक्तं विरक्तं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अशक्तं ॥ ६ ॥
न रुष्टं न तुष्टं न इष्टं अनिष्टं । न जेष्ठं कनिष्ठं न मिष्ठं अमिष्ठं ।
न अग्रं न पृष्टं न तूलं गरिष्टं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अदृष्टं ॥ ७ ॥
न वक्त्रं न घ्राणं न कर्णं न अक्षं । न हस्तं न पादं न सीसं न लक्षं ।
कथं सुन्दरं सुन्दरं नामध्येयं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमेयं ॥ ८ ॥

॥ समाप्तोऽयं ब्रह्म स्तोत्राष्टकः ग्रन्थः ॥

---

(६) वक्तुं=वक्तुं शक्यःवक्ता । यामी=प्रहर । नक्तं=रात्रिमें रहनेवाला । रक्त=अनुरक्त । अशक्तं=शक्ति वा माया से भिन्न ।

(८) अमेय=अप्रमेय ।

पीर मुरीद अष्टक

अथ पीर मुरीद अष्टक

दोहा

सुन्दर षोजत षोजतें पाया मुरसिद पीर।
कदम जाइ उसके गहे देष्या अति गम्भीर॥ १॥

चामर*

औवलि कदम उस्ताद के मैं गहे दोऊ दस्त।
उनि मिहर मुझपर करी ऐसा ह्वै गया मैं मस्त॥
जब सषुन करि मुझ कौं कह्या तू वन्दिगी करि षूब।
इस राह सीधा जाइगा तब मिलैगा महवूब॥ १॥
तब उठि अरज उस्ताद सौं मैं करी ऐसी रौस।
तुम मिहर मुझपर करौ मुरसिद मैं तुम्हारी कौस॥
वह वन्दगी किस रौस करिये मुझै देहु बताइ।
वह राह सीधा कौन है जिस राह वन्दा जाइ॥ २॥
तब कहै पीर मुरीद सौं तूं हिरसरा वुगुजार।
यह वन्दगी तब होइगी इस नप्स कौं गहि मार॥

---

(१) औवलि=अव्वल, प्रथम, आदि में। दोऊ दस्त=दोनों हाथों से। मस्त=ज्ञानानन्द में निमग्न। सषुन=वात, वचन (कह कर)। महवूव=(अ०) प्रियतम-ईश्वर। इस अष्टक में वोलचाल वर्णन मुसलमानी वेदान्त—सूफी मत के अनुसार है।

(२) रौस=रविस, तरह से। कौस=(अप्रशस्त शब्द) फारसी में 'कौस' कमान को कहते हैं। यहां झुक कर दण्डवत करने का अर्थ लिया जा सकता है। वा कुरवान जानेका भी अर्थ हो सकता है। परन्तु कल्पनामात्र है। नम्रीभूत वा।

भी हुई दिल तें दूर करिये और कुछू न चाह।
यह राह तेरा तुझी भीतर चल्या तूं हीं जाइ ॥ ३ ॥
तब फिरि कह्या उस्ताद सों में राह यह वारीक।
क्यों चलै बन्दा विगार देंपे सवों सों फारीक ॥
अब मिहरि करि उस राह कों दिपलाइ दीजे पीर।
मुझ तलब है उस राह की ज्यों पिवै प्यासा नीर ॥ ४ ॥
तब कहै पीर मुरीद सेती वन्दगी है येह।
इस राह पहुंचै चुस्तदम करि नांव उसका लेह ॥
तूं नांव उसका लेहगा तब जाइगा उस ठौर।
जहां अरस ऊपर आप वैठा दूसरा नहिं और ॥ ५ ॥
तब कहै तालिब सुनों मुरसिद जहां वैठा आप।
वह होइ जैसा कहो तैसा जिसै माइ न वाप ॥
वैठा उठा कहिये तिसै औजूद जिसकै होइ।
वेचूंन उसको कहत हैं अरु वेनिमूंनें सोइ ॥ ६ ॥
जब कह्या तालिब सपुन ऐसा पीर पकरी मौन।
कौ कहेगा न कह्या न किन्हूं अब कहै कहि कौन ॥
तब देंपि वोर मुरीद की उन पीर मूंदे नैंन।
जो पूब तालिब होइगा तौ समझि लेगा सैन ॥ ७ ॥

---

(३) दिरसरा=हिर्स, इच्छा को (रा=को, फा०)। वुगुजार=(फा०) छोड़ दे। नफ्स=नफ्स, आपा। अहन्ता।

(४) कह्या...मैं=मैं (ने) कहा, यों अन्वयार्थ होगा। फारीक=निरन्तर (अ०)। न्यारा। मुझ=मुझको। पिवै...=ज्ञान की प्यास की शान्ति ज्ञानामृत पान से होगी।

(७) तालिब=जिज्ञासु। ये दो इशारे शिष्य को किये।

हैरान है हैरान है हैरान निकट न दूर।
भी सपुन क्यों करि कहै तिसकौं सकल है भरपूर ॥
सम्वाद पीर मुरीद का यह भेद पावै कोइ।
जो कहै सुन्दर सुनै सुन्दर उही सुन्दर होइ ॥ ८ ॥

॥ समाप्तोऽयं पीर मुरीद अष्टक ग्रन्थः ॥

——

(८) हैरान=विस्मित, चकित, अवाक्।—इस अष्टक में सूफी मत के अनुसार (१) शरीअत, (२) तरीकत (३) मारिफत (४) और हकीकत चार मंजिलों, मुकामों वा अवस्थाओं का वर्णन किया और कर दिखाया और सैनें भी दें दी और तालिब (जिज्ञासु) को लाभ भी हो गया। इन चारों अवस्थाओं वा उनके प्राप्त फलों को (१) मलकूत, (२) जबरूत, (३) लाहूत और (४) हाहूत वे लोग बोलते हैं ।

अजब ख्याल अष्टक

अथ अजब ख्याल अष्टक

दोहा

सिजदा सिरजनहार कौं मुरसिद कौं ताजीम।
सुन्दर तालिब करत हैं बन्दौं कौ तसलीम ॥ १ ॥
सुन्दर इस औजूद मौं अजब चीज है वाद।
तब पावै इस भेद कौं खूब मिलै उस्ताद ॥ २ ॥

गीतक

उस्ताद सिरपर चुस्त दम कर इश्क अल्लाह लाइये।
गुजरान उसकी वंदगी मौं इश्क विन क्यौं पाइये ॥

यह अजब ख्याल अष्टक भी पीरमुरीद अष्टक की नाईं सूफी फकीरों की भाषा ओर उनके ढङ्ग पर है। इसमें भी फारसी अरबी के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अजब ख्याल कहने से यह प्रयोजन है कि यह दुनिया अजायबात से भरी हुई है मानों एक ख्याल-खाना या अजायब घर है और उस मालिक परवरदिगार की महिमा सोचते-विचारते बहुत आश्चर्य प्रगट होते हैं। कुछ बुद्धि काम नहीं करती है। आश्चर्य तब ही होता है जब साधारण से विशेष वा अतिविशेष अद्भुत चमत्कारी पदार्थ दृष्टिगत हों।

(१) सिजदा=दण्डवत। सिरजनहार=स्रष्टा ('खालिक बारी सिरजनहार' स्मरण होता है)। मुरसिद=मुरशिद, गुरु। ताजीम=इज्जत और सद्भाव से शिष्टाचार। बन्दौं=ईश्वर भक्त, साधु सन्तजन। तसलीम=प्रणाम। औजूद=वजूद, शरीर काया। वाद=कलाम, वचन। मौं=मैं, अन्दर।

यह दिल फकीरी दस्तगीरी गस्त गुंज सिनाल है।
यौं कहत सुंदर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ख्याल है ॥ १ ॥

दोहा

सुंदर खरा एक सौं दिल मौं दूजा नेश।
इश्क महब्बति बंदगी सो कहिये दुरवेश ॥ ३ ॥

छंद

दुरवेश दर की खबर जानै दूर दिल की काफिरी।
दर दरदवंद परादरूनै उसी बीच मुसाफिरी ॥
है बेतमा इसमाइ हर्दम पाक दिल दर हाल है।
यौं कहत सुंदर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ख्याल है ॥ २ ॥

दोहा

सुंदर सीनैं बीच है बन्दे का चौगांन।
पहुंचावै उस हाल कौं इहै गोइ मैदान ॥ ४ ॥

(गीतक १) गुजरान=रहना, बरतना। दस्तगीरी=हाथ पकड़ना। गस्त=गश्त, फेरी, हुआ गुज सिनाल=गुआ, वा गुआर, वा गुह्य। सिनाल (अप्रशस्त है) कब्जदुन्दर=जिसका द्वन्द (द्वैत वा दुई) मिट गया, निर्द्वन्द कब्ज अरबी शब्द है (यथा 'रुह कब्ज होना')।

(२) (छन्द २) दुरवेश=यह इस शब्द से सांकेतिक वा श्लेषार्थ निकलता है—यथा (क) 'दुर' वा अन्दर में 'वेश' प्रवेश करै अर्थात् 'दर को वा दिल की खबर' रक्खै—और (ख) 'दुर' वा दूर 'वेश' बैठने वाला, अर्थात् ईश्वर से दूर रहना दिल की काफिरी वा राम विमुखता है। दरदवन्द=दर्दमन्द, दिल में परमात्मा के मिलने के विरह का दर्द। परादरूनै=खरा, साफ शुद्ध। दरूनैं=दरूँ, अन्तरङ्ग, अन्तःकरण। मुसाफिरी=फकीरी। बेतमा=निर्लोभ। इसमाइ=भगवन्नाम की रटना। दरहाल=हरवक्त निरन्तर। (दो० ४) गोइ=गेंद, दड़ी।

छंद

काव्दस्त इस मैदान मैं चौगांन षेलै षूब है।
असवार ऐसा तुरी वैसा प्यार उस महबूब है॥
इस गोइ कौं लै जाइकै पहुंचाइ दे उस हाल है।
यौं कहत सुंदर कब्ज दुंदर अजब ऐसा ख्याल है॥ ३॥

दोहा

सुंदर उसका नांव ले एक उसी की चाह।
रब्बु रहीम करीम वह वह कहिये अल्लाह॥ ५॥

गीतक

अल्लाह षुदाइ करीम कादिर पाक प्रवर्दिगार है।
सुविहान तूं सत्तार साहिब साफ सिरजनहार है॥
मुस्ताक तेरे नांव ऊपर षूब षूबां लाल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ख्याल है॥ ४॥

दोहा

सुन्दर इस औजूद मौं इश्क लगाई ऊक।
आशिक ठंडा होइ तब आइ मिलै माशूक॥ ६॥

छन्द

माशूक मौला हक्क ताला तूं जिमी असमान मौं।
है आव आतश वाद ष्यानै षवरदार जिहान मौं॥

(छन्द ३) काव्दस्त=चालाक, होशियार (काव=पांसा अरबी में कहते हैं। दस्त=हाथ)।

यहां गोइ (गेंद) से मन का अभिप्राय है। मन को ठोक ठाक कर (यम-नियम के डण्डे से) ईश्वर तक पहुंचा देना। उस हाल=उस अवस्था, परमगति, तुरीयातीत पद।

मालिक मलूक मालूम जिसकौं दुरस दिल हर साल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ख्याल है ॥ ५ ॥

दोहा

सुन्दर जो गाफिल हुवा तौ वह सांई दूर।
जो बन्दा हाजिर हुवा तौ हाजरां हजूर ॥ ७ ॥

छन्द

हजार हजूर कहैं गुसइया गाफिलों कौं दूर है।
निरसंध इकलस आप वोही तालिबां भरपूर है ॥
बारीक सौं बारीक कहिये बड़ौं बड़ा बिसाल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुंदर अजब ऐसा ख्याल है ॥ ६ ॥

दोहा

सुन्दर सांई हक्क है जहाँ तहाँ भरपूर।
एक उसी के नूर सौं दीसै सारे नूर ॥ ८ ॥

---

(५) रब्बु=रब्ब (अ०) पालनकर्त्ता। रहीम=दया करनेवाला। करीम=करम करनेवाला, देनेवाला।

(छन्द—४) कादिर=शक्तिधारी। सुबिहान=सुबहान=पाक, पवित्र। सत्तार=पर्दापोशी करनेवाला। मुस्ताक=इच्छुक।

(दोहा ६) ऊक=जलन, दाह, उग्रपिपासा।

(छन्द—५) म्यानैं=मियाने=अन्दर, अन्तर्यामी वा 'अर्थात्'। मलूक=फरिश्ते, देवतागण। दुरस दिल=दुरुस्त दिल=शुद्ध चित्त। हरसाल=सदा ही। जिस भक्त वा ज्ञानी का अन्तःकरण सदा शुद्ध रहता है उसको वह सर्व देवाधिपति ज्ञात होता है।

(छन्द—६) गुसइया=गोस्वामी, परमभक्त पहुंचवान सन्त। वा हे गुसांई! निरसन्ध=निःसन्धि, अखण्ड, पूर्ण। (निरसन्ध नूर अपार है तेज पुञ्ज सब मांहि—दादू वाणी, परचा अङ्ग) इकलस=एकरस, निरन्तर, इकसार। (पण्ड पण्ड निजनां भया इकलस एकै नूर—दादू वाणी, परचा का अङ्ग)।

(८) हक=सत्य। (दादू० परचा सा० ८९)

छन्द

उस नूर तैं सब नूर दीसै तेज तैं सब तेज हैं।
उस जोति सौं सब जोति चमकै हेज सौं सब हेज हैं॥
अफ्ताब अरु महताब तारे हुकम उसके चाल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ख्याल है॥ ७॥

दोहा

सुन्दर आलिम इलम सब षूब पढ्या आंषूंन।
परि उसकौं क्यौं कहि सकै जो कहिये वेच्यूंन॥ ९॥

छन्द

वेच्यूंन उसकौं कहत वुजरग वेनिमून उसै कहैं।
अरु औलिया अंबिया वैभी गोस कुतब षड़े रहैं॥
को कहि सकै न कह्या न किनहूं सषुन परै निराल है।
यौं कहत सुन्दर कब्ज दुन्दर अजब ऐसा ख्याल है॥ ८॥

दोहा

ख्याल अजब उस एक का सुन्दर कह्या न जाइ।
सषुन तहां पहुचै नहीं थक्या उरै ही आइ॥ १०॥

॥ समाप्तोऽयं अजब ख्याल अष्टक ग्रन्थः॥ २४॥

(छन्द—७) हेज=प्रेम। चाल है=चलते हैं।

(दोहा—९) आलिम=(अ०) विद्वान् ज्ञानी। आषूंन=(फा०) यह शब्द "आखुवन्द" का विगड़ा रूप है—जिसका अर्थ अध्यापक, पढ़ानेवाला है। अर्थात् पढानेवालों से खूब पढ़ा। वेच्यूंन=(फा०) वेचून—वे=विना, नहीं। चून=समान, वरावर। अर्थात् उपमारहित, अद्वैत, असमान।

(छन्द—८) वुजरग (फा०)=वुजुर्ग, वृद्ध, ज्ञानी पुरुष। वेनिमून (फा०)=वेनमूना, वेमिसाल, अनुपम। अम्बिया=(अ०) नवी शब्द का वहुवचन, पैगम्वर लोग। निराल=निराला, न्यारा।

ज्ञान झूलनाष्टक

अथ ज्ञान झूलनाष्टक

झूलना

उस्ताद के कदम सिर पै धरौं अब झूलना षूब बषानता हूं।
अरवाह मैं आप विराजता है वह जानका जान है जानता हूं॥
उसही के डुलायें डोलता हूं दिल षोलता बोलता मानता हूं।
उसही के दिषाये मैं देषता सुनता सुन्दर यौं पहिचानता हूं॥ १॥
कोई नीरै कहै कोई दूरि कहै आपु हि नीरै न दूर है रे।
दिल भीतर बाहर एक सा है असमान ज्यौं वो भरपूर है रे॥
अनुभव विना नहि जान सकै निरसन्ध निरन्तर नूर है रे।
उपमा उसकी अब कौन कहै नहिं सुन्दर चन्द न सूर है रे॥ २॥

(ज्ञानझूलनाष्टक)—झूलना छन्द—यहं वार्णिक और मात्रिक दोनों होता है और कई प्रकार का होता है। शुद्ध झूलना ७ सगण+१ यगण का है। यहां यह २४ अक्षर और अन्त यगण का है, और इसमें यगण सगण मिश्रित प्रायः है।

(१) अरवाह में—सूफीमत में 'मल्कूत' को 'मकामे अरवाह' कहा है—(अ०) 'रूह' का वहुवचन। आत्माओं में जान का जान=जीव का भी तत्वात्मा—"जान का जान है जिन्द का जिन्द है" (सवैया) जाग=जग्य, यज्ञ। विष्णु का नाम—"यज्ञो वै विष्णुः" (श्रुति)। यज्ञ एक साधन है।

(२) असमान=आसमान, आकाश—"यथाकाशस्थितो नित्यम्" (गीता)। निरसन्ध=(देखो ऊपर छन्द ६ अजब ष्याल में)। चन्द न सूर=न वह चांद है न सूरज। अर्थात् उनसे अत्यन्त अधिक तेजमान है क्योंकि ये उसको प्रकाशित नहीं नहीं कर सकते हैं।

कोई वार कहै कोई पार कहै उसका कहूं वार न पार है रे ।
कोई मूल कहै कोई डार कहै उसके कहूं मूल न डार है रे ॥
कोई सून्य कहै कोई थूल कहै वह सून्य हुं थूल निराल है रे ।
कोई एक कहै कोई दोइ कहै नहिं सुन्दर द्वन्द लगार है रे ॥ ३ ॥
कोई योग कहै कोई जाग कहै कोई त्याग वैराग बतावता है ।
कोई नांव रटै कोई ध्यान ठटै कोई पोजत ही थकि जावता है ॥
कोई और हि और उपाव करै कोइ ज्ञान गिरा करि गावता है ।
वह सुन्दर सुन्दर सुन्दर है कोई सुन्दर होइ सु पावता है ॥ ४ ॥
नहिं बैठता है नहिं ऊठता है नहिं आवनेका नहिं जावनेका ।
नहिं बोलता है न (हिं) अबोलता है नहिं देपता है न दिपावनैका ॥
नहिं सूंघता है न असूंघता है नहिं सुनता है न सुनावनैका ।
नहिं सोवता है नहिं जागता है नहिं सुन्दर सपुन पावनैका ॥ ५ ॥
कहु कौन कहै कहु कौन सुनै वह कहन सुनन तैं भिन्न है रे ।
कंहु ठौर नहीं कंहु ठांव नहीं कहुं गांव नहीं तिन किन्न है रे ॥
तहां शीत नहीं तहां घांम नहीं तहां धांम न राति न दिन्न है रे ।
तहां रूप नहीं तहां रेप नहीं तहां सुन्दर कछू न चिन्ह है रे ॥ ६ ॥

---

(३) थूल=स्थूल । सून्य=शून्य । शून्यवादी का ऐसा मत है । स्थूलवादी वैष्णवों का ऐसा मत है ।

(४) गिरा=वाणी । केवल नाम रटना वा कथाकीर्तन से ईश्वर प्राप्ति का मत । जाग=यज्ञ । यज्ञ ईश्वर प्राप्ति का कारण वा ईश्वर का नाम "यज्ञो वै विष्णुः" (श्रुतिः) । ठटै=ठटैं—ठाठ रचैं । आडम्बर करैं । 'सुन्दर एक तो कवि का नाम । दूसरा तीसरा मिलकर सब सुन्दर पदार्थों में अति सुन्दर, परमोत्कृष्ट रूपवाला । सुन्दर होना=अन्तःकरण निर्मल पवित्र करना, यह प्रयोजन है ।

(५) इस छन्द में जो इन्द्रियों के व्यापार का वर्णन है इससे यह प्रयोजन है कि वह इन्द्रियातीत है । न तो उसके शरीर है जिसमें इन्द्रियां हों और न वह हमारी इन्द्रियों से ज्ञात वा प्रमाणित होता है । "इन्द्रियेभ्यः परः" ।

(६) कहु=कहो, कहिये अथवा क्या कहते हो । कहने में न तो आता है न

नहिं गौस है रे नहिं नैन है रे नहिं मुख है रे नहिं वैन है रे।
नहिं ऐन है रे नहिं गैन है रे नहिं सैन है रे न असैन है रे॥
नहिं पेट है रे नहिं पीठ है रे नहिं कड़वा है नहिं मीठ है रे।
नहिं दुश्मन है नहिं ईठ है रे नहिं सुन्दर दीठ अदीठ है रे॥ ७॥
नहिं शीश है रे नहिं पांव है रे नहिं रंक है रे नहिं राव है रे।
नहिं पावनै पीवनै चाव है रे नहिं हारनैं जीतनैं दाव है रे॥
नहिं नीर है रे नहिं नाव है रे नहिं पाक हैरे नहिं बाव है रे।
नहिं मौति है रे नहिं आव है रे नहिं सुन्दर भाव अभाव है रे॥ ८॥

॥ समाप्तोऽयं ज्ञान झूलनाष्टक ग्रन्थः ॥ २५ ॥

प्रवचन से समझ में आता है—"यतो वाचा निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।" "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः" (इत्यादि श्रुतिः)।

तिन किन्न=तत्र कुत्र—तहाँ कहां यह उसमें नहीं है। "दिक्कालाघनवच्छिन्न" दिशा (जगह), काल (समय) और क्रिया, कर्म, करण, स्वभाव, कर्त्तृत्व, विशेष निर्विशेष से भिन्न है। शीत-घाम से सुख दुःख की अवस्था। धाम=स्थान। रेष=रेख—स्वरूप वा चित्र मूर्त्ति बनाने की बारीकी। इससे भिन्न। 'चिन्ह, शब्द अनुप्रासवश 'चिन्न' बुलैगा।

(७) गोस=गोश, कान। ऐन, गैन=सूफीमत के संकेत। ऐन=विशेष। गैन=निर्विशेष (नुकता वा बिन्दु लगाने से)। ईठ=इष्ट मित्र।

(८) बाव=वायु। आव=आब, पानी जो मोती का होता है। (७) ऐन गैन—इस सूफी मत के सम्बन्ध में इस्लामधर्म पुस्तक कुरान में लिखा है—"सिफातुल्लाहे लैसा ऐने जातिन्"—अर्थात् ईश्वर की जाति (तात्विकता) गुणों से विशिष्ट नहीं है निर्विशेष है। उसकी जाति ऐन और प्रकृति के गुण गैन इसीसे कहे जाते हैं। और कहा है—"जब इस नुक्तए हस्ती को दिया दिल से उठा। ऐन में गैन में क्या फेर है अल्लाः अल्लाः"। एक ऐन नामी फकीर हुआ है, उसने इस विषय में खूब लिखा है। उसकी कुण्डलियां प्रसिद्ध है।

सहजानन्द

अथ सहजानन्द

चौपई

प्रथमहिं निराकार निज बन्दं। गुरु प्रसाद सहजै आनन्दं॥
पूरण ब्रह्म अकल अविनाशी। पञ्च तत्व की सृष्टि प्रकाशी॥ १॥
चिन्ह विना सब कोई आये। इहां भये दोइ पन्थ चलाये॥
हिन्दू तुरक छ्यौ यह भर्मा। हम दोऊ का छाड्या धर्मा॥ २॥
नां मैं कृत्तम कर्म बषानौं। नां रसूल का कलमा जानौं॥
नां मैं तीन ताग गलि नाऊं। नां मैं सुंनत करि बौराऊं॥ ३॥

इस सहजानन्द में यह बात प्रतिपादन की है कि ब्रह्मानन्द की प्राप्ति क्रिया के आडम्बर से नहीं होती है। हिन्दू मुसलमान आदि धर्मों में जो जो विशेष विधि-विधान क्रियाकलाप—स्नान, सन्ध्या, होम, जप माला, तिलक, छापा, वा सुन्नत, रोजा, नमाज आदि अनेक कहे हैं और किये जाते हैं, उनकी तत्वज्ञान लाभ में नितान्त आवश्यकता नहीं हैं—"सहजै नाम निरंजन लीजै" इत्यादि ही अलम् है। इसमें शंकर, सनकादिक, नारदादिक (पूर्व काल में) वा कबीर, रैदास, गोरख, गोपीचन्द भर्तृहरि, पीपा, नामदेव, दादू इत्यादि (इस काल में) तिर गये और तार गये प्रमाण है। आत्मज्ञान की सहज प्राप्ति ही सबसे उत्कृष्ट है। मनुष्य में सहज ज्ञान और सहज आनंद के पानेकी प्रकृति से ही अन्तःकरण में स्वभाव है उसको बढ़ाने से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति विना ही बाह्याडम्बर के हो जाती है। सत्यज्ञानानन्द मिलने पर मूलसहित पूर्व संचितकर्मों का लय और आगे होनेवालों का निरोध हो जाता है।

(१) अकल=कला से रहित, निर्विकार।

(२) तुरक=मुसलमान।

(३) कृत्तम=कृत्रिम, बनावटी, दिखावे मात्र (स्यात् नित्य पंचकर्म वा षोडश

माला जपौं न तसबी फेरौं। तीरथ जाऊं न मक्का हेरौं॥
न्हाइ धोइ नहिं करूं अचारा। ऊजू तें पुनि हूवा न्यारा॥ ४॥
एकादशी न व्रत हिं विचारौं। रौजा धरौं न बङ्ग पुकारौं॥
देव पितर नहिं पीर मनाऊं। धरती गड़ौं न देह जलाऊं॥ ५॥

दोहा

हिन्दू की हदि छाडिकै तजी तुरक की राह।
सुन्दर सहजै चीन्हियां एकै राम अलाह॥ ६॥

चौपई

(तौ) और अचंभा सुनियहु भाई। जो मुहि सतगुरु दिया बताई॥
सहजैं नाम निरंजन लीजै। और उपाइ कछू नहिं कीजै॥ ७॥
सहजैं ब्रह्म अगनि पर जारी। सहज समाधि उनमनी तारी॥
सहजैं सहज राम धुनि होई। सहजहिं मांहि समावै सोई॥ ८॥
अब मो तें कछु होइ न आवै। ब्रह्मा विष्णु महेश बुझावै॥
ना मोहि योग यज्ञ की आसा। ना मैं करौं पवन अभ्यासा॥ ९॥
ना मैं कोई आसन साधौं। ना मैं सूती शक्त्याराधौं॥
प्राणायाम धारणा ध्यानं। ना मैं रेचक पूरक ठानं॥ १०॥
ना मैं कुम्भक त्राटक लाऊं। नौलि भुवंगम दूरि वहाऊं॥
नेती धोती करौं न कर्म्मा। उलटी पलटी ए सब भर्म्मा॥ ११॥

संस्कारादि)। रसूल=पैगम्बर (मोहम्मद)। कलमा=कलिमा, मुसलमान धर्म का दीक्षा-मन्त्र। तीन ताग=यज्ञोपवीत। सुन्नत=मुसलमानी (जिसमें मूत्रेन्द्रिय का अग्र का चमड़ा कुछ काटा जाता है)।

(४) तसबी=तसबीह, मुसलमानों की माला। मक्का=अरब के मुल्क में मुसल्मानों का तीर्थ। ऊजू=वजू, नमाज पढ़ने से पूर्व हाथ पांव मुंह धोकर पाक होना।

(६) एकै राम अलाह=दोनों में कोई भेद नहीं तो अनुयायियों से क्या भेद हो।



महाराजा मानसिंहजी, जयपुर, स्वामी दादूदयालजी और महात्मा सुन्दरदासजी—(पंजाब)

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता ।

दोहा

जोई आरंभ कीजिये सोई शंसै काल।
सुन्दर सहज सुभाव गहि मेट्यौ सब जंजाल॥ १२॥

चौपई

ना मैं मेघाडंबर भीजौं। शीतकाल जल मैं नहिं छीजौं॥
ना मैं सिर परि करवत सारौं। ना मैं नींद भूष तिस मारौं॥ १३॥
देह कष्ट मैं करौं न कोई। सहजैं सहजैं होइ सु होई॥
ना मैं पंचा अग्नि जलाऊं। जातैं राज पाट कछु पाऊं॥ १४॥
ना ले मरौं गले मैं पासा। मुये मुक्ति की करौं न आशा॥
ना मैं गलौं हिवांले मांहीं। स्वर्ग लोक कौं वंछौं नांहीं॥ १५॥
ना मैं लटकि अधोमुख भूलौं। धूम पान करि मैं नहिं भूलौं॥
ना वन मैं वसि करौं तपस्या। कंद मूल की करौं न हिंस्या॥ १६॥
पुहमी दैव न दहिना वर्त्ता। नागें पाऊं फिरौं न मरता॥
दुःख कलेश और वहुतेरा। तिन सौं मन मानैं नहिं मेरा॥ १७॥

दोहा

सतगुरु कहि समुझाइया निज मत बारंबार॥
सुन्दर कष्ट कहा करै पाया सहज बिचार॥ १८॥

चौपई

(तौ) सहज निरंजन सब मैं सोई। सहजै संत मिलै सब कोई॥
सहजैं शंकर लागे सेवा। सहजैं सनकादिक शुकदेवा॥ १९॥

---

(१२) आरम्भ=कर्म।

(१३) देह कष्ट=इसका शास्त्र में निषेध है। "कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राम मचेतसः।"

(१६) 'हिंस्या' और 'तपस्या' शब्दों में संकीर्ण अनुप्रास है।

(१७) पहुमी=पृथ्वी। दैव=देवता। दहिना वर्त्ता=दक्षिणावर्त्त, परिक्रमा। पृथी परिक्रमा, सर्व तीर्थ करना।

सहजैं शेष भयौं लै लीना। सहजैं हनूमान तत्त चीन्हा॥
सहजैं ध्रुव कीनौं अहलादा। सहज सुभाव ग्रह्यौ प्रहलादा॥ २०॥
पहलैं गोरष कर्म दिढ़ावा। दत्त मिले तिन सहज बतावा॥
सहज सुभाव भरथरी लीधा। गोपीचन्द सहज ही सीधा॥ २१॥
नामदेव जब सहज पिछांनां। आतमराम सकल मैं जांनां॥
दास कबीर सहज सुख पाया। सब मैं पूरण ब्रह्म बताया॥ २२॥
सोझा पीपा सहज समाना। सेन धना सहजैं रस पाना॥
जन रैदास सहज कौं बन्दा। गुरु दादू सहजैं आनंदा॥ २३॥

दोहा

एकै सहज सुभाव गहि संतनि कियौं बिलास।
मनसा वाचा कर्मना तिहिं पथि सुन्दरदास॥ २४॥

॥ समाप्तोऽयं सहजानन्द ग्रन्थः ॥ २६ ॥

---

(२०) शेष=शेषजी भगवान के बड़े भक्त माने जाते हैं। विष्णु सदा उन पर शयन करते हैं।

(२१) दत्त=दत्तात्रेय महामुनि, बड़े भारी योगी हुये हैं। दक्षिण देशमें इनका बड़ा ही मान्य है। भर्तृहरि और गोपीचंद हठयोग राजयोग से अमरकाय हो गये थे।

(२२) नामदेव भगवद्भक्त जाति के छीपा थे। कबीरजी प्रसिद्ध भगवद्भक्त रामानंदजी के शिष्यों में हुये।

(२३) पीपा=भगवद्भक्त क्षत्रिय थे। सेन=सेनभक्त प्रसिद्ध जाति के नाई थे। धना=भगवद्भक्त जाति के जाट थे। रैदास=प्रसिद्ध भक्त चमार थे।

गृहवैराग बोध

अथ गृहवैराग बोध

रुचिरा※

गृही कहै जु सुनहुं वैरागी विरक्त भये सु काहे जू।
के तुम सौं परमेश्वर रूसे कै तुम काहू वाहे जू ॥ १ ॥
वैरागी बोलै जु गृही सुनि मेरें ज्ञान प्रकासा जू।
मिथ्या देषि सकल संसारा तातें भये उदासा जू ॥ २ ॥
गृही कहै जु बुरी तुम कीनीं कछू विचार न आयौ जू।
जनक वसिष्ठ और पुनि साधनि तिन घर ही में पायौ जू ॥ ३ ॥
वैरागी बोलै जु गृही सुनि विरक्त बहुत सुनाऊं जू।
ऋषभदेव अरु भरत आदि दै केते और बताऊं जू ॥ ४ ॥
गृही कहै जु बड़ो सुख घर में पुत्र कलत्र रु माया जू।
ताहि छांडि जौ मुक्ति कहत है तिन तौ ज्ञान न पाया जू ॥ ५ ॥

※ "रुचिरा"—३० मात्रा का छंद अवश्य होता है, "छंद प्रभाकर" के मतानुसार अंत में जगण न हो, गुरु हो और १४, १६ पर यति हो परंतु इस सुन्दरदासजी के छंद में १६, १४ पर यति है अंत में मगण है, इसमें छंद प्रभाकर के मत से यह "ताटंक" छंद है। इस ग्रंथ—गृह वैराग्य बोध—में गृहस्थी और विरागी के सम्वाद मिस दोनों के गुण दोष दिखाये।

(१) वाहे=बाहर कर दिये, घर से निकाल दिये।

(३) जनक=वैदेही मिथिला का राजा, गृहस्थी और त्यागी दोनों था। युधिष्ठिर=प्रसिद्ध पांडव राजा, गृहस्थी और ज्ञानी दोनों था।

(४) ऋषभदेव=इक्ष्वाकुवंश में प्रसिद्ध त्यागी ज्ञानी और जैनमत के आदि प्रवर्त्तक थे। भरत=जडभरत, प्रसिद्ध त्यागी मुनि थे।

वैरागी बोलै जु गृही सुनि गृह दुख को भंडारा जू।
मुक्ति हौन की सो कहा जानै अंध कूप मैं डारा जू॥ ६॥
गृही कहै जु पुत्र धन दंपत सब दुख दूरि बिसारूं जू।
नवजोबना जबहिं हंस बोले कोटि मुक्ति गहि वारूं जू॥ ७॥
वैरागी कहै जो जहां राता सोई तहां सुख पावै जू।
नरक हिं रचै नरक को कीड़ा चन्दन ताहि न भावै जू॥ ८॥
गृही कहै जु त्रिया मृगनैनी कटि केहरि गजचाला जू।
अधर पान जिन कीयौ नांहीं तिनकै भाग न भाला जू॥ ९॥
वैरागी कहै हाड चाम सब नैंननि झलकत पानी जू।
मज्जा मेद उदर मैं विष्टा तहां न भूलै ज्ञानी जू॥ १०॥
गृही कहै जु चन्द्रवदनी त्रिय अंग अंग छवि सोहै जू।
चन्दन लेपन कुच मंडल पर देव दानवा मोहै जू॥ ११॥
वैरागी कहै नव द्वार मैं निश दिन नरक वहाई जू।
लोहू मांस कुचन कै भीतर ताकी कहा बड़ाई जू॥ १२॥
गृही कहै जु विरक्त भये तुम त्रिया सही सौं त्यागी जू।
माया तुम पै छूटी नांहीं काहे कै वैरागो जू॥ १३॥

---

(६) अंधकूप=संसाररूपी अज्ञान का कुंआ।

(७) नव जोबना=नवोढा स्त्री।

(९) भाला=शूल, दुःख। वे मंदभागी हैं।

(१०) इस छंद में काया की घृणा और निंदा की गई है। नैनन झलकत पानी=मोह दुःखादि से रोना अथवा बुढापे में आंखों से जल पड़ा करै उससे अभिप्राय है। मज्जा=हड्डी में चर्बी। मेद=मांसवृद्धि।

(१२) इसमें भी नारी की निंदा की है—"एतन्मांसवसादि विकारं। मनसि विचारय वारम्वारम्" (चर्पटपंजरिका)।

(१३) सही सौं=केवल साहस करके त्यागी, वैराग्य के सच्चे भाव से नहीं।

वैरागी कहै माया सोई जा पहिं आप बंधावै जू।
और सकल यह वरतनि कहिये अनवंछी ही आवै जू ॥ १४ ॥
गृही कहै जु नहीं अनवंछी करहु हमारी आशा जू।
बार बार धरती तन चितवै चील्ह उडै आकाशा जू ॥ १५ ॥
वैरागी कहै आशा हरि की देह रहै जग मांहीं जू।
जैसै कमल रहै जल भीतर जल सौं सनमुख नांहीं जू ॥ १६ ॥
गृही कहै जु वड़ौ गृह आश्रम जती तहां चलि आवै जू।
मन तौ तब ही होइ सुनिश्चल भिक्षा भोजन पावै जू ॥ १७ ॥
वैरागी कहै धर्म देह कौ याही भांति बनायौ जू।
पंच दोष तेरे तब छूटं जती आइ कछु पायौ जू ॥ १८ ॥
विरक्त धर्म रहै जु गृही तें गृहि कौं विरक्त तारै जू।
ज्यौं वन करै सिंघ की रक्षा सिंघ सु वनहिं उबारै जू ॥ १९ ॥

अथवा, स्त्री को तो त्याग दिया परंतु काम क्रोध लोभ की मनोभावना तो बनी ही रही। यही माया है जो नहीं जीती गई।

(१४) वरतनि=वरतते रहनेवाले पदार्थ। स्वयम् ही होते वा प्राप्त हो जाते हैं। अनवंछी=विना इच्छा किये स्वयम् (ईश्वर की भेजी हुई)। पदार्थों मे आसक्ति नहीं लिप्तता वा लिप्सा नहीं रहती है।

(१५) तन=यहां तणां वा को का अर्थ है।

(१६) सन्मुख=सम्मुख=यहां 'हिलामिला, का अर्थ है। अनुकूल।

(१७) सुनिश्चल=संतुष्ट, रंजित।

(१८) पंच दोष=गृहस्थी के पांच दोष नित्य लगते हैं—चुल्ही, चक्की, झाड़ू देना, ऊंखली में अन्नादि कूटना, जल के घड़े के तले जीव दबना। इनके मिटाने को नित्य पंच महायज्ञ—संध्या, तर्पण, वल्वैश्वदेव, आतिथ्य, हवन करना पड़ता है। पायो=खाया। सिंह वन उबारै=सिंह के भय से वन को काट नहीं सकते।

विरक्त सुतौ भजै भगवन्तहिं गृही सुता की सेवा जू।
अश्व के कान बराबर दोऊ जती सती कौ भेवा जू॥ २०॥
गृह वैराग बोध यहु कीनौं सुनियौ संत सुजांनां जू।
सुन्दरदास जु भिन्न भिन्न करि नीकी भांति वषांनां जू॥ २१॥

॥ समाप्तोऽयं गृहवैराग बोध ग्रन्थः॥ २७॥

---

(२०) भेवा=भेद, प्रकार। अश्व के कान बराबर दोऊ=जैसे घोड़े की दोनों कनौती उसके सिर की शोभा वा उसके ज्ञान में हेतु है वा वे केवल बायें दायें का भेद रखते हैं आपस में भेद नहीं। इस ही प्रकार गृहस्थी और साधु, संसाररूपी गति—घोड़े को हितकर है।

हरिबोल चितावनी

अथ हरिबोल चितावनी

दोहा

रचना यह परब्रह्म की चौराशी झकझोल।
मुनुष देह उत्तम करी (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ १ ॥
आयौ नर संसार में करि साहिब सौं कोल।
पवन लगत ही बीसर्‌यौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २ ॥
बालपनैं समुझ्यौ नहीं तरुनापै भयौ लोल।
चपरि बुढापौ आइयौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ ३ ॥
मेरी मेरी करत हैं देषहु नर की भोल।
फिरि पीछे पछिताहुगे (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ ४ ॥
किये रुपइया एकठे चोंकूटे अरु गोल।
रीते हाथिन वै गये (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ ५ ॥

चितावनी=मनुष्यों को अज्ञान की निद्रा वा भ्रम से हटाने को चैतन्यता वा सावधानी करने का उपदेश। झकझोल=झटका, धक्का, आवागमन मरण जन्म का चक्कर। 'हरि बोलौ हरि बोल'—यह प्रायः बंगाली भक्तों में स्मरण का विधान है। बात बात में वे 'हरिबोल' कहते हैं। मृतक के ले जाने के साथ भी यही उच्चारण करते हैं।

(३) लोल=चंचल। स्वतंत्र। चपरि=तुरंत, शीघ्र।

(४) भोल=भोलप, भोलापन, भूल।

(५) चौंकूठे=पुराने समय में और विशेष करके बादशाही जमाने में चारकूंट के सिक्के भी बनते थे।

चहल पहल सी देषिकैं मान्यौं वहुत अंदोल।
काल अचानक लै गयौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ ६॥
घर में धरे सुमेरु से अजहूं पाली ओल।
तृष्णा कबहू ना बुझी (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ ७॥
हाहा हूहू में मुवौ करि करि घोलमथोल।
हाथि कछू आयौ नहीं (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ ८॥
तीनि लोक भटकत फिर्‍यौ हूवौ डांवां डोल।
कतहूं सच पायौ नहीं (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ ९॥
धाम धूम वहुतैं करी अंध धन्ध धमसोल।
धेधक धीना ह्वै गये (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ १०॥
सुकृत कोऊ ना कियौ राच्यौ झंझट झोल।
अंति चल्यौ सब छाडिकै (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ ११॥
सूतौ है बहु जन्म कौ अज हूं आंपि न पोल।
आवत है दिन नीयरौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ १२॥
मूंछ मरोरत डोलई ऐंठ्यौ फिरत ठठोल।
ढेरी ह्वै हैं राप की (सु) हरि बोलौ हरि बोल॥ १३॥

---

(६) अंदोल=आनन्द की हलचल, अन्दोर।

(७) ओल=ओल कोल, कूणां। ओला।

(८) घोल मथोल=गड़बड़, बखेड़ा वा सलाह सूत।

(९) डांवाडोल=बेठिकाना।

(१०) धाम धूम=मारधाड़, धामक धड़िया। अन्ध धन्ध=अन्धाधुन्ध, न्याय अन्याय। धमसोल=धमरोल, ऊधम।

(११) झंझट=झगड़ा। झोल=बखेड़ा, बिगाड़, हानि।

(१३) ठठोल=निरर्थक हंसी।

पैंडो ताक्यौ नरक को सुनि सुनि कथा कपोल।
बूडे काली धार मैं (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ १४ ॥
राम विमुख नर होंहिगे सर्प गुहेरा नोल।
और जतु कहि को गनै (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ १५ ॥
मौतिसु आई नीयरी भयौ श्याम तें धोल।
अव का सोचत वावरे (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ १६ ॥
माल मुलक हय गय घने कामिन करत कलोल।
कतहू गये विलाइकें (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ १७ ॥
मोटे मीर कहावते करते वहुत डफोल।
मरद गरद में मिलि गये (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ १८ ॥
षासा मलमल पहरते वस्तर वहुत अमोल।
लई तनगटी तोरि कैं (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ १९ ॥
चौवा चन्दन अरगजा सौंधै भीनी चोल।
सो तन माटी मिलि गये (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २० ॥

---

(१४) कपोल=कल्पित।

(१६) धोल—सफेद (वाल हो गये—वा रुधिर सूख गया)।

(१७) 'विलाइके' क्रिया माल मुल्क से सम्बन्धित है (कि मरने पर ये साथ नहीं जाते।) परन्तु इसके सम्बन्ध में मृत पुरुष से होने से अर्थ ठीक होता है।

(१८) डफोल=ढोंग, आडम्बर, डींग करनेवाले—"वदामि न ददामि ते" कहने वाले। गरद=गर्द, मिट्टी।

(१९) तनगटी=कनगती (मरने पर शव पर से उसे भी उतार ली)। तोरिकै—कहने से यह भाव है कि मरे पीछे कुछ भी शरीर का लिहाज नहीं किया। शरीर के सव वस्त्रादि उतार कर जला दिया।

(२०) सौंधे=सुगन्धिता। चोवा=चोआ=टपकाया हुआ सुगन्ध-द्रव्य। अरगजा=कई सुगन्धी द्रव्यों का चूर्ण कर कर पीठी सी वनायी जाती है। भीनी=सुगन्धी। चोल=चौल=एक प्रकार का सुगन्धित द्रव्य।

सेज सुपासन बैठते चलते चढि चौडोल।
सूते जाइ मसान में (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २१ ॥
देह गली संग काठ के ह्वै गई होहो होल।
पुर न पोज कहुं पाइये (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २२ ॥
जारि बारि भस्मी करी ऊपरि दीये ढोल।
प्रेत प्रेत करि उठि चले (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २३ ॥
ऐसी गति संसार की अजहूं रापत जोल।
आपु मुये ही जानि है (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २४ ॥
बांकि बुराई छाडि सब गांठि ह्रदै की पोल।
बेगि बिलंब क्यों बनत है (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २५ ॥
घटी बढी सब देपिलै मन अपने कौ तोल।
कांहे कौं कलप्यौ मरै (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २६ ॥
हिरदै भीतर पैठि करि अंतः करण बिरोल।
को तेरौ तूं कौन कौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २७ ॥

---

(२१) चौडोल=अमीरों के बैठने की एक प्रकार की पालकी।

(२२) गली=जल गई। होहो=हाहाकार। होल=घबराहट, भयङ्करता।

(२३) ढोल=पत्थर (चबूतरा वा छतरी बनाने को)।

(२४) जोल=जोर, शक्ति का घमण्ड। इतने मरों को देख कर भी अपना मरना भूल जाते हैं, क्या मरने को खुद ही मर कर जानेंगे?

(२५) बांकि=बांकापन, ऐंठ। बेगि—इसका सम्बन्ध 'हरिबोलो' से है—अर्थात् शीघ्र राम भजो। बनत है=होता है।

(२६) कलप्यौ मरै=संसार की चिन्ता और विचार मनमें रख कर मत मरै वरन हरि बोलता मर।

(२७) बिरोल्ना=छांटना, विवेक करना। अथवा अन्तःकरणरूपी धन को खूब बिलस।

तेरौ तेरै पास है अपनैं माँहि टटोल।
राई घटै न तिल बढै (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २८ ॥
साध सबद लागै नहीं बडौ जगत कौ छोल।
तासौं पचि पचि को मरै (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ २९ ॥
सुन्दरदास पुकारि कैं कहत बजायें ढोल।
चेति सकै तौ चेतियौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥ ३० ॥

॥ समाप्तोऽयं हरिबोल चितावनी ग्रन्थः ॥ २८ ॥

---

(२८) तेरो=तेरी आत्मा वा ब्रह्म। टटोल—(अज्ञानी की तरह) ढूंढ।

(२९) छोल=तिरछोल, दुष्ट। वा निकम्मा, छोला छिलका, निरर्थक।

तर्क चितावनी

२१११

अथ तर्क चितावनी

चौपई

पूरण ब्रह्म निरंजन राया। जिनि यहु नख शिख साज बनाया॥
ता कहुं भूलि गये बिभचारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ १॥
गर्भ मांहिं कीनी प्रतिपाला। तहां बहुत होते बेहाला॥
जनमत ही वह ठौर बिसारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ २॥
बालापन मंहि भये अचेता। मात पिता सौं बांध्यौ हेता॥
प्रथम हिं चूके सुधि न संभारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ३॥
बहुरि कुमार अवस्था आई। ताहू मांहि नहीं सुधिकाई॥
पाइ पेलि हँसि रोइ गुदारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ४॥
भयो किशोर काम जब जाग्यौ। परदारा कौं निरषन लाग्यौ॥
व्याह करन की मन महिं धारी। अइया मनषहुं बूझि तुम्हारी॥ ५॥
मात पिता जोस्यौ सनमंधा। कै कछु आपुहि कीयौ धंधा॥
लै करि पांस गरे महिं डारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ६॥

---

(१) अइया=ऐ, हे। मनुषहुं=मनुष्य होकर भी। बूझि=बुद्धि, समझ। राया=राजा। साज=सामान, यह अनमोल देह। बिभचारी=प्रतिकूल, स्वामीद्रोही।

(२) वह ठौर=जहां ईश्वर दर्शन हुये थे और ईश्वर से भक्ति करने का प्रण किया था।

(६) पांस गले में डारी=मानों जान-बूझ प्रसन्नतापूर्वक अपना अनिष्ट आपही किया कि विवाह करके गृहस्थाश्रम की फांसी अपने गले में आप ही डाल ली। "तुलसी गाय बजाय के दियो काठ में पांव"।

भयौ गृहस्थ बहुत सुख पाया। पंच सपी मिलि मंगल गाया॥
करि संयोग बडौ झप मारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ ७॥
ता पीछे जोवन मदमाता। अति गति है विपया सन राता॥
अपनी गनै न पर की नारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ ८॥
निलज काम वश शंक न आनैं। साप सगाई कछू न मानैं॥
लोक वेद मरजादा टारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ ९॥
गर्व करैं पुनि ऐंठ्यौ डोलै। मुख तें जो भावे सो बोलै॥
लाज कानि सब पटकि पछारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ १०॥
मूंछ मरोरैं पाग संवारैं। दर्प्पन लै करि वदन निहारैं॥
पुशी होइ अति महा विकारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ ११॥
आठहुं पहर विषै रस भीनां। तन मन धन जुवती कौं दीनां॥
ऐसी विपया लागी प्यारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥१२॥
पान पांन वस्तर लै आवै। विधि विधि के भूपन पहरावै॥
अति आधीन लेइ वलिहारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥१३॥
कामिनि संग रह्यौ लपटाई। मानहुं इहै मोक्ष हम पाई॥
कबहूं नेंक होइ जिनि न्यारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥१४॥
जौ त्रिय कहै सु अति प्रिय लागै। निशि दिन कपि ज्यौं नाचत आगै॥
मारउ सहै सहै पुनि गारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥१५॥

---

(७) से (११) तक यौवन का आरम्भ और विवाह होकर गृहस्थाश्रम प्रवेश का उपोद्घात है—जैसे (२) से (६) तक बालापन, किशोर अवस्था का दिग्दर्शन है।

(९) (१०) यह नरपिशाचों और महाव्यभिचारियों का वर्णन है।

(११) महा विकारी=विकारभरी देह।

(१२) से (१५) तक यौवनांधता के मद और तज्जनित विवश कर्म्मों का वर्णन है कि यह गधापचीसी ऐसी ही अवस्था होती है।

पेती करै वनिज करि ल्यावै। चाकर होइ दशौं दिश ध्यावै॥
आगै आइ धरै भरि थारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥१६॥
लकरी घास पोट पुनि ढोवै। लाज वडाई अपनी षोवै॥
तासौं करै आइ मनुहारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥१७॥
औरउ कर्म करै वहुतेरा। जन जन कै आगै हुइ चेरा॥
चौरी करै करै वटपारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ १८॥
ज्यौं त्यौं करि कछु घर मैं आनैं। वनिता आगै दीन बषानै॥
हौं तेरौ नित आज्ञाकारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ १९॥
यौं करते संतति हुइ आई। तब तौ फूल्यौ अंगि न माई॥
देत वधाई ता परि वारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ २०॥
मानैं मोद बहुत सुख पावै। ता सुत कौं ले गोदि षिलावै॥
चिटकी देइ वजावै तारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ २१॥
लरिका चारि पांचि हुइ आये। तिनकूं जूये घर करवाये॥
साल वोवरा महल अटारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ २२॥
पुत्र पौत्र वंध्यौ परिवारा। मेरै मेरै कहैं गँवारा॥
करत बडाई सभा मझारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ २३॥
उद्दिम करि करि जोरी माया। कै कछु भाग्य लिष्यौ सो पाया॥
अजहूं तृष्णा अधिक पसारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ २४॥
जब दश बीस पचास क चाहै। सौ सहस्र लष कोरि उमाहै॥
अरव परव तौ हू अंधियारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ २५॥
देश विलाइति हाथी घोरे। ज्यौं ज्यौं वांधै त्यौं त्यौं थोरे॥
करि संतोष न वैठै हारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ २६॥

---

(१६) से (२६) तक—गृहस्थी की विडम्बना और तज्जनित कर्म प्रसार का चित्र है। अपने लिये, स्त्री के लिये, सन्तान आदि के लिये धर्माधर्म, न्यायान्याय से जो कुछ वुरे भले काम होते हैं, उनका वहुत सरल भाषा में सच्चा वृत्तांत है।

(२५) कोरि उमाहै=कोटि संख्यक धन के लिये वा पाने को उत्साहित होवै।

ऐसै करत बुढापा आया। तब काठी करि पकरी माया॥
कौड़ी परचत कसकै भारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ २७॥
मेरे बेटे पोते पैहैं। मेरी संची कोउ न लैहैं॥
ईस्वरकी गति कछु न विचारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ २८॥
निपट वृद्ध जब भयौ शरीरा। नैननि आंवन लाग्यौ नीरा॥
पौरी पर्‌यौ करै रपवारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ २९॥
कानहुं सुनै न आंपिहुं सूझै। कहैं और की औरै बूझै॥
अब तौ भई बहुत विधि ख्वारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ ३०॥
बेटा बहू नजीक न आवै। तू तौ मति चल कहि समुझावै॥
टूक देहि ज्यौं स्वान बिलारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ ३१॥
बकतौ रहै जीभ नहिं मोरै। मरिहुंन जाइ पाटली तोरै॥
तैं पपारि सब ठौर बिगारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ ३२॥
पिजि करि उठै सुनै जब ऐसी। गारि देह मुख भावै तैसी॥
भौंडी रांड करकसा दारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ ३३॥
उठि न सकै कंपै कर चरना। या जीवन तैं नीकौ मरना॥
तौहूं मन में अति अहंकारी। अइया मनुपहुं बूझि तुम्हारी॥ ३४॥

अन्धियारी=स्यात् अधिकाई वा आधिक्य की इच्छा के लिये यह प्रयोग हुआ है। अथवा अन्धकार वा धन के लिये अन्धाधुन्ध प्रयत्न करना।

(२६) हारी हारकर, थक कर।

(२७) से (३६) तक वृद्धावस्था का सजीव चित्रण है कि इसका कहीं जवाव ढूंढने से मिले। "सवैया" में भी अच्छा वर्णन है बुढापेका।

(२९) नैननि नीरा=आंखों की निर्बलतासे बुड्ढे के पानी झरने लगता है और मुंह में लार भी टपकने लग जाती है। यह गिलटियों और धमनियों की शिथिलता व अल्पवीर्यता से।

(३१) बिलारी=बिलाई।

(३३) दारी=स्त्री के लिये निरादर का शब्द है।

ताकौ कह्यौ करै नहिं कोई। परवश भयौ पुकारै सोई॥
मारी अपने पाव कुहारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ३५॥
तासौं कछू होइ नहिं आवै। मन मैं बहुत भांति पछितावै॥
सीस धुनै अति होइ दुषारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ३६॥
अब तौ निकट मौति चलि आई। रोक्यौ कण्ठ पित्त कफ वाई॥
जमदूतनि पासी विस्तारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ३७॥
निकसत प्रान सैंन समुझावै। नारायन कौ नाम न आवै॥
देषि सबनि कौं आंसू ढारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ३८॥
हंस बटाऊ किया पयाना। मृतक देषि करि सबै डराना॥
घर महिं तैं लै जाहु निकारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ३९॥
वै श्रवना नैना मुख नासा। एक नहीं जो चलनी स्वासा॥
अब क्यौं यासौं प्रीति निवारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ४०॥
निशि दिन पवरि बाग की लेता। पलक पलक मैं पानी देता॥
माली गयौ जु सींचत क्यारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ४१॥
लोग कुटम्ब सबै मिलि आये। आपुन रोये और रुलाये॥
लैकर चालै धाह उचारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ४२॥

---

(३५) कुहारी=कुल्हाड़ो। "अपने पांव कुल्हाड़ी मारना" महाविरा है अपना नाश वा अनिष्ट आपही करना।

(३७) वाई=वायु, वात। (३७) से (४६) तक मरणावस्था व मृत्यु व मृतक क्रिया व कुटुम्ब शोक का बढ़िया नकशा खींचा गया है मानों दर्पण में मुंह देख रहे हैं।

(४०) वै श्रवना...—इन्द्रियां तो मृतक देह में वैसी ही दिखाई देती हैं परन्तु कर्म वैसे अब नहीं हैं। अब सांस न रहने से सब कर्म शून्य हैं। मानों उस शरीर से इन्होंने प्रेम का नात तोड़ दिया, सो ऐसा क्यों किया ?

(४२) धाह=उच्च शब्द करके रोये, 'वार घाली'।



स्व० स्वामी सुन्दरदासजी का फतहपुर का प्राचीन स्थान—उसके अगाड़ी स्व० महंत गंगारामजी स्वामीजी के वस्त्रादि सहित और शिष्यों सहित बैठे हैं।

सूकर स्वान काग पं होई। कीट पतङ्ग गनैं कहा कोई॥
औरौं जोनि भ्रमैं हत्यारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ५२॥
भूत पिशाच निशाचर जेते। राक्षस देह भयानक केते॥
सो पुनि होइ जीव संसारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ५३॥
भ्रमत भ्रमत जव आवै अन्ता। तव नर देह देँहि भगवन्ता॥
आपु मिलन की सौंज संवारी। अइया मनषहुं बूझि तुम्हारी॥ ५४॥
सकल सिरोमनि है नर देहा। नारायन कौ निज घर येहा॥
जामहिं पइये देव मुरारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ५५॥
चेति सकै सो चेतहु भाई। जिनि डहकावो राम दुहाई॥
सुन्दरदास कहै जु पुकारी। अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ५६॥

॥ समाप्तोऽयं तर्क चितावनी ग्रन्थः॥

---

(५४) आपु=स्वयं ईश्वर की प्राप्ति इस नारायणी देह द्वारा ही हो सकती है जिसकी देवता भी इच्छा रखते हैं।

(५५) 'कायाबेली' (दादूवाणी) देखो देह की उत्तमता पर।

(५६) डहकावो=चिगना, डुलना, वहकना। राम दुहाई=ईश्वर की शपथ है!

विवेक चितावनी

अथ विवेक चितावनी

चौपई

आपु निरंजन है अविनाशी। जिनि यहु बहु विधि सृष्टि प्रकाशी ॥
अब तूं पकरि उसी का शरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥ १ ॥
जौ तूं जन्म जगत मैं आया। तौ तूं करि लै इहै उपाया ॥
निशि दिन राम नाम उच्चरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥ २ ॥
माया मोह मांहि जिनि भूलै। लोग कुटंब देषि मत फूलै ॥
इनकै संग लागि क्या जरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥ ३ ॥
मात पिता बन्धव किसके रे। सुत दारा कोऊ नहिं तेरे ॥
छिनक मांहि सब सौं बीछरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥ ४ ॥
अपने अपने स्वारथ लागे। तूं मति जानै मो सन पागै ॥
इनकौं पहिले छौडि निसरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥ ५ ॥
जिनि के हेत दशौं दिशि धावै। कोऊ तेरे संग न आवै ॥
धाम धूम धंधा परिहरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥ ६ ॥
गृह कौ दुःख न बरन्यौ जाई। मानहु अग्नि चहूं दिश लाई ॥
तामैं कहु कैसी विधि ठरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना ॥ ७ ॥

---

(२) जन्म=जनम करके, पैदा हो करके।

(३) जरना=जलना, नाश होना।

(४) बीछरना=बिछुड़न, अलग होना।

(५) पागे=मेलजोल रखते। निसरना=निकल जाना।

(६) परिहरना=पूर्णतौर पर त्यागना।

(७)ठरना='ठहरना' का संक्षिप्त रूप। स्थिर रहना यहां ठहरा होने का अर्थ नहीं है।

करना है सो करि किन लेहू। पीछै हम कौं दोष न देहू॥
इक दिन पांव पसारि उलरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ८॥
या शरीर सौं ममता कैसी। याकी तौ गति दीसत ऐसी॥
ज्यौं पाले का पिंड पघरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ९॥
मृत्यु पकरि कैं सबनि हिलावै। तेरी बारी नियरी आवै॥
जैसें पान वृक्ष तें झरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ १०॥
दिन दिन छीन होत है काया। अंजुरी में जल किन ठहराया॥
ऐसी जानि वेगि निस्तरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ११॥
देह षेह मांहि मिलि जाई। काग स्वान कै जंबुक षाई॥
तेल फुलेल कहा चोपरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ १२॥
षंड विहंड काल तन करि है। शंकट महा एक दिन परि है॥
चाकी मांहि मूंग ज्यौं दरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ १३॥
काहू कौं कछु मन में धारै। मौति सु तेरी वोर निहारै॥
बाला गिनै न बूढा तरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ १४॥
सांप गहै मूसा कौं जैसैं। मंजारी सूवा कौं तैसैं॥
ज्यौं तीतर कौं बाज विथुरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ १५॥
बोक निझर चरत नित डोलै। बकरी संग काम रत बोले॥
पकरि कसाई पटकि पिछरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ १६॥

---

(८) उलरना=उछलना, गिर जाना। (९) पघरना=पिघलना।

(१०) अंजुरी=अंजली, दोनों हाथ का। किन=किसने। निस्तरना=निस्तारा (मुक्ति) पाना, वा उसका साधन करना।

(१२) चोपरना=चुपड़ना, शरीर पर मलना लगाना।

(१३) विहंड=टूट टूट करेगा। शंकट=संकट, क्लेश। दरना=दलना।

(१४) तरना=तरुन, जवान।

(१५) विथुरना=बिखेर देना, (मारकर पंख आदि को) खण्ड खण्ड कर देना।

(१६) पिछरना=पछाड़ना (मारने को)।

काल परा सिर ऊपर तेरै। तूं क्यौं गाफिल इत उत हेरै॥
जैसैं बधिक हतै तकि हरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ १७॥
क्षण भंगुर यहु तन है ऐसा। काचा कुंभ भर्‍या जल जैसा॥
पलक मांहिं बैठैं हीं ढुरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ १८॥
जोरि जोरि धन भरे भंडारा। अर्ब्ब पर्ब्ब कछु अन्त न पारा॥
षोषी हांडी हाथि पकरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ १९॥
हीरा लाल जवाहिर जेते। मानिक मोती घर मैं केते॥
धर्‍या रहै रूपा सोवरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ २०॥
रीता आया रीता जाई। उहै भली जो परची पाई॥
माया संचि संचि क्या करना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ २१॥
देश विलाइति घोरा हाथी। इन मैं कोउक तेरा साथी॥
पीछे ह्वै है हाथ मसरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ २२॥
मंदिर माल छोडि सब जाना। होइ बसेरा बीच मसाना॥
अंवर वोढन भूमि पथरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ २३॥
बहु विधि संत कहत हैं टेरैं। जम की मार परै सिर तेरैं॥
धर्मराइ कौं लेषा भरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ २४॥
पाप पुन्य का व्यौरा मांगै। कागद निकसै तेरै आगै॥
रती रती का ह्वै है निरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ २५॥

---

(१७) हेरै=देखै, चोगै। हरना=हरिन मृग।

(१८) ढुरना=(यहां) विकसना, फूट जाना। बैठैं ही=बैठे बैठे ही, अकस्मात्, अनायास ही।

(१९) षोषी=खाली। हाथ में ठीकरा रह जाना।

(२०) सोवरना=सुवर्ण, सोना।

(२२) मसरना=मसलना, पछताना।

(२३) पथरना=बिछौना।

(२५) निरना=निर्णय, न्याव।

कंटक नगर चलि है भाई। तातें पंथनि सौं लपटाई॥
ऐसो त्रास जानि अति डरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ २६॥
काहू काहू दुःख न दीजै। अपनी घात आप क्यौं कीजै॥
बार बार चौरासी फिरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ २७॥
जो बोवै लुनियेगा सोई। अंमृत पाइ कि विष फल होई॥
यौं बिचारि अशुभ सौं टरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ २८॥
वेद पुरान कहै समुझावैं। जैसा करै सु तैसा पावै॥
तातैं देषि देषि पग धरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ २९॥
भोजन करै तृपति सो होइ। गुरु शिष्य भावै किन कोई॥
अपनी करनी पार उतरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ३०॥
काम क्रोध बैरी घट मांहीं। और कोऊ कहुं बैरी नांहीं॥
राति दिवस इनहीं सौं लरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ३१॥
मन कौं दंड बहुत विधि दीजै। याही दगाबाज बसि कीजै॥
और किसी सेती नहिं अरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ३२॥
जिनि कै राग दोष कहुं नांहीं। ब्रह्म विचार सदा उर मांहीं॥
उन संतन के गहिये चरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ३३॥

---

(२६) गरुड़ पुराण के अनुसार—लोहे के काटों का वन है और लोहे के गरम खम्भे हैं जिन पर वा जिनसे पापी चलाये और बांधे जाते है।

(२८) बोवै सो लुनिये=जैसा अन्न बोवैगा वैसा ही फल (फसल) काटैगा। पाइ कि=खाने से क्या? अर्थात् अमृत खाने से विष फल नहीं हो सकता।

(३२) अरना=अड़ना, द्वेष करना।

(३३) काचा पिण्ड रहत नहिं दीसै=यह शरीर काचे (कच्चे) घडे के समान है (संसार समुद्र के जल में) यह पिघले बिना नहीं रहैगा। अथवा "शब्द मांहि पिण्ड काचा"—शरीर नाशमान ही है। जानी बीसै बसवा=अच्छी तरह, निश्चय जान लो।

काचा पिंड रहत नहिं दीसै। यह हम जानी बिसवा बीसै॥
हरि समरन कबहूं न बिसरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ३४॥
जौ तूं स्वर्गलोक चलि जावै। इंद्रलोक पुनि रहन न पावै॥
ब्रह्मा हू के घर तें गिरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ३५॥
गर्व न करिये राजा राना। गये बिलाइ देव अरु दाना॥
तिनके कहूं षोज हू षुरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ३६॥
धरती मापि एक डग करते। हाथौं ऊपर पर्वत धरते॥
केते गये जाहिं नहिं बरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ३७॥
आसन साधि पवन पुनि पीवै। कोटि बरस लगि काहि न जीवै॥
अंत तऊ तिनकौ घट परना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ३८॥
कंपै धर जल अग्नि समंदा। बायु व्यौम तारागन चन्दा॥
कंपै सूर गगन आभरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ३९॥
जुदा न कोई रहनै पावै। होइ अमर जो ब्रह्म समावै॥
सुन्दर और कहूं न उबरना। संमुझि देषि निश्चै करि मरना॥ ४०॥

॥ समाप्तोऽयं विवेक चितावनी ग्रन्थः॥ ३०॥

---

(३६) षुर ना=खुर (पाद चिन्ह) नहीं रहे। 'खोज खुर' निशान, चिन्ह किसी पदार्थ का बाकी रहै सो।

(३७) बरना=बचना, वा वर (श्रेष्ठ होकर) बाकी रहना।

(३८) काहिन=किस लिए (रजवाड़ी=कांईनें)। परना=पड़ना, गिरना। कंपै=भय से, काल से, डिगमिगावै, अर्थात् अपने नाश वा प्रलय से। धर=धरणी, पृथ्वी। गगन आभरना=आकाश के भूषण (चांद, सूरज, तारे) अथवा आकाश अपने इन आभूषणों सहित।

पवंगम-छन्द

अथ पवंगम-छन्द

पवंगम*

पिय कै विरह वियोग भई हूं बावरी ॥
शीतल मंद सुगंध सुहात न बावरी ॥
अब मुहि दोष न कोइ परौंगी बावरी ॥
(परि हाँ) सुन्दर चहुं दिश विरह सु घेरी बावरी ॥ १ ॥
इत उत चलत न चित्त थके दोउ पावरी ॥
छाडे सकल सिंगार चढत नहिं पावरी ॥
सुन्दर बिरहनि दुषित पीव नहिं पावरी ॥
(परि हां) इतनक बिष (अब) बांटि सषी मुहि पावरी ॥ २ ॥
बिरह जरावत मोहि न कबहूं आरसी ॥
बिरहनि अति वेहाल न ध्त आरसी ॥

---

* 'पवंगम छन्द'—२१ मात्रा का—छन्द। ८, १३ पर यति हो। यदि ११, १० पर हो तो चन्द्रायणा। कोई इसको अरिल भी कहते हैं परन्तु ठीक नहीं।

(१) बावरी=(१) बावली, दीवानी। (२) वाव=बायु+री=टेरी (सखी)। (३) बावड़ी। (४) भंवर चक्र।

(२) पावरी=(१) पग, चरण। (२) पावड़ी, खड़ाऊं। अथवा पगरषी तक धारण की शक्ति नहीं रही। (३) मिलता (है, हे सखी)। (४) पिलादे (हेरी) परि हां+इतनक=इतना सा, थोड़ा सा। अथवा हाय! तनक, तनकसा, जब 'परिहां' यों बोलैंगे तब आगे का 'अब' भी बुल सकैगा।

शीतल मंद सुगन्ध पवन पुनि आरसी ॥
(परि हां) सुन्दर पिय परदेश न आयौ आरसी ॥ ३ ॥

विरह हिये में पैठि सु लागी वारनैं ॥
विरहनि घर ते निकसिर आई वारनैं ॥
और सपी समुंझाइ सु लागी वारनैं ॥
(परि हां) सुन्दर पियहिं मिलाइ जाउंगी वारनैं ॥ ४ ॥

पिय नैननि की वोर सैंन मुहि देहरी ॥
फरि न आये द्वार न मेरी देहरी ॥
विरह सु अंदर पैठि जरावत देहरी ॥
(परि हां) सुन्दर विरहनि दुखित सीष का देहरी ॥ ५ ॥

विरहनि के मन मांहि रहे यह सालरी ॥
तजि आभूषन सकल न वोढत सालरी ॥
वेगि मिले नहिं आइ सु अब की सालरी ॥
(परि हां) सुन्दर कपटि पीव पढे किंहि सालरी ॥ ६ ॥

छाडे सकल सिंगार सीस पर मांग ना ॥
विरहे घेरी आइ सु कतहूं माग ना ॥

---

(३) आरसी=(१) आड़, ओट (किसी प्रकार की भी नहीं मिलती) (२) दांग (तक नहीं देखती) (३) आरीसी (लगती है)। (४) धानसी, सुस्त।

(४) वारनैं=(१) जलानें। (२) वाहर को। (३) निवारन करने लगी (विरह व्यथा को)। (४) वारणे, वलैयां लूंगी (भला मानूंगी)।

(५) देहरी=(१) दे=देकर+हरी=हर लीनी। (२) देहली। (३) देह=तन को हे सखी (४) देती है। (री=हे सखी)।

(६) सालरी=(१) साल=शल्य, कांटा (री, हे सखो)। (२)'सालरी'=सालर, ओढनी, अथवा 'साल'=दुशाला (री, सखी)। (३) वर्ष (री सखी)। (४) शाला, पाठशाला या चटशाल में।

पिय के विन दीदार और नहिं मांगना ॥
(परि हां) सुन्दर पतिव्रत मांहि नहीं यह मांगना ॥ ७ ॥
दीपक मंदिर मांहिं सु राष्यौ जोइ री ॥
नैंन रहै पुनि थाकि सु मारग जोइ री ॥
पीव न आये भौंन भलौ रथ जोइ री ॥
(परि हां) सुन्दर कंत न और उसी कोइ जोइ री ॥ ८ ॥
पीव गया परदेश सु कत हूं सोधना ॥
अब हूं गृहते निकसि करौंगी सोधना ॥
जाकी सूनी सेज रहै क्यौं सो धना ॥
(परि हां) सुन्दर प्रान अधार सु मेरै सो धना ॥ ९ ॥
भूषन सकल उतार बषेरी मांग ही ॥
अंग बिभूति लगाइ चली तब माग ही ॥
मैं वासौं फिरि कह्यौ अबै मुहि माग ही ॥
(परि हां) सुन्दर रहूं न वैठि जाउं पिय मांग ही ॥ १० ॥
दूभर रैनि विहाय अकेली सेजरी ॥
जिन कै संगि न पीव विरहनी सेजरी ॥

---

(७) मागना=(१) मांग, सिर के बालों के सीमन्त में सिन्दूर आदि से सिंगार। (२) माग, मार्ग+ना नहीं। (३) याचना करना (चाहिये, क्रिया)। (४) याचना, भीख (संज्ञा)। अर्थात् पतिव्रता का प्रताप तो ऐसा है कि उसको आप ही पति मिल जायगा किसी से याचना की आवश्यकता ही नहीं। पतिव्रत धर्म की महिमा ऐसी है।

(८)जोइरी=(१)जलाकर, प्रज्वलित करके। (२)देख करके (री, सखी)। (३)तयार कर, जुवा लगा कर। (४) स्त्री, पत्नी (री, सखी)।

(९) सोधना=(१)ढूंढना(२) सुधबुध, नहीं अथवा तलाश (पता)नहीं है।(३)धण (रजवाड़ी भाषा में, प्यारी स्त्री)। (४) सो, वह धना, धन द्रव्य सर्वस्व।

(१०)मांग ही=(१) शिर के केशों की मांग(शृङ्गार)। (२)मार्ग। (३)मा=मत+

फिरै संकल वाहि विचारी सेजरी ॥
(परि हां) सुन्दर दुःख अपार न पाऊं सेजरी ॥ ११ ॥

पंथी आवै कोइ सीस धौं वैसना ॥
कहूं जहां हीं जाह अबै इहां वैस ना ॥
पीव हिं जाइ सुनाइ रहन की वैसना ॥
(परि हां) सुन्दर देवन और भई हूं वैसना ॥ १२ ॥

हार हमेल उतारि उतारी रापरी ॥
चौवा चन्दन छाडि लगाई रापरी ॥
जैहौं देश विदेश अव न मुहि रापरी ॥
(परि हां) सुन्दर पिय विन जारि करौं तन रापरी ॥ १३ ॥

पीव विना तन छीन सूकि गई सापरी ॥
हाड रहै कै चाम विरहनी सापरी ॥
निश दिन जोवै माग विचारी सापरी ॥
(परि हां) सुन्दर पति कौं छाडि फिरत है सापरी ॥ १४ ॥

गहि=पकड़ । मत पकड़ या मत छुवे । (४) मांगसी, मांगैंगे, चाहैंगे । (यह मांग शब्द छन्द ७ से बहुत मिलता है ।)

(११)सेजरी=(१)सेज, शय्या । (री, हे सखी) । (२) से वे, विरहवाली स्त्रियां (३) जरी, जड़ी (जकड़ दी) विरह सांकल से बांध कर । (४) से, वे । जरी, जड़ी (बूंटी औषधि) वे पियरूपी औषध न पाऊं तो अपार दुःख रहैगा ।

(१२) वैसना=(१) वैठने को आसन । शिर पर विठाऊं (यहां, पंथी से पिया का पिया की खबर लानेवाला हरकारा) ।

(१३) रापरी=(१) राखड़ी (शिर का आभूषण, चूड़ामणि) । (२) भस्म (री, हे सखी) । (३) रख (रोक) । (४) खाक (जला करके) ।

(१४) सापरी=(१) साप, खेती (तनरूपी फसल) री (हे सखी) । (२) साख, शाखा (डाली जैसी पतली) अथवा विरहणी की विरह व्यथा की

छाडि आपनौं नाथ आन की सेव का ॥
रुचै न षाटे बेर स्वाद अति सेव का ॥
को करि सकै बषांन प्रभूकी सेव का ॥
(परि हां) सुन्दर अनत न जांहिं तुम्हारे सेवका ॥ १५ ॥
मूरष मानै मोद सेव करि आनकी ॥
पति अपनौं दे छाडि रहै क्यौं आनकी ॥
पैहैं दुःख अपार प्रभू की आनकी ॥
(परि हां) सुन्दर फिरि पछिताइ कहेगा आनकी ॥ १६ ॥
टेढी पाग बनाइ अंग कहा मोरना ॥
कीये वहुत सिंगार कहा कछु मोरना ॥
जंत्र सु भूटा साजि चढ़ाये मोरना ॥
(परि हां) सुन्दर देषि बिचार इहां कछु मोर ना ॥ १७ ॥

साक्षी उसकी हड्डियां और खाल बाकी रह जाना है। (३) सा, वह (विरहणी स्त्री) खरी (खड़ी, खड़ी) (४) सा (वह) खरी (गधी की तरह इधर उधर मानहीन दुःखी भूखी फिरती फिरती है)।

(१५) सेवका=(१) सेव (सेवा) का (क्या)। (२) सेव (उत्तम मेवा निजपति रूप) और खाटे बेर पति से भिन्न पुरुष। (३) सेव (सेवा) का (सम्वन्ध का)। (४) सेविका (दासी) सेवा करनेवाली पतिव्रता पत्नी।

(१६) आनकी=(१) आन (अन्य) की (सम्वन्धी)। (२) प्रण (पतिव्रत की टेक) की (वात)। (३) आँण, सोगंध (अव चाहे जितना भी दुःख मिलै, मैंने भगवान की सोगन्ध खाली कि प्राण जाय पर प्रण न छोडूं)। (४) मेरे मर जाने पर आने की कह कर (पति) पछतायगा।

(१७) मोरना=(१) मोड़ना, ऐंठना। (२) अथवा सेहरा+ना (नहीं) मयूर (भी तुच्छ है)। (३) मोर=मोड़+ना=नहीं। (४) मोर=मेरा, अपना+ना= नहीं, अर्थात् संसार में अपना कुछ भी नहीं है।

उपज्यौ आतम ज्ञान अवै या तन्न मैं ॥
देख्यौ बुद्धि विचार वस्तु है तन्न मैं ॥
पूरन ब्रह्म अखंड विराजै तन्न मैं ॥
[परि हां] सुन्दर यह सु प्रपंच देपिये तन्न मैं ॥ १८ ॥

॥ समाप्तोऽयं पवंगम-छन्द ग्रन्थः ॥ ३१ ॥

---

(१८) तन्न मैं=(१) शरीर के अन्दर। (२) तत्+न, अर्थात तत् ऐसा भान मिट जाने में। (३) तत्+नमैं, उसको नमस्कार करैं। (४) तन्मय होने में।

अडिल्ल-छन्द

अथ अडिला छन्द

अडिला

पिय विन सीस न पारूं पाटी। पिय विन आंषिनि बांधौं पाटी॥
पिय विन और लिषू नहिं पाटी। सुन्दर पिय बिन छतियां पाटी॥ १॥
सुन्दर विरहनि विरहै वारी। प्रीति करत किनहूं नहिं वारी॥
पिय कौं फिरी वाग अरु वारी। अव तौ आइ पहूंची वारी॥ २॥
पिय जी आपु लगाइसि वाना। पिय कारण यह कीया वाना॥
विरहै कसै कंचन ज्यौं वाना। सुन्दर तन करि पिय सौं वाना॥ ३॥
विरहै गहि दश हू दिश फेरी। किन हूं सीष देइ नहिं फेरी॥
सुन्दर पीव करी नहिं फेरा। विरहनि परी षाइ करि फेरी॥ ४॥

(अडिला छन्द)—अडिला, वा अडिल्ला, वा डिल्ला छन्द १६ मात्रा का चोक लिया मात्रा—गण से, होता है—अन्त भगण हो तो 'डिल्ला' अन्त गुरु हो तो 'लहुआ' इसमें प्रायः जगण (।ऽ।) नहीं पड़ता है।

(१) पाटी=केशों की पाटी पारना, सिङ्गार करना (२) कपड़े की लीर से आंख बन्द करूंगी। (३) लकड़ी की तखती। (४) बंध गई, रूक गई दुःख विरह से, अथवा फाटी।

(२) वारी=(३) फुलवाड़ी। (२) मवारी, रोकी। (१) जलाई (४) मिलने की नोवत आ गई।

(३) बाना=(१) वाण, टेव। अथवा तीर। (२) भेष। (३) आनवान, चमक, आवताव। (४) ताना बाना, एक मेक हो जा।

(४) फेरी=(१) फिराई। (२) लोटाई (३) फेरे, भांवर अथवा दोरा आना। (४) चक्कर।

पिय बिन हिरदा होइ न सीरा। पिय बिन सजनी पांउ न सीरा॥
मैं दीनी पिव ही सौं सीरा। सुन्दर मेरे इहै नसीरा॥ ५॥
मैं तौ प्रीति करन नहिं जानां। पिव सु लै आये नहिं जानां॥
तिन दिल बिरह जरावत जानां। सुन्दर अब पिय ही पै जानां॥ ६॥
पिय कारन मैं कीन्ही हेरी। पिय कौं गली गली सब हेरी॥
अब का कहूं सखी सुनि हेरी। सुन्दर पिय कबहू नहिं हेरी॥ ७॥
बिरह बिथा करि सूकत मासा। लोग सु पावन लागे मासा॥
पिय बिन आयौ फागुन मासा। सुन्दर बिरहनि तोला मासा॥ ८॥
पिय बिन नींद परै नहि पाटा। पिय बिन बिरहनि पाइ न पाटा॥
पिय बिन दिल मैं और न पाटा। सुन्दर मन सब सौं भया पाटा॥ ९॥
पिय बिन जागी रजनी सारी। पिय बिन कबहु न पहरी सारी॥
सुन्दर बिरहै करवत मारी। बिरहनि कहो रहै क्यों सारी॥ १०॥

---

(५) सीरा=(१) ठण्डा। (२) हलुवा। (३) नाता, मेल। (४) सीरी=फतह, विजय। अथवा

(६) जानां=(१) जांनी कर न सकी। (२) बरात। (३) जीव। (४) [illegible]। दूसरे पाद में 'पिव' को 'पीव' पढ़ना।

(७) हेरी=(१) आवाजें, हेले। अथवा फेरी, चक्कर। (२) ढूंढा। (३) हेरी (हे सखी!)। (४) मुझको नहीं ढूंढा।

(८) मासा=(१) मांस, गोश्त। (२) उड़द (की दाल)। (३) [illegible]। (४) तोला मासा, बहुत बेचैन। (मासा=माशा, तोल ८ रती का)।

(९) पाटा=(१) पल्ला पर। (२) कढ़ी। (३) रंज। (४) बिगड़ा हुआ, [illegible], नफरत।

(१०) सारी=(१) तमाम। (२) साड़ी (सौभाग्य का ओढना)। (३) [illegible] (काटने को) अथवा सा=समान, री=हेरी सखी। (४) पूर्ण अर्थात् [illegible] करोत से कट गई तो टुकड़े ही हो गए फिर पूरी कैसे बनी रहै।

अब सषि अपना मन वसि करना। वह तौ पिय किस ही कै करना ॥
अपनी पुसी करै सौ करना। तौ सुन्दर किस ही का करना ॥ ११ ॥
पिय कौं ढूंढे वागी वागा। पिय विन क्यौं करि थंभौं वागा ॥
पिय कारन यह पहर्‌या वागा। सुन्दर डांका दह दिश वागा ॥ १२ ॥
मात पिता अरु काका काकी। सुत दारा अरु संपत का की ॥
ज्यौं कोइल सुत सेवै काकी। सुन्दर रिद्ध राषि कर काकी ॥ १३ ॥
घर मैं वहुत भई जब माया। तब तौ फूल्यौ अंग न माया ॥
वहुरि त्रिया सौं बांधी माया। सुन्दर छाडि जगत की माया ॥ १४ ॥
गर्भ मांहिं तव किन तूं पाला। अब मांया कौं दौड़त पाला ॥
ऐसी कुबुधि ढांकि दे पाला। सुन्दर देह गलै ज्यौं पाला ॥ १५ ॥
पैंचि कमरि सौं वांध्या पटका। अधपति हुवा बैठि करि पटका ॥
काल अचानक मार्‌या पटका। सुन्दर पकरि जिमी सौं पटका ॥ १६ ॥

---

(११) करना=(१) कर लेना, करना चाहिये। (२) हाथ नहीं (अर्थात् वस में नहीं। (३) कर्तव्य, सुकृत। (४) महसूल, दण्ड।

(१२) वाग=(१) वगीचा। (२) घोडे की लगाम। (३) पोशाक, भेष। (४) पड़ गया। डांका=धाडा, लूट।

(१३) काकी=(१) चची। (२) किस की। (३) कौवी (कागली)। (४) क्या किया।

(१४) माया=(१) पूंजी। (२) समाया। (३) मोह। (४) प्रपंच।

(१५) पाला=(१) पाल-पोष करी। (२) नंगे पांव। (३) पाल (चादर) से। (४) वर्फ। ओले।

(१६) पटका=(१) कमर बन्धा। (२) पाटा, चौकी, राजगद्दी। (३) थप्पड़। (४) गिरा दिया।

भूलौ कहा देखि या पल में। सब संसार भुलाया पल में॥
देखत बिनसि जावगा पल में। सुन्दर भार किता इक पल में॥ १७॥
आगु हि जाल किया ज्यौं मकरी। पीछैं फिर्‌या लाठि ज्यौं मकरी॥
अजहूं समुझि देषि कछु मकरी। सुन्दर मकर छाडि दे मकरी॥ १८॥
पतंग निमिति देहि जो दाना। सौ हाथी ह्वै पैहैं दाना॥
उनही मनि पस पस का दाना। सुन्दर संत मिले नहिं दाना॥ १९॥
आगैं महापुरुष जे भूता। तिन वसि कीया पंचौ भूता॥
अब ये दीसत नाना भूता। सुन्दर ते मरि मरि ह्वै भूता॥ २०॥
कोई षांहि लापसी मांडा। कोई पीवै पतरा मांडा॥
जिन चरित्र ऐसा यह मांडा। सौ तौ सुन्दर व्यापक मांडा॥ २१॥
लालच लगि सेवा की हर की। औंडी चाल लई तैं हरकी॥
मूरष फिरि पिछलीही हरकी। सुन्दर सबै बात भइ हरकी॥ २२॥

---

(१७) पल में=(१) चाल ढाल, ढङ्ग। (२) निमेप मात्र में। (३) मांसपल, शरीर के अभिमान में। (४) पलतौल=४ तोले का। ता ताखड़ी।

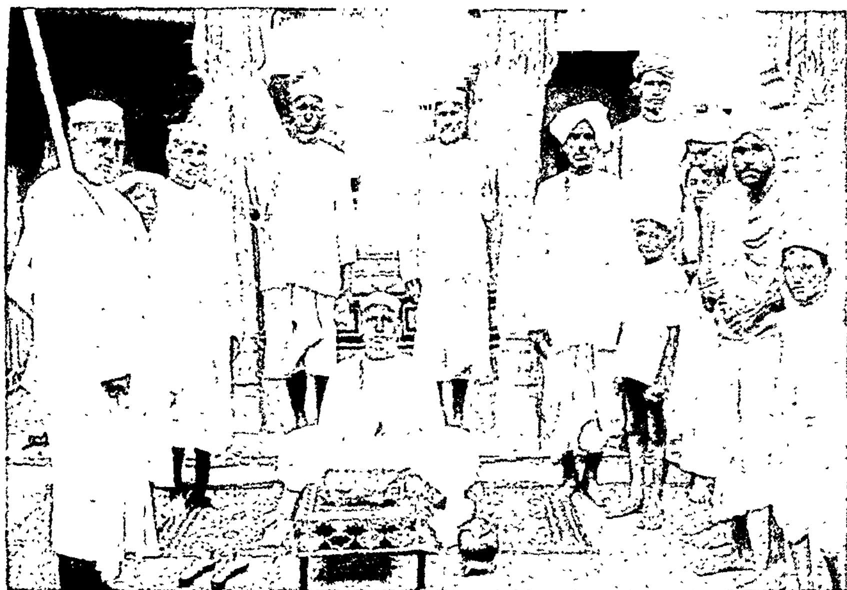
(१८) मकरी=(१) मकड़ी। (२) घांणी का विभाग ऊपर का। (३) मगर मच्छ की मादीन। या मगहर, अज्ञान। (४) मक्कार, छली, मक्र करनेवाला।

(१९) दाना=(१) दान, दातव्यता। (२) अन्य, भक्ष्य। (३) छोटी, क्षुद्र। (४) बुद्धिमान, अनुभवी, योग्य।

(२०) भूता=(१) हुए थे, उत्पन्न हुए थे। (२) पृथी, अप, तेज, वायु आकाश। (३) प्रेत, जिन। (३) प्राणी नाना प्रकार के।

(२१) मांडा=(१) मैदा की मांटी या पपड़ी खाद्य वस्तु। (२) पतला लपटा, चावल का मांड। (३) रचा, फैलाया। (४) फैला हुआ।

(२२) हरकी=(१) हर किसी की (भगवान को छोड़ कर)। (२) मैंडक की (कि जिससे लक्ष्य पर नहीं पहुंच सकता)। (३) पशु की तरह हरे घास की लालसा की। (४) हलकी (घाट) हो गई।



महंत गंगारामजी शिष्य मंडली सहित

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता ।

जलतौ फिर्यौ तपति ज्यौं हरिकी । शीतलता उपजी नहिं हरिकी ॥
बहु विधि मार षाइ है हरिकी । सुन्दर सेवा करी न हरिकी ॥ २३ ॥
ऐसें रटि जैसें सारंगा । अनत न भ्रमि जैसें सारंगा ॥
रसिक होइ जैसें सारङ्ग । तौ सुन्दर पावै सारङ्ग ॥ २४ ॥
जौ कर्मनि कौ ढारै वासा । तौ लगि परि है जमका पासा ॥
सत संगति का लागै पासा । तौ सुन्दर हरि ही कै पासा ॥ २५ ॥
जौ तेरै ढिग आवै नारी । तौ तूं कहि उठि नारी नारी ॥
तल मैं शोषि लेइ सब नारी । सुन्दर रथ न चलै बिन नारी ॥ २६ ॥
जामैं हुतौ सबनि कौ भागा । भांडा सोई भ्रम का भागा ॥
अब तौ मस्तक जाग्यौ भागा । सुन्दर छाडि जगत कौं भागा ॥ २७ ॥

---

(२३) हरिकी=(१) सूर्य की वा अग्नि की (संसार के तापत्रय से दग्ध होता रहा, जैसे सूर्य की वा आग की गर्मी से पदार्थ तप्त वा दग्ध होते हैं)। (२) चन्द्रमा (ज्ञान वा भक्ति से तापत्रय का निवारण होकर शान्ति की शीतलता नहीं प्रगट हुई)। (३) यमराज की। (४) भगवान की।

(२४) सारंगा=(१) पपीहा (२) हिरण। (३) भौंरा। (४) शारङ्ग-पाणि, भगवान विष्णु।

(२५) पासा=(क) चौपड़ का पासा—पासा डारना, खेल खेलना, संग्रह करना (ख) पाश, फांसी। (ग) पुट (जैसे औषधि या मदिरा के)। (घ) निकट।

(२६) नारी= (क) स्त्री। (ख) बाघिन। अथवा, नहीं री निषेध कर (ग) नाडियां शरीर की (रुधिर और वीर्य की)। (घ) नाड़ी। जैसे बिना नाड़ी के रथ नहीं चल सकता वैसे बुद्धि वा आत्मबल बिना शरीर की सद्गति नहीं हो सकती।

(२७) भागा=(क) हिस्सा, मेल। (ख) भांगा, तोड़ दिया, टूट गया। अर्थात् "सबनि" जो सब पूर्व कर्म वा संसार, उससे मिथ्याज्ञान का एक मिथ्या भ्रम-घट वा शरीर बनता है, जैसे रज्जु में सर्प, वह ज्ञान के उदय से नाश हो गया। (ग) भाग्योदय। (घ) दौड़ा, त्याग कर।

नगनु छाडि तन कीया नागा । वन मैं जाइ रहै ज्यौं नागा ॥
पवन अहार किये ज्यौं नागा । सुन्दर राम विना सब नागा ॥ २८ ॥
रिपु ज्यौं मरै बान कौ सरना । तातैं मन मैंवासी सरना ॥
देखि बिचारि बहुरि ओसरना । सुन्दर पकरि राम कौ सरना ॥ २९ ॥
जौ तौ तैं प्रभुजी कौ चरना । तौ तूं भयौ विमुख हरि चरना ॥
अब तैं पकरि कमरि मैं चरना । सुन्दर इत उत फिरि कछु चरना ॥ ३० ॥

॥ समाप्तोऽयं अडिल्ला छन्द ग्रन्थः ॥ ३२ ॥

---

(२८) नग्न, (क) विरक्त । (ख) वनवासी जाति । (ग) सर्प । (घ) हीन, दीन ।

(२९) शर (क) तीर । (ख) विजित, वशमें । (मैंवासी=अवल) । (ग) आसर, नहीं । (घ) शरण ।

(३०) चरना=(क) दास, जौतौ=यदि । (ख) चरण । (ग) कमर वन्ध (अर्थात् होशियार हो) (घ) चलना या खाना । मत भटक ।

मल्लिका

अथ मडिल्ला

मडिल्ला*

बंधन भयौ प्रीति करि रामा। मुक्त होइ जौ सुमिरै रामा ॥
निशि दिन याही करै विचारा। सुन्दर छूटै जीव बिचारा ॥ १ ॥
एक कर्म बंधन ह्वै मोटा। तैं बंधी कर्मनि की मोटा ॥
याही सोप सुनै किन काना। सुन्दर देह जगत सौं काना ॥ २ ॥
मूरष तृष्णा बहुत पसारी। हरद हींग लै भयौ पसारी ॥
औरनि कौं ठगि ठगि धन सांचा। सुन्दर हरि सौं होइ न सांचा ॥ ३ ॥
तृष्णा करि करि परजा भूले। तृष्णा करि करि राजा भूले ॥
तृष्णा लगि दशहूं दिश धाया। सुन्दर भूषा कबहु न धाया ॥ ४ ॥

---

* मडिल्ला छन्द—यह छन्द अडिल्ला जैसा ही है १६ मात्रा का अन्त २ गुरु है। "रणपिङ्गल" में अरिल्ल के नोट में "मागधीपिङ्गल" के प्रमाण से यह विशेषता दी है कि एक पाद में २ यमक हो।

(१) रामा=स्त्री। रामा=राम, भगवान। विचारा=विचार, सोचना। विचारा=बेचारा, दीन।

(२) मोटा=बड़ा, भारी। मोटा=पोट, गठड़ी। काना=कान, श्रवण। काना=कन्नी, नांका, तरह देना।

(३) पसारी=फैलाई, बढ़ाई। पसारी=पंसारी। अल्पज्ञ होकर भी बहुज्ञता का अभिमानी)। साँचा=संचय किया। सांचा=सच्चा, अनन्य।

(४) भूले=(भगवान को) भूल गये। भूले=पृथ्वी, धरती छीन वा विजय करके। धाया=दौड़ा। धाया=धापा, तृप्त हुआ।

मान मुलक साथी अरु घोरा। बहुत गर्व करि घन ज्यौं घोरा॥
कछु आवैं करी न वेरा। सुन्दर छिन में किया नवेरा॥ ५॥
माया ले करि घर में गाडी। निश दिन भरि भरि ल्यायौ गाडी॥
भगरि कुरसी सौं दिन काटै। सुन्दर सूम न कोडी काटै॥ ६॥
औरनि दई न आपु न पाई। माया धरी पोदि कर पाई॥
तेरी रही सूम की थाती। सुन्दर दी आगै कौं थाती॥ ७॥
मन मगरूर टेढी पागा। रोम हि रोम विषै रस पागा॥
काल अचानक आइ पछारा। सुन्दर भया छिनक मैं छारा॥ ८॥
पाट पटंबर सोना रूपा। भूलौ कहा देषि यह रूपा॥
छिन में बिलै जात नहिं वारा। सुन्दर टेरि कह्या कै वारा॥ ९॥
जौ न देहि धणीं कौं लेपा। तौ तूं जौ जानै सौ लेषा॥
जौ तोपैं नहिं आवैं जावा। तौ सुन्दर टूटेगी जावा॥ १०॥

---

(५) घोरा=घोड़ा। घोरा=गर्जा, घुराया। वेरा=वेर, देर। नवेरा=नबेड़ा, नाश।

(६) गाडी=पृथ्वी में गाड दी। गाड़ी=शकटी (छकड़ा, लढ़ूढी)। भगरि कुरसी=[illegible] (साकर) काटै=विताये। काटै=खरचै।

(७) पाई=भोजन किया, भोगी। पाई=खड्डा। थाती=धरोहर, धरी हुई, जमा पूंजी।

(८) पछारा=पछाड़ दिया, मारा। छारा=रेत, नाश। पागा=पगिया, पगड़ी। पागा=पगा, मग्न हुआ।

(९) रूपा=चांदी। रूपा=रूप (नाम रूप, मिथ्यात्व) वारा=विलम्ब (क्षण भंगुर) बिवारा=वेर वेर कई दफै।

(१०) धणीं=भगवान। लेपा=हिसाब। ले+पा=लेकर+खालै अर्थात् कर्मों का नाश में नाश कर ले। जावा=जवाब, उत्तर। जावा=जवाड़ी अर्थात् थप्पड़ के मारे मुंह टूट जायगा अर्थात् नरक यातना मिलैगी वा चौरासी मिलैगी ।

जौ तैं हाथ लिया है आसा। तौ अंब छाडि औरकी आसा ॥
निहचै पकरि एक ही भौना। तौ सुन्दर किसही का भौना ॥ ११ ॥
वरषा सीस सीत मधि नीरा। उष्ण काल पावक अति नीरा ॥
ऐसी कठिन तपस्या साधी। सुन्दर राम विना का साधी ॥ १२ ॥
अधो सीस ऊरध कौं पाया। राज पाट कछु चाहै पाया ॥
भीतरि भर्‌या कुबुधि सौं भाँडा। सुन्दर राम विनां ह्वै भांडा ॥ १३ ॥
सिर पर जटा हाथ नष राषा। पुनि सब अंग लगाई राषा ॥
कहैं दिगम्बर हम औधूता। सुन्दर राम विना सब धूता ॥ १४ ॥
यौगी सो जु करै मन न्यारा। जैसैं कंचन काढै न्यारा ॥
कान फडाएं कोइ न सीधा। सुन्दर हरि मारग चलि सीधा ॥ १५ ॥
जो सब तें हुवा वैरागी। सो क्यौं होइ देह बैरागी ॥
निशि दिन रहै ब्रह्म सौं राता। सुन्दर सेत पीत नहिं राता ॥ १६ ॥

---

(११) आसा=फारसी में असा, छड़ी, लकड़ी। आसा=आशा। भौनां=भवन ढीडा, अवलम्ब। भौना+ना=भय+नहीं।

(१२) वारिश को माथे पर झेली। शीत ऋतु में जल में खड़ा रहा। गर्मी के मोसम में पंचाग्नि तपी। नीरा=नीर, जल ; नीरा=नीड़ा, पास। साधी=साधन की। सा+धी=वह+धी, वुद्धि।

(१३) पाया=पांव। सिर नीचे ऊपर का पांव करने से कठिन योगासन और तपस्था से अभिप्राय है। (२) पाया=पाना, प्राप्त करना। भांडा=(१)वरतन, शरीर (२) वुराई, अपयश।

(१४) राषा=(१) रक्खा। हाथ की चिटली ऊंगली या सब नषों को न कटवा कर वढ़ाया। (२) भस्म, विभूति। औधूत=अवधूत, मस्त साधु। धूता=धूर्त्तता।

(१५) न्यारा=(१) अलग (संसार से)। (२) न्यारा=न्यारिया, जो सोनेचान्दी को मेल मिलाव से, मशाले से शुद्ध करता है। सीधा=(१) सिद्ध (२) जो टेढा न हो।

(१६) वैरागी=(१) विरक्त, त्यागी। (२) वै=विशेष+रागी=अनुरागी।

[illegible] जो रहै उदासा। जानै सब का होइउ दासा॥
[illegible] ज्ञान में रहना। सुन्दर या बिन दूजी रहना॥ १७॥
[illegible] कहा कीनो जैनां। ज्ञान दृष्टि अभि अंतर जैनां॥
[illegible] को लखौ न पोजा। सुन्दर जती भये ज्यौं पोजा॥ १८॥
[illegible] पिंड की वाता। पृथ्वी आप तेज नभ वाता॥
[illegible] काम सुनावे अर्था। सुन्दर ढकहि वेद कौ अर्था॥ १९॥
[illegible] बहु भांति पुराणी। नीकी लागै बात पुराणी॥
[illegible] जब छूटै रागा। सुन्दर हरि रीझै सो रागा॥ २०॥

॥ समाप्तोऽयं माडिल्ला ग्रन्थः॥ ३३॥

[illegible]=(१) रत, अनुरक्त, तन्मय। (२) राता=रक्त, लाल (उसकी भेदभाव नहीं, [illegible] रहती है)।

(१७) उदासा=(१) उदासीन भाव रखनेवाला। (२) होइउ=हो गया, [illegible]+दासा=दास, चाकर। अथवा सब कोई ऐसा जानते हैं कि ये कभी अप्रसन्न, [illegible] नहीं होंगे। तामस=तमोगुण (क्रोधादि) रहना=(१) बना रहना। (२) रह=रस्ता, मार्ग+नां=नहीं। या (इस ज्ञान) बिन (बिना) और रस्ता नहीं है।

(१८) जैना=जैन लोग। (१) जै=जो+नां=नहीं। यदि अन्तरात्मा को [illegible] का ज्ञान नहीं तो वह क्या जैनी हो अथवा "अयमात्मा ब्रह्म" ऐसा ज्ञान हृदय में पाकर जिसने अज्ञान पर जै (विजय) नहीं पाई तो वह जैन नहीं। पोजा= (१) [illegible], पता। (१) पोजा=नपुंसक (फा०ख्वाजासरा)। जती=जैन यती यदि [illegible] ज्ञान को न खोज कर पा सके तो वे पुरुषार्थहीन हैं, हिंजड़ों के समान।

(१९) अर्थ स्पष्ट है। पण्डित लोग सरल, कर्मकाण्ड और पुरुषार्थचतुष्टय की [illegible] वेद के अर्थ को उल्टा छिपाते हैं जिसमें ब्रह्मज्ञान भरा पड़ा है।

(२०) पुराणी=(१) पुराण की। (२) प्राचीन। रागा=(१) आसक्ति (विषयों में) (२) रागा=गान। १९ और २० वें छन्दों में वेद और पुराण की [illegible] कही है कि उनसे ब्रह्म जाना जा सकता है परन्तु पण्डित लोग अर्थ कुछ का [illegible] करके असल बात को नहीं कहते हैं।

बारहमासो

अथ बारहमासो

पवंगम

प्रथम सषीरी चैत वर्ष लागो नयौ ॥
मेरौ पिव परदेश बहुत दिन को गयौ ॥
बिरह जरावै मोहि बिथा का सौं कहौं ॥
(परि हां) सुन्दर ऋतु बसंत कंत विन क्यौं रहौं ॥ १ ॥

अब आयौ वैसाष भाष नहिं कंत की ॥
जुब्बन क्यौं वसि होइ छक मैंमंत की ॥
तब ही मानै शंक सु विस्वावीसरी ॥
(परि हां) सुन्दर अंकुश पीव धरै जब सीसरी ॥ २ ॥

जैठ तपै दिन रैंनि सु मेरी छत्तियां ॥
पीव संदेस लिषाइ न भेजी पत्तियां ॥
चंदन चन्द वयारि लगै तन तीररी ॥
(परि हां) सुन्दर बिरहनि देषि धरै क्यौं धीर री ॥ ३ ॥

पवंगम का लक्षण ऊपर दे दिया गया है—'बारहमासे' में यही छन्द है।

(१) ऋतु को 'ऋतू' पढ़ना होगा।

(२) भाष=आवाज, खवर, संदेसा। जुवन=योवन। छक=छकी। अंकुश=मदमत्त हाथी के रूपक से अंकुश=ताड़ना मन की।

(३) चन्दन, चन्द, वयारि=चन्दनादिक स्वभाव से ठण्डे हैं परन्तु विरह-व्यथा में ये तपाते हैं, दुःख देते हैं मानों तीर लगा।

आयौ मास असाढ गाढ किन हूं किया ॥
राखे पिय बिरमाइ सु आवन नां दिया ॥
हूंबरहूं किस लागि अकेली सेजरी ॥
(परि हां) सुन्दर बिरहनि रोइ मरै इस हेजरी ॥ ४ ॥
सावन मास संदेस कहै को नेहके ॥
पंथी रहै सु वैठि डराने मेह के ॥
ना इततें कोउ जाइ न हातें आवई ॥
(परि हां) सुन्दर बिरहनि दुःखन रैनि बिहावई ॥ ५ ॥
भादौं गहर गंभीर अकेली कामिनी ॥
मेघ रह्यो भर लाइ चमंकत दामिनी ॥
बहुत भयानक रैनि पवन चहुं दिशि वहै ॥
(परि हां) सुन्दर बिन उस पीव बिरहिनि क्यौं रहै ॥ ६ ॥
आस रही आसोज आइहैं पीवरी ॥
बार बार समुझाइ सु राख्यौ जीवरी ॥
निर्मल देषि अकाश शरद ऋतुकी निसा ॥
(परि हां) सुन्दर पीव न पास अबहिं जीवन किसा ॥ ७ ॥
कातिक कंत समीप त्रिया ते हैं सुखी ॥
हूं तौं फिरौं उदास पीव बिन अति दुखी ॥
फूले कंवल अनंत चहूं दिशि चांदनी ॥
[परि हां] सुन्दर बिरहिनि देषि भई है मांदिनी ॥ ८ ॥

---

(४) गाढ=ओछी की, (मुझ बिरहिन के साथ) वैर किया। या प्रिय को हठ करके पकड़ रक्खा। हूंबरहूं=मैं किस को अच्छा समझूं वा पति करूं अर्थात् [illegible] में हढ़ हूं। हेज=प्रेम।

(५) बिहावई=बिहानी, बिताई।

(६) बिरहिनि को बिरहिनी पढ़ना।

(८) मांदिनी=मन्दता, मांदगी, उदासी।

अगहन पिय की बात कहै को सुनि सषी ॥
हृदै औद मुख और सु मैं मन मैं लषी ॥
आवन कौं कहि गये अजौं नहिं आइया ॥
[परि हां] सुन्दर कपटी कंत उंहीं बिरमाइया ॥ ९ ॥
पोस मास की राति पीव बिन क्यौं कटै ॥
तलफि तलफि जिय जाय करेजा अति फटै ॥
सूंनी सेज संताप सहै सो बावरी ॥
[परि हां] सुन्दर काढौं प्राण सु अबहिं उतावरी ॥ १० ॥
माघ सु परै तुसार जतन सब को करै ॥
सौरि सुपेदी छोडि संग पिय के परै ॥
हूं तौ भई अनाथ आसिरा को नहीं ॥
[परि हां] सुन्दर बिरहनि दुखित पुकारै मन मंहीं ॥ ११ ॥
फागुन घर घर फाग सु षेलहिं कंत सौं ॥
केसरि चन्दन अगर गुलाल बसंत सौं ॥

बारहमासिया वा ऋतु वर्णन के साथ प्रति मास विरह दशा का वर्णन करना भाषा-कवियों में एक रीति सी है। भाषा में सैकड़ों बारहमासिये वर्णित हैं। सुन्दरदासजी के इस बारहमासिये का आध्यात्मिक अर्थ जिज्ञासु-विचार कर सकैंगे, बहुत आनन्द का अभिप्राय है।

(९) अगहन=अग्रहायन मास, मार्गशीर्ष। उंहीं=उसी (सोतिन) ने, वा वहीं (परदेश में)

(११) तुसार=तुषार, वर्फ की वर्षा, ठण्डे जल-कण। सौरि=सौड़, तोशक। सुफेदी=सफेद वा दोवड़। वोडि=औढ़ कर। परै=सोवै, लेटै। आसिरा=आसरा, आश्रय। मंही=मांहीं, अन्दर।

मेरैं नख शिख अग्नि वारि बिरहा दई ॥
[परि हां] सुन्दर मृतक समान देपि बिरहनि भई ॥ १२ ॥
बीते बारह मास बिरहनी तलफतैं ॥
निहरि न आई तोहि निश दिन कलपतैं ॥
अबहिं दया करि आव जीवका दांन दै ॥
[परि हां] सुन्दर प्रानहिं रापि निकसि जिनि जांन दै ॥ १३ ॥

॥ समाप्तोऽयं बारहमासो ग्रन्थः ॥ ३४ ॥

---

(१३) निहरि=मेहरबानी, दया, कृपा ।

आयुर्बल भेद आत्मा बिचार

अथ आयुर्बल भेद आतमा विचार

चौपई

गुरु बंदन करि करौं उचार। आयुर्बल कौ सुनहु बिचार॥
ब्रह्म आदि कीट पर्यंत। आयुर्बल वीतै ह्वै अन्त॥ १॥
सतयुग लक्ष वर्ष की आव। त्रेता दश सहस्र ठहराव॥
द्वापर एक सहस्रहिं जांनीं। कलियुग मैं सौ बरष बषांनीं॥ २॥
घटत घटत नउवै रहिं जांहि। असी वर्ष कै सत्तर मांहिं॥
साठि पचास वर्ष चालीस। तीस बीस दश एक बरीस॥ ३॥
एक बर्ष के बारह मास। ताहू मांहिं घटत हैं स्वास॥
ग्यारह दश नव आठ कि सात। षट कै पांच च्यारि पुनि जात॥ ४॥
तीन दोइ कै एकै होइ। आयुर्बल गति लषै न कोइ॥
एक महीना के दिन तीस। घटत घटत दिन रहे जु बीस॥ ५॥

आयुर्वल=आयु, आयुरदा, जीवन की अवधि, आयुष्य।

(२) सतयुग...=प्रत्येक युग में मनुष्य की आयुष्य न्यूनाधिक होना पुराणों में लिखा है। सतयुग से आरम्भ कर कलियुग तक दशमांश और कलियुग से सतयुग तक दशगुणी अधिक आयु है। एक लाख से सौ तक—और विलोम १०० से १००,००० तक।

(३) से (९) तक आयु के मान के अनुसार घटाव दिखाकर उपदेश दिया है कि प्रति निमेष वा पल इसका मान है। यह उसी क्षण से घटती है, जिस पल से यह बनती है। प्रतिक्षण परमात्मा का स्मरण करना आयु की मानों सफलता और सार्थकता है। फिर आयु के घटाव-बढाव पर सूर्य और बांस की छाया का बहुत सुन्दर

दीसतु मैं पन्द्रह दश पांच। च्यारी तीन द्वै इक दिन सांच॥
एक दिवस की घटिका साठि। कै पचास चालीस हु नाठि॥ ६॥
तीस बीस दश पांच कि एक। एक घड़ी मैं गये अनेक॥
एक घड़ी की साठि निमेप। घटत घटत एकै पल शेप॥ ७॥
एक पलक पट स्वासा होइ। तासौं घटि बधि कहै न कोइ॥
पंच च्यारि त्रिय द्वै इक स्वास। अर्ध पाव अध पाव विनास॥ ८॥
यौं आयुर्बल घटतौ जाइ। काल निरंतर सब कौं पाइ॥
ब्रह्मा आदि पतंग जहां लौं। उपजै विनसै देह तहां लौं॥ ९॥
जथा बांस लघु दीरघ होइ। तिन की छाया घटि बधि होइ॥
जब सूरज आवै मध्यान। दोऊ छाया एक समान॥ १०॥
यौं लघु दीरघ घट कौ नाश। आतम चेतन स्वयं प्रकाश॥
अजर अमर अविनाशी अंग। सदा अखंडित सदा अभंग॥ ११॥
घटै न बढै न आवै जाइ। आतम नभ ज्यौं रह्यौ समाइ॥
जो कोइ यह समुझै भेद। संत कहैं यौं भाषै वेद॥ १२॥
ये चौपई त्रयोदश कही। आतम साक्षी जानौं सही॥
सुन्दर सुनै विचारै कोइ। सो जन मुक्ति सहज ही होइ॥ १३॥

॥ समाप्तोऽयं आयुर्बल भेद आत्मा विचार ग्रन्थः ॥ ३५ ॥

उदाहरण या दृष्टान्त देकर मध्यान्ह में बांस की छाया बांस में ही लीन हो गई इससे यह जान लेना कि माया छायारूप किस प्रकार नष्ट होकर ब्रह्मज्ञान का, मध्यान्ह का, प्रखर सूर्य कैसे उदय हो सकता है। आगे (१०) से अन्ततक (१३) तक घट की अनित्यता और स्वयं-प्रकाश आत्मा की नित्यता तथा उसकी प्राप्ति से सहज मुक्ति का लाभ होता है, वर्णित है।

त्रिविध अंतःकरण भेद

उत्तर

बहिर्चित्त चितवै अनेकं। अंतर चित्त चित्तवन एकं॥
परम चित्त चित्तवन नहिं कोई। चित्तवन करत ब्रह्ममय होई॥ ६॥

प्रश्न

बहि जो अहं सु कौन प्रकारा। अंतः अहं कौन निर्द्धारा॥
परम अहं कैसैं करि पइये। सुन्दर सद्गुरु मोहि लपइये॥ ७॥

उत्तर

बहि जो अहं देह अभिमानी। चारि वर्ण अंतिज लौं प्रानी॥
अंतः अहं कहै हरिदासं। परम अहं हरि स्वयं प्रकासं॥ ८॥
चतुष्ट अंतः करण सुनाये। त्रिधा भेद सद्गुरु तैं पाये॥
यह नीकें करि संमुझौ प्रानी। सुन्दर नौ चौपई बपानी॥ ९॥

॥ समाप्तोऽयं त्रिविध अन्तःकरण भेद ग्रन्थः॥ ३६ ॥

वास्तविक विषय कोई ग्रन्थान्तरों में नहीं है। परम कहने से निवृत्ति की अवस्था वा समाधिस्थ होना समझिये। ब्रह्मानन्द का अनुभव यही अवस्था है।

(७) अहं=अहंकार।

(९) चतुष्ट=चतुष्टय, चार।

पूरबी भाषा बरवै

अथ पूरबी भाषा बरवै

बरवै ❀

सद्‌गुरु चरण निनाऊं मस्तक मोर।
बरवै सरस सुनावऊं अद्भुत जोर ॥ १ ॥
पण्डित होइ सु पावइ अरथ अनूप।
हेठ भरलय निहारिय ऊपर कूप ॥ २ ॥
कुम्भ भरल संपूरन निर्मल नीर।
पंषि तिसाई गइले सागर तीर ॥ ३ ॥
गंगा जमुन दोउ बहइय तीक्षण धार।
सुमति नवरिया बैसल उतरब पार ॥ ४ ॥
औरउ अचिरज देषल बांझ क पूत।
पंगु चढल परबत पर बड अवधूत ॥ ५ ॥

❀ बरवै छन्द—(पूर्वीभाषा में)—मात्रिक छन्द विषम—पहिले तीसरे पाद में १२, १२ मात्रा और दूसरे चौथे में ७, ७ मात्रा होती ।

(१) निनाऊं=नावावूं । मोर=मेरा । सुनावऊं=सुनाऊं ।

(२) पावई=पावै, पावैगा । हेठ=नीचै । भरल=भरती हैं । पनिहारिय= पनिहारियां ।

(३) भरल=भर लिया । पंषि=पक्षी । गइले=गये ।

(४) वहइय=बहती है । नवरिया=नवका, नाव । वैसल=बैठ कर, वैठनेवाला । उतरब=उतरना, उतरियेगा ।

(५) औरउ=और, अन्य । घांझ कपूत=वांझ स्त्री के वैठा पुत्र है । (देखो २४।२

जल महिं पावक प्रजल्यउ पुंज प्रकाश।
कंवल प्रफुल्लित भइले अधिक सुवास॥ ६॥
अंधकार मिटि गइले ऊगल भान।
हंस चुगैं मुक्ताफल सरवर मान॥ ७॥
बहुत जतन कैलावल अद्भुत बाग।
मूल उपरतर डरिया देपहु भाग॥ ८॥
सहज फूल फर लागल बारह मास।
भंवर करत गुंजारनि विविधि विलास॥ ९॥
संघ डार पर बैसल कोकिल कीर।
मधुर मधुर धुनि बोलइ सुख कर सीर॥१०॥
अवर अनेक विहंगम चातक मोर।
चकवा कोकिल केकिय प्रकट चकोर॥११॥

सवैया विपर्यय अङ्ग—छन्द ६—"बंध्यापुत्र पंगु इक जायो")। सात्विक बुद्धि तो बंध्या माता है उससे ज्ञानरूप पुत्र उत्पन्न हुआ।

(६) प्रजल्यउ=प्रज्वलित हुई। (सवैया विपर्यय छन्द ८ में—"पानी मांही जरै अंगीठ"—) ब्रह्मज्ञानरूपी अग्नि और शीतक सतोगुणीरूपी अन्तःकरण ही शीतल जल।

(७) मिटि गइले=मिट गया। ऊगल=ऊगा, उदय हुआ। ज्ञान का प्रकाश हुआ। हंस=जिज्ञासु ज्ञान के प्यासे वा भूखे सन्तजन। मुक्ताफल=ज्ञान-वैराग्य। मान=विचार।

(८) जतन कै=जतन करके। लावल=लगाया, लाया। मूल उपर तर डरिया=इस वृक्ष वा बाग की जड़ तो ऊपर मूल पुरुष में और डार=डालियांरूपी संसार वृक्ष फैला हुआ कर्मफल देता है। "ऊर्ध्वमूलमधः शाख..."(भगवद्गीता)

(९) से अन्ततक—इस परमावस्था परमानन्द प्राप्ति और योग—समाधि के सुख और उसकी बहार और दृश्य का वर्णन है जो योगस्थ ध्यानमग्न योगियों को अनुभव होता है।

सब के हू मन भावन सरस बसंत।
करत सदा कौतूहल कामिनि कंत ॥ १२ ॥
झूलत बैसि हिंडोरनि पिय कर संग।
उत्तम चीर बिराजल भूषन अंग ॥ १३ ॥
निशि दिन प्रेम हिंडुलवा दिहल मचाइ।
सेई नारि सभागिनि झूलइ जाइ ॥ १४ ॥
सज्जन मिलिकैं गावल मंगलचार।
प्रेम प्रकाश दशौं दिश भय उजियार ॥ १५ ॥
सुख निधान परमातम आतम अंस।
मुदित सरोवर महिंया क्रीडत हंस ॥ १६ ॥
एक सेजवर कामिनि लागलि पाइ।
पिय कर अंगिह परसत गइलि बिलाइ ॥ १७ ॥
रस महिया रस होइहि नीर हि नीर।
आतम मिलि परमातम षीर हि षीर ॥१८॥
सरिता मिलइ समुद्र हिं भेद न कोइ।
जीव मिलइ परब्रह्म हि ब्रह्मइ होइ ॥ १९ ॥

---

(१४) दिहल मचाइ=मचा दिया, बना दिया, चला दिया। यह उस ही ज्ञान-गम्भीर सुखावस्था के झोटे हैं जो उस अवधूत मस्ती में ज्ञानियों को प्राप्त होते हैं। जिसमें जीवरूपी स्त्री ब्रह्मरूपी अपने पति से मिल कर लय हो जाती है। जीव-तत्व परमात्मतत्व में मिल जाता है। इस सरस वसन्त का वर्णन दादूजीने, कबीरजी ने वा अन्य महात्माओं ने बहुत सुन्दर वर्णित किया है।

(१५) प्रेम प्रकाश=प्रेमानन्द के वैभव में दुःख शोकरूपी अन्धकार विलायमान हो जाता है। केवल आनन्द की वृत्ति रह जाती है।

(१६) महियां=मांही, अन्दर।

(१७) लागलि=लगी। कर=का। गइलि=गई, हो गई।

इक अध्यातम जानहुं गुरु मुख दीस।
सुंदर सरस सुनावल बरवै बीस ॥ २० ॥

॥ समाप्तोऽयं पूरबी भाषा बरवै ग्रन्थः ॥ ३७ ॥

॥ इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित ३७ लघुग्रन्थ संपूर्ण-"सर्वांगयोगप्रदीपिका" ग्रन्थ से लगाकर "पूर्वी भाषा बरवै" तक ॥

इन सैंतीस लघुग्रन्थों की सर्व छंद संख्या १२१६ है ॥

---

(२०) दीस=दीक्षा का बिगड़ा रूप, उपदेश।

॥ लघुग्रन्थों की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त ॥

शुद्धिपत्र

ज्ञान समुद्र

मूल पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	प्रमाण	प्रणाम
११	कोई	कोइ
६	षटसु	षष्ठसु
२	सिन्तत	सिद्धन्त
६	लछण	लच्छण
४	कहिये	लहिये
२	चल	जल
३	अथ	अर्थ
६	अन्योन्या	अन्योअन्या
११	स्वेदज्ज	स्वेदज
३	झलत	झूलत
५	मन्न	मन

सर्वाङ्ग योग प्रदीपिका

मूल पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	अपर्स्स	अपरस
११	दिषराव	दिषरावैं
१	मत्ता	मता
६	लिष	लिष्यौ
१२	विधि	निधि
६	दिपै	देपै

पृष्ठ	मूल पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	पंचेंद्रिय चरित्र		
१४३	१	क	कैं
१४६	११	जानैं	आनैं
	सुख समाधि		
१५५	८	धौंटि	घौंटि
	गुरु सम्प्रदाय		
२०१	४	प्रति	अति
२०२	१२	सुन्दरि	सुन्दर
	बावनी		
२२२	३	मती	मति
२२२	७	ढारन	ढारत
२२४	१	मारि	मरि
	भ्रम विध्वंस		
२३७	११	अंधेरे	अंधेरे
	गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक		
२५०	५	भास	भासै
	पीर मुरीद अष्टक		
२८३	४	ऐसा	ऐसी
२८४	१	हुई	हुई
	अजबख्याल अष्टक		
२८६	५	अल्लाह	अल्लह
२९०	३	त्तरा	रत्ता
२९०	५	हजार	हाजर
२९३	५	अफ्ताब	आफ्ताब

मूल पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
ज्ञान झूलनाष्टक		
१	प	पै
हरिबोल चितावनी		
७१३		३१७
४	जतु	जंतु
तर्क चितावनी		
१६	मभारी	मंभारी
विवेक चितावनी		
११	कोउक	कोउन
६	होइ	होई
६	गुरु	गुरू
अडिला छंद		
८	तल	पल
२	अबल	प्रबल
बारहमासा		
२	औद	और
१०	छोडि	वोडि
आयुर्बलभेद आत्मा विचार		
२	ब्रह्म	ब्रह्मा
१४	कोइ	कोई
पूरबी भाषा बरवै		
१२	अंगिह	अंगहि